ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क—८

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति मे आयोजित]

पचम गणधर भगवत्सुधर्म-स्वामि-प्रणीत चतुर्थ अग

समवायांगसूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

☐

प्रेरणा
(स्व.) उपप्रवर्तक शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी महाराज

☐

आद्य सयोजक तथा प्रधान सम्पादक
श्री स्था जैन श्रमणसंघ के युवाचार्य
(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

☐

अनुवादक-विवेचक-सम्पादक
पं हीरालालजी शास्त्री

☐

प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ८

- निर्देशन
  साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

- सम्पादकमण्डल
  अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
  उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
  श्री रतनमुनि

- सम्प्रेरक
  मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
  श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

- द्वितीय संस्करण प्रकाशनतिथि
  वीर निर्वाण सं० २५१७
  विक्रम सं० २०४८
  अगस्त १९९१ ई०

- प्रकाशक
  श्री आगमप्रकाशन समिति
  श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन,
  पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
  पिन—३०५९०१

- मुद्रक
  सतीशचन्द्र शुक्ल
  वैदिक यंत्रालय,
  केसरगंज, अजमेर—३०५००१

- मूल्य : [illegible] 65/-

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Fourth Anga

SAMAVĀYĀNGA SŪTRA

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

□

Proximity
(Late) Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

□

Convener & Founder Editor
(Lete) Shri Vardhamana Sthanakvasi Jain Sramana Sanghiya Yuvacharya
Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

□

Translator-Annotator-Editor
Pt. Hiralalji Shastri

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
[illegible] **Beawar (Raj)**

Jinagam Granthmala Publication No. 8

☐ **Direction**
Sadhwi Shri Umrav Kunwar 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Upacharya Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni

☐ **Promotor**
Muni Sri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendra Muni 'Dinakar'

Second Edition .
☐ **Date of Publication**
Vir-Nirvana Samvat 2517
Vikram Samvat 2048, August 1991

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashan Samiti,
Brij-Madhukar Smriti Bhawan,
Pipalia Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305 901

☐ **Printer**
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price :** [illegible] 65/-

समर्पण

जिनकी अनिर्वचनीय शान्त मुख-मुद्रा ही भव्य जीवो को परम शान्ति और निश्रेयस् का सदेश सभलाती थी,

जिनके सयम-जीवन मे अनुपम सरलता, सात्त्विकता, सौम्यता, निरहकारता और विनम्रता ओतप्रोत हो चुकी थी,

जो अपनी परमोदार वृत्ति एव प्राणीमात्र के प्रति अनन्य वत्सलता के फलस्वरूप जैन-जैनेतर धर्मप्रेमी जनता मे समान रूप से समादरणीय, श्रद्धेय और महनीय थे,

जिनके परोक्ष शुभाशीर्वाद के फलस्वरूप आगमप्रकाशन का यह भगीरथ अनुष्ठान सत्वर गति से सम्पन्न हो रहा है,

जिनका मेरे व्यक्तित्व-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनके असीम उपकारो का मैं सदैव ऋणी हू,

उन श्रमणसघ के मरुधरामत्री परमपूज्य ज्येष्ठ गुरुभ्राता प्रवर्त्तकवर—

मुनिश्री हजारीमलजी महाराज के

कर-कमलो मे सादर समर्पित ।

मधुकर मुनि

[प्रथम सस्करण से]

समवायाङ्गसूत्रः प्रथम संस्करण के

विशिष्ट अर्थसहयोगी

तिवरी मरुधरा का छोटा-सा ग्राम होने पर भी जैनजगत् मे अपना एक महत्त्व रखता है। यही वह ग्राम है जहाँ की पुण्यभूमि मे अ भा. श्रमणसघ के वर्त्तमान युवाचार्य, जैन सघ की विशिष्ट विभूति विद्वद्रत्न मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज का जन्म हुआ। और यही वह ग्राम है जिसकी ख्याति मे श्रीश्रीमाल-परिवार चार चाद लगा रहा है।

श्रीश्रीमालजी का मूल प्रतिष्ठान 'श्रीरावतमल हनुतमल' है। इस विशाल परिवार ने दुर्ग (मध्यप्रदेश) को अपनी कर्मभूमि बनाया है।

स्व श्री रावतमलजी सा के तीन सुपुत्र थे—श्री हनुतमलजी, श्री दीपचदजी और श्री प्रेमराजजी। आज इस त्रिपुटी मे से श्रीमान् सेठ प्रेमराजजी समाज के सद्भाग्य से हमारे बीच विद्यमान हैं। स्व हनुतमलजी सा के सुपुत्र श्री भवरलालजी सा है और उनके भी तीन सुपुत्र—प्रवीणकुमारजी, प्रदीपकुमारजी और प्रफुल्लकुमारजी है।

स्व. श्री दीपचदजी सा के सुपुत्र श्री नेमिचदजी के दो पुत्र सुरेशकुमारजी और रमेशकुमारजी हैं।

श्रीमान् प्रेमराजजी सा के तीन सुपुत्र श्री मोहनलालजी, श्री शायरमलजी और श्री ताराचदजी हैं। इनमे से श्री मोहनलालजी के सुपुत्र मदनलालजी, राजेन्द्रकुमारजी, अनिलकुमारजी और सुनीलकुमारजी हैं। श्री ताराचदजी के भी पन्नालालजी, श्रीपालजी, हरीशकुमारजी और आनन्दकुमारजी, ये चार सुपुत्र है। इस प्रकार सेठ प्रेमराजजी साहब का भरा-पूरा विशाल परिवार है।

श्रीश्रीमाल-परिवार केवल सख्या की दृष्टि से नही, यश-कीर्ति एव प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी विराट् है। दुर्ग नगर की धार्मिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियो मे परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने अपने क्षेत्र मे पूर्ण प्रभाव रखने वाला है। नगर मे इसकी बडी प्रतिष्ठा है। सार्वजनिक सेवा का कोई भी क्षेत्र इस परिवार मे सहयोग से अछूता नही है।

वयोवृद्ध धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् प्रेमराजजी सा सदैव धार्मिक कार्यों की अभिवृद्धि हेतु तत्पर रहते है। आप अनेक ट्रस्टो के स्वामी हैं और विभिन्न सस्थाओ के सरक्षक है।

श्रीमान् भवरलालजी सा श्री व स्थानकवासी जैन श्रावकसघ के अध्यक्ष एव नगर की अनेक सस्थाओ के ट्रस्टी तथा सक्रिय प्रमुख कार्यकर्त्ता है। आप श्री आगम-प्रकाशनसमिति के उपाध्यक्ष पद पर आसीन रह चुके है। 'राम-प्रसन्न-ज्ञानप्रसार केन्द्र' के मुख्य ट्रस्टी हैं।

श्रीश्रीमाल-परिवार की उदारता की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट करने वाली बात यह है कि इस परिवार से सबधित नौ व्यापारिक प्रतिष्ठान है तो नौ ही सार्वजनिक सस्थाएँ भी चल रही हैं। प्रतिष्ठान और सस्थाएँ इस प्रकार हैं—

व्यापारिक प्रतिष्ठान	**दुर्ग मे संचालित सस्थाएँ**
१ प्रेम एण्ड कम्पनी	१. श्री प्रेमजयमाला ट्रस्ट, (रजिस्टर्ड)
२ प्रकाश एण्ड कम्पनी	२. श्री प्रेम पुण्यार्थ फड
३. प्रदीप एण्ड कम्पनी	३ श्री आयबिल एकासना ट्रस्ट
४ हुलास एण्ड कम्पनी	४ श्री आयबिल वर्षगाठनिधि ट्रस्ट
५ रमेश एण्ड कम्पनी	५ श्री नीवीतपनिधि ट्रस्ट
६ जय ज्वेलस	६ श्री प्रेमजयमाला ज्ञानभवन
७. जय ट्रेडर्स	७ श्री प्रेमजयमाला होम्योपैथिक औषधालय (राज)
८ सहेली वस्त्रालय	८ श्री आचार्य श्रीजयमल जैन वाचनालय एव ग्रन्थालय
९ मे शायरमल जैन	९ श्री सार्वजनिक प्याऊ, राममदिर दुर्ग,

अपनी कर्मभूमि दुर्ग मे इन सस्थाओ की स्थापना करने के साथ ही आपने आपनी जन्मभूमि को भुलाया नही है। निवरी मे भी आपके आर्थिक अनुदान और सत्प्रेरणा से अनेक पारमार्थिक कार्य योजनाबद्ध स्थायी रूप मे चल रहे है।

सेठ प्रेमराजजी सा एव उनके समग्र परिवार मे अत्यन्त विनम्रता, सरलता, सात्त्विकता और मिलनसारी के सहज सद्गुण विद्यमान हैं। इस प्रकार श्रीश्रीमाल-परिवार एक आदर्श परिवार है, समाज का गौरव है। युवाचार्य श्रीमधुकर मुनिजी म सा के प्रति परिवार की अनन्य निष्ठा और गहरी श्रद्धा है। □□

प्रकाशकीय

समवायागसूत्र जैन सिद्धान्त का कोष-ग्रन्थ है। सामान्य जनो को जैनधर्म से सम्बन्धित विषयों का बोध प्राप्त होता है। शोधार्थियो को अपने अपेक्षित विषयो के लिए उपयोगी आवश्यक सकेत उपलब्ध होने से इस आगम ग्रन्थ का अध्ययन, चिन्तन, मनन अनिवार्य है।

समवायागसूत्र की प्रतिपादन शैली अनूठी है। इसमे प्रतिनियत सख्या वाले पदार्थों का एक से लेकर सौ स्थान पर्यन्त विवेचन करने के बाद अनेकोत्तरिक वृद्धि समवाय का कथन करने के साथ द्वादशागगणिपिटक एव विविध विषयो के परिचय का समावेश किया गया है।

श्री आगम प्रकाशन समिति ने स्मरणीय उद्देश्य को ध्यान मे रखकर आगमो के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया था। पूज्य स्व स्वामीजी श्री ब्रजलालजी म की प्रेरणा और स्व युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म सा के दिशा-निर्देश एव अन्यान्य विद्वद्वर्य मुनिराजो, विद्वानो के सहयोग से समिति दिनानुदिन अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करती रही है। पाठको की सख्या मे वृद्धि होती जाने से अभी तक प्रकाशित अनेक ग्रन्थो के प्रथम सस्करण अप्राप्य जैसे हो गये। अत पाठको की उत्तरोत्तर माग बढते जाने से ग्रन्थो के द्वितीय सस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है।

अभी तक आचारागसूत्र भाग-१, २ व ज्ञाताधर्मकथाग, उपासकदशाग, अन्त कृद्दशाग, अनुत्तरोपपातिक सूत्र के प्रथम सस्करण अप्राप्य हो जाने से पुनर्मुद्रण हो चुका है और समवायागसूत्र का यह द्वितीय सस्करण है। शेष ग्रन्थो का भी समयानुसार दूसरा सस्करण प्रकाशित किया जायेगा। जिससे पूरी आगम बत्तीसी सभी ग्रन्थ भडारो आदि मे सकलित हो सके एव स्वाध्यायप्रेमी सज्जन लाभ ले सके।

यद्यपि लागत व्यय मे वृद्धि होने से ग्रन्थो का मूल्य कुछ बढाना पडा है, परन्तु यह मूल्यवृद्धि भी लागत से कम और न कुछ जैसी है।

अन्त में हम आगमप्रकाशन कार्य के लिये अपने सभी सहयोगियो का सधन्यवाद आभार मानते है।

रतनचन्द मोदी	सायरमल चोरडिया	अमरचन्द मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामत्री	मत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

आदि वचन
(प्रथम संस्करण से)

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाग्रो/चिन्तको, ने "ग्रात्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या ग्रात्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ ग्रात्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। ग्रात्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन ग्राज ग्रागम/पिटक/वेद/उपनिषद् ग्रादि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैन दर्शन की यह धारणा है कि ग्रात्मा के विकारो—राग द्वेष ग्रादि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, ग्रौर विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते है तो ग्रात्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य ग्रादि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित उद्भासित हो जाती है। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है ग्रौर सर्वज्ञ/ग्राप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"ग्रागम" के नाम से ग्रभिहित होती है। ग्रागम ग्रर्थात तत्त्वज्ञान, ग्रात्म-ज्ञान तथा ग्राचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/ग्राप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट ग्रतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते है, सघीय जीवन पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते है, वे धर्म प्रवर्तक/ग्ररिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याकारिणी वाणी को उन्ही के ग्रतिशय सम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "ग्रागम" या शास्त्र का रूप देते है ग्रर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "ग्रागम" का रूप धारण करती है। वही ग्रागम ग्रर्थात् जिन-प्रवचन ग्राज हम सब के लिए ग्रात्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"ग्रागम" को प्राचीनतम भाग मे "गणिपिटक" कहा जाता था। ग्ररिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते है ग्रौर द्वादशाग/ग्राचाराग-सूत्रकृताग ग्रादि के अग-उपाग ग्रादि ग्रनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। उस द्वादशागी का ग्रध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए ग्रावश्यक ग्रौर उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी बारहवा अग विशाल एव समग्रश्रुत ज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका ग्रध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का ग्रध्ययन साधको के लिए विहित हुग्रा तथा इसी ग्रोर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी ग्रल्पतम था, तब ग्रागमो/शास्त्रो/को स्मृति के ग्राधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए ग्रागम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया ग्रौर इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक ग्रागमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही ग्राधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव ग्रादि ग्रनेक कारणो से धीरे-धीरे ग्रागमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया ग्रौर स्मृति-दोष से लुप्त होते ग्रागम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का ग्राह्वान किया। सर्व-सम्मति से ग्रागमो को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिये एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ । सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धि-गणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ । वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था । आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था ।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी । आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए । परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते । इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी ।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया । आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ । किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये । साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धातिक विग्रह, तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया । आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया ।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई । धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकाये आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ । इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासुजनो को सुविधा हुई । फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है । मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है, जनता मे आगमो के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है । इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है ।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है । इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो, पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है । उनकी सेवायें नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही, स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ है, पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही । फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहूँगा ।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमो— ३२ सूत्रो का प्राकृत से खडी बोली मे अनुवाद किया था । उन्होने अकेले ही बत्तीस सूत्रो का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन मे पूर्ण कर एक अद्भुत कार्य किया । उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगम ज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत परिलक्षित होती है । वे ३२ ही आगम समय मे प्रकाशित भी हो गये ।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी हैं, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो हैं ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सके। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म दिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकाये लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री बेचरदास जी दोशी, विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे है। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्याये की जा रही है। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगम ज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का एक ऐसा सस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही आगम-सस्करण चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की थी,

सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे गुरुभ्राता शासनसेवी श्री ब्रजलाल जी म की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरो तथा सद्गृहस्थी का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भडारी श्री पदमचन्दजी म० एवं प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुवरजी म० की सुशिष्याए महासती दिव्यप्रभाजी, एम ए. पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुवरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व प श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुवरजी, महासती श्री झणकारकुवरजी का सेवा भाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व श्रावक चिमनसिंहजी लोढा, स्व श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है जिनके अथक प्रेरणा प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। दो वर्ष के इस अल्पकाल मे ही दस आगम ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनिजनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

तुमंसि नाम सच्चेव जं 'हंतव्वं' त्ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं 'अज्जावेयव्वं' त्ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव ज 'परितावेयव्वं' त्ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परिघेतव्वं' त्ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं 'उद्दवेयव्वं' त्ति मन्नसि।

—आचाराङ्ग

तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइए ।

—आचाराङ्ग

प्रस्तावना

समवायांगसूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(प्रथम संस्करण से)

नाम-बोध

श्रमण भगवान् महावीर की विमल वाणी का सकलन-ग्राकलन सर्वप्रथम उनके प्रधान शिष्य गणधरो ने किया। वह सकलन-ग्राकलन अग सूत्रो के रूप मे विश्रुत है। अग बारह हैं—ग्रायार, सूयगड, ठाण, समवाय, विवाहपण्णत्ति, नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अतगडदसा, अणुत्तरोववाइयदसा, पण्हावागरण, विवागसुय और दिट्ठिवाग्र।[1] वर्तमान समय मे बारहवाँ अग दृष्टिवाद ग्रनुपलब्ध है। शेष ग्यारह अगो मे समवाय का चतुर्थ स्थान है। ग्रागम साहित्य मे इसका ग्रनूठा स्थान है। जीवविज्ञान, परमाणुविज्ञान, सृष्टिविद्या, ग्रध्यात्मविद्या, तत्त्वविद्या, इतिहास के महत्त्वपूर्ण तथ्यो का यह ग्रनुपम कोष है। ग्राचार्य ग्रभयदेव ने लिखा है—प्रस्तुत ग्रागम मे जीव, ग्रजीव प्रभृति पदार्थों का परिच्छेद या समवतार है। ग्रत इस ग्रागम का नाम समवाय या समवाग्रो है।[2] सिद्धान्तचक्रवर्ती ग्राचार्य नेमिचन्द्र ने लिखा है कि इस मे जीव ग्रादि पदार्थों का सादृश्य-सामान्य से निर्णय लिया गया है। ग्रत इस का नाम "समवाय" है।[3]

विषय-वस्तु

ग्राचार्य देववाचक ने[4] समवायाग की विषय-सूची दी है, वह इस प्रकार है—

(१) जीव, ग्रजीव, लोक, ग्रलोक एव स्वसमय, पर-समय का—समवतार।

(२) एक से लेकर सौ तक की सख्या का विकास।

(३) द्वादशांग गणिपिटक का परिचय।

१ समवायाग, द्वादशागाधिकार।

२ समिति-सम्यक् ग्रवेत्याधिक्येन ग्रयनमय—परिच्छेदो, जीवा-जीवादिविविधिपदार्थसार्थस्य यस्मिन्नसौ समवाय, समवयन्ति वा—समवसरन्ति सम्मिलन्ति नानाविधा ग्रात्मादयो भावा ग्रभिधेयतया यस्मिन्नसौ समवाय इति। —समवायागवृत्ति, पत्र १

३ स—सग्रहेण सादृश्यसामान्येन ग्रवेयते ज्ञायन्ते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य ग्रस्मिन्निति समवायागम्। —गोम्मटसार जीवकाण्ड, जीवप्रबोधिनी टीका, गा ३५६

४ से किं त समावाए ? समवाए ण जीवा समासिज्जति, ग्रजीवा समासिज्जति, जीवाजीवा समासिज्जति। ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ। लोए समासिज्जइ ग्रलोए समासिज्जइ, लोयालोए समासिज्जइ। समवाए ण एगाइयाण एगुत्तरियाण ठाणसय निड्ढियाण भावाण परूवणा ग्राघविज्जइ। दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ। —नन्दीसूत्र ८३

प्रस्तुत आगम मे[5] समवाय की भी विषय-सूची दी गई है। वह इस प्रकार है—

(१) जीव, अजीव, लोक, अलोक, स्व-समय और पर-समय का समवतार (२) एक से सौ सख्या तक के विषयो का विकास (३) द्वादशागी गणिपिटक का वर्णन, (४) आहार (५) उच्छ्वास (६) लेश्या (७) आवास (८) उपपात (९) च्यवन (१०) अवगाह (११) वेदना (१२) विधान (१३) उपयोग (१४) योग (१५) इन्द्रिय (१६) कषाय (१७) योनि (१८) कुलकर (१९) तीर्थंकर (२०) गणधर (२१) चक्रवर्ती (२२) बलदेव-वासुदेव।

दोनो आगमो में आयी हुयी विषय-सूचियो का गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि नन्दीसूत्र से जो आगम-विषयो की सूची आयी है, वह बहुत ही सक्षिप्त है और समवायाग मे जो विषय-सूची है, वह बहुत ही विस्तृत है। नन्दी और समवायाग मे सौ तक एकोत्तरिका वृद्धि होती है, ऐसा स्पष्ट सकेत किया गया है, किन्तु उन मे अनेकोत्तरिका वृद्धि का निर्देश नही है, नन्दीचूर्णि मे जिनदास गणि महत्तर ने, नन्दी हरिभद्रीया वृत्ति में आचार्य हरिभद्र ने, और नन्दी की वृत्ति मे, आचार्य मलयगिरि ने अनेकोत्तरिका वृद्धि का कोई भी सकेत नही किया है। आचार्य अभयदेव ने समवायाग वृत्ति मे अनेकोत्तरिका वृद्धि का उल्लेख किया है। आचार्य अभयदेव के मत के अनुसार सौ तक एकोत्तरिका वृद्धि होती है और उसके पश्चात् अनेकोत्तरिका वृद्धि होती है।[6] विज्ञो का ऐसा अभिमत है कि वृत्तिकार ने समवायाग के विवरण के आधार पर यह उल्लेख नही किया है। अपितु समवायाग मे जो पाठ प्राप्त है, उसी के आधार से उन्होने यह वर्णन किया है।

यह सहज ही जिज्ञासा हो सकती है कि नन्दीसूत्र मे समवायाग का जो परिचय दिया गया है, क्या उस परिचय से वर्तमान मे समुपलब्ध समवायाग पृथक् है? या—जो वर्तमान में समवायाग है, वह देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की वाचना का नही है। यदि होता तो दोनो विवरणो मे अन्तर क्यो होता? समाधान है—नन्दी मे समवायाग का जो विवरण है उसमे अन्तिम वर्णन द्वादशागी का है। परन्तु वर्तमान मे जो समवायाग है उसमे द्वादशागी से आगे अनेक विषयो का प्रतिपादन किया गया है। इसलिए नन्दीगत समवायाग के विवरण से वह आकार की दृष्टि से पृथक् है। हमने स्थानाग सूत्र की प्रस्तावना मे यह स्पष्ट किया है कि आगमो की श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् पाच वाचनाए हुयी। आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत आगम की वृत्ति मे प्रस्तुत आगम की बृहद् वाचना का उल्लेख किया है। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि नन्दी मे समवाय का जो परिचय देववाचक ने दिया है वह लघुवाचना की दृष्टि से दिया हो।

समवायाग के परिवर्धित आकार को लेकर कुछ मनीषियों ने दो अनुमान किये है। वे दोनों अनुमान कहाँ तक सत्य-तथ्य पर आधृत है, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। मेरी दृष्टि से यदि समवायाग पृथक् वाचना का होता तो इस सम्बन्ध मे प्राचीन साहित्य मे कही न कही कुछ अनुश्रुतिया अवश्य मिलती। पर समवायाग के सम्बन्ध मे कोई भी अनुश्रुति नही है। उदाहरण के रूप में ज्योतिषकरण्ड ग्रन्थ माथुरी वाचना का है, पर समवायाग के सम्बन्ध मे ऐसा कुछ भी नही है। अत विज्ञो का प्रथम अनुमान केवल अनुमान ही है। उसके पीछे वास्तविकता का अभाव है। दूसरे अनुमान के सम्बन्ध मे भी यह नम्र निवेदन है कि भगवती सूत्र[7] मे कुलकरो और तीर्थंकरो आदि के पूर्ण विवरण के सम्बन्ध मे समवायाग के अन्तिम भाग का अवलोकन

---

५ समवायाग, प्रकीर्णक

६ च चब्दस्य चान्यत्र सम्बन्धादेकोत्तरिका अनेकोत्तरिका च तत्र शत यावदेकोत्तरिका परतोऽनेकोत्तरिकेति।

—समवायाग वृत्ति, पत्र १०५

७ भगवतीसूत्र, शतक ५, उ. ५, पृ. ८२६ —भाग २ सैलाना (म. प्र)

करने का संकेत किया गया है। इसी तरह स्थानांग मे भी बलदेव और वासुदेव के पूर्ण विवरण के लिए समवायाग के अन्तिम भाग को अवलोकन करने हेतु सूचन किया है।[८] इस विचार-चर्चा मे यह स्पष्ट है कि समवायाग मे जो परिशिष्ट विभाग है, वह विभाग देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण ने समवायाग मे जोड़ा है।

यह शोधार्थी के लिए अन्वेषणीय है कि नन्दी और समवायाग इन दोनो आगमो के सकलनकर्ता देवर्द्धि गणिक्षमाश्रमण है, तो फिर उन्होने दोनो आगमो मे जो विवरण दिया है, उसमे एकरूपता क्यो न रखी ? दो प्रकार के विवरण क्यो दिये ? समाधान है कि अनेक वाचनाए समय-समय पर हुयी है। अनेक वाचनाए होने से बहुविध पाठ भी मिलते हैं। सभव है कि ये वाचनान्तर-व्याख्याश अथवा परिशिष्ट मिलाने से हुये हो। विज्ञो ने यह कल्पना की है कि समवायाग मे द्वादशागी का जो उत्तरवर्ती भाग है, वह भाग उस का परिशिष्ट विभाग है। परिशिष्ट विभाग का विवरण नन्दीसूत्र की सूची मे नही दिया गया है। इसलिये समवायांग की सूची विस्तृत हो गयी है। समवायाग के परिशिष्ट भाग मे ग्यारह पदो का जो सक्षेप है, वह किस दृष्टि से इसमे सलग्न किया गया है, यह आगममर्मज्ञो के लिये चिन्तनीय है।

समवायाग का वर्तमान मे उपलब्ध पाठ १६६७ श्लोक परिमाण है। इसमें सख्या क्रम से पृथ्वी, आकाश, पाताल, तीनो लोको के जीव आदि समस्त तत्त्वो का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से एक से लेकर कोटानुकोटि सख्या का परिचय प्रदान किया गया है। इस मे आध्यात्मिक तत्त्वो, तीर्थंकर, गणधर, चक्रवर्ती और वासुदेवो से सम्बन्धित वर्णन के साथ भूगोल, खगोल आदि की सामग्री का सकलन भी किया गया है। स्थानाग के समान ही समवायाग मे भी सख्या के क्रम से वर्णन है। दोनो आगमो की शैली समान है। समान होने पर भी स्थानाग मे एक से लेकर दश तक की सख्या का निरूपण है। जबकि समवायाग मे एक से लेकर कोडाकोडी सख्या वाले विषयो का प्रतिपादन है। स्थानाग की तरह समवायांग की प्रकरण-सख्या निश्चित नही है। यही कारण है कि आचार्य देववाचक ने समवायाग का परिचय देते हुए एक ही अध्ययन का सूचन किया है। यह कोष-शैली अत्यन्त प्राचीन है। स्मरण करने की दृष्टि से यह शैली अत्यन्त उपयोगी रही है। यह शैली अन्य आगमो मे भी दृष्टिगोचर होती है। उत्तराध्ययन सूत्र के इकतीसवे अध्ययन मे चारित्र विधि मे एक से लेकर तेतीस तक की सख्या मे वस्तुओ की परिगणना की गयी है। अविवेकपूर्वक प्रवृत्तिया कौन सी है ? उनसे किस प्रकार बचा जा सकता है और किस प्रकार विवेकपूर्वक प्रवृत्ति की जा सकती है, आदि।

शैली

स्थानाग और समवायाग की प्रस्तुत कोष-शैली बौद्ध परम्परा मे और वैदिक परम्परा मे भी प्राप्त है। बौद्ध ग्रन्थ अगुत्तरनिकाय, पुग्गलपञ्ञति, महाव्युत्पत्ति एव धर्मसग्रह मे इसी तरह विचारो का सकलन किया गया है।

महाभारत के वनपर्व के १३४ वे अध्याय मे नन्दी और अष्टावक्र का सवाद है। उस मे दोनो पक्ष वाले एक से लेकर तेरह तक वस्तुओ की परिगणना करते है। प्राचीन युग मे लेखन सामग्री की दुर्लभता थी। मुद्रण का तो पूर्ण अभाव ही था। इसलिये स्मृति की सरलता के लिये सख्याप्रधान शैली अपनायी गयी थी।

समवायांग मे सग्रहप्रधान कोष-शैली होते हुये भी कई स्थानो पर यह शैली आदि से अन्त तक एकरूपता

---

८ एव जहा समवाए निरवसेस ।

—स्थानाङ्ग ९, सूत्र ६७२, मुनि कन्हैयालालजी 'कमल'

को लिये हुये नही है। उदाहरण के रूप मे अनेक स्थानो पर व्यक्तियो के चरित्र आ गये हैं। पर्वतो के वर्णन आ गये हैं तथा सवाद आदि भी। प्रस्तुत आगम मे एक सख्यक प्रथम सूत्र के अन्त मे यह कथन किया गया है। कितने ही जीव एक भव मे सिद्धि को वरण करेंगे। उसके पश्चात् दो से लेकर तेतीस सख्या तक यह प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद कोई कथन नही है। जिससे जिज्ञासु के अन्तर्मानस मे यह प्रश्न उद्बुद्ध होता है कि चौतीस भव या उससे अधिक भव वाले सिद्धि प्राप्त करेंगे या नही ? इसका कोई समाधान नही है।

हमारी दृष्टि से आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय आगमो के सकलन करते हुये ध्यान न रहा हो, या कुछ पाठ विस्मृत हो गये हो, जिसकी पूर्ति उन्होने अनन्त ससार न बढ जाये, इस भय से न की हो।

यह बात हम पूर्व ही बता चुके है कि सख्या की दृष्टि से प्रस्तुत आगम मे विषयो का प्रतिपादन हुआ है। इसलिये यह आवश्यक नही कि उस विषय के पश्चात् दूसरा विषय उसी के अनुरूप हो। प्रत्येक विषय सख्या दृष्टि से अपने आप मे परिपूर्ण है तथापि आचार्य अभयदेव ने अपनी वृत्ति मे एक विषय का दूसरे विषय के साथ सम्बन्ध सस्थापित करने का प्रयास किया है। कही-कही पर उन्हे पूर्ण सफलता मिली है तो कही-कही पर ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्तिकार ने अपनी ओर से हठात् सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। वस्तुत इस प्रकार की शैली मे एक सूत्र का दूसरे सूत्र से सम्बन्ध हो, यह आवश्यक नही। सख्या की दृष्टि से जो भी विषय सामने आया, उसका इस आगम मे सकलन किया गया।

चतुष्टय की दृष्टि से वर्णन

समवायाग मे द्रव्य की दृष्टि से जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश आदि का निरूपण किया गया है। क्षेत्र की दृष्टि से लोक, अलोक, सिद्धशिला, आदि पर प्रकाश डाला गया है। काल की दृष्टि से समय, आवलिका, मुहूर्त आदि से लेकर पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, और पुद्गल – परावर्तन, एव चार गति के जीवो की स्थिति आदि पर चिन्तन किया गया है। भाव की दृष्टि से ज्ञान, दर्शन चारित्र एव वीर्य, आदि जीव के भावो का वर्णन है और वर्ण, गन्ध, रस, सस्थान, स्पर्श, आदि अजीव भावो का वर्णन भी किया गया है।

प्रथम समवाय : विश्लेषण

समवायाग के प्रथम समवाय मे जीव, अजीव आदि तत्त्वो का प्रतिपादन करते हुये आत्मा, अनात्मा, दण्ड, अदण्ड, क्रिया, अक्रिया, लोक, अलोक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष, आश्रव, सवर, वेदना, निर्जरा, आदि को सग्रह नय की दृष्टि से एक-एक बताया गया है। उसके पश्चात् एक लाख योजन की लम्बाई-चौडाई वाले जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्ध विमान आदि का उल्लेख है। एक सागर की स्थिति वाले नारक, देव आदि का विवरण दिया गया है।

प्रथम समवाय मे बहुत ही सक्षेप मे शास्त्रकार ने जैन दर्शन के मूलभूत तत्त्वो का प्रतिपादन किया है। भारतीय दर्शनो मे सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न आत्मा का रहा है। अन्य दार्शनिको ने भी आत्मा के सम्बन्ध मे चिन्तन किया किन्तु उनका चिन्तन गहराई को लिये हुये नही था। विभिन्न दार्शनिको के विभिन्न मत थे। कितने ही दार्शनिक आत्मा को व्यापक मानते है तो कितने ही दार्शनिक आत्मा को अगुष्ठप्रमाण या तण्डुलप्रमाण मानते हैं। जैन दर्शन ने अनेकान्त दृष्टि से आत्मा का निरूपण किया है। वह जीव को परिणामी नित्य मानता है। द्रव्य की दृष्टि से जीव नित्य है, तो पर्याय की दृष्टि से अनित्य है। यहाँ पर प्रस्तुत एकस्थानक समवाय मे, आत्मा

अनन्त होने पर भी सभी आत्माएँ असख्यात प्रदेशी होने से और चेतनत्व की अपेक्षा से एक सदृश है। सभी आत्माएँ स्वदेहपरिमाण हैं। अतएव यहाँ आत्मा को एक कहा है। सर्वप्रथम आत्म तत्त्व का ज्ञान आवश्यक होने से स्थानाग और समवायाग दोनो ही आगमो मे प्रथम आत्मा की चर्चा की है।

आत्मा को जानने के साथ ही अनात्मा को जानना भी आवश्यक है। अनात्मा को ही अजीव कहा गया है। अजीव के सम्बन्ध से ही आत्मा विकृत होता है। उसमें विभाव परिणति होती है। अत अजीव तत्त्व के ज्ञान की भी आवश्यकता है। अचेतनत्व सामान्य की अपेक्षा से अजीव एक है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल, ये सभी अजीव है। इन से आत्मा का अनुग्रह या उपघात नही होता। आत्मा का उपघात करने वाला पुद्गल द्रव्य है। शरीर, मन, इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, वचन, आदि पुद्गल है। ये चेतन के ससर्ग से चेतनायमान होते है। विश्व मे रूप, रस, गन्ध, और स्पर्शवाले जितने भी पदार्थ है, वे सभी पौद्गलिक है। शब्द, प्रकाश, छाया, अन्धकार, सर्दी-गर्मी सभी पुद्गल स्कन्धो की अवस्थाएँ हैं और वही एक आसक्ति का मूल केन्द्र है। शरीर के किसी भी स्नायु-सस्थान के विकृत होने पर उसका ज्ञान-विकास रुक जाता है। तथापि यह सत्य है कि आत्मा का सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अस्तित्व है। वह तैल व बत्ती से भिन्न ज्योति की तरह है। जिस शक्ति से शरीर चिन्मय हो रहा है, वह अन्त ज्योति शरीर से भिन्न है। आत्मा सूक्ष्म कार्मण शरीर के कारण स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर दूसरे स्थूल शरीर को धारण करता है। इसलिये आत्मा और अनात्मा का ज्ञान साधना के लिये आवश्यक है। इसी तरह दण्ड, अदण्ड, क्रिया, अक्रिया आदि की चर्चा भी मुमुक्षुओ के लिए उपयोगी है।

भारतीय चिन्तन मे लोकवाद की चर्चा बडे विस्तार के साथ हुयी है। विश्व के सभी द्रव्यो का आधार "लोक" है।[८] लोकवाद मे अनन्त जीव भी है तो अजीव भी। धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जहाँ रहते हैं, वह लोक है।[९] लोक को समग्र भाव से, सन्तति की दृष्टि से निहारें तो वह अनादि अनन्त है। न कोई द्रव्य नष्ट हो सकता और न कोई असत् से सत् बनता है। जो द्रव्यसख्या है, उसमे एक परमाणु की भी अभिवृद्धि कोई नही कर सकता। प्रतिसमय विनष्ट होने वाले द्रव्यगत पर्यायो की दृष्टि से लोक सान्त है। द्रव्य दृष्टि से लोक शाश्वत है। पर्याय दृष्टि से अशाश्वत है। कार्यों की उत्पत्ति मे काल एक साधारण निमित्त है, जो प्रत्येक परिणमन-शील द्रव्य के परिणाम मे सहायक होता है। वह भी अपने आप मे अन्य द्रव्यो की भाँति परिणमनशील है। आकाश के जितने हिस्से तक छहों द्रव्य पाये जाते है, वह लोक है। और उससे परे केवल आकाशमात्र अलोक है। क्योकि जीव और पुद्गल की गति और स्थिति मे धर्म और अधर्म द्रव्य साधारण निमित्त होते है। जहाँ तक धर्म और अधर्म द्रव्य का सद्भाव है, वहाँ तक जीव और पुद्गल की गति और अवस्थिति सम्भव है। एतदर्थ ही आकाश के उस पुरुषाकार मध्यभाग को लोक कहा है जो धर्म, अधर्म द्रव्य के बराबर है। धर्म, अधर्म, लोक के मापदण्ड के सदृश है। इसीलिये लोक की तरह अलोक भी एक है। जैन आगम साहित्य मे जीव और अजीव का जैसा स्पष्ट वर्णन है वैसा बौद्ध साहित्य मे नही है। बौद्ध ग्रन्थ अगुत्तरनिकाय मे लोक अनन्त है या सान्त है? इस प्रश्न के उत्तर को तथागत बुद्ध ने अव्याकृत कहकर टालने का प्रयास किया है। उन्होने लोक के सम्बन्ध मे इतना ही कहा—रूप, रस, आदि पाँच काम गुण से युक्त है। जो मानव इन पाँच कामगुणो का परित्याग करता है, वही लोक के अन्त मे विचरण करता है।

---

८ भायण सव्वदव्वाण—उत्तराध्ययन २८/९

९ उत्तराध्ययन, सूत्र २८/७

पुण्य और पाप ये दोनो शब्द भारतीय साहित्य मे अत्यधिक विश्रुत है। शुभ कर्म पुण्य हैं, अशुभ कर्म पाप हैं। पुण्य से जीव को सुख का और पाप से दु ख का अनुभव होता है। पुण्य और पाप इन दोनो के द्रव्य और भाव ये दो प्रकार हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को सुखानुभूति होती है वह द्रव्य कर्म है और जीव के दया, करुणा, दान, भावना आदि शुभ परिणाम भाव पुण्य हैं। उसी तरह जिस कर्म के उदय से जीव को दु ख का अनुभव होता है, वह द्रव्य पाप है और जीव के अशुभ परिणाम भावपाप है। साख्यकारिका[10] मे भी पुण्य से ऊर्ध्वगमन और पाप से अधोगमन बताया है। जैनाचार्यों ने भी शुभ अध्यवसाय का फल स्वर्ग और अशुभ अध्यवसाय का फल नरक है[11] कहा है।

पुण्य और पाप की भाँति बन्ध और मोक्ष की चर्चा भी भारतीय साहित्य मे विस्तार के साथ मिलती है। दो पदार्थों का विशिष्ट सम्बन्ध बन्ध कहलाता है। यो बन्ध को यहाँ पर एक कहा है। पर उस के दो प्रकार हैं। एक भाव बन्ध और दूसरा द्रव्य बन्ध। जिन राग, द्वेष और मोह प्रभृति विकारी भावो से कर्म का बन्ध होता है वे भाव भावबन्ध कहलाते है। और कर्म-पुद्गलो का आत्मप्रदेशो के सम्बन्ध होना द्रव्यबन्ध है। द्रव्यबन्ध आत्मा और पुद्गल का सम्बन्ध है। यह पूर्ण सत्य है कि दो द्रव्यो का सयोग हो सकता है पर तादात्म्य नही। दो मिलकर एक से प्रतीत हो सकते है पर एक की सत्ता समाप्त होकर एक शेष नही रह सकता।

आचार्य उमास्वाति[12] ने लिखा है कि योग के कारण समस्त आत्मप्रदेशो के साथ सूक्ष्म कर्म-पुद्गल एक क्षेत्रावग्राही हो जाते है। अर्थात् जिस क्षेत्र मे आत्मप्रदेश है उसी क्षेत्र मे रहे हुए कर्म-पुद्गल जीव के साथ बद्ध हो जाते है। इसे प्रदेशबन्ध कहते है। आत्मा और कर्मशरीर का एक क्षेत्रावगाह के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का कोई रासायनिक-मिश्रण नही होता। प्राचीन कर्म-पुद्गलो से नवीन कर्म-पुद्गलो का रासायनिक मिश्रण होता है, पर आत्मप्रदेशो से नही। जीव के रागादि भावो से आत्मप्रदेशो मे एक प्रकम्पन होता है। उससे कर्म-योग्य पुद्गल आकर्षित होते है। इस योग से उन कर्म-वर्गणाओ मे प्रकृति, यानि एक विशेष प्रकार का स्वभाव उत्पन्न होता है। यदि वे कर्मपुद्गल ज्ञान मे विघ्न उत्पन्न करने वाली क्रिया से आकर्षित होते है तो उनमे ज्ञान के आच्छादन करने का स्वभाव पडेगा। यदि वे रागादि कषाओ से आकर्षित किये जायेगे तो कषायो की तीव्रता और मन्दता के अनुसार उस कर्म-पुद्गल मे फल देने की प्रकृति उत्पन्न होती है। प्रदेशबन्ध और प्रकृतिबन्ध योग से होता है। और स्थिति और अनुभाग-बन्ध कषाय होता है।

कर्मबन्ध से पूर्णतया मुक्त होना मोक्ष है। मोक्ष का सीधा और सरल अर्थ है—छूटना। अनादिकाल से जिन कर्मबन्धनो से आत्मा जकडा हुआ था, वे बन्धन कट जाने से आत्मा पूर्णस्वतन्त्र हो जाता है। उसे मुक्ति कहते है। बौद्ध-परम्परा मे मोक्ष के अर्थ मे "निर्वाण" शब्द का प्रयोग हुआ है। उन्होने क्लेशो के बुझने के अर्थ मे आत्मा का बुझना मान लिया है, जिससे निर्वाण का सही स्वरूप ओझल हो गया है। कर्मों को नष्ट करने का इतना ही अर्थ है कि कर्मपुद्गल आत्मा से पृथक् हो जाते है। उन कर्मों का अत्यन्त विनाश नही होता।[13] किसी भी सत् का अत्यन्त विनाश तीनो-कालो मे नही होता। पर्यायान्तर होना ही नाश कहा गया है। जो कर्म-

---

१० धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण। —सांख्य-४४

११ क— प्रवचनसार १, ९, ११, १२, १३, २, ८९, ख—समयसार-१५५-१६१

१२ नामप्रत्यया सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिता सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशा —तत्त्वार्थसूत्र ८/१४

१३ जीवाद् विश्लेषण भेद सतो नात्यन्तसक्षय। —आप्तपरीक्षा-११५

पुद्गल आत्मा के साथ सम्पृक्त होने से आत्मगुणो का हनन करते थे, जिससे वे कर्मत्व पर्याय से युक्त थे, वह कर्मत्व पर्याय नष्ट हो जाती है। जैसे कर्मबन्धन से मुक्त होकर—आत्मा शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही कर्म पुद्गल भी कर्मत्व—पर्याय से मुक्त हो जाता है। जैन दृष्टि से आत्मा और कर्म पुद्गल का सम्बन्ध छूट जाना ही मोक्ष है।

बन्ध और मोक्ष के पश्चात् एक आश्रव और एक सवर का उल्लेख किया है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये आश्रव है। जिन भावो मे कर्मों का आश्रव होता है, वह भावाश्रव है और कर्म द्रव्य का आना द्रव्याश्रव है। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते हैं कि पुद्गलो में कर्मत्व पर्याय का विकसित होना द्रव्याश्रव है। सामान्य रूप से आश्रव के दो प्रकार है—एक साम्परायिक आश्रव, जो कषायानुरञ्जित योग से होने वाले बन्ध का कारण होकर ससार की अभिवृद्धि करता है। दूसरा ईर्यापथ आश्रव जो केवल योग से होने वाला है। इसमे कषायाभाव होने से स्थिति एव विपाक रूप बन्धन नही होता। यह आश्रव वीतराग जीवन्मुक्त महात्माओ को ही होता है। कषाय और योग प्रत्येक ससारी आत्मा मे रहा हुआ है। जिससे सप्त कर्मों का प्रतिसमय आश्रव होता रहता है। परभव मे शरीर आदि की प्राप्ति के लिये आयुकर्म का आश्रव वर्तमान आयु के त्रिभाग मे होता है, अथवा नौवे भाग मे होता है, या सत्तावीसवें भाग मे होता है अथवा अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर।[1]

आश्रव से विपरीत सवर है। जिन कारणो से कर्मो का बन्ध होता है, उनका निरोध कर देना 'सवर' है। मुख्य रूप से आश्रव योग से होता है। अत योग की निवृत्ति ही सवर है।

तथागत बुद्ध ने सवर का उल्लेख किया है। उन्होंने विभाग कर इस प्रकार प्रतिपादन किया है—(१) सवर से इन्द्रियो पर नियन्त्रण होता है और इन्द्रियो का सवर होने से वह गुप्तेन्द्रिय बनता है, जिससे इन्द्रियजन्य आश्रव नही होता। (२) प्रतिसेवना—भोजन, पान, वस्त्र, चिकित्सा, आदि न करने पर मन प्रसन्न नही रहता और मन प्रसन्न न रहने से कर्मबन्ध होता है। अत मन को प्रसन्न रखने के लिये इनका उपयोग करना चाहिये जिससे आश्रव का निरोध हो। यहा यह स्मरण रखना चाहिये कि भोगोपभोग की दृष्टि से उसका उपयोग किया जाये तो वह आश्रव का कारण है। (३) अधिवासना—किसी मे शारीरिक कष्ट सहन करने की क्षमता है। उसे शारीरिक कष्ट पसन्द है। तो उसे कष्ट सहन से आश्रव-निरोध होता है। (४) परिवर्जन—क्रूर हाथी, घोडा, आदि पशु, सर्प बिच्छू आदि जन्तु, गर्त कण्टक स्थान, पाप मित्र ये सभी दु ख के कारण हैं। उन दु:ख के कारणो को त्यागने से आश्रव का निरोध होता है। (५) विनोदना-हिंसावितर्क, पापवितर्क, काम-वितर्क, आदि बन्धक वितर्कों की भजना न करने से तज्जन्य आश्रव का निरुन्धन होता है। (६) भावना—शुभ भावना से आश्रव का निरुन्धन होता है। यदि शुभ भावना न की जायेगी तो अशुभ भावनाएँ उद्बुद्ध होगी। अत अशुभ भावना का निरोध करने हेतु शुभ भावना भावना आश्रय के निरुन्धन का कारण है। —अगुत्तर निकाय ६।५८

आश्रव और सवर के पश्चात्—वेदना और निर्जरा का उल्लेख है। कर्मों का अनुभव करना "वेदन" है। वह दो प्रकार का है। अबाधाकाल की स्थिति पूर्ण होने पर यथाकाल वेदन करना और कितने ही कर्म, जो कालान्तर मे उदय मे आने योग्य है, उन्हे जीव अपने अध्यवसाय विशेष से स्थिति का परिपाक होने के पूर्व ही उदयावलि मे खीच लाता है, यह उदीरणा है। उदीरणा के द्वारा खीच कर लाये हुये कर्म का वेदन करना यह दूसरा प्रकार है। बौद्धो ने आश्रव का कारण अविद्या बताया है। अविद्या का निरोध करना ही आश्रव का निरोध करना है। उन्होने आश्रव के कामाश्रव और भयाश्रव और अविद्याश्रव ऐसे तीन भेद किये है। —अगुत्तर निकाय ३,५८,६,६३

---

१ सोवक्कमाउया पुण, सेसतिभागे अहव नवमभागे। सत्तावीसइमे वा, अतमुहुत्त तिमवावि।

—सग्रहणी सूत्र, गा ३०२

वेदना के पश्चात् निर्जरा का उल्लेख है। निर्जरा का अर्थ है सचित कर्मों का नाश होना।[14] आचार्य हेमचन्द्र ने[15] लिखा है कि भवभ्रमण के बीजभूत कर्म हैं। उन कर्मों का आत्म-प्रदेशो से पृथक् हो जाना "निर्जरा" है। वह निर्जरा दो प्रकार की है—सकामनिर्जरा और अकामनिर्जरा। प्रयत्न और ज्ञानपूर्वक तप आदि क्रियाओ के द्वारा कर्मों का नष्ट होना सकामनिर्जरा है। सकामनिर्जरा मे आत्मा और मोक्ष का विवेक होता है, जिससे ऐसी अल्पतम निर्जरा भी विराट् फल प्रदान करने वाली होती है।[16] अज्ञानी जीव जितने कर्मों को करोडो वर्षों मे नही खपा सकता, उतने कर्म ज्ञानी एक श्वासोच्छ्वास जितने अल्प समय मे खपा देता है। अकाम निर्जरा वह है—कर्म की स्थिति पूर्ण होने पर कर्म का वेदन हो जाने पर उनका पृथक् हो जाना। परतन्त्रता के कारण भोग उपभोग का निरोध होने से भी अकामनिर्जरा होती है। जैसे नारकी या तिर्यञ्च गतियो मे जीव असह्य वेदनाएँ, घोरातिघोर यातनाएँ छेदन-भेदन को सहन करता है। और मानव जीवन मे भी मजबूरी से अनिच्छापूर्वक कष्टो को सहन करता है। वह दो प्रकार की है। एक औपक्रमिक या अविपाक निर्जरा, दूसरी अनौपक्रमिक या सविपाक निर्जरा। तप आदि से कर्मों को बलात् उदय मे लाकर बिना फल दिये झडा देना अविपाक निर्जरा है। स्वाभाविक रूप से प्रतिसमय कर्मों का फल देकर झडते जाना सविपाक निर्जरा है। प्रति-पल-प्रतिक्षण प्रत्येक प्राणी को सविपाक निर्जरा होती रहती है। पुराने कर्मों के स्थान को नूतन कर्म ग्रहण करते रहते हैं। तप रूपी अग्नि से—कर्मों को फल देने से पूर्व ही भस्म कर देना औपक्रमिक निर्जरा है। कर्मों का विपाक-फल टल नही सकता "नाभुक्त क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि" यह नियम प्रदेशोदय पर तो लागू होता है पर विपाकोदय पर नही। प्रस्तुत कथन प्रवाहपतित साधारण सासारिक आत्माओ पर लागू होता है। पुरुषार्थी साधक ध्यान रूपी अग्नि मे समस्त कर्मों को एक क्षण मे भस्म कर देते है। इस प्रकार प्रथम समवाय मे जैन-दर्शन के मुख्य तत्व आत्मा, अनात्मा, बन्ध, बन्ध के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारण आदि पर प्रकाश डाला है। आत्मा के साथ अनात्मा का जो निरूपण किया गया है, वह इसलिये आवश्यक है कि अजीव-पौद्गलिक कर्मों के कारण आत्मा स्व-स्वरूप से च्युत हो रहा है। सग्रहनय की अपेक्षा से शास्त्रकार ने गुरुगम्भीर-रहस्यो को इसमे व्यक्त किया है।

द्वितीय समवाय : विश्लेषण

दूसरे समवाय मे दो प्रकार के दण्ड, दो प्रकार के बन्ध, दो राशि, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे, नारकीय और देवो की दो पल्यापम और दो सागरोपम की स्थिति, दो भव करके मोक्ष जाने वाले भवसिद्धिक जीवो का वर्णन है। इस मे सर्वप्रथम दण्ड का वर्णन है। अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड, ये दण्ड के दो प्रकार हैं। स्वय के शरीर की रक्षा के लिये कुटुम्ब, परिवार, समाज, देश, और राष्ट्र के पालन-पोषण के लिये जो हिंसादि रूप पाप प्रवृत्ति की जाती है, वह अर्थदण्ड है। अर्थदण्ड मे आरभ करने की भावना मुख्य नही होती। कर्तव्य से उत्प्रेरित होकर प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए आरम्भ किया जाता है। अनर्थ-दण्ड का अर्थ है—बिना किसी प्रयोजन के—निरर्थक पाप करना। अर्थ और अनर्थ दण्ड को नापने का थर्मामीटर

---

१४ क—राजवार्तिक ७।१४।४०।१७
ख—द्रव्यसग्रह ३६।१५०
ग—भावनाशतक ६७

१५ योगशास्त्र ४।८६

१६ क—महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक १०१
ख—प्रवचनसार ४।३८

विवेक है। कितने ही कार्य परिस्थिति-विशेष से अर्थ रूप होते हैं। परिस्थिति परिवर्तन होने पर वे ही कार्य अनर्थ रूप भी हो जाते हैं। आचार्य उमास्वाति[१७] ने अर्थ और अनर्थ शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है— जिससे उपभोग, परिभोग होता है वह श्रावक के लिये अर्थ है और उससे भिन्न जिसमे उपभोग-परिभोग नहीं होता है, वह अनर्थदण्ड है। आचार्य अभयदेव[१८] ने लिखा है कि अर्थ का अभिप्राय "प्रयोजन" है। गृहस्थ अपने खेत, घर, धान्य, धन की रक्षा या शरीर पालन प्रभृति प्रवृत्तियाँ करता है। उन सभी प्रवृत्तियो मे आरम्भ के द्वारा प्राणियो का उपमर्दन होता है। वह अर्थदण्ड है। दण्ड, निग्रह, यातना और विनाश ये चारो शब्द एकार्थक हैं। अर्थदण्ड के विपरीत केवल प्रमाद, कुतूहल, अविवेक पूर्वक निष्प्रयोजन निरर्थक प्राणियो का विघात करना अनर्थदण्ड है। साधक अनर्थदण्ड से बचता है।

अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड के पश्चात् जीवराशि और अजीवराशि का कथन किया गया है। टीकाकार आचार्य अभयदेव[१९] ने टीका मे प्रस्तुत विषय को प्रज्ञापनासूत्र से उसके भेद और प्रभेदो को समझने का सूचन किया है। हम यहाँ पर उतने विस्तार मे न जाकर पाठको को वह स्थल देखने का सकेत करते हुये यह बताना चाहेगे कि भगवान् महावीर के समय जीव और अजीव तत्त्वो की सख्या के सम्बन्ध मे अत्यधिक मतभेद थे। एक ओर उपनिषदो का अभिमत था कि सम्पूर्ण-विश्व एक ही तत्त्व का परिणाम है तो दूसरी ओर साख्य के अभिमत से जीव और अजीव एक है। बौद्धो का मन्तव्य है कि अनेक चित्त और अनेक रूप हैं। इस दृष्टि से जैन दर्शन का मन्तव्य आवश्यक था। अन्य दर्शनो मे केवल सख्या का निरूपण है। जब कि प्रज्ञापना सूत्र मे अनेक दृष्टियो से चिन्तन किया गया है। जिस तरह से जीवो पर चिन्तन है, उसी तरह से अजीव के सम्बन्ध में भी चिन्तन है। यहाँ तो केवल अति सक्षेप मे सूचना दी गई है।[२०]

बन्ध के दो प्रकार बताये हैं, रागबन्ध और द्वेषबन्ध। यह बन्ध केवल मोहनीय कर्म को लक्ष्य मे लेकर के बताया गया है। राग मे माया और लोभ का समावेश है और द्वेष मे क्रोध और मान का समावेश है। अगुत्तर निकाय मे तीन प्रकार का समुदाय माना है - लोभ से, द्वेष से और मोह से। उन सभी मे मोह अधिक प्रबल हैं।[२१] इस प्रकार दो राशि का उल्लेख है। यह विशाल ससार दो तत्त्वो से निर्मित है। सृष्टि का यह विशाल रथ उन्ही दो चक्रो पर चल रहा है। एक तत्त्व है चेतन और दूसरा तत्त्व है जड। जीव और अजीव ये दोनो ससार नाटक के सूत्रधार है। वस्तुत इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया ही ससार है। जिस दिन ये दोनो साथी बिछुड जाते हैं उस दिन ससार समाप्त हो जाता है। एक जीव की दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध का विच्छेद होता है पर सभी जीवो की अपेक्षा से नही। अत राशि के दो प्रकार बताये है। द्वितीय स्थान मे दो की सख्या को लेकर चिन्तन है। इसमे से बहुत सारे सूत्र ज्यो के त्यो स्थानाग मे भी प्राप्त है।

तृतीय समवाय : विश्लेषण

तृतीय स्थान मे तीन दण्ड, तीन गुप्ति, तीन शल्य, तीन गौरव, तीन विराधना, मृगाशिर पुष्य, आदि के तीन तारे, नरक, और देवो की तीन पल्योपम, व तीन सागरोपम की स्थिति तथा कितने ही भवसिद्धिक जीव तीन भव करके मुक्त होगे, आदि का निरूपण है।

---

१७. उपभोगपरिभोगौ अस्याऽगारिणोऽर्थ । तद्व्यतिरिक्तोऽनर्थ । —तत्त्वार्थभाष्य ७-१६

१८ उपासकदशांग, १-टीका

१९ समवायाग सूत्र १४९, अभयदेव वृत्ति

२०. जैन आगम साहित्य—मनन और मीमासा, देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ. २३९ से २४१

२१. अगुत्तरनिकाय ३, ९७ तथा ६।३९

प्रस्तुत समवाय मे तीन दण्ड का उल्लेख है। दुष्प्रवृत्ति में सलग्न मन, वचन और काय, ये तीन दण्ड हैं। इन से चारित्र रूप ऐश्वर्य का तिरस्कार होता है। आत्मा दण्डित होता है। इसलिये इन्हे दण्ड कहा है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति जो संसाराभिमुख है, वह दण्ड है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को अपने मार्ग मे स्थापित करना गुप्ति है।[२२] गुप्ति के तीन प्रकार हैं। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। मनोगुप्ति का अर्थ है सरम्भ समारम्भ, और आरम्भ मे प्रवृत्त मन को रोकना।[२३] उपर शब्दों में कहा जाये तो राग-द्वेष आदि कषायो से मन को निवृत्त करना मनोगुप्ति है। असत्य भाषण आदि से निवृत्त होना या मौन धारण करना, वचनगुप्ति है।[२४] असत्य कठोर आत्मश्लाघी वचनो से दूसरो के मन का घात होता है अत ऐसे वचन का निरोध करना चाहिए।[२५] अज्ञानवश शारीरिक क्रियाओ द्वारा बहुत से जीवो का घात होता है। अत अकुशल कायिक प्रवृत्तियो का विरोध करना कायगुप्ति है।[२६]

साधना की प्रगति मे शल्य बाधक है। शल्य अन्दर ही अन्दर कष्ट देता है। वैसे ही माया, निदान और मिथ्यादर्शन ये साधना को विकृत करते हैं। साधक को इन से बचना चाहिये। अभिमान और लोभ से आत्मा भारी बनता है और अपने आप को गौरवशाली मानता है। पर वह अभिमान से उत्तप्त हुए चित्त की एक विकृत स्थिति है। साधना की दृष्टि से वह गौरव नही, रौरव है। इसलिये साधक को तीनो प्रकार के गौरव से बचने का सकेत किया है। ज्ञाए, दर्शन और चारित्र ये—तीनो मोक्ष-मार्ग है। इन्हे रत्नत्रय भी कहा गया है। यहा पर ज्ञान से सम्यग्ज्ञान को लिया गया है जो सम्यग्दर्शन पूर्वक होता है। जीव मिथ्याज्ञान के कारण अपने स्वरूप को विस्मृत होकर, पर द्रव्य मे आत्म बुद्धि करता है। उस का समस्त क्रियाकलाप शरीराश्रित होता है। लौकिक यश, लाभ, आदि की दृष्टि से वह धर्म का आचरण करता है। उसमे स्व और पर का विवेक नही होता है। किन्तु सम्यग्दर्शन द्वारा साधक को स्व और पर का यथार्थ परिज्ञान हो जाता है।[२७] वह सशय, विपर्यय, और अनध्यवसाय—इन तीन दोषो को दूर कर आत्म-स्वरूप को जानता है।[२८] आत्मस्वरूप को जानना ही निश्चय दृष्टि से सम्यग्ज्ञान है।[२९]

जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा तथा मोक्ष तत्त्व के प्रति श्रद्धा सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से यथार्थ, अयथार्थ का बोध उत्पन्न होता है। रागादि कषाय परिणामो के परिमार्जन के लिये अहिंसा, सत्य, आदि व्रतो का पालन "सम्यग्-चारित्र" है। इन तीनो की विराधना करने से साधक साधना से च्युत होता है। इस प्रकार तृतीय स्थान मे तीन सख्या को लेकर अनेक तथ्य उद्घाटित किये गये है।

---

२२ (क) उत्तराध्ययन अ २४, गा २६
(ख) सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति — तत्त्वार्थसूत्र ९/४
(ग) ज्ञानार्णव १८/४
(घ) आर्हत् दर्शन दीपिका ५/६४२
(ड) गोपन गुप्ति —मन प्रभृतीना कुशलाना प्रवर्तनमकुशलानां च निवर्त्तनमिति

२३. रागादिणियत्ती मणस्स जाणाहि त मणोगुत्ति— मूलाराधना ६/११८७

२४. योगशास्त्र १/४२

२५. उत्तराध्ययन २४/२४-२५

२६. उत्तराध्ययन २४/२५

२७ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम्। —प्रमेयरत्नमाला-१

२८ तातै जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे।
सशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजे॥ —छहढाला ४/६

२९ छहढाला ३/२।

चतुर्थ समवाय : विश्लेषण

चतुर्थ स्थानक समवाय मे चार कषाय, चार ध्यान, चार विकथाएं, चार संज्ञाएं, चार प्रकार के बन्ध, अनुराधा, पूर्वाषाढा के तारो, नारकीय व देवों की चार पल्योपम व सागरोपम स्थिति का उल्लेख करते हुए कितने ही जीवो के चार भव कर मोक्ष जाने का वर्णन है।

आत्मा के परिणामो को जो कलुषित करता है, वह कषाय है। कषाय से आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप नष्ट होता है। कषाय आत्मधन को लूटने वाले तस्कर हैं। वे आत्मा में छिपे हुए दोष हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषाय के चार प्रकार हैं। इन्हे चण्डाल चौकडी कहा जाता है। कषाय से मुक्त होना ही सच्ची मुक्ति है। 'कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव।' कषाय के अनेक भेद-प्रभेद हैं। कषाय कर्मजनित और साथ ही कर्मजनक वैकारिक प्रवृत्ति है। उस प्रवृत्ति का परित्याग कर आत्मस्वरूप मे रमण करना, यह साधक का लक्ष्य होना चाहिए।

कषाय के पश्चात् चार ध्यान का उल्लेख है। ध्यान का अर्थ है—चित्त को किसी विषय पर केन्द्रित करना।[३०] चित्त को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना अत्यन्त कठिन है। वह अन्तमुहूर्त से अधिक एकाग्र नही रह सकता।[३१] आचार्य शुभचन्द्र ने लिखा है—जब साधक ध्यान में तन्मय हो जाता है तब उस मे द्वैतज्ञान नहीं रहता। वह समस्त राग-द्वेष से ऊपर उठकर आत्मा स्व-रूप में ही निमग्न हो जाता है।[३२] उसे तत्त्वानुशासन[३३] में समरसी भाव, और ज्ञानार्णव[३४] मे सवीर्य ध्यान कहा है। ध्यान के लिए मुख्य रूप से तीन बातें अपेक्षित हैं—ध्याता, ध्येय और ध्यान।[३५] ध्यान करने वाला ध्याता है। जिसका ध्यान किया जाता है, वह—ध्येय है और ध्याता का ध्येय मे स्थिर हो जाना "ध्यान" है।[३५] ध्यान-साधना के लिए परिग्रह का त्याग, कषायो का निग्रह, व्रतो का धारण और इन्द्रिय-विजय करना आवश्यक है। स्थानांग[३६], भगवती[३७], आवश्यकनिर्युक्ति[३८], आदि मे समवायाग की तरह ही—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद प्रतिपादित किये गये हैं। इनमे प्रारम्भ के दो ध्यान अप्रशस्त हैं, और अन्तिम दो प्रशस्त हैं। योगग्रन्थो मे अन्य दृष्टियो से ध्यान के भेद-प्रभेदो की चर्चा है। पर हम यहाँ उन भेद-प्रभेदो की चर्चा न कर आगम मे आये हुए चार ध्यानो पर ही सक्षेप मे चिन्तन करेंगे। आर्ति नाम दुःख या पीडा का है उसमे से जो उत्पन्न हो वह आर्त

---

३० क—आवश्यक निर्युक्ति १४५९
    ख—ध्यानशतक-२
    ग—नव पदार्थ-पृ० ६६८
३१. क—ध्यानशतक-३,
    ख—तत्त्वार्थसूत्र ९/२८
    ग—योगप्रदीप १५/३३
३२. योगप्रदीप १३८
३३. तत्त्वानुशासन ६०-६१
३४. ज्ञानार्णव, अध्याय २८
३५ योगशास्त्र ७/१
३५. तत्त्वानुशासन ६७
३६ स्थानाग ४/२४७
३७ भगवती श २५ उद्दे ७
३८. आवश्यकनिर्युक्ति, १४५८

है अर्थात् दु ख के निमित्त से या दु ख मे होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान है।[३९] यह ध्यान मनोज्ञ वस्तु के वियोग और अमनोज्ञ वस्तु के सयोग से होता है। राग भाव से मन मे एक उन्मत्तता उत्पन्न होती है। फलत अवाछनीय वस्तु की उपलब्धि और वाछनीय की अनुपलब्धि होने पर जीव दु खी होता है। अनिष्ट सयोग, इष्ट-वियोग, रोग चिन्ता, या रोगार्त और भोगार्त्त ये चार आर्त्तध्यान के भेद[४०] है। इस ध्यान से जीव तिर्यञ्च गति को प्राप्त होता है। ऐसे ध्यानी का मन आत्मा से हटकर सासारिक वस्तुओ मे केन्द्रित होता है। **रौद्रध्यान** वह है जिसमे जीव स्वभाव से सभी प्रकार के पापाचार करने मे समुद्यत होता है। क्रूर अथवा कठोर भाववाले प्राणी को रुद्र कहते हैं। वह निर्दयी बनकर क्रूर कार्यों का कर्त्ता बनता है। इसलिए उसे रौद्र ध्यान कहा है। इस ध्यान मे हिसा, झूठ चोरी, धन रक्षा व छेदन-भेदन आदि दुष्ट प्रवृत्तियो का चिन्तन होता है। इस ध्यान के हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, सरक्षानन्द, ये चार प्रकार है।[४१] इसलिए इन दोनो ध्यानो को हेय और अशुभ माना गया है। **धर्मध्यान**—आत्मविकास का प्रथम चरण है। इस ध्यान मे साधक आत्मचिन्तन मे प्रवृत्त होता है। ज्ञानसार[४२] मे बताया गया है कि शास्त्रवाक्यों के अर्थ, धर्ममार्गणाएँ, व्रत, गुप्ति, समिति, आदि की भावनाओ का—चिन्तन करना धर्मध्यान है। इस ध्यान के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वैराग्य[४३] अपेक्षित हैं। इनसे सहज रूप से मन स्थिर हो जाता है। आचार्य शुभचन्द्र ने धर्मध्यान की सिद्धि के लिए मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य इन चार भावनाओ के चिन्तन पर भी बल दिया है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण[४५] ने स्पष्ट किया है कि धर्मध्यान का सम्यग् आराधन एकान्त-शान्त स्थान मे हो सकता है। ध्यान का आसन सुख-कारक हो, जिससे ध्यान की मर्यादा स्थिर रह सके। यह ध्यान पद्मासन से बैठकर, खडे होकर या लेट कर भी किया जा सकता है। मानसिक चचलता के कारण कभी-कभी साधक का मन ध्यान मे स्थिर नही होता। इसलिए शास्त्र मे धर्मध्यान के चार आलम्बन बताये है।[४६] **(१) आज्ञा विचय**—सर्वज्ञ के वचनो मे किसी भी प्रकार की त्रुटि नही है।[४७] इसलिए आप्त वचनो का आलम्बन लेना। यहाँ "विचय" शब्द का अर्थ "चिन्तन" है। (२) **अपायविचय**—कर्म नष्ट करने के लिए और आत्म तत्त्व की उपलब्धि के लिए चिन्तन करना। (३) **विपाकविचय**—कर्मों के शुभ-अशुभ फल के सम्बन्ध मे चिन्तन करना अथवा कर्म के प्रभाव से प्रतिक्षण उदित होने वाली प्रक्रियाओ के सम्बन्ध मे विचार करना। (४) **सस्थानविचय**—यह जगत् उत्पाद और ध्रौव्य युक्त है। द्रव्य की दृष्टि से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से उसमे उत्पाद और व्यय होता है। ससार के नित्य-अनित्य स्वरूप का चिन्तन होने से वैराग्य भावना सुदृढ होती है, जिससे साधक आत्म-स्वरूप का अनुभव

३९ स्थानाग ४/२४७

४० क—स्थानाग ४/२४७ ख—आवश्यक अध्ययन-४

४१ क—तत्त्वार्थ सूत्र ९/३६
ख—ज्ञानार्णव २४/३

४२ ज्ञानसार, १६

४३ ध्यानशतक ३०-३४

४४ चतस्रो भावना धन्या, पुराणपुरुषाश्रिता ।
मैत्र्यादयश्चिर चित्ते विधेया धर्मसिद्धये ॥
—ज्ञानार्णव २५/४

४५ ध्यानशतक, श्लोक ३८, ३९

४६ क—स्थानाङ्ग, ख—योगशास्त्र १०/७, ग—ज्ञानार्णव ३०/५, घ—तत्त्वानुशासन ९/८

४७ योगशास्त्र १०-८,९, ख—ज्ञानार्णव-३८

करने का प्रयत्न करता है। आचार्य हेमचन्द्र,[४८] योगीन्दुदेव,[४९] अमितगति,[५०] आचार्य हरिभद्र[५१] उपाध्याय यशो-विजय आदि ने धर्मध्यान के चार ध्येय बताये हैं। वे ये हैं —(१) पिण्डस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ और (४) रूपातीत। **पिण्डस्थ** ध्यान का अर्थ शरीर के विभिन्न भागो पर मन को केन्द्रित करना। पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी और तत्त्ववती, इन पाँच धारणाओ के माध्यम से साधक उत्तरोत्तर आत्म-केन्द्र में ध्यानस्थ होता है। चतुर्विध धारणाओ से युक्त पिण्डस्थ ध्यान का अभ्यास करने से मन स्थिर होता है। जिससे शरीर और कर्म के सम्बन्ध को भिन्न रूप से देखा जाता है। कर्म नष्ट कर शुद्ध आत्मस्वरूप का चिन्तन इसमे होता है। दूसरा **पदस्थ** ध्यान अर्थात् अपनी रुचि के अनुसार मन्त्राक्षर पदो का अवलम्बन लेकर किया जाने वाला ध्यान है। इस ध्यान मे मुख्य रूप से शब्द आलम्बन होता है। अक्षर पर ध्यान करने से आचार्य शुभचन्द्र[५२] ने इसे वर्णमातृका ध्यान भी कहा है। इस ध्यान मे नाभि-कमल, हृदयकमल और मुखकमल की कमनीय कल्पना की जाती है। नाभिकमल मे सोलह पत्रो वाले कमल पर सोलह स्वरो का ध्यान किया जाता है। हृदयकमल मे कर्णिका व पत्रो सहित चौबीस दल वाले कमल की कल्पना कर उस पर क, ख, आदि पच्चीस वर्णों का ध्यान किया जाता है। उसी तरह मुख-कमल पर आठ वर्णों का ध्यान किया जाता है। मन्त्रो और वर्णों मे श्रेष्ठ ध्यान 'अर्हन्' का माना गया है, जो रेफ से युक्तकला व बिन्दु से आक्रान्त अनाहत सहित-मन्त्रराज है।[५३] इस मन्त्रराज पर ध्यान किया जाता है। इनके अतिरिक्त अनेक विधियो का निरूपण योगशास्त्र व ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थो मे विस्तार के साथ है। इस ध्यान मे साधक इन्द्रिय-लोलुपता से मुक्त होकर मन को अधिक विशुद्ध एव एकाग्र बनाने का प्रयत्न करता है। तीसरा ध्यान "**रूपस्थ**" है इसमे राग-द्वेष आदि विकारो से रहित, समस्त सद्गुणो से युक्त, सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभु का ध्यान किया जाता है। इस ध्यान मे अर्हन्त के स्वरूप का अवलम्बन लेकर ध्यान का अभ्यास किया जाता है।[५४] ध्यान का चौथा प्रकार "**रूपातीत**" ध्यान है। रूपातीत ध्यान का अर्थ है रूप, रग से अतीत, निरञ्जन-निराकार ज्ञानमय आनन्द स्वरूप का स्मरण करना।[५५] इस ध्यान मे ध्याता और ध्येय मे कोई अन्तर नही रहता। इसलिये इस अवस्था-विशेष को आचार्य हेमचन्द्र ने समरसी भाव कहा है।[५६] इन चारो धर्मध्यान के प्रकारो मे क्रमश शरीर, अक्षर, सर्वज्ञ व निरञ्जन सिद्ध का चिन्तन किया जाता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ा जाता है। यह ध्यान सभी प्राणी नही कर सकते। साधक ही इस ध्यान के अधिकारी हैं। धर्मध्यान से मन मे स्थैर्य, पवित्रता आ जाने से वह साधक आगे चलकर शुक्लध्यान का भी अधिकारी बन सकता है।

ध्यान का चौथा प्रकार "शुक्ल" ध्यान है। यह आत्मा की अत्यन्त विशुद्ध अवस्था है। श्रुत के आधार से मन की आत्यन्तिक स्थिरता और योग का निरोध शुक्ल ध्यान है। यह ध्यान कषायो के उपशान्त होने पर होता है। यह ध्यान वही साधक कर सकता है जो समताभाव मे लीन हो,[५७] और वज्र ऋषभ नाराच सहनन

४८ योगशास्त्र ७/८
४९ योगसार-९८
५०. योगसार प्राभृत
५१ योगशतक
५२ ज्ञानार्णव—३५-१,२
५३ ज्ञानार्णव—३५/७-८
५४ अर्हतो रूपमालम्ब्य ध्यान रूपस्थमुच्यते—योगशास्त्र ९/७
५५ क—ज्ञानार्णव ३७-१६
ख—योगशास्त्र १०/१
५६ योगशास्त्र १०/३,४
५७ योगशतक ९०

वाला हो।[५८] शुक्ल ध्यान के (१) पृथक्त्व-श्रुत-सविचार (२) एकत्व श्रुत अविचार (३) सूक्ष्म क्रियाप्रतिपत्ति (४) उत्पन्न क्रियाप्रतिपत्ति, इन प्रकारो मे योग की दृष्टि से एकाग्रता की तरतमता बतलाई गयी है।[५९] मन, वचन, और काया का निरुन्धन एक साथ नही किया जाता। प्रथम दो प्रकार छद्मस्थ साधको के लिये हैं और शेष दो प्रकार केवल ज्ञानी के लिये।[६०]

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) **पृथक्त्व श्रुत सविचार**—इस ध्यान मे किसी एक द्रव्य में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य आदि पर्यायो का चिन्तन श्रुत को आधार बनाकर किया जाता है। ध्याता कभी अर्थ का चिन्तन करता है, कभी शब्द का चिन्तन करता है। इसी तरह मन, वचन, और काय के योगो मे सक्रमण करता रहता है। एक शब्द से दूसरे शब्द पर, एक योग से दूसरे योग पर जाने के कारण ही वह ध्यान "सविचार" कहलाता है।[६१] (२) **एकत्वश्रुत अविचार**—श्रुत के आधार से अर्थ, व्यञ्जन, योग के सक्रमण से रहित एक पर्याय विषयक ध्यान। पहले ध्यान की तरह इसमें आलम्बन का परिवर्तन नही होता। एक ही पर्याय को ध्येय बनाया जाता है। इसमे समस्त कषाय शान्त हो जाते हैं और आत्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय को नष्ट कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।[६२] (३) **सूक्ष्मक्रियाप्रतिपात्ति**—तेरहवे गुणस्थानवर्ती—अरिहन्त की आयु यदि केवल अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहती है और नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होती है, तब उन्हे समस्थितिक करने के लिये समुद्घात होता है। उससे आयुकर्म की स्थिति के बराबर सभी कर्मों की स्थिति हो जाती है। उसके पश्चात् बादरकाय योग का आलम्बन लेकर बादर मनोयोग एव बादर वचन योग का निरोध किया जाता है। उसके पश्चात् सूक्ष्म काययोग का अवलम्बन लेकर बादर काययोग का निरोध किया जाता है। उसके बाद सूक्ष्मकाययोग का अवलम्बन लेकर सूक्ष्ममनोयोग और सूक्ष्मवचनयोग का निरोध किया जाता है। इस अवस्था में जो ध्यान प्रक्रिया होती है, वह सूक्ष्म क्रियाप्रतिपत्ति शुक्लध्यान कहलाता है।[६३] इस ध्यान मे मनोयोग और वचनयोग का पूर्ण रूप से निरोध हो जाने पर भी सूक्ष्म काययोग की श्वासोच्छ्वास आदि क्रिया ही अवशेष रहती है। (४) **उत्सन्न क्रियाप्रतिपात्ति**—इस ध्यान मे जो सूक्ष्म क्रियाए अवशिष्ट थी, वह भी निवृत्त हो जाती हैं। पाँच ह्रस्व स्वरो के उच्चारण करने मे जितना समय लगता है, उतने समय मे केवली भगवान् शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं। अघातिया कर्मों को नष्ट कर पूर्ण रूप से मुक्त हो जाते हैं।[६४]

ध्यान के पश्चात् चार विकथाओ का उल्लेख है। सयम बाधक वार्त्तालाप विकथा है। धर्मकथा से निर्जरा होती है तो विकथा से कर्मबन्धन। इसलिये उसे आश्रव मे स्थान दिया गया है। भाषासमिति के साधक को विकथा का वर्जन करना चाहिए।[६५] जैन परम्परा मे ही नही, बौद्ध परम्परा मे भी विकथा को तिरच्छान कथा कहा है और उनके अनेक भेद बताये हैं—राजकथा, चोरकथा, महामात्यकथा, सेनाकथा, भयकथा, युद्धकथा, अन्नकथा, पानकथा, वस्त्रकथा, शयनकथा, मालाकथा, गन्धकथा, ज्ञातिकथा, यानकथा, ग्रामकथा, निगमकथा,

---

५८ योगशास्त्र ११/२

५९ स्थानागसूत्र स्था ४

६० ज्ञानार्णव—४२-१५-१६

६१ क—योगशतक ११/५
ख—ध्यानशतक ७/७/७८

६२ क—योगशास्त्र ११/१२ ख—ज्ञानार्णव ३९-२६

६३. क—योगशास्त्र ११—५३ से ५५

६४. ज्ञानार्णव ३९—४७,४९

६५. क—उत्तराध्ययन, अ ३४ गा ९ ख—आवश्यकसूत्र अ ४

नगरकथा, जनपदकथा, स्त्रीकथा ग्रादि।[६६] प्रस्तुत समवाय में चार विकथाओ का उल्लेख है। स्थानांग[६७] में एक एक विकथा के चार-चार प्रकार भी बताये हैं। और सातवें स्थान में[६८] सात विकथाओ का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

विकथाओ के पश्चात् चार सज्ञाओ का उल्लेख है। सामान्यत अभिलाषा को सज्ञा कहते हैं। दूसरे शब्दो मे आसक्ति सज्ञा है। यहाँ पर सज्ञा के चार भेदो का निरूपण है। स्थानागसूत्र मे एक-एक सज्ञा के उत्पन्न होने के चार-चार कारण भी बताये हैं। दशवें स्थान[६९] मे सज्ञा के दश प्रकार भी बताये हैं। बन्ध के चार प्रकारो के सम्बन्ध में हम पूर्व लिख ही चुके हैं। इस तरह चतुर्थ समवाय मे चिन्तन की विपुल सामग्री विद्यमान है।

पांचवां समवाय : एक विश्लेषण—

पाचवें समवाय मे पाँच क्रिया, पाँच महाव्रत, पाच कामगुण, पाच आश्रवद्वार, पाच सवरद्वार, पांच निर्जरास्थान, पांच समिति, पांच अस्तिकाय, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा धनिष्टा नक्षत्रो के पांच-पाच तारे, नारको और देवो की पाच पल्योपम, और पाच सागरोपम की स्थिति तथा पाच भव कर मोक्ष जाने वाले भवसिद्धिक जीवो का उल्लेख है।

सर्वप्रथम क्रियाओ का उल्लेख है। क्रिया का अर्थ "करण" और व्यापार" है। कर्म-बन्ध मे कारण बनने वाली चेष्टाए "क्रिया" हैं। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते हैं कि मन, वचन और काया के दुष्ट व्यापार-विशेष को क्रिया कहते है। क्रिया कर्म-बन्ध की मूल है। वह ससार-जन्ममरण की जननी है। जिससे कर्म का आश्रव होता है, ऐसी प्रवृत्ति क्रिया कहलाती है। स्थानागसूत्र[७०] मे भी क्रिया के जीव-क्रिया, अजीव क्रिया और फिर जीव-अजीव क्रिया के भेद-प्रभेदो की चर्चा है। यहाँ पर मुख्य रूप से पाँच क्रियाओ का उल्लेख है। प्रज्ञापना-सूत्र मे[७१] पच्चीस क्रियाओ का भी वर्णन मिलता है। जिज्ञासु को वे प्रकरण देखने चाहिए। क्रियाओ से मुक्त होने के लिए महाव्रतो का निरूपण है।

महाव्रत श्रमणाचार का मूल है। आगम साहित्य में महाव्रतो के सम्बन्ध मे विस्तार से विश्लेषण किया गया है। आगमो मे महाव्रतो की तीन परम्पराएँ मिलती हैं। आचाराग[७२] मे अहिंसा, सत्य, बहिद्धादान इन तीन महाव्रतो का उल्लेख प्राप्त होता है। स्थानाग,[७३] उत्तराध्ययन[७४] और दीघनिकाय[७५] मे चार याम का वर्णन है। वे ये हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य और बहिद्धादान। बौद्ध साहित्य मे अनेक स्थलो पर चातुर्याम का उल्लेख हुआ है। प्रश्नव्याकरण[७६] के सवर प्रकरण मे महाव्रतो की चर्चा है। दशवैकालिक सूत्र[७७] मे प्रत्येक महाव्रत का विस्तृत

---

६६ अगुत्तरनिकाय १०-६९
६७ स्थानागसूत्र, चतुर्थ स्थान, सूत्र २८२
६८ स्थानाग, स्था ४, सूत्र ५६९
६९. स्थानाग, स्था १०, सूत्र-७५१
७०. स्थानाग सूत्र—२१, ५२
७१. प्रज्ञापनासूत्र—२२
७२ आचाराग ८।१५
७३ स्थानाङ्ग २६६
७४ उत्तराध्ययन २३।२३
७५ दीघनिकाय
७६ प्रश्नव्याकरण, सूत्र—६/१०
७७. दशवैकालिक सूत्र, अ. ४

विश्लेषण किया गया है। भगवती सूत्र[७८] में प्रत्याख्यान के स्वरूप को बताने के लिये महाव्रतो का उल्लेख है। तत्वार्थसूत्र[७९] और उसके व्याख्यासाहित्य मे भी महाव्रतो के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। जिसे जैन साहित्य मे महाव्रत कहा है उसे ही बौद्ध साहित्य मे[८०] दश कुशलधर्म कहा है। उन्होने दश कुशल धर्मों का समावेश इस प्रकार किया है—

महाव्रत	कुशलधर्म
(१) अहिंसा	(१) प्राणातिपात एव (९) व्यापाद से विरति
(२) सत्य	(४) मृषावाद (५) पिशुनवचन (६) परुषवचन (७) सप्रलाप से विरति
(३) अचौर्य	(२) अदत्तादान से विरति
(४) ब्रह्मचर्य	(३) काम मे मिथ्याचार से विरति
(५) अपरिग्रह	(८) अभिध्या विरति।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत असयम के स्रोत को रोककर सयम के द्वार को उद्घाटित करते है। हिंसादि पापो का जीवन भर के लिये तीन करण और तीन योग मे त्याग किया जाता है। महाव्रतो मे सावद्य योगो का पूर्ण रूप से त्याग होता है। महाव्रतो का पालन करना तीक्ष्ण तलवार की धार पर चलने के सदृश है। जो सयमी होता है वह इन्द्रियो के कामगुणो से बचता है। आश्रवद्वारो का निरोध कर सवर और निर्जरा से कर्मों को नष्ट करने का प्रयत्न करता है।

इसके पश्चात् शास्त्रकार ने पाच समितियो का उल्लेख किया है। सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहा गया है।[८१] मुमुक्षुओ की शुभ योगो मे प्रवृत्ति होती है। उसे भी समिति कहा है।[८२] ईर्यासमिति आदि पाच को इसीलिए समिति सज्ञा दी है। उसके पश्चात् पच अस्तिकाय का निरूपण किया गया है। पचास्तिकाय जैन-दर्शन की अपनी देन है। किसी भी दर्शन ने गति और स्थिति के माध्यम के रूप मे भिन्न द्रव्य नही माना है। वैशेषिक दर्शन ने उत्क्षेपण आदि को द्रव्य न मानकर कर्म माना है। जैनदर्शन ने गति के लिए धर्मास्तिकाय और स्थिति के लिए अधर्मास्तिकाय स्वतन्त्र द्रव्य माने हैं। जैनदर्शन की आकाश विषयक मान्यता भी अन्य दर्शनो से विशेषता लिये हुए है। अन्य दर्शनो ने लोकाकाश को अवश्य माना है पर अलोकाकाश को नही माना। अलोकाकाश की मान्यता जैनदर्शन की अपनी विशेषता है। पुद्गल द्रव्य की मान्यता भी विलक्षणता लिये हुए है। वैशेषिक आदि दर्शन पृथ्वी आदि द्रव्यो के पृथक्-पृथक् जातीय परमाणु मानते है। किन्तु जैनदर्शन पृथ्वी आदि का एक पुद्गल द्रव्य मे ही समावेश करता है। प्रत्येक पुद्गल परमाणु मे स्पर्श, रस, गन्ध और रूप रहते है। इसी प्रकार इनकी पृथक्-पृथक् जातिया नही, अपितु एक ही जाति है। पृथ्वी का परमाणु पानी के रूप मे बदल सकता है और पानी का परमाणु अग्नि मे परिणत हो सकता है। साथ ही जैनदर्शन ने शब्द को भी पौद्गलिक माना है। जीव के सम्बन्ध मे भी जैनदर्शन की अपनी विशेष मान्यता है। वह ससारी आत्मा को स्वदेह-परिमाण मानता है। जैन-दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी भी दर्शन ने आत्मा को स्वदेह-परिमाण नही माना है।

इस तरह पाचवे समवाय मे जैनदर्शन सम्बन्धी विविध पहलुओ पर चिन्तन किया गया है।

---

७८ भगवतीसूत्र, शतक ७, उद्दे २, पृ १७५

७९ तत्वार्थसूत्र—अ ७

८० मज्झिमनिकाय—सम्मादिट्ठी सुत्तन्त १।९

८१ उत्तराध्ययन २४/गाथा—२६।

८२ स्थानाग स्था ८, सूत्र ६०३ की टीका

छठा समवाय : एक विश्लेषण

छठे समवाय मे छह लेश्या, षट् जीवनिकाय, छह बाह्य तप, छह आभ्यन्तर तप, छह छाद्मास्थिक समुद्घात, छह अर्थावग्रह, कृत्तिका और आश्लेषा, नक्षत्रो के छह-छह तारे, नारक व देवो की छह पल्योपम तथा छह सागरोपम की स्थिति का वर्णन किया गया है और कितने ही जीव छह भव ग्रहण करके मुक्त होगे, यह बतलाया गया है।

इस समवाय मे सर्वप्रथम लेश्या का उल्लेख है। स्थानाग,[८३] उत्तराध्ययन[८४] और प्रज्ञापना[८५] में लेश्या के सम्बन्ध मे विस्तार से निरूपण है। आगमयुग के पश्चात् दार्शनिक युग के साहित्य में भी लेश्या के सम्बन्ध मे व्यापक रूप से चिन्तन किया गया है। आधुनिक युग के वैज्ञानिक भी आभामण्डल के रूप मे इस पर चिन्तन कर रहे हैं। सामान्य रूप से मन आदि योगो से अनुरञ्जित तथा विशेष रूप से कषायानुरञ्जित आत्म-परिणामो से जीव एक विशिष्ट पर्यावरण समुत्पन्न करता है। वह पर्यावरण ही लेश्या है। उत्तराध्ययन में लेश्या के पूर्व कर्म शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात कर्म लेश्या। कर्म-बन्ध के हेतु रागादिभाव कर्म लेश्या है। ये लेश्याए भाव और द्रव्य के रूप से दो प्रकार की हैं। कितने ही आचार्य कषायानुरञ्जित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। इस दृष्टि से लेश्या छद्मस्थ व्यक्ति को ही हो सकती है पर शुक्ल लेश्या तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली में भी होती है। अत कोई-कोई योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। कषाय से उसमें तीव्रता आदि का सन्निवेश होता है। आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने स्पष्ट कहा है कि लेश्याओ के द्वारा आत्मा पर कर्मों का सश्लेष होता है।[८६] द्रव्य लेश्या के सम्बन्ध मे चिन्तको के विभिन्न मत रहे हैं। कितने ही विज्ञो के मत से लेश्या द्रव्य कर्म-परमाणु से बना हुआ है। पर वह आठ कर्म अणुओ से भिन्न है। दूसरे विज्ञो के मत से लेश्या द्रव्य बध्यमान कर्म प्रवाह रूप है। तीसरे अभिमत के अनुसार वह स्वतन्त्र द्रव्य है।

प्रस्तुत समवाय मे छह बाह्य तप और छह आभ्यन्तर तपो का भी उल्लेख है। प्रथम बाह्य तप मे अनशन तप है, जो अन्य तपो से अधिक कठोर है। अनशन से शारीरिक, मानसिक विशुद्धि होती है। यह अग्निस्नान की तरह कर्म-मल को दूर कर आत्मा रूपी स्वर्ण को चमकाता है। दूसरा बाह्यतप ऊनोदरी है। उसे अवमौदर्य भी कहा है। द्रव्य ऊनोदरी मे आहार की मात्रा कम की जाती है और भाव ऊनोदरी मे कषाय की मात्रा कम की जाती है। द्रव्य ऊनोदरी से शरीर स्वस्थ रहता है और भाव ऊनादरी से आन्तरिक गुणो का विकास होता है। विविध प्रकार के अभिग्रह करके आहार की गवेषणा करना भिक्षाचरी है। भिक्षाचरी के अनेक भेद-प्रभेदो का उल्लेख है।[८७] भिक्षु को अनेक दोषो को टाल कर भिक्षा ग्रहण करनी होती है।[८८] जिससे भोजन में प्रीति उत्पन्न होती हो, वह रस है। मधुर आदि रसो से भोजन मे सरसता आती है। रस उत्तेजना उत्पन्न करने वाले होते है। साधक आवश्यकतानुसार आहार ग्रहण करता है किन्तु स्वाद के लिए नही! स्वाद के लिए आहार को चूसना, चबाना दोष है। उन रस के दोषो से बचना रसपरित्याग है। शरीर को कष्ट देना कायक्लेश है। साधक

---

८३ स्थानागसूत्र—सू. १३२, १५१, २२१, ३१९, ५०४

८४ उत्तराध्ययनसूत्र—अ ३४

८५ प्रज्ञापनासूत्र—पद १७

८६. लेश्याभिरात्मनि कर्माणि सश्लिष्यन्त—आवश्यकचूर्णि

८७ क—उत्तराध्ययन ३०/२५
ख—स्थानाग—६

८८ क—पिण्ड निर्युक्ति-९२ से ९६
ख—उत्तराध्ययन २४/१२

आत्मा और शरीर को पृथक् मानता है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है कि यह शरीर अन्य है, आत्मा अन्य है। साधक इस प्रकार की तत्त्वबुद्धि से दु:ख और क्लेश को देने वाली शरीर की ममता का त्याग करता है।[८९] स्थानांग मे कायोत्सर्ग करना, उत्कटुक आसन से ध्यान करना, प्रतिमा धारण करना, आदि कायक्लेश के अनेक प्रकार बताये है।[९०] यो कायक्लेश के प्रकारान्तर से चौदह भेद भी बताये हैं।[९१] परभाव मे लीन आत्मा को स्वभाव मे लीन बनाने की प्रक्रिया प्रतिसलीनता है। भगवती मे[९२] इसके इन्द्रिय-प्रतिसलीनता, कषाय प्रतिसलीनता योगप्रतिसलीनता और विविक्त शयनासनसेवना, ये चार भेद किये हैं। छह बाह्यतप हैं।[९३]

छह आभ्यन्तर तपो मे प्रथम प्रायश्चित्त है। आचार्य अकलक के अनुसार अपराध का नाम "प्राय" है। और "चित्त" का अर्थ शोधन है। जिस क्रिया से अपराध की शुद्धि हो, वह प्रायश्चित्त है।[९४] "प्रायश्चित्त" से पाप का छेदन होता है। वह पाप को दूर करता है।[९५] प्रायश्चित्त और दण्ड में अन्तर है। प्रायश्चित्त स्वेच्छा से ग्रहण किया जाता है। दण्ड मे पाप के प्रति ग्लानि नही होती, वह विवशता से लिया जाता है। स्थानाग मे प्रायश्चित्त के दश प्रकार बताये है। विनय दूसरा आभ्यन्तर तप है। यह आत्मिक गुण है। विनय शब्द तीन अर्थों को अपने मे समेटे हुए है। अनुशासन, आत्मसयम-सदाचार, नम्रता। विनय से अष्ट कर्म दूर होते है। प्रवचन-सारोद्धार मे लिखा है कि क्लेश समुत्पन्न करने वाले अष्टकर्म-शत्रु को जो दूर करता है, वह विनय है।[९६] भगवती[९७] स्थानाग[९८] औपपातिक[९९] मे विनय के ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, मनोविनय, वचनविनय, कायविनय, लोकोपचार विनय, ये सात प्रकार बताये हैं। विनय चापलूसी नही, सद्गुणो के प्रति सहज सम्मान है। वैयावृत्य तप धर्मसाधना मे प्रवृत्ति करने वाली वस्तुओ से सेवा करना है। भगवत[१००] मे वैयावृत्य के दश प्रकार बताये हैं। सत् शास्त्रो का विधि सहित अध्ययन करना स्वाध्याय तप है।[१०१] आत्मचिन्तन, मनन भी स्वाध्याय है। शरीर के लिए भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार बुद्धि के विकास के लिए अध्ययन आवश्यक है। वैदिक-महर्षियो ने[१०२] भी 'तपो हि स्वाध्याय' कहा है और यह प्रेरणा दी है कि स्वाध्याय मे कभी प्रमाद मत करो।[१०३] आचार्य पतजलि कहते हैं—स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होने लगता है। स्वाध्याय के वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा, ये पाँच प्रकार बताये है।[१०४] मन की एकाग्र अवस्था

---

८९. आवश्यक निर्युक्ति, १५४७
९० स्थानागसूत्र, स्था. ७, सू-५५४
९१. उववाईसूत्र—समवसरण अधिकार
९२. भगवती २५/७
९३. उत्तराध्ययनसूत्र, अ ३०
९४ तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक ९/२२/१
९५ पचाशक सटीक विवरण १६/३
९६ प्रवचन सारोद्धारवृत्ति
९७ भगवती २५/७
९८ स्थानाग—स्था ७
९९ औपपातिक—तपवर्णन
१००. क भगवती सूत्र—३५/७
ख स्थानाग—१०
१०१. स्थानाग अभयदेववृत्ति ५-३-४६५
१०२. तैत्तिरीय आरण्यक २/१४
१०३ तैत्तिरीय उपनिषद्—१-११-१
१०४ क भगवती २५/७
ख स्थानाग—५

ध्यान है। ध्यान मे आत्मा परवस्तु से हटकर स्व-स्वरूप मे लीन होता है। **व्युत्सर्ग**—विशिष्ट उत्सर्ग व्युत्सर्ग है। आचार्य अकलक[105] ने व्युत्सर्ग की परिभाषा करते हुए लिखा है—नि सगता, अनासक्ति, निर्भयता, और जीवन की लालसा का त्याग, व्युत्सर्ग है। आत्मसाधना के लिए अपने आप को उत्सर्ग करने की विधि व्युत्सर्ग है। व्युत्सर्ग के गणव्युत्सर्ग, शरीरव्युत्सर्ग उपधिव्युत्सर्ग और भक्तपान व्युत्सर्ग ये चार भेद हैं।[106] शरीर-व्युत्सर्ग का नाम ही कायोत्सर्ग है। भगवान् महावीर ने साधक को **'अभिक्खणं काउस्सग्गकारी'** अभीक्ष्ण—पुन पुन कायोत्सर्ग करने वाला कहा है। जो साधक कायोत्सर्ग मे सिद्ध हो जाता है, वह सम्पूर्ण व्युत्सर्ग तप मे सिद्ध हो जाता है। बाह्य और आभ्यन्तर तप के द्वारा शास्त्रकार ने जैन धर्म के तप के स्वरूप को उजागर किया है। इस प्रकार छठे समवाय मे विविध विषयो का निरूपण है।

सातवां समवाय : एक विश्लेषण

सातवे स्थान मे सात प्रकार के भय, सात प्रकार के समुद्घात, भगवान् महावीर का सात हाथ ऊँचा शरीर, जम्बूद्वीप मे सात वर्षधर पर्वत, सात द्वीप, बारहवें गुणस्थान मे सात कर्मों का वेदन, मघा, कृतिका, अनुराधा, धनिष्ठा, नक्षत्रो के सात-सात तारे, व नक्षत्र बताये हैं। नारको और देवो की सात पल्योपम तथा सात सागरोपम स्थिति का उल्लेख है। इसमें सर्वप्रथम सात भय का वर्णन है। इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्‌भय, आजीविका भय, मरणभय, और अश्लोकभय। अतीतकाल मे विजातीय जीवो का भय अधिक था। पर आज वैज्ञानिक खलनायको ने मानव के अन्तर्मानस मे इतना अधिक भय का सचार कर दिया है कि बडे-बडे राष्ट्रनायको के हृदय भी धडक रहे है कि कब अणुबम, उद्जन बम का विस्फोट हो जाये, या तृतीय विश्वयुद्ध हो जाय! जैन आगम साहित्य मे जिस तरह भयस्थान का उल्लेख हुआ है, उसी तरह बौद्ध साहित्य मे भय-स्थानो का उल्लेख है।[107] वहाँ जाति-जन्म, जरा, व्याधि, मरण, अग्नि, उदक, राज, चोर, आत्मानुवाद- स्वय के दुराचार का विचार, परानुवादभय—दूसरे मुझे दुराचारी कहेगे, आदि विविध भयो के भेद बताये है। इस तरह सातवे स्थान मे वर्णन है।

आठवा समवाय : एक विश्लेषण

आठवे समवाय मे आठ मदस्थान, आठ प्रवचनमाता, वाणव्यन्तर देवो के आठ योजन ऊचे चैत्य वृक्ष आदि, केवली समुद्घात के आठ समय, भगवान् पार्श्व के आठ गणधर, चन्द्रमा के आठ नक्षत्र, नारको और देवो की आठ पल्योपम व सागरोपम की स्थिति आठ भव करके मोक्ष जाने वालो का वर्णन है।

सर्वप्रथम इसमे जातिमद, कुलमद आदि मदो का वर्णन है। समयावाग की तरह स्थानाग[108] मे भी आठ मदो का उल्लेख आया है। आवश्यकसूत्र मे साधक को यह सकेत किया गया है कि आठ मद से वह निवृत्त होवे। सूत्रकृताग[109] मे—स्पष्ट निर्देश है कि अहकार से व्यक्ति दूसरो की अवज्ञा करता है, जिससे उसे ससार मे परिभ्रमण करना पडता है। भगवान् महावीर के जीव ने मरीचि के भव मे जाति और कुल मद किया था। फलस्वरूप उन्हे देवानन्दा की कुक्षि मे आना पडा। अत मदस्थानो से बचना चाहिए। अगुत्तरनिकाय मे[110]

---

१०५ तत्त्वार्थ राजवार्तिक ९/२६/१०
१०६. भगवती २५/७
१०७ अगुत्तरनिकाय ४/११९/५-७
१०८. स्थानाग स्था० ८
१०९. सूत्रकृतांग—१/२/१—२
११०. अगुत्तरनिकाय—३/३९

तीन प्रकार के मद बताये हैं—यौवन, आरोग्य और जीवितमद। मद के पश्चात् अष्टप्रवचन माताओ का वर्णन है। उत्तराध्ययन का चौबीसवा अध्ययन, प्रवचनमाता के नाम से ही विश्रुत है। भगवतीसूत्र[111] और स्थानाग[112] मे भी इन्हे प्रवचनमाता कहा है। इन अष्ट प्रवचन माताओ मे सम्पूर्ण द्वादशागी समाविष्ट है।[113] ये प्रवचनमाताए चारित्ररूपा है। चारित्र बिना ज्ञान, दर्शन के नही होता।[114] द्वादशागी मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ही विस्तृत वर्णन है। अत द्वादशागी प्रवचन माता का विराट् रूप है। लौकिक जीवन मे माता की गरिमा अपूर्व है। वैसे ही यह अष्ट प्रवचनमाताए अध्यात्म जगत् की जगदम्बा है।[115] लौकिक जीवन मे माता का जितना उपकार है उस से भी अनन्त गुणित उपकार आध्यात्मिक जीवन मे इन अष्ट प्रवचनमाताओ का है। इनका सविधि पालन कर साधक कर्मों से मुक्त होता है। आधुनिक इतिहासकार भगवान् पार्श्व को एक ऐतिहासिक पुरुष मानते है।[116] भगवान् पार्श्व के आठ प्रमुख शिष्यो के नामो का भी इसमे उल्लेख हुआ है। इस तरह आठवें समवाय मे चिन्तनप्रधान सामग्री का सकलन हुआ है।

नौवा समवाय: एक विश्लेषण

नौवें समवाय मे नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, नव ब्रह्मचर्य अध्ययन, भगवान् पार्श्व नव हाथ ऊँचे थे, अभिजित नक्षत्र आदि, रत्नप्रभा, वाणव्यन्तर देवो की सौधर्म सभा नौ योजन की ऊची, दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ नारक व देवो की नौ पल्योपम और नौ सागरोपम की स्थिति, तथा नौ भव कर के मोक्ष जाने वालो का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय मे सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियो का उल्लेख है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जिन उपायो और साधनो को भगवान् ने समाधि और मुक्ति कहा है, लोक भाषा मे उन्ही को बाड कहा है। बागवान अपने बाग मे पौधो की रक्षा के लिए काटो की बाड बनाता है वैसे ही साधना के क्षेत्र मे ब्रह्मचर्य रूप पौधे की रक्षा के लिए बाड की नितान्त आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य की महिमा और गरिमा अपूर्व है। 'त बभ भगवन्त'[117] जैसे सभी श्रमणो मे तीर्थंकर श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सभी व्रतो मे ब्रह्मचर्य महान् है। जिस साधक ने एक ब्रह्मचर्य की पूर्ण आराधना करली, उसने सभी व्रतो की आराधना कर ली। एक विद्वान् ने **"बस्तीन्द्रियमनसामुपशमो ब्रह्मचर्यम्"** लिखा है। जननेन्द्रिय, इन्द्रियसमूह और मन की शान्ति को ब्रह्मचर्य कहा जाता है। ब्रह्म शब्द के तीन मुख्य अर्थ हैं—वीर्य, आत्मा और विद्या। चर्य शब्द के भी तीन अर्थ है- चर्या, रक्षण और रमण। इस तरह ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ है। ब्रह्मचर्य से आत्मा स्वरूप मे लीन बना जाता है। आत्म-स्वरूप मे लीन होकर ज्ञानार्जन किया जाता है। ब्रह्मचर्य से आत्मशुद्धि होती है। आचार्य पतजलि ने लिखा है—**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया आत्मलाभ**।[118] ब्रह्मचर्य की पूर्ण साधना करने से अपूर्व मानसिक शक्ति और शरीरबल प्राप्त होता है। अथर्ववेद[119] के अनुसार ब्रह्मचर्य से तेज, धृति, साहस और विद्या की प्राप्ति होती है। इस तरह आत्मिक, मानसिक और शारीरिक तीनो प्रकार के विकास ब्रह्मचर्य से होते है। ब्रह्मचर्य के समाधिस्थान और असमाधिस्थान का सुन्दर वर्णन उत्तराध्ययन[120]

---

१११ भगवतीसूत्र—२५।६।पृ-७२
११२ स्थानागसूत्र—स्था० ८
११३ उत्तराध्ययन—अ. २४। ३
११४ उत्तराध्ययन—अ. २८। २९
११५ नन्दीसूत्र स्थविरावली गाथा—१
११६ भगवान् पार्श्व—एक समीक्षात्मक अध्ययन, लेखक—श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
११७ प्रश्नव्याकरणसूत्र—सवरद्वार
११८ पातजल योगदर्शन-२-३८
११९ अथर्ववेद—१५।५।१७
१२० उत्तराध्ययन—अ १६

में है और बौद्ध ग्रन्थो में भी इस से मिलता-जुलता वर्णन[121] है। यह वर्णन ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। भगवान् पार्श्व का शरीर नौ हाथ ऊँचा था। यह ऐतिहासिक वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। इस तरह नवमे समवाय मे विषयो का निरूपण है।

दशवां समवाय : एक विश्लेषण

दशवे समवाय मे श्रमण के दशधर्म, चित्तसमाधि के दश स्थान, सुमेरु पर्वत मूल मे दश हजार योजन विष्कभ वाला है, भगवान् अरिष्टनेमि, कृष्ण वासुदेव, बलदेव दश धनुष ऊँचे थे, दश ज्ञानवृद्धिकारक नक्षत्र, दश कल्पवृक्ष, नारको व देवो की दश हजार दश पल्योपम व दश सागरोपम की स्थिति और दश भव ग्रहण कर मोक्ष जाने वाले जीवो का कथन है।

प्रस्तुत समवाय मे सर्वप्रथम श्रमणधर्म का उल्लेख है। केवल वेश-परिवर्तन से कोई श्रमण नही बनता। श्रमण बनता है सद्गुणो को धारण करने से। यहाँ शास्त्रकार ने श्रमण के वास्तविक जीवन का उल्लेख किया है। श्रमण का जीवन इन दशविध सद्गुणो की सुवास से सुवासित होना चाहिए। जो साधक इन धर्मों को धारण करता है उसी का चित्त समाधि को प्राप्त हो सकता है। यहाँ पर दश प्रकार की चित्त-समाधि का उल्लेख हुआ है। दशाश्रुतस्कन्ध मे[122] भी समाधि स्थान का उल्लेख हुआ है। जिससे मानसिक स्वस्थता का अनुभव हो, वह समाधि है और जिससे मन मे खिन्नता का अनुभव हो, वह असमाधि है। यहाँ दश समाधिस्थान बताये हैं तो दशवैकालिक[123] मे चार समाधिस्थान कहे गये है—विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तप समाधि और आचारसमाधि। यहाँ जो समाधि के दश भेद है उनका समावेश आचारसमाधि मे हो सकता है। सूत्रकृतागसूत्र[124] के समाधि नामक अध्ययन मे निर्युक्तिकार भद्रबाहु[125] ने सक्षेप मे दर्शन, ज्ञान, तप और चारित्र, ये समाधि बतायी है। समाधि शब्द बौद्ध-परम्परा मे भी अनेक बार व्यवहृत हुआ है। वहाँ समाधि का अर्थ "चित्त" की एकाग्रता अर्थात् चित्त को एक आलम्बन मे स्थापित करना है।[126] बुद्ध के अष्टाग मार्ग मे समाधि आठवा मार्ग[127] है। योग-परम्परा के ग्रन्थो मे समाधि का विस्तार से निरूपण हुआ है। आचार्य पतजलि[128] ने तृतीय विभूति पाद मे ध्यान, धारणा के साथ समाधि का उल्लेख किया है। अष्टाग योग[129] मे समाधि अन्तिम है। तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग मे लिया है। क्रियायोग से इन्द्रियो का दमन होता है। अभ्यास और वैराग्य के सतत अभ्यास से साधक समाधियोग को प्राप्त करता है। समाधिशतक आचार्य पूज्यपाद[130] की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। उसमे ध्यान और समाधि के द्वारा आत्मतत्त्व को पहचानने के उपाय है। इस तरह दशवे समवाय मे महत्त्वपूर्ण सामग्री का सकलन है।

---

१२१ अगुत्तर निकाय—७।४७
१२२. दशाश्रुतस्कन्ध—अ ५
१२३ दशवैकालिक—अ ९ उद्दे. ४
१२४ सूत्रकृतागसूत्र—१।१०
१२५ क—सूत्रकृताग निर्युक्ति गाथा—१०६
ख—उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा ३८४
१२६ विशुद्धि मार्ग ३।२-३
१२७. विशुद्धि मार्ग—भाग-२, परिच्छेद १६ पृ १२१
१२८. पातजल योगदर्शन—विभूति पाद
१२९. पातजल योगदर्शन —२-२९
१३०. यह ग्रन्थ हिन्दी, अग्रेजी और मराठी भाषा मे अनेक स्थलो से प्रकाशित है, इस पर अनेक वृत्तिया भी हैं।

ग्यारहवाँ समवाय : एक अनुशीलन

ग्यारहवे समवाय मे ग्यारह उपासक प्रतिमाएँ, भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर, मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे, ग्रैवेयक, तथा नारको व देवो की ग्यारह पल्योपम व ग्यारह सागरोपम की स्थिति तथा ग्यारह भव कर मोक्ष मे जाने वालो का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय मे सर्वप्रथम श्रावक-प्रतिमाओ का उल्लेख है। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा-विशेष, व्रत-विशेष, तप-विशेष, और अभिग्रह-विशेष[131]। श्रावक द्वादश व्रतो को ग्रहण करने के पश्चात् प्रतिमाओ को धारण करता है। प्रतिमाओ की सख्या, क्रम, व नामो के सम्बन्ध मे श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थो मे स्वल्प अन्तर दिखाई देता है। पर वह अन्तर नगण्य है। समवायाग की तरह उपासकदशाग[132] व दशाश्रुत-स्कन्ध[133] मे भी इनके नाम मिलते है। वे इस प्रकार है—१ दर्शन, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ पौषधोपवास ५ नियम, ६ ब्रह्मचर्य, ७ सचित्त-त्याग, ८ आरम्भ त्याग, ९ प्रेष्य परित्याग, १० उद्दिष्ट त्याग और ११ श्रमणभूत। आचार्य हरिभद्र[134] ने पाँचवी प्रतिमा का नियम के स्थान पर केवल 'स्थान' का उल्लेख किया है। दिगम्बर परम्परा के वसुनन्दी श्रावकाचार प्रभृति ग्रन्थो मे दर्शन, व्रत, सामायिक, पौषध, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग एव उद्दिष्टत्याग इन ग्यारह प्रतिमाओ का वर्णन है। स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षा[135] मे सम्यग्दृष्टिनामक एक और प्रतिमा मिलाकर बारह प्रतिमाओ का उल्लेख है। दोनो ही परम्पराओ मे प्रथम चार प्रतिमाओ के नाम एक सदृश है। सचित्तत्याग का क्रम दिगम्बर परम्परा मे पाँचवा है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा मे सातवाँ है। दिगम्बर परम्परा मे रात्रिभुक्तित्याग को एक स्वतन्त्र प्रतिमा गिना है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा मे पाँचवी प्रतिमा—नियम मे उसका समावेश हो जाता है। दिगम्बर परम्परा मे अनुमति त्याग का दशवी प्रतिमा के रूप मे उल्लेख है, श्वेताम्बर परम्परा मे उद्दिष्ट त्याग मे इस का समावेश हो जाता है। क्योकि इस प्रतिमा मे श्रावक उद्दिष्ट भक्त ग्रहण न करने के साथ अन्य आरम्भ का भी समर्थन नही करता। श्वेताम्बर परम्परा मे जो श्रमणभूत प्रतिमा है, उसे दिगम्बर परम्परा मे उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा कहा है। क्योकि इसमे श्रावकाचार श्रमण के सदृश होता है।

चिन्तनीय है कि आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र मे व्रत और उसके अतिचारो का निरूपण किया है। पर उन्होने प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे कुछ भी नही लिखा है। तत्त्वार्थ सूत्र के सभी श्वेताम्बर और दिगम्बर टीकाकारो ने प्रतिमाओ का कोई उल्लेख नही किया है। इसी तरह दिगम्बर परम्परा के पूज्यपाद[136]

---

१३१ (क) प्रतिमा प्रतिपत्ति . प्रतिज्ञेति यावत्—स्थानाङ्गवृत्ति पत्र ६१

(ख) प्रतिमा-प्रतिज्ञा अभिग्रह.—वही पत्र १८४

(ग) जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा—पृ १५२ श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

१३२ उपासकदशाग अ १

१३३ दशाश्रुत स्कन्ध ६-७

१३४ विंशतिर्विंशिका-१०।१

१३५ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा—३०५-३०६

१३६. तत्त्वार्थसूत्र-सर्वार्थसिद्धि

अकलक[१३७] विद्यानन्दी,[१३८] शिवकोटि,[१३९] रविषेण,[१४०] जटासिंह नन्दी,[१४१] जिनसेन[१४२] पद्मनन्दी[१४३] देवसेन,[१४४] अमृतचन्द्र[१४५] आदि ने श्रावको के व्रतो के सम्बन्ध मे अवश्य लिखा है, पर प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे ये मौन रहे हैं। दूसरी परम्परा ऐसे आचार्यों की है जिन्होंने केवल प्रतिमाओ का उल्लेख ही नही किया है किन्तु उनके स्वरूप का विस्तार से विवेचन भी किया है। उनमे आचार्य समन्तभद्र[१४६] सोमदेव,[१४७] अमितगति,[१४८] वसुनन्दी,[१४९] पण्डित आशाधर,[१५०] मेधावी,[१५१] सकलकीर्ति,[१५२] आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

जिस श्रावक को नवतत्त्व की अच्छी तरह से जानकारी हो, वह प्रतिमा धारण कर सकता है। नवतत्त्व की बिना जानकारी के प्रतिमाओ का सही पालन नही हो सकता। कितने ही विचारको का यह अभिमत है कि प्रथम प्रतिमा मे एक दिन उपवास और दूसरे दिन पारणा, द्वितीय प्रतिमा मे बेले-बेले पारणा इसी तरह तेले-तेले, चोले-चोले से लेकर ग्यारह तक तप कर पारणा किया जाये। पर उन विचारको का कथन किसी आगम और परवर्ती ग्रन्थो से प्रमाणित नही है। उपासकदशाग सूत्र मे आनन्द आदि श्रावको ने प्रतिमाओ के आराधन के समय तप अवश्य किया था। पर इतना ही तप करना चाहिए, इसका स्पष्ट निर्देश नहीं है। कितने ही विचारक यह भी मानते है कि वर्तमान मे कोई भी श्रावक प्रतिमाओ की आराधना नही कर सकता। जैसे भिक्षु प्रतिमाओ का विच्छेद हो गया वैसे ही श्रावक प्रतिमाओ का विच्छेद हो गया है। उन विचारको की बात चिन्तनीय है। प्रतिमाओ के साथ अनशन तप की अनिवार्य शर्त ही सम्भवत इस विचार का आधार हो। दिगम्बर परम्परा के अनुसार श्रावक-प्रतिमाओ का पालन यावज्जीवन किया जाता है, श्वेताम्बर परम्परा मे उनकी कालमर्यादा एक, दो यावत् ग्यारह मास की नियत है। दिगम्बर परम्परा मे आज भी प्रतिमाधारी श्रावक हैं।

इस तरह ग्यारहवे समवाय मे विविध-विषयो पर विचार प्रस्तुत किए गये हैं।

---

१३७ तत्त्वार्थ राजवार्तिक
१३८ तत्त्वार्थसूत्र श्लोकवार्तिक
१३९ रत्नमाला
१४० पद्मचरित
१४१ वरागचरित
१४२ हरिवशपुराण
१४३ पचविशतिका
१४४ भावसग्रह (प्राकृत)
१४५ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
१४६ रत्नकरण्ड श्रावकाचार
१४७ उपासकाध्ययन
१४८. श्रावकाचार
१४९ श्रावकाचार
१५० सागारधर्मामृत
१५१ धर्मसग्रह श्रावकाचार
१५२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

बारहवाँ समवाय : एक अनुशीलन

बारहवें समवाय मे बारह भिक्षु प्रतिमाएँ, बारह सभोग, कृतिकर्म के बारह आवर्त्त, विजया राजधानी का बारह लाख योजन का आयाम विष्कम्भ बताया गया है। मर्यादापुरुषोत्तम राम की उम्र बारह सौ वर्ष की बतायी है। रात्रि-मान तथा सर्वार्थसिद्ध विमान से ऊपर ईषत् प्राग्भार पृथ्वी तथा नारकीय और देवो की तरह बारह पल्योपम व बारह सागर की स्थिति व बारह भव करके मोक्ष जाने वाले जीवो का उल्लेख है।

प्रस्तुत समवाय मे सर्वप्रथम बारह भिक्षुप्रतिमाओ का उल्लेख है। यो स्थानागसूत्र[153] मे अनेक दृष्टियो से प्रतिमाओ के उल्लेख हुए हैं—जैसे समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा। समाधि प्रतिमा के भी दो भेद किये हैं—श्रुत समाधि, और चारित्र समाधि, उपधान प्रतिमा मे भिक्षु की बारह प्रतिमाओ का उल्लेख किया है। इसी तरह विवेकप्रतिमा और व्युत्सर्गप्रतिमा का भी उल्लेख हुआ है। भद्रा, सुभद्रा, प्रतिमाओ का भी वर्णन है। महाभद्रा, सर्वतोभद्रा विविध प्रतिमाओ के उल्लेख हैं। और उनके विविध भेद-प्रभेद है। परन्तु यहाँ पर भिक्षु की जो बारह प्रतिमाए बतायी हैं, उन्हे विशिष्ट सहनन एव श्रुत के धारी भिक्षु ही धारण कर सकते हैं।

सभोग शब्द का प्रयोग यहाँ पारिभाषिक अर्थ मे समान समाचारीवाले श्रमणो का साथ मिलकर के खान-पान, वस्त्र-पात्र, आदान-प्रदान, दीक्षा-पर्याय के अनुसार विनय-वैयावृत्य करना, सभोग है। प्रस्तुत समवाय मे सभोग सबन्धी जो दो गाथाएँ दी गयी हैं वे निशीथभाष्य[154] मे प्राप्त होती है। उन का वहाँ पर विस्तार से विवेचन किया गया है। सभोग के बारह प्रकारो मे प्रथम प्रकार है—उपधि! वस्त्र-पात्र रूप उपधि जब तक विशुद्ध रूप से ली जाती है, वहाँ तक साभोगिक —श्रमणो के साथ उस का साभोगिक सम्बन्ध—रह सकता है। यदि वह दोषयुक्त ग्रहण करता है और कहने पर उसका प्रायश्चित्त लेता है, तो सभोगार्ह है। तीन बार भूल करने तक वह सभोगार्ह रहता है। यदि चतुर्थ बार ग्रहण करता है तो उसे समुदाय से पृथक् करना चाहिए, भले ही उसने प्रायश्चित्त लिया हो। उसी प्रकार समुदाय से जो पृथक् हो, ऐसे विसभोगिक पार्श्वस्थ या सयति के साथ शुद्ध या अशुद्ध उपधि की एषणा करने वाले को तीन बार-उसे प्रायश्चित्त दिया जा सकता है, इससे आगे उसे विसभोगार्ह गिनना। इसी प्रकार उपधि के ग्रहण की तरह उपधि के परिकर्म और परिभोग के सम्बन्ध मे भी साभोगिक और विसाभोगिक व्यवस्था समझनी चाहिए। दूसरा सभोग श्रुत है। साभोगिक या दूसरे गच्छ से उपसपन्न हुये श्रमण को विधिपूर्वक जो वाचना दी जाये, उसकी परिगणना शुद्ध मे होती है। जो श्रुत की वाचना अविधिपूर्वक साम्भोगिक या उपसपन्न या अनुपसपन्न आदि को देता हो तो तीन बार उसे क्षमा दी जा सकती है। उस के पश्चात् यदि वह प्रायश्चित्त भी लेता है तो भी उसे विसभोगार्ह ही समझना चाहिए। जब तक श्रमण निर्दोष भक्तपान ग्रहण करने की मर्यादा का पालन करता है, तब तक वह साभोगिक है। उपधि की भाँति ही इसकी भी व्यवस्था है। उपधि मे परिकर्म और परिभोग है तो यहाँ पर भोजन और दान है। चतुर्थ सभोग का नाम अजलिप्रग्रह है। साभोगिक और सविग्न असभोगियो के साथ हाथ जोड कर नमस्कार करना उचित है पर पार्श्वस्थ को इस प्रकार करना विहित नही है। इस प्रकार करने वाले को तीन बार क्षमा किया जा सकता है। दान, निकाचना, अभ्युत्थान, कृतिकर्म, वैयावृत्य करण, समवसरण, सनिषद्या कथाप्रबन्ध आदि अन्य सभोग शब्दो की व्याख्या विवेचन मे सम्पादक ने अच्छी की है। अत मूल सूत्र का अवलोकन करे।

---

१५३ स्थानागसूत्र-सू ८४, १५१, २३७, २५१, ३५२, आदि

१५४. क—निशीथभाष्य—उद्दे० ५, गाथा ४९, ५०

ख—व्यवहारभाष्य-उद्दे० ५ गाथा-४७

इस के आगे कृतिकर्म के बारह आवर्त्त बताये गये हैं। किन्तु विवेचन मे जैसा चाहिए वैसा विषय को स्पष्ट नही किया जा सका है। प्रस्तुत गाथा आवश्यकनिर्युक्ति[१५७] मे इसी प्रकार आयी है, निर्युक्ति मे विषय को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है और कहा गया है कि पच्चीस आवश्यक से परिशुद्ध यदि वन्दना की जाये तो वन्दनकर्त्ता परिनिर्वाण को प्राप्त होता है या विमानवासी देव होता है। सद्गुरु की वन्दना "इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह, मे मिउग्गह निसीहि अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलताणं बहुसुभेण भे दिवसो। वइक्कतो ? जत्ता मे, जवणिज्ज च भे ?" के पाठ से दो बार की जाती है। 'इच्छामि खमासमणो' से 'मे मिउग्गह' तक के पाठ का अर्थ है—मैं पाप से मुक्त होकर आपको वन्दन करना चाहता हू। अत आप परिमित—अवग्रह यानी स्थान दीजिए। यह पाठ अवग्रह की याचना की क्रिया का सूचक है। प्रस्तुत पाठ मे "अणुजाणह" इस पद तक एक बार अपने शरीर को अर्ध अवनत करना होता है। यह एक अवनत है और पूर्ववत् पुन वन्दन किया जाये तब दूसरा अवनत होता है। इस प्रकार कृतिकर्म मे दो नमस्कार होते है। दीक्षा ग्रहण करते समय या जन्म ग्रहण करते समय बालक की ऐसी मुद्रा होती है--वह दोनो हाथ सिर पर रख हुआ होता है। उसे यथाजात कहते हैं। वन्दन करते समय भी यथाजात मुद्रा होनी चाहिये। अवग्रह मे प्रवेश करने की अनुज्ञा प्राप्त होने पर उभड़क आसन से बैठकर दोनो हाथ गुरु की दिशा मे लम्बे कर के दोनो हाथो से गुरु के चरणो का स्पर्श करे। "अहोकाय" इस पाठ मे "अ" अक्षर मन्द स्वर मे कहे। वहाँ से हाथ लेकर पुन अपने मस्तिष्क के मध्यभाग को स्पर्श करता हुआ "हो" अक्षर का उच्च स्वर से उच्चारण करना। इस प्रकार "अहो" शब्द के उच्चारण करने मे एक आवर्त्त हुआ। उसी प्रकार—"काय" शब्दोच्चार मे भी एक आवर्त्त करना। उसी तरह "काय-सफास" मे काय के उच्चारण मे एक आवर्त्तन करना। इस प्रकार ये तीन आवर्त्तन हुए। उस के पश्चात् "जत्ता भे" मे "ज" अक्षर का मन्दोच्चार कर गुरु के चरण को कर से स्पर्श करना चाहिये। और "त्ता" का मध्यम उच्चारण करते समय गुरुचरण से दोनों हाथ हटाकर- "अधर" मे रखना चाहिये। और "भे" अक्षर उच्च स्वर से बोलते हुए मस्तिष्क के मध्यभाग को हाथ से स्पर्श करना चाहिये। यह एक आवर्त्त हुआ। इसी प्रकार "ज" "व" "णि" इन तीन अक्षरो का उच्चारण करते समय और "ज" "च" "भे" इन तीन अक्षरों को बोलते हुये तीसरा आवर्त्तन करना। इस प्रकार एक वन्दन करने मे सभी आवर्त्त मिलकर छह आवर्त्त होते हैं। द्वितीय बार वन्दन मे भी छह आवर्त्त होते है। इस तरह कृतिकर्म के बारह आवर्त्त होते हैं।

अवग्रह मे प्रवेश करने के पश्चात् क्षामणा करते समय शिष्य और आचार्य दोनो के मिलकर दो शिरोनमन होते हैं और इसी प्रकार दूसरी वन्दना के प्रसग पर दो शिरोनमन होते हैं। इस तरह चार शिरोनमन हुये। शिष्य जब वन्दना करता है तब मन, वचन और काया को सयम मे रखना चाहिये। ये तीन गुप्ति है। प्रथम वदन के समय अवग्रह-याचना कर प्रवेश करना और इसी प्रकार द्वितीय वन्दन के समय भी। इसी तरह ये दो प्रवेश होते है। आवश्यकीय कर के अवग्रह से प्रथम वन्दन करने के पश्चात् बाहर जाना यह निष्क्रमण है। यह एक ही है। दूसरे वन्दन मे बाहर न जाकर गुरु के चरणारविन्दो मे रहकर के ही सूत्र समाप्ति करनी होती है। ये वन्दन के पच्चीस आवश्यक है।[१५८]

इस तरह प्रस्तुत समवाय मे भी पूर्व समवायो की तरह ज्ञानवर्धक सामग्री का सुन्दर सकलन है।

---

१५७ आवश्यकनिर्युक्ति गाथा- -१२०२

१५८. स्थानाग-समवायाग, पृ ८१० से ८१२—प. दलसुख मालवणिया

तेरहवां व चौदहवां समवाय : एक विश्लेषण

तेहरवें समवाय में तेरह क्रिया-स्थान, सौधर्म, ईशानकल्प में तेरह विमान प्रस्तट, प्राणायु नामक बारहवें पूर्व में तेरह वस्तुनामक अधिकार, गर्भज तिर्यंच, पचेन्द्रिय मे तेरह प्रकार के योग, सूर्य मण्डल, तथा नारकीय व देवो की तेरह पल्योपम व तेरह सागरोपम स्थिति का निरूपण है। क्रिया आदि के सम्बन्ध मे पूर्व पृष्ठो पर विस्तार के साथ लिखा जा चुका है।

चौदहवें समवाय मे चौदह भूतग्राम, चौदह पूर्व, चौदह हजार भगवान् महावीर के श्रमण, चौदह जीवस्थान, चक्रवर्ती के चौदह रत्न, चौदह महानदिया नारक व देवो की चौदह पल्योपम व चौदह सागरोपम की स्थिति के साथ चौदह भव कर मोक्ष जाने वाले जीवो का वर्णन है।

यहां पर सर्वप्रथम चौदह भूतग्राम का उल्लेख हुआ है। भूत अर्थात् जीव और ग्राम का अर्थ है समूह, अर्थात् जीवो के समूह को भूतग्राम कहते है। समवायाग की तरह भगवती सूत्र[१५९] मे भी इन भेदो का उल्लेख हुआ है। इन मे सात अपर्याप्त है और सात पर्याप्त है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये छह पर्याप्तियां है। पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवो मे चार पर्याप्तियाँ होती है। बेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पचेन्द्रिय और समूर्च्छिम मनुष्य मे पाच पर्याप्तियां होती हैं। सज्ञी तिर्यञ्च मनुष्य नारक और देव मे छह पर्याप्तियां होती हैं। जिस जीव मे जितनी पर्याप्तियां सम्भव है, उन्हे जब तक पूर्ण न कर ले तब तक वह जीव की अपर्याप्त अवस्था है और उन्हे पूर्ण कर लेना पर्याप्त अवस्था है। इस तरह पर्याप्त और अपर्याप्त के मिलाकर चौदह प्रकार किये गये है। इस के बाद चौदह पूर्वो का उल्लेख है। पूर्व श्रुत, विज्ञान का असीम कोष है। पर अत्यन्त परिताप है कि वह कोष श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् भयकर द्वादश-वर्षीय दुष्काल के कारण, तथा स्मृति दौर्बल्य आदि के कारण नष्ट हो गया। उस के पश्चात् चौदह जीवस्थानो का उल्लेख है। जीवस्थान को ही समयसार[१६०] मे प्राकृत पचसग्रह[१६१] व कर्मग्रन्थ[१६२] मे 'गुणस्थान' कहा है। आचार्य नेमिचन्द्र[१६३] ने जीवो को गुण कहा है। चौदह जीवस्थान कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम, आदि भावाभावजनित अवस्थाओ से निष्पन्न होते है। परिणाम और परिणामी का अभेदोपचार करने से जीवस्थान को गुणस्थान कहा है। गोम्मटसार[१६४] मे गुणस्थान का जीव-समास भी कहा है। षट्खण्डागम धवलावृत्ति[१६५] में लिखा है कि जीव गुणो मे रहता है, अत उसे जीवसमास कहते है। कर्म के उदय से जो गुण उत्पन्न होते है, वह औदयिक है। कर्म के उपशम से जो गुण उत्पन्न होते है, वह औपशमिक है। कर्म के क्षयोपशम से जो गुण उत्पन्न होते हैं, वह क्षायोपशमिक है। कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले गुण क्षायिक है। कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम के बिना जो गुण स्वभावत पाये जाते है, वे पारिणामिक है। इन गुणो के कारण जीव को भी गुण कहा गया है। जीवस्थान को समवायाग के बाद के साहित्य मे गुणस्थान कहा गया है। आचार्य नेमिचन्द्र[१६६]

---

१५९. भगवती सूत्र—शतक २५ उद्देश-१, पृ ३५०

१६० समयसार गाथा ५५

१६१. प्राकृतपचसग्रह १/३-५

१६२. कर्मग्रन्थ ४/१

१६३ गोम्मटसार गाथा ७

१६४ गोम्मटसार गाथा १०

१६५ षट्खण्डागम धवलावृत्ति, प्रथम खण्ड २-१६-६१

१६६ गोम्मटसार गाथा ३

ने सक्षेप और ओघ ये दो गुणस्थान के पर्यायवाची माने हैं । कर्मग्रन्थ[१६७] में जिन्हें चौदह जीवस्थान बताया है, उन्हे समवाय मे चौदह भूतग्राम की सज्ञा दी गई है। जिन्हे कर्मग्रन्थ मे गुणस्थान कहा है, उन्हें समवाय मे जीवस्थान कहा है। इस प्रकार कर्मग्रन्थ और समवाय मे सज्ञाभेद है, अर्थभेद नही है। समवायांग में जीवस्थानो की रचना का आधार कर्म-विशुद्धि बताया है । आचार्य अभयदेव[१६८] ने गुणस्थानो को मोहनीय कर्मों की विशुद्धि से निष्पन्न बताया है। नेमिचन्द्र[१६९] ने लिखा है—प्रथम चार गुणस्थान दर्शन मोह के उदय आदि से होते है और आगे के आठ गुणस्थान चारित्र मोह के क्षयोपशम आदि से निष्पन्न होते हैं। शेष दो योग के भावाभाव के कारण। यहाँ पर सक्षेप मे गुणस्थानो का स्वरूप उजागर हुआ है । इस तरह चौदहवें समवाय मे बहुत ही उपयोगी सामग्री का सयोजन है।

पन्द्रहवां व सोलहवा समवाय : एक विश्लेषण

पन्द्रहवे समवाय मे पन्द्रह परम अधार्मिक देव, नमि अर्हत् की पन्द्रह धनुष की ऊचाई, राहु के दो प्रकार, चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्त तक छह नक्षत्रो का रहना, चैत्र और आश्विन माह मे पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त के दिन व रात्रि होना, विद्यानुवाद पूर्व के पन्द्रह अर्थाधिकार, मानव के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग तथा नारको व देवो की पन्द्रह पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

सोलहवे समवाय मे सूत्रकृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन कहे है। अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय है। मेरुपर्वत के सोलह नाम, भगवान् पार्श्व के सोलह हजार श्रमण, आत्मप्रवाद पूर्व के सोलह अधिकार, चमरचचा और बलीचचा राजधानी का सोलह हजार योजन का आयाम विष्कम्भ, नारको व देवो के सोलह पल्योपम तथा सोलह सागरोपम की स्थिति और सोलह भव कर मोक्ष जानेवाले जीवो का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय मे द्वितीय अग सूत्रकृताग के अध्ययनो की जानकारी दी गई है। सूत्रकृताग का दार्शनिक आगम की दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थान है। जिसमे परमत का खण्डन और स्वमत का मण्डन किया गया है। सूत्रकृताग की तुलना बौद्धपरम्परा के अभिधम्म पिटक से की जा सकती है, जिसमे बुद्ध ने अपने युग मे प्रचलित बासठ मतो का खण्डन कर स्वमत की सस्थापना की है। वैसे ही सूत्रकृताग मे ३६३ अन्य यूथिक मतो का खण्डन कर स्वमत की सस्थापना की है। प्रस्तुत समवाय मे ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान् पार्श्व के सोलह हजार श्रमणो का उल्लेख हुआ है। इस तरह प्रस्तुत समवाय का अलग-थलग महत्त्व है।

सत्तरहवां व अठारहवां समवाय : एक विश्लेषण

सत्तरहवे समवाय मे सत्तरह प्रकार का सयम और असयम, मानुषोत्तर पर्वत की ऊचाई आदि, सत्तरह प्रकार के मरण, दशवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे सत्तरह कर्मप्रकृतियो का बन्ध तथा नारकीय और देवो की सत्तरह पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन कर सत्तरह भव करके मोक्ष मे जाने वाले जीवो का वर्णन है।

सर्वप्रथम सयम और असयम की चर्चा है। आगम-साहित्य मे अनेक स्थलो पर संयम और असयम

---

१६७ कर्मग्रन्थ ४-२

१६८. समवायाग वृत्ति पत्र-२६

१६९. गोम्मटसार गाथा १२, १३

की चर्चा हुई है। स्थानांग सूत्र[170] मे विभिन्न स्थानो पर सयम असयम के भेद प्रतिपादित किये हैं। वस्तुत यतनापूर्वक प्रवृत्ति करना, अयतनापूर्वक कोई भी प्रवृत्ति नही करना अथवा प्रवृत्तिमात्र से निवृत्त होना तथा अपनी इन्द्रियो एव मन पर नियत्रण करना सयम कहलाता है। सयम के चार प्रकार- मन, वचन, काय और उपकरण संयम। सयम के पांच, सात, आठ, दश प्रकार भी हैं। उसी तरह असयम के भी प्रकार है। सयम के प्रकारान्तर से सराग सयम, और वीतराग सयम, ये दो भेद भी है। उन सभी प्रकार के सयमो का विभिन्न दृष्टियो से निरूपण हुआ है। सयम साधना का प्राण है। सयम ऐसा सुरीला सगीत है जिसकी सुरीली स्वर-लहरियो से साधक का जीवन परमानन्द को प्राप्त करता है। प्रस्तुत समवाय मे मरण के सत्तरह भेद बताये है। जो जीव जन्म लेता है, वह अवश्य ही मृत्यु को वरण करता है। जो फूल खिला है वह अवश्य मुरझाता है। यह एक ज्वलत सत्य है कि मृत्यु अवश्य-भावी है। सभी महान् दार्शनिको ने मृत्यु के सम्बध मे चिन्तन किया है। स्थानाग[171] मे—मरण के बालमरण, पण्डितमरण और बालपण्डित मरण ये तीन भेद किये है और तीनो के भी तीन तीन अवान्तर भेद किये है। भगवती[172] में आवीचिमरण, अवधिमरण, आत्यन्तिकमरण, बालमरण, पण्डितमरण, ये पांच प्रकार बताये हैं। उत्तराध्ययन[173] सूत्र मे अकाम और सकाम मरण का वर्णन है। यहाँ पर मरण के सत्तरह प्रकार बताये है। जिसमें सभी प्रकार के मरणो का समावेश हो गया है। इस तरह सत्तरहवे समवाय मे विविध विषयो का निरूपण हुआ है।

अठारहवें समवाय मे ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार, अर्हन्त अरिष्टनेमि के अठारह हजार श्रमण, तथा सक्षुद्रक व्यक्त श्रमणो के अठारह स्थान, आचाराग सूत्र के अठारह हजार पद ब्राह्मीलिपि के अठारह प्रकार, अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व के अठारह अधिकार, पौष व आषाढ मास मे अठारह मुहूर्त के रात और दिन, नारको व देवो की अठारह पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन और अठारह भव कर मोक्ष मे जाने वाले जीवो का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय मे ब्रह्मचर्य आदि का जो निरूपण है, उसके सम्बन्ध मे हम पूर्व पृष्ठो मे चिन्तन कर चुके हैं। इसमे औदारिक आदि शरीरो की अपेक्षा से उसके विभिन्न पकार बताये है। भगवान् अरिष्टनेमि के अठारह हजार श्रमणो का उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।[174] कर्मयोगी श्रीकृष्ण को इतिहासकारो ने ऐतिहासिक पुरुष माना है। इसलिए उस युग मे हुए भगवान् अरिष्टनेमि को भी ऐतिहासिक पुरुष मानने मे कोई बाधा नही है। ब्राह्मीलिपि के लिए ज्ञातासूत्र की प्रस्तावना देखिए।[175] इस प्रकार अठारहवे समवाय मे सामग्री का सकलन हुआ है।

---

१७० स्थानाग सूत्र—४२९, ३६८, ५२१, ६१४, ७१५, ४३० ७२, ३१०, ४२८, ५१७, ६४७, ७०९ आदि

१७१ स्थानांगसूत्र—सूत्र २२२

१७२ भगवती सूत्र—शतक-१३, उद्दे ७, सू ४९६

१७३ उत्तराध्ययन सूत्र अ-५

१७४ भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण—एक अनुशीलन

१७५ ज्ञातासूत्र की प्रस्तावना, पृष्ठ—२२ से २४ तक

उन्नीसवां और बीसवां समवाय : एक विश्लेषण

उन्नीसवे समवाय मे बतलाया है—ज्ञातासूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन, जम्बूद्वीप का सूर्य उन्नीस सौ योजन के क्षेत्र को सतप्त करता है। शुक्र, उन्नीस नक्षत्रो के साथ अस्त होता है। उन्नीस तीर्थंकर अगारवास मे रहकर दीक्षित हुए। नारको व देवो की उन्नीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति। अगार-वास मे रहकर उन्नीस तीर्थंकरो ने अनगार धर्म को ग्रहण किया। स्थानाग सूत्र[१७६] मे वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि पार्श्व और महावीर ने कुमारावस्था मे दीक्षा ग्रहण की। आचार्य अभयदेव ने कुमारवास का अर्थ किया है—जिन्होने राज्य नही किया। प्रस्तुत सूत्र मे भी "अगारवासमज्झे वसित्ता" का अर्थ चिरकाल तक राज्य करने के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की, ऐसा किया है। दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से कुमारवास का अर्थ "कुंवारा" है। और वे पाँचो को बालब्रह्मचारी मानते है। शेष उन्नीस तीर्थंकरो का राज्याभिषेक हुआ उन मे से तीन तीर्थंकर तो चक्रवती भी हुए। निर्युक्तिकार[१७७] ने यह भी सूचन किया है कि पाच तीर्थंकरो ने प्रथम वय में प्रव्रज्या ग्रहण की थी और उन्नीस तीर्थंकरो ने मध्यम वय मे। कल्पसूत्र[१७८] आदि श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार भगवान् महावीर ने विवाह किया था। इसलिए आवश्यकनिर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु भगवान महावीर को विवाहित मानते है। इस तरह उन्नीसवे समवाय मे वर्णन है।

बीसवें समवाय मे बीस असमाधिस्थान, मुनिसुव्रत अर्हत् की बीस धनुष ऊचाई, घनोदधि वातवलय बीस हजार योजन मोटे, प्राणत देवेन्द्र के बीस हजार सामानिक देव, प्रत्याख्यान पूर्व के बीस अर्थाधिकार एव बीस कोटाकोटि सागरोपम का कालचक्र कहा है। किन्ही नारको व देवो की स्थिति बीस पल्योपम व सागरोपम की बताई है। जिन कार्यों को करने से स्वय को या दूसरो को चित्त मे सक्लेश उत्पन्न होता है, वे असमाधि स्थान है। समाधि के सम्बन्ध मे हम पहले प्रकाश डाल चुके है।

इक्कीसवां व बावीसवां समवाय : एक विश्लेषण

इक्कीसवे समवाय मे इक्कीस शबल दोष, सात प्रकृतियो के क्षपक नियट्टि-वादर गुण० मे मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियो का सत्त्व कहा है। अवसर्पिणी के पाचवे, छठे, आरे तथा उत्सर्पिणी के प्रथम और द्वितीय आरे इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के है और नारको व देवो की इक्कीस पत्योपम व सागरोपम की स्थिति बतायी है। यहाँ पर शबल का अर्थ है—कर्बुरित, मलीन, या धब्बो से विकृत जो कार्य चारित्र को मलीन बनाते हो, वे शबल है। दशाश्रुतस्कन्ध मे भी इन दोषो का निरूपण है। इस प्रकार इक्कीसवे समवाय मे दोषो से बचने का सकेत है और कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी है।

बाईसवें समवाय मे बाईस परीषह, दृष्टिवाद के बाईस सूत्र, पुद्गल के बाईस प्रकार तथा नारको व देवो की बाईस पल्योपम, व बाईस सागरोपम स्थिति का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय मे परीषह के बाईस प्रकार बताये है। भगवती सूत्र[१७९] और उत्तराध्ययन सूत्र[१८०] मे परीषह का विस्तार से निरूपण है। परीषह एक कसौटी है। बीज को अकुरित होने मे जल के साथ चिलचिलाती

---

१७६ स्थानाग सूत्र, सूत्र ४७१

१७७ आवश्यकनिर्युक्ति—गाथा २४३, २४८, ४४५, ४५८

१७८. कल्पसूत्र

१७९. भगवती सूत्र—शतक ८०, उद्दे० ८, पृ १६१

१८०. उत्तराध्ययन सूत्र, अ. २

धूप की भी आवश्यकता होती है। इसी तरह साधना मे निखार लाने के लिये परीषह की उष्णता भी आवश्यक है। परीषह आने पर साधक घबराता नही है। पर वह सोचता है कि अपने आप को परखने का मुझे सुनहरा अवसर मिला है। उत्तराध्ययननिर्युक्ति[181] के अनुसार परीषह अध्ययन, कर्मप्रवाद पूर्व के सत्तरहवे प्राभृत से उद्धृत है। तत्त्वार्थसूत्र [182] मे भी परीषहो का निरूपण किया गया है।

तेईसवां और चौबीसवां समवाय : एक विश्लेषण

तेईसवें समवाय मे निरूपित है—तेईस सूत्रकृताग के अध्ययन, जम्बूद्वीप के इक्कीस तीर्थंकरो को सूर्योदय के समय केवलज्ञान समुत्पन्न होना, भगवान् ऋषभदेव को छोडकर तेईस तीर्थकर पूर्वभव में ग्यारह अग के ज्ञाता थे। ऋषभ का जीव चतुर्दश पूर्व का ज्ञाता था। तेईस तीर्थकर पूर्वभव मे माण्डलिक राजा थे। ऋषभ चक्रवर्ती थे। नारको व देवो की तेईस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति बताई गई है। यहाँ पर सूत्रकृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह, और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन मिलाकर कुल तेईस अध्ययनो का निरूपण किया है। प्रस्तुत समवाय मे तेईस तीर्थकरो को सूर्योदय के समय केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात कही है। आवश्यक-निर्युक्ति[183] मे प्रथम तेईस तीर्थकरो को पूर्वाह्न मे और महावीर को पश्चिमाह्न मे केवलज्ञान हुआ, ऐसा लिखा है। टीकाकार ने एक मत यह भी दिया है कि बाईस तीर्थकरो को दिन के पूर्व भाग मे और मल्ली भगवती और श्रमण भगवान् महावीर को दिन के अन्तिम भाग मे केवलज्ञान हुआ। दिगम्बर ग्रन्थो मे किस समय किस को केवलज्ञान हुआ, इस सम्बन्ध मे मतभेद है। आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के जीव को बारह अगो का ज्ञान था, [184] यह स्पष्ट सकेत है। दिगम्बर परम्परा का अभिमत है कि ऋषभ के जीव को ग्यारह अग और चौदह पूर्व का ज्ञान था। इस तरह तेइसवे समवाय मे सामग्री का चयन हुआ है।

चौवीसवे समवाय मे निरूपित है—चौवीस तीर्थंकर, क्षुल्लक हिमवन्त, और शिखरीपर्वत की जीवाएँ, चौबीस अहमिन्द्र, चौबीस अगुल वाली उत्तरायणगत सूर्य की पौरुषी छाया, गङ्गा सिन्धु महानदियो का उद्गम-स्थल पर चौबीस कोस का विस्तार, नारको व देवो की चौबीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति।

पच्चीसवां समवाय : एक विश्लेषण

पच्चीसवे समवाय मे प्रथम और अन्तिम तीर्थकरो के पचयाम यानी पाच महाव्रतो की पच्चीस भावनाएँ कही गई है। मल्ली भगवती पच्चीस धनुष ऊँची थी। वैताढ्य पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा है और पच्चीस कोस भूमि मे गहरा है। दूसरे नरक के पच्चीस लाख नारकावास है। आचाराग सूत्र के पच्चीस अध्ययन है। अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय नाम कर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियाँ बाँधते है। लोकबिन्दुसार पर्व के पच्चीस अर्थाधिकार है। नारको और देवो की पच्चीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति है। यहाँ पर सर्वप्रथम पाँच महाव्रतो की पच्चीस भावनाएँ बतायी है।

भावना साधना के लिए आवश्यक है। उसमे अपार बल और असीमित शक्ति होती है। भावना के बल से असाध्य भी साध्य हो जाता है। जिन चेष्टाओ और सकल्पो से मानसिक विचारो को भावित या वासित किया

---

१८१. क—उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा ६९
ख—उत्तराध्ययन चूर्णि पृ. ७
१८२. तत्त्वार्थ सूत्र अ ८ सू ९ से १७
१८३. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २७५
१८४ आवश्यकनिर्युक्ति गाथा २५८

जाये, वह भावना है।[185] आचार्य पतञ्जलि ने भावना और जप में अभेद माना है।[186] भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा है[187] कि जिसकी भावना शुद्ध है, वह जल में नौका के सदृश है। वह तट को प्राप्त कर सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। भावना के अनेक प्रकार हो सकते हैं—ज्ञान, दर्शन और चारित्र, भक्ति प्रभृति। जितनी भी श्रेष्ठ चेष्टाओं से आत्मा को भावित किया जाये वे सभी भावनाएँ हैं। तथापि भावना के अनेक वर्गीकरण मिलते हैं। पाच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ है।[188] जो महाव्रतों की स्थिरता के लिए हैं।[189] प्रत्येक महाव्रत की पाच-पाच भावनाएँ हैं। आगम साहित्य आचाराग तथा प्रश्नव्याकरण मे भावनाओं के जो नाम आये है, वे नाम समवायाग मे कुछ पृथक्ता लिये हुये है। आचाराग[190] मे (१) ईर्यासमिति (२) मनपरिज्ञा (३) वचन परिज्ञा (४) आदान निक्षेपण समिति (५) अलोकित पानभोजन, ये अहिंसा महाव्रत की पाच भावनाएँ हैं। प्रश्नव्याकरण[191] मे अहिंसा महाव्रत की (१) ईर्यासमिति (२) अपापमन (३) अपापवचन (४) एषणा समिति (५) आदान निक्षेपण समिति, जब कि प्रस्तुत समवाय मे अहिंसा महाव्रत की, पाँच भावनाएँ इस प्रकार आयी हैं—(१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति (३) वचनगुप्ति (४) आलोक भाजन भोजन, (५) आदान भाण्डमात्र निक्षेपण समिति। आचार्य कुन्दकुन्द[192] ने अहिंसा महाव्रत की भावनाएँ इसी प्रकार बतायी हैं। तत्त्वार्थाधिगम भाष्य मे भी (१) ईर्यासमिति (२) मनोगुप्ति (३) एषणा समिति (४) आदान निक्षेपण समिति (५) आलोकित पान भोजन समिति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक[193] और सर्वार्थसिद्धि मे[194] एषणा समिति के स्थान पर वाक् गुप्ति बतायी है। इसी तरह सत्यमहाव्रत की पाच भावनाएँ आचाराग[195] मे इस प्रकार है—(१) अनुवीचि भाषण (२) क्रोध प्रत्याख्यान (३) लोभ प्रत्याख्यान (४) भय प्रत्याख्यान (५) हास्य प्रत्याख्यान, प्रश्नव्याकरण मे ये ही नाम मिलते है। समवायाग मे (१) अनुवीचिभाषण (२) क्रोधविवेक (३) लोभविवेक (४) भयविवेक, और (५) हास्यविवेक है। आचाराग[196] और प्रश्नव्याकरण[197] मे क्रोध आदि का प्रत्याख्यान बताया है। जबकि समवायाग मे विवेक शब्द का उल्लेख है। विवेक से तात्पर्य क्रोध आदि के परिहार से ही है। आचार्य कुन्दकुन्द[198] ने सत्य महाव्रत की पाच भावनाएँ इस प्रकार बतायी हैं (१) अक्रोध (२) अभय (३) अहास्य (४) अलोभ (५) अमोह। उन्होंने श्वेताम्बर परम्परा मे आये हुए अनुवीचि भाषण के स्थान पर अमोह भावना का उल्लेख किया

---

१८५ पासनाहचरिय पृष्ठ ४६०
१८६ तज्जपस्तदर्थभावनम्—पातजलयोगसूत्रम् १/२८
१८७ सूत्रकृताग १/१५/५
१८८. उत्तराध्ययन, अ ३१ गा १७
१८९ तत्त्वार्थ सूत्र ७/३
१९० आचाराग सूत्र २/३/१५/४०२
१९१ प्रश्नव्याकरण—सवरद्वार
१९२ षट्प्राभृत मे चारित्रप्राभृत गा ३१
१९३ तत्त्वार्थराजवार्तिक ७/४-५, ५३७
१९४ सर्वार्थसिद्धि—७/४ पृ ३४५
१९५ आचाराग १/३/१५/४०२
१९६ वही
१९७. प्रश्नव्याकरण सवरद्वार
१९८ चारित्रप्राभृत ३२

है। चारित्र प्राभृत की टीका[199] में अमोह का अर्थ अनुवीचि भाषण कुशलता किया है। अनुवीचि भाषणता से तात्पर्य है कि **वीचि वाग्लहरी तामनुकृत्य या भाषा वर्तते सानुवीचिभाषा जिनसूत्रानुसारिणी भाषा अनुवीचिभाषा पूर्वाचार्यसूत्रपरिपाटीमनुल्लंघ्य भाषणीयमित्यर्थः**। श्वेताम्बर परम्परा मे अनुवीचि भाषण का अर्थ "अनुविचिंत्य भाषणम् अर्थात् चिन्तनपूर्वक बोलना" किया है। तत्त्वार्थराजवार्तिक[200] मे दोनो ही अर्थों को ग्रहण किया है। अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—(१) अनुवीचिमितावग्रह याचन (२) अनुज्ञापित पान-भोजन (३) अवग्रह का अवधारण (४) अभीक्ष्ण अवग्रह याचन (५) साधर्मिक से अवग्रह याचन प्रश्नव्याकरण मे (१) विविक्त वासवमति (२) अभीक्ष्ण अवग्रह याचन (३) शय्या समिति (४) साधारण पिण्डमात्र लाभ (५) विनय प्रयोग, समवायाग सूत्र मे ये नाम है— (१) अवग्रहानुज्ञापना (२) अवग्रह सीमापरिज्ञान (३) स्वय ही अवग्रह अनुग्रहणता (४) साधर्मिक अवग्रह अनुज्ञापनता (५) साधारण भक्तपान अनुज्ञाप्य परिभुञ्जनता। आचार्य कुन्दकुन्द ने अचौर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार दी है—(१) शून्यागारनिवास (२) विमोचितावास (३) परउपरोध न करना (४) एषणाशुद्धि (५) साधर्मिक-अविसवाद। आचार्य महाव्रत की पाँचो भावनाएँ दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे श्वेताम्बर आगम ग्रन्थो से भिन्न है। जिस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने भावनाओ का निरूपण किया है वैसी ही सर्वार्थसिद्धि मे भी बतायी गयी है।

आचाराग मे ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाए इस प्रकार है—(१) स्त्रीकथावर्जन (२) स्त्री के अग-प्रत्यग अवलोकन का वर्जन (३) पूर्वभक्त भोग स्मृति का वर्जन (४) अतिमात्र और प्रणीत पान भोजन का परिवर्जन (५) स्त्री आदि से ससक्त शयनासन का वर्जन। **प्रश्नव्याकरण** मे (१) असंसक्त वास वसति, (२) स्त्रीजन कथा-वर्जन (३) स्त्री के अग प्रत्यगो और चेष्टाओ के अवलोकन का वर्जन (४) पूर्व भुक्त भोगो की स्मृति का वर्जन, (५) प्रणीत रस भोजन का वर्जन। समवायाग मे (१)स्त्री-पशु और नपु सक से ससक्त शयन, आसन का वर्जन (२) स्त्रीकथाविवर्जनता (३) स्त्रियो की इन्द्रियो के अवलोकन का वर्जन (४) पूर्व भुक्त और पूर्व क्रीडित का अस्मरण (५) प्रणीत आहार का विवर्जन। आचार्य कुन्दकुन्द[201] ने ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाच भावनाए ये बताई है—(१) महिला अवलोकन विरति (२) पूर्वभुक्त का स्मरण न करना (३) ससक्त वसति विरति (४) स्त्री रागकथा-विरति, (५) पौष्टिक रसविरति। **आचार्य उमास्वाति**[202] ने और सर्वार्थसिद्धि मे ब्रह्मचर्य की भावनाए इस प्रकार है— (१) स्त्रीरागकथावर्जन (२) मनोहर अग निरीक्षण विरति (३) पूर्वरतानुस्मरणपरित्याग (४) वृष्येष्टरस-परित्याग (५) स्वशरीरसस्कारपरित्याग।

अपरिग्रह महाव्रत की भावनाए आचाराग मे इस प्रकार है—(१) मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द मे समभाव (२) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप मे समभाव। (२) मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्ध मे समभाव। (४) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रस मे समभाव। (५) मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श मे समभाव और यही नाम प्रश्नव्याकरण मे ज्यो के त्यो मिलते हैं। समवायाग मे इस प्रकार है—(१) श्रोत्रेन्द्रिय रागोपरति (२) चक्षुरिन्द्रियरागोपरति (३) घ्राणेन्द्रियरागोपरति (४) रसनेन्द्रियरागोपरति और (५) स्पर्शेन्द्रियरागोपरति। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपरिग्रह महाव्रत की भावनाओ मे आचाराग और प्रश्नव्याकरण का ही अनुसरण किया है। इस प्रकार पच महाव्रतो

---

१९९ चारित्रप्राभृत २२ की टीका
२००. तत्त्वार्थराजवार्तिक ७/५
२०१. चारित्रप्राभृत—गाथा ३४
२०२ तत्त्वार्थ सूत्र—७/७

की भावना के सम्बन्ध मे विभिन्न स्थलो पर नामभेद व क्रमभेद प्राप्त होता है, तथापि आगम और आगमेतर साहित्य का हार्द एक ही है। यहां पर प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के पाच महाव्रतो को लक्ष्य मे रखकर पच्चीस भावनाएँ निरूपित की गयी हैं। दूसरे तीर्थंकर से लेकर तेईसवें तीर्थंकर तक के शासन मे चार याम थे। उत्तराध्ययन,[२०३] भगवती[२०४] आदि इस बात के साक्ष्य हैं। प्रस्तुत समवाय मे वैताढ्य पर्वत को पच्चीस योजन ऊँचा कहा है, पर असावधानी से पच्चीस धनुष छपा है, जो सही नही है। इस प्रकार पच्चीसवें समवाय मे सामग्री का सकलन है।

छब्बीसवें से उनतीसवाँ समवाय : एक विश्लेषण

छब्बीसवे समवाय मे दशाश्रुतस्कन्ध, कल्पसूत्र और व्यवहारसूत्र के छब्बीस उद्देशन काल कहे हैं। अभव्य जीवो के मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृतिया, नारको व देवो के छब्बीस पल्योपम और सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

सत्ताईसवें समवाय मे श्रमण के सत्ताईस गुण, नक्षत्र मास के सत्ताईस दिन, वेदक सम्यक्त्व के बन्ध रहित जीव के मोहनीय कर्म की सत्ताईस प्रकृतियाँ, श्रावण सुदी सप्तमी के दिन सत्ताईस अगुल की पौरुषी छाया और नारको व देवो की सत्ताईस पल्योपम एवं सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

अट्ठाईसवे समवाय मे आचारप्रकल्प के अट्ठाईस प्रकार बताये है। भवसिद्धिक जीवो मे मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ कही गयी है। आभिनिबोधिक ज्ञान के अट्ठाईस प्रकार है। ईशान कल्प मे अट्ठाईस लाख विमान हैं। देव गति बाँधने वाला नामकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियो को बाँधता है, तो नारकीय जीव भी अट्ठाईस प्रकृतियो को बाँधता है। अन्तर शुभ व अशुभ का है। नारको व देवो की अट्ठाईस पल्योपम और सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

यहाँ पर सर्वप्रथम आचारप्रकल्प के अट्ठाईस प्रकार बताये हैं। आचार्य सघदास गणि[२०५] ने निशीथ के आचार, अग्र, प्रकल्प, चूलिका, ये पर्यायवाची नाम माने हैं। उक्त शास्त्र का सम्बन्ध चरणकरणानुयोग से है। अत इसका नाम "आचार" है। आचारागसूत्र के पाच अग्र है—चार आचारचूलाएँ और निशीथ। इसलिये निशीथ का नाम अग्र है।[२०६] निशीथ की नववें पूर्व आचारप्राभृत से रचना की गयी है। इसलिये इसका नाम प्रकल्प है। प्रकल्प का द्वितीय अर्थ "छेदन" करने वाला भी है।[२०७] आगम साहित्य मे निशीथ का "आयारकल्प" नाम मिलता है। अग्र और चूला ये दोनो समान अर्थ वाले शब्द हैं। अभिनिबोधिक ज्ञान के अट्ठाईस प्रकार बताये गये है। नन्दीसूत्र[२०८] मे तथा तत्त्वार्थसूत्र,[२०९] तत्त्वार्थभाष्य,[२१०] तत्त्वार्थ-

---

२०३ उत्तराध्ययनसूत्र—अ २२

२०४ भगवतीसूत्र

२०५ निशीथभाष्य—३

२०६ निशीथभाष्य—५७

२०७ निशीथचूर्णि, पृ ३०

२०८ नन्दीसूत्र—सू ५९—श्री पुण्यविजय जी म द्वारा सम्पादित

२०९ तत्त्वार्थसूत्र—१/१३, १४

२१०. तत्त्वार्थभाष्य—१/१३, १४

राजवार्तिक,[२११] विशेषावश्यकभाष्य[२१२] आदि मे भी ज्ञान की विस्तार से चर्चा की गयी है।[२१३] यहाँ पर केवल सूचन मात्र किया गया है। इस तरह अट्ठाईसवें समवाय मे सामग्री का सकलन हुआ है।

उनतीसवें समवाय मे पापश्रुत प्रसग, आषाढ मास आदि के उनतीस रात दिन, सम्यग् दृष्टि, तीर्थंकर-नाम सहित उनतीस नामकर्म को प्रकृतियो को बाँधता है। नारको देवो के उनतीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति आदि का वर्णन है।

प्रस्तुत समवाय मे सर्वप्रथम पापश्रुत प्रसगो का वर्णन किया है। स्थानाग[२१४] मे नव पापश्रुत प्रसग बताये हैं तो समवायागसूत्र मे उनतीस प्रकार बताये है। मिथ्या शास्त्र की आराधना भी पाप का निमित्त बन सकती है इसलिये यहा पापश्रुत के प्रसग बताये है। पर सयमी साधक, जो सम्यग्दृष्टि है, उसके लिये पापश्रुत भी सम्यक् श्रुत बन जाता है। आचार्य देववाचक ने कहा है कि **"सम्मदिट्ठस्स सम्मसुय, मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छासुय"** सम्यग्दृष्टि असाधारण सयोगो मे या अमुक अपेक्षा की दृष्टि से विवेकपूर्वक इनका अध्ययन करता है, तो ये पापश्रुत प्रसग नही हैं। जैन इतिहास मे ऐसे अनेको प्रभावक आचार्य हुए है, जिन्होने इन विद्याओ के द्वारा धर्म की प्रभावना भी की है। इस तरह उनतीसवें समवाय मे सामग्री का सकलन है।

तीसवें समवाय से पेंतीसवां समवाय : एक विश्लेषण

तीसवें समवाय मे मोहनीय कर्म बाँधने के तीस स्थान, मण्डितपुत्र स्थविर की तीस वर्ष श्रमण पर्याय, अहोरात्र के तीस मुहूर्त, अट्ठारहवें अर नामक तीर्थंकर की तीस धनुष की ऊँचाई, सहस्रार देवेन्द्र के तीस हजार सामानिक देव, भगवान् पार्श्व व प्रभु महावीर का तीस वर्ष तक गृहवास मे रहना, रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावास, नारको व देवो की तीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

मोहनीय कर्म के तीस निमित्त जो समवायाग मे प्रतिपादित किये गये है, उनका दशाश्रुत स्कन्ध[२१५] मे विस्तार से निरूपण है। आवश्यकसूत्र[२१६] मे भी सक्षेप मे सूचन किया गया है। टीकाकारो ने यह बताया है कि मोहनीय शब्द से सामान्य रूप से आठो कर्म समझने चाहिये और विशेष रूप से मोहनीय कर्म। इस समवाय मे 'अर' पार्श्व और महावीर के सम्बन्ध मे भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री का सकलन हुआ।

इकतीसवें समवाय मे सिद्धत्व पर्याय प्राप्त करने के प्रथम समय मे होने वाले इकतीस गुण, मन्दर पर्वत, अभिवर्द्धित मास, सूर्यमास, रात्रि और दिन की परिगणना, और नारको व देवो की इकत्तीस पल्योपम व सागरोपम की स्थिति का वर्णन है।

बत्तीसवें समवाय मे बत्तीस योगसंग्रह, बत्तीस देवेन्द्र, कुन्थु अर्हत् के बत्तीस सौ बत्तीस केवली, सौधर्म

---

२११ तत्त्वार्थराजवार्तिक—१/१४/१/५९ आदि

२१२ विशेषावश्यक भाष्य—वृत्ति १००

२१३ जैनदर्शन स्वरूप और विश्लेषण, श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

२१४ स्थानांगसूत्र स्था ९, सू, ६.७८

२१५ दशाश्रुतस्कन्ध—अ ९

२१६ आवश्यकसूत्र—अ. ४

कल्प मे बत्तीस लाख विमान, रेवती नक्षत्र के बत्तीस तारे, बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधि, तथा नारको व देवो की बत्तीस सागरोपम व पल्योपम की स्थिति का वर्णन है।

मन, वचन और काया का व्यापार योग कहलाता है। यहाँ पर बत्तीस योगसंग्रह मे मन, वचन और काया के प्रशस्त व्यापार को लिया गया है। आवश्यक बृहद्वृत्ति मे इस विषय पर चिन्तन किया गया है।

तेतीसवें समवाय मे तेतीस आशातनाएँ, असुरेन्द्र की राजधानी मे तेतीस मजिल के विशिष्ट भवन तथा नारको व देवो की तेतीस सागरोपम व पल्योपम की स्थिति का वर्णन है।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि जिन देवो की जितनी सागरोपम की स्थिति बतलायी गयी है, वे उतने ही पक्षो मे उच्छ्वास और नि श्वास लेते हैं। और उतने ही हजार वर्ष के बाद उन्हे आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है। प्रस्तुत समवाय मे लघुश्रमणो का ज्येष्ठश्रमणो के साथ किस प्रकार का विनय-पूर्वक व्यवहार रहना चाहिये, आशातना आदि से निरन्तर बचना चाहिये। जिस क्रिया के करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का ह्रास होता है वह आशातना-अवज्ञा है। तेतीस आशातनाओ का निरूपण दशाश्रुतस्कन्ध[२१८] मे विस्तार से आया है।

चौतीसवें समवाय मे तीर्थंकरो के चौतीस अतिशय, चक्रवर्ती के चौतीस विजयक्षेत्र, जम्बूद्वीप मे चौतीस दीर्घ वैताढय, जम्बूद्वीप मे उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर उत्पन्न हो सकते हैं, तथा असुरेन्द्र के चौतीस लाख तथा पहली, पाँचवी, छठी और सातवी नरक मे चौतीस लाख नारकावास कहे है। प्रस्तुत समवाय मे अतिशयो का उल्लेख है। अतिशयो के सम्बन्ध मे आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र[२१९] और अभिधान चिन्तामणि[२२०] आदि ग्रन्थो मे चिन्तन किया है। वह चिन्तन बृहद् वाचना के आधार पर है। यहाँ पर चौतीस अतिशयो मे से दूसरे अतिशय से पाँचवें अतिशय तक जन्मप्रत्ययक हैं। इक्कीस से लेकर चौतीस अतिशय व बारहवाँ अतिशय कर्म के क्षय से होता है। शेष अतिशय देवकृत है।

दिगम्बर परम्परा भी चौतीस अतिशय मानती हैं। पर उन अतिशयो मे कुछ भिन्नता है। वे दश जन्म प्रत्यय, चौदह देवकृत और दश केवलज्ञान कृत मानते हैं।

यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि समवायाग के टीकाकार आचार्य अभयदेव के मत से आहार निहार, ये आँख से अदृश्य होते हैं। ये जन्मकृत अतिशय हैं। जब कि दिगम्बर मतानुसार आहार का अभाव, यह अतिशय माना गया है और वह जन्मकृत नही केवलज्ञानकृत है। श्वेताम्बर दृष्टि से भगवान् अर्धमागधी मे उपदेश प्रदान करते हैं और वह उपदेश सभी जीवो की भाषा के रूप मे परिणत होता है। ये दो अतिशय कर्मक्षयकृत माने गये हैं।

आचार्य अभयदेव और आचार्य हेमचन्द्र के अतिशयवर्णन मे विभाजन पद्धति मे कुछ अन्तर है। पर भाषा के सम्बन्ध मे अभयदेव व हेमचन्द्र दोनो का एक ही मत है। आचार्य हेमचन्द्र की दृष्टि से उन्नीस अतिशय देवकृत हैं जब कि अभयदेव की दृष्टि से पन्द्रह अतिशय देवकृत हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि भगवान् का चारो

---

२१७ आवश्यक बृहद् वृत्ति—अ ४, गा ७३ से ७७

२१८ दशाश्रुतस्कन्ध—३ दशा

(ख) तत्र आय सम्यग्दर्शनाद्यवाप्तिलक्षणस्तस्य शातना खण्डना निरुक्ता आशातना।

२१९ योगशास्त्र पृ १३०

२२०. अभिधानचिन्तामणि ५६—६३।

(ख) स्थानाङ्ग समवायाग—प दलसुख मालवणिया

और मुँह दिखायी देता है। वह देवकृत अतिशय है तो दिगम्बर दृष्टि से केवलज्ञान कृत है। तीन कोट की रचना को भी देवकृत अतिशय माना गया है। पर समवायाग मे चौतीस अतिशयो मे उसका उल्लेख नहीं है। चौतीस अतिशयो का जो विभाजन आचार्यों ने किया है, उस के सम्बन्ध मे सबल-तर्क का अभाव है कि अमुक अतिशय अमुक विभाग मे क्यो दिया गया है ? समवायागसूत्र के मूल मे किसी भी प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है। यह भी स्मरण रखना चाहिये। समवायाग की भाति अगुत्तरनिकाय (५।१२१) मे तथागत बुद्ध के पाच अतिशय बताये है—वे अर्थज्ञ होते हैं, धर्मज्ञ होते हैं, मर्यादा के ज्ञाता होते हैं, कालज्ञ होते है और परिषद् को जानने वाले होते हैं।

पंतीसवें समवाय से सौवां समवाय : एक विश्लेषण

पंतीसवें समवाय मे पैंतीस सत्य वचन के अतिशय, कुन्थु, अर्हत्, दत्त वासुदेव, नन्दन बलदेव, ये पैंतीस धनुष ऊँचे थे तथा दूसरे और चौथे नरक मे पैंतीस लाख नारकावास है, यह निरूपण है।

छत्तीसवें समवाय मे—उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन, असुरेन्द्र की सुधर्मा-सभा छत्तीस योजन ऊँची भगवान् महावीर की छत्तीस हजार आर्यिकाएँ, और चैत्र और आसौज मे छत्तीस अगुल पौरुषी, आदि का वर्णन है।

सैंतीसवें समवाय मे सैंतीस गणधर, सैंतीस गण, अडतीसवे समवाय मे भगवान् पार्श्व की अडतीस हजार श्रमणियाँ, उन्तालीसवें समवाय मे भगवान् नमिनाथ के उन्तालीस सौ अवधिज्ञानी, चालीसवे समवाय मे भगवान् अरिष्टनेमि की चालीस हजार श्रमणियाँ थी, आदि कथन है। इकतालीसवें समवाय मे भगवान् नमिनाथ की ४१ हजार श्रमणियाँ, बयालीसवें समवाय मे नामकर्म के ४२ भेद और भगवान् महावीर ४२ वर्ष से कुछ अधिक श्रमण पर्याय पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। तेतालीसवें समवाय मे कर्मविपाक के ४३ अध्ययन, चवालीसवे समवाय मे ऋषिभाषित के ४४ अध्ययन, पैंतालीसवें समवाय मे मानव क्षेत्र, सीमंतक नरकावास, उडु विमान और सिद्ध-शिला, इन चारो को ४५ लाख योजन विस्तार वाला बताया है। छियालीसवे समवाय मे ब्राह्मीलिपि के ४६ मातृकाक्षर, सैंतालीसवें समवाय मे स्थविर अग्निभूति के ४७ वर्ष तक गृहवास मे रहने का वर्णन है। अडतालीसवे समवायव मे भगवान् धर्मनाथ के ४८ गणो, ४८ गणधरो का, उनचासवे समवाय मे तेइन्द्रिय जीवो की ४९ अहोरात्र की स्थिति, पचासवें समवाय मे भगवान् मुनिसुव्रत की ५० हजार श्रमणियाँ थी, आदि वर्णन किया गया है। इक्यावनवें समवाय मे ९ ब्रह्मचर्य अध्ययन, ५१ उद्देशनकाल और बावनवे समवाय मे मोहनीय कर्म के ५२ नाम बताये हैं। त्रेपनवें समवाय मे भगवान् महावीर के ५३ साधुओ के एक वर्ष की दीक्षा के बाद अनुत्तर विमान मे जाने का वर्णन है। चौवनवें समवाय मे भारत और ऐरवत क्षेत्रो मे क्रमश ५४-५४ उत्तम पुरुष हुए हैं और भगवान् अरिष्टनेमि ५४ रात्रि तक छद्मस्थ रहे। भगवान् अनन्तनाथ के ५४ गणधर थे। पचपनवें समवाय मे भगवती-मल्ली ५५ हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर सिद्ध हुईं। छप्पनवें समवाय मे भगवान् विमल के ५६ गण व ५६ गणधर थे। सत्तावनवें समवाय मे मल्ली भगवती के ५७०० मन पर्यवज्ञानी थे। अठावनवें समवाय मे ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम और अन्तराय इन पाच कर्मों की ५८ उत्तर प्रकृतियाँ बताई हैं। उनसठवें समवाय मे चन्द्रसवत्सर की एक ऋतु ५९ अहोरात्रि की होती है। साठवें समवाय मे सूर्य का ६ मुहूर्त तक एक मडल मे रहने का उल्लेख है।

इकसठवें समवाय मे एक युग के ६१ ऋतु मास बताये हैं। बासठवें समवाय मे भगवान् वासुपूज्य के ६२ गण और ६२ गणधर बताये हैं। त्रेसठवें समवाय मे भगवान् ऋषभदेव के ६३ लाख पूर्व तक राज्यसिंहासन

पर रहने के पश्चात् दीक्षा लेने का वर्णन है। चौसठवें समवाय मे चक्रवर्ती के बहुमूल्य ६४ हारो का उल्लेख है। पैंसठवें समवाय मे गणधर मौर्यपुत्र ने ६५ वर्ष तक गृहवास मे रह कर दीक्षा ग्रहण की। छयासठवें समवाय मे भगवान् श्रेयास के ६६ गण और ६६ गणधर थे। मतिज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर बताई है। सडसठवे समवाय मे एक युग मे नक्षत्रमास की गणना से ६७ मास बताये हैं। ६८वें समवाय मे धातकीखण्ड द्वीप मे चक्रवर्ती की ६८ विजय, ६८ राजधानियाँ और उत्कृष्ट ६८ अरिहंत होते हैं तथा भगवान् विमल के ६८ हजार श्रमण थे, यह कहा गया है। उनहत्तरवे समवाय मे मानवलोक मे मेरु के अतिरिक्त ६९ वर्ष और ६९ वर्षधर पर्वत बताए हैं। सत्तरवें समवाय मे एक मास और २० रात्रि व्यतीत होने पर ७० रात्रि अवशेष रहने पर भगवान् महावीर ने वर्षावास किया, इस का वर्णन है। यहा पर परम्परा से वर्षावास का अर्थ सवत्सरी किया जाता है।

इकहत्तरवे समवाय मे भगवान् अजित, चक्रवर्ती सागर ७१ लाख पूर्व तक गृहवास मे रह कर दीक्षित हुये। ७२ वें समवाय मे भगवान् महावीर और उन के गणधर अचलभ्राता की ७२ वर्ष की आयु बतायी है। ७२ कलाओ का भी उल्लेख है। तिहत्तरवे समवाय मे विजय नामक बलदेव, ७३ लाख की आयु पूर्ण कर सिद्ध हुये। ७४ वे समवाय मे गणधर अग्निभूति ७४ वर्ष की आयु पूर्ण कर सिद्ध हुये। ७५ वें समवाय मे भगवान् सुविधि के ७५ सौ केवली थे। भगवान् शीतल ७५ हजार पूर्व और भगवान् शान्ति ७५ हजार वर्ष गृहवास मे रहे। ७६ वें समवाय मे विद्युत कुमार आदि भवनपति देवो के ७६-७६ लाख भवन बताये गये हैं। सतहत्तरवें समवाय मे सम्राट् भरत ७७ लाख पूर्व तक कुमारावस्था मे रहे। ७७ राजाओ के साथ उन्होने सयममार्ग ग्रहण किया। ७८वें समवाय मे गणधर अकम्पित ७८ वर्ष की आयु मे सिद्ध हुये। ७९वे समवाय मे छठे नरक के मध्यभाग से छट्ठे घनोदधि के नीचे चरमान्त तक ७९ हजार योजन अन्तर है। ८०वे समवाय मे त्रिपृष्ठ वासुदेव ८० लाख वर्ष तक सम्राट् पद पर रहे।

८१वें समवाय मे ८१ सौ मन पर्यवज्ञानी थे। ८२वे समवाय मे ८२ रात्रियाँ व्यतीत होने पर श्रमण भगवान महावीर का जीव गर्भान्तर मे सहरण किया गया। ८३वें समवाय मे भगवान् शीतल के ८३ गण और ८३ गणधर थे। ८४ वे समवाय मे भगवान् ऋषभदेव की ८४ लाख पूर्व की और भगवान् श्रेयास की ८४ लाख वर्ष की आयु थी। भगवान् ऋषभ के ८४ गण, ८४ गणधर और ८४ हजार श्रमण थे। ८५वे समवाय मे आचाराग के ८५ उद्देशन काल बताये हैं। ८६वे समवाय मे भगवान् सुविधि के ८६ गण और ८६ गणधर बताये हैं। भगवान् सुपार्श्व के ८६ सौ वादी थे। ८७वें समवाय मे ज्ञानावरणीय और अन्तराय कर्म को छोड कर शेष ६ कर्मों की ८७ उत्तरप्रकृतियाँ बतायी हैं। ८८वे समवाय मे प्रत्येक सूर्य और चन्द्र के ८८-८८ महाग्रह बताये है। ८९वें समवाय मे तृतीय आरे के ८९ पक्ष अवशेष रहने पर भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष पधारने का उल्लेख है। और भगवान् शान्तिनाथ के ८९ हजार श्रमणियाँ थी। ९०वे समवाय मे भगवान् अजित और शान्ति इन दोनो तीर्थंकरो के ९० गण और गणधर थे।

९१वें समवाय मे भगवान् कुन्थु के ९१ हजार अवधिज्ञानी श्रमण थे। ९२वें समवाय मे गणधर इन्द्र-भूति ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर मुक्त हुये। ९३वें समवाय मे भगवान् चन्द्रप्रभ के ९३ गण और ९३ गणधर थे। भगवान् शान्तिनाथ के ९३ सौ चतुदर्श पूर्वधर थे। ९४वें समवाय मे भगवान् अजित के ९४ सौ अवधिज्ञानी श्रमण थे। ९५वें समवाय मे भगवान् श्री पार्श्व के ९५ गण और ९५ गणधर थे। भगवान् कुन्थु की ९५ हजार वर्ष की आयु थी। ९६वे समवाय मे प्रत्येक चक्रवर्ती के ९६ करोड गाँव होते हैं। ९७वें समवाय मे आठ कर्मों की ९७ उत्तर-प्रकृतियाँ हैं। ९८वें समवाय मे रेवती व ज्येष्ठा पर्यन्त के १९ नक्षत्रो के ९८ तारे हैं। ९९वें

समवाय मे मेरु पर्वत भूमि से ९९ हजार योजन ऊँचा है। १००वें समवाय मे भगवान् पार्श्व की और गणधर सुधर्मा की आयु सौ वर्ष की थी, यह निरूपण है।

उपर्युक्त पैंतीसवें समवाय से १००वें समवाय तक विपुल सामग्री का सकलन हुआ है। उसमे से कितनी ही सामग्री पौराणिक विषयो से सम्बन्धित है। भूगोल और खगोल, स्वर्ग और नरक आदि विषयो पर अनेक दृष्टियो से विचार हुआ है। आधुनिक विज्ञान की पहुँच जैन भौगोलिक विराट् क्षेत्रो तक अभी तक नही हो पायी है। ज्ञात से अज्ञात अधिक है। अन्वेषणा करने पर अनेक अज्ञात गम्भीर रहस्यो का परिज्ञान हो सकता है। इन समवायो मे अनेक रहस्य आधुनिक अन्वेषको के लिये उद्घाटित हुये है। उन रहस्यो को आधुनिक परिपेक्ष्य मे खोजना अन्वेषको का कार्य है।

ऐतिहासिक दृष्टि से इसमे चौबीस तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, गणधर, तीर्थंकरो के श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका आदि के सम्बन्ध मे भी विपुल सामग्री है। तीर्थंकर जैन शासन के निर्माता हैं। अध्यात्मिक-जगत् के आचारसहिता के पुरस्कर्ता हैं। उन का जीवन साधको के लिये सतत मार्गदर्शक रहा है। तीर्थंकरो के विराट् जीवनचरितो का मूल बीज प्रस्तुत समवायाग मे है। ये ही बीज अन्य चरित ग्रन्थो मे विराट् रूप ले सके हैं। तीर्थंकरो के प्राग् ऐतिहासिक और ऐतिहासिक विषयो पर विपुल सामग्री है। और अन्य विज्ञो के अभिमतो के आलोक मे भी उस पर चिन्तन किया जा सकता है। पर प्रस्तावना की पृष्ठमर्यादा को ध्यान मे रखते हुये मैं जिज्ञासु पाठको को इतना सूचन अवश्य करूं गा कि वे मेरे द्वारा लिखित, 'भगवान् ऋषभदेव एक परिशीलन', 'भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन', 'भगवान् अरिष्टनेमि' 'कर्मयोगी श्री कृष्ण एक अनुशीलन' और 'भगवान् महावीर एक अनुशीलन' ग्रन्थो[२२१] का अवलोकन करें। मैंने तीर्थंकरो के सम्बन्ध मे अनेक तथ्य इन ग्रन्थो मे दिये हैं। इसी तरह भगवान् महावीर के गणधरो के सम्बन्ध मे भी "महावीर अनुशीलन" ग्रन्थ मे चिन्तन किया है।

लिपि-विचार

४६वें समवाय मे ब्राह्मीलिपि के उपयोग मे आने वाले अक्षरो की सख्या ४६ बतायी है। आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत आगम की वृत्ति मे यह स्पष्ट किया है कि ४६ अक्षर "अकार" से लेकर क्ष सहित हकार तक होने चाहिये। उन्होने ऋ ॠ ऌ ॡ नही गिने है। शेष अक्षर लिये है। अठारहवें समवाय मे लिपियो के सम्बन्ध मे ब्राह्मीलिपि के नाम बताये हैं। आचार्य अभयदेव ने इन लिपियो के सम्बन्ध मे यह स्पष्ट लिखा है कि उन्हे इन लिपियो के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार का विवरण प्राप्त नही हुआ है इसलिये वे उस का विवरण नही दे सके हैं। आधुनिक अन्वेषणा के पश्चात् इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि अशोक के शिलालेखो मे जो लिपि प्रयुक्त हुयी है, वह ब्राह्मीलिपि है। यवनो की लिपि यावनीलिपि है, जो आज अर्बी और फारसी आदि के रूप मे विश्रुत है। खरोष्टी लिपि गन्धार देश मे प्रचलित थी। यह लिपि दाहिनी ओर से प्रारम्भ होकर बाईं ओर लिखी जाती थी। उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश मे अशोक के जो दो शिलालेख प्राप्त हुये है, उन मे प्रस्तुत लिपि का प्रयोग हुआ है। खर और ओष्ट इन दो शब्दो से खरोष्ट बना है। खर गधे को कहते है। सम्भव है कि प्रस्तुत लिपि का मोड गधे के होठ की तरह हो। इसलिये इस का नाम खरोष्ठी, खरोष्ठिका अथवा खरोष्ट्रिका पडा हो। पाँचवी लिपि का नाम "खर-श्राविता" है। खर के स्वर की तरह जिस लिपि का उच्चारण कर्णकटु हो, जिस के कारण सभवत उस का नाम "खरश्राविता" पडा हो। छट्ठी लिपि का नाम "पकारादिका" है। जिस का प्राकृत

---

२२१ लेखक—श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री, श्री तारकगुरु जैनग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)

रूप "पहाराइआ" "पआराइआ" हो सकता है। सभव है कि पकार बहुल होने के कारण या पकार से प्रारम्भ होने के कारण इस का नाम "पकारादिका" पडा हो। ग्यारहवी लिपि का नाम "निह्नविका" है। निह्नव शब्द का प्रयोग जैन परम्परा मे "छिपाने" के अर्थ मे बहुत विश्रुत रहा है। जो लिपि गुप्त हो, या साकेतिक हो, वह निह्नविका हो सकती है। वर्तमान मे सकेत लिपि का प्रचलन अतिशीघ्र लिपि के रूप मे है। प्राचीन युग में इसी तरह कोई साकेतिक लिपि रही होगी, जो निह्नविका के नाम से विश्रुत हो। बारहवी लिपि का नाम अकलिपि है। अको से निर्मित लिपि अकलिपि होनी चाहिये। आचार्य कुमुदेन्दु ने "भू-वलय" ग्रन्थ का उट्टंकन इसी लिपि में किया है। यह ग्रन्थ यलप्पा शास्त्री के पास था, जो विश्वेश्वरम् के रहने वाले थे। वह मैंने देहली मे सन् १९५४ मे देखा था। उस मे विविध-विषयो का सकलन-आकलन हुआ है, और अनेक भाषाओ का प्रयोग भी! यलप्पा शास्त्री के कहने के अनुसार उस मे एक करोड श्लोक है और उसे भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने "विश्व का महान् आश्चर्य" कहा है। तेरहवी लिपि "गणितलिपि" है। गणितशास्त्र सम्बन्धी सकेतों के आधार पर आधृत होने से लिपि "गणितलिपि" के रूप मे विश्रुत रही हो। चौदहवी लिपि का नाम "गान्धर्व" लिपि है। यह लिपि गन्धर्व जाति की एक विशिष्ट लिपि थी। पन्द्रहवी लिपि का नाम "भूतलिपि" है। भूतान देश मे प्रचलित होने के कारण से यह भूतलिपि कहलाती हो। भूतान को ही वर्तमान मे भूटान कहते हैं। अथवा भोट या भोटिया, तथा भूत जाति मे प्रचलित लिपि रही हो। सभव है कि पैशाचीभाषा की लिपि भूतलिपि कहलाती हो। भूत और पिशाच, ये दोनो शब्द एकार्थक से रहे है। इसलिये पैशाचीलिपि को भूतलिपि कहा गया हो। जो लिपि बहुत ही सुन्दर व आकर्षक रही होगी, वह सोलहवी लिपि "आदर्श लिपि" के रूप मे उस समय प्रसिद्ध रही होगी। यह लिपि कहाँ पर प्रचलित थी, यह अभी तक लिपिविशेषज्ञ निर्णय नही कर सके हैं। सत्तरहवी लिपि का नाम "माहेश्वरी" लिपि है। माहेश्वरी वैश्यवर्ण मे एक जाति है। सभव है कि इस जाति की विशिष्ट लिपि प्राचीनकाल मे प्रचलित रही हो, और उसे माहेश्वरी लिपि कहा जाता हो। अठारहवी लिपि ब्राह्मीलिपि है। यह लिपि द्राविडो की रही होगी। नाम से स्पष्ट है कि पुलिंदलिपि का सम्बन्ध आदिवासी से रहा हो। मगर अभी तक यह सब अनुमान ही है। इनका सही स्वरूप निश्चित करने के लिए अधिक अन्वेषण अपेक्षित है। बौद्ध ग्रन्थ "ललितविस्तरा" मे चौंसठ लिपियो के नाम आये हैं। उन नामो के साथ समवायाग मे आये हुये लिपियो के वर्णन की तुलना की जा सकती है।

सौंवे समवाय के बाद क्रमश १५०—२००—२५०—३००—३५०—४००—४५०—५०० यावत् १००० से २००० से १०००० से एक लाख, उस से ८ लाख और करोड की सख्या वाले विभिन्न विषयो का इन समवायो मे सकलन किया गया है।

यहाँ पर हम कुछ प्रमुख विषयो के सम्बन्ध मे ही चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं। भगवान् महावीर के तीर्थंकर भव से पूर्व छट्ठे पोट्टिल के भव का वर्णन है। आवश्यक निर्युक्ति[२२२] मे प्रभु महावीर के सत्ताईस भवो का सुविस्तृत वर्णन है। वहाँ पर नन्दन के जीव ने पोट्ठिल के पास दीक्षा ग्रहण की। और नन्दन के पहले के भवो मे पोट्ठिल का उल्लेख नही है। और न यह उल्लेख आवश्यकचूर्णि, आवश्यक हरिभद्रीया-वृत्ति, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति और महावीरचरिय आदि मे कही आया है। आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत आगम की वृत्ति मे यह स्पष्ट किया है कि पोट्ठिल नामक राजकुमार का एक भव, वहाँ से देव हुए, द्वितीय भव। वहाँ से च्युत होकर क्षत्रानगरी मे नन्दन नामक राजपुत्र हुए, यह तृतीय भव। वहाँ से देवलोक

---

२२२ आवश्यक निर्युक्ति—गाथा ४४८

गये, यह चतुर्थ भव। वहाँ से देवानन्दा के गर्भ मे आये, यह पाँचवाँ भव। और वहाँ से त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे लाये गये, यह छठा भव। इस प्रकार परिगणना करने से पोट्टिल का छठा भव घटित हो सकता है।[223]

समवायागसूत्र मे आये तीर्थंकरो की माताओ के नामो से दिगम्बर परम्परा मे उन के नाम कुछ पृथक् रूप से लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—मरुदेवी, विजयसेना, सुसेना, सिद्धार्था, मगला, सुसीमा, पृथ्वीसेना, लक्ष्मणा, जयरामा, (रामा) सुनन्दा, नन्दा (विष्णुश्री) जायावती (पाटला) जयश्यामा (शर्मा) शर्मा (रेवती) सुप्रभा (सुव्रता) ऐरा, श्रीकान्ता (श्रीमती) मित्रसेना, प्रजावती, (रक्षिता) सोमा (पद्मावती) वपिल्ला (वप्रा) शिवादेवी, वामादेवी, प्रियकारिणी त्रिशला। आवश्यक निर्युक्ति[224] मे भी उन के नाम प्राप्त हैं।

आगामी उत्सर्पिणी के तीर्थंकरो के नाम जो समवायाग मे आये है, वही नाम प्रवचनसार मे ज्यो के त्यो मिलते हैं। किन्तु लोकप्रकाश[225] मे जो नाम आये है, वे क्रम की दृष्टि से पृथक् है। जिनप्रभसूरि कृत 'प्राकृत दिवाली कल्प' मे उल्लिखित नामो और उनके क्रम मे अन्तर है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे आगामी चौबीसी के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

(१) श्री महापद्म	(२) सुरदेव	(३) सुपार्श्व
(४) स्वयप्रभु	(५) सर्वात्मभू	(६) श्रीदेव
(७) कुलपुत्रदेव	(८) उदकदेव	(९) प्रोष्ठिलदेव
(१०) जयकीर्ति	(११) मुनिसुव्रत	(१२) अरह
(१३) निष्पाप	(१४) निष्कषाय	(१५) विपुल
(१६) निर्मल	(१७) चित्रगुप्त	(१८) समाधिमुक्त
(१९) स्वयभू	(२०) अनिवृत्त	(२१) जयनाथ
(२२) श्रीविमल	(२३) देवपाल	(२४) अनन्तवीर्य

दिगम्बर ग्रन्थो मे अतीत चौबीसी के नाम भी मिलते है।[226]

प्रस्तुत समवायाग मे कुलकरो का उल्लेख हुआ है। स्थानाग सूत्र मे अतीत उत्सर्पिणी के दश कुलकरो के नाम आये है तो समवायाग मे सात नाम है और नामो मे भेद भी है। कुलकर उस युग के व्यवस्थापक है, जब मानव पारिवारिक, सामाजिक, राजशासन और आर्थिक बन्धनो से पूर्णतया मुक्त था। न उसे खाने की चिन्ता थी, न पहनने की ही। वृक्षो से ही उन्हे मनोवाञ्छित वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती थी। वे स्वतन्त्र जीवन जीने वाले थे। स्वभाव की दृष्टि से अत्यन्त अल्पकषायी। उस युग मे जगलो मे हाथी, घोडे, गाय, बैल, पशु थे, पर उन पशुओ का वे उपयोग नही करते थे। आर्थिक दृष्टि से न कोई श्रेष्ठी था, न कोई अनुचर ही। आज की भाँति रोगो का त्रास नहीं था। जीवन भर वे वासनाओ से मुक्त रहते थे। जीवन की सान्ध्यवेला मे वे भाई-बहन मिटकर पति-पत्नी के रूप मे हो जाते थे। और एक पुरुष और स्त्री युगल के रूप मे सन्तान को जन्म देते थे। उनका वे ४९ दिन तक पालन-पोषण करते और मरण-शरण हो जाते थे। उनकी मृत्यु भी उबासी और छींक आते ही बिना कष्ट के हो जाती। इस तरह यौगलिक काल का जीवन था। तीसरे आरे के अन्त

---

२२३ उत्तरपुराण व हरिवश पुराण देखिये

२२४ आवश्यक निर्युक्ति—गाथा ३८५, ३८६

२२५ लोकप्रकाश सर्ग-३८, श्लोक २९६

२२६ जैन सिद्धान्त सग्रह, पृ. १९

तक तृतीय विभाग मे यौगलिक-मर्यादाएँ धीरे-धीरे विनष्ट होने लगती हैं। तृष्णाएँ बढ़ती है। और कल्प-वृक्षो की शक्ति क्षीण होने लगती है। उस समय व्यवस्था करने वाले कुछ विशिष्ट व्यक्ति पैदा होते हैं। उन्हे कुलकर की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। प्रथम कुलकर तृतीय आरा के ⅛ पल्य जितना भाग अवशिष्ट रहने पर होते हैं। कुलकरो की सख्या के सम्बन्ध मे विभिन्न ग्रन्थो मे मतभेद रहे हैं।[२२७] अन्तिम कुलकर नाभि के पुत्र "ऋषभ" हुये जो प्रथम तीर्थंकर भी थे। उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती हुए। तीर्थंकर ऋषभ ने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया तो चक्रवर्ती ने राज्य-चक्र का। चतुर्थ आरे मे तेवीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और प्रतिवासुदेव आदि महापुरुष उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समवायाग मे जिज्ञासु साधको के लिए और अनुसधित्सुओ के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यो का सकलन है। वस्तु-विज्ञान, जैन-सिद्धान्त, एव जैन-इतिहास की दृष्टि से यह आगम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे शताधिक विषय है। आधुनिक चिन्तक समवायाग मे आये हुए गणधर गौतम की ९२ वर्ष की आयु और गणधर सुधर्मा की १०० वर्ष की आयु पढकर यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि समवायाग की रचना भगवान् महावीर के मोक्ष जाने के पश्चात् हुई है। हम उनके तर्क के समाधान मे यह नम्र निवेदन करना चाहेगे कि गणधरो की उम्र आदि विषयो का देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने इसमे सकलन किया है। स्थानाङ्ग की प्रस्तावना मे मैंने इस प्रश्न पर विस्तार से चिन्तन भी किया है। यह पूर्ण ऐतिहासिक सत्य है कि यह आगम गणधरकृत है।

मुख्य रूप से यह आगम गद्य रूप मे है पर कही-कही बीच-बीच मे नामावली व अन्य विवरण सम्बन्धी गाथाएँ भी आई हैं। भाष्य की दृष्टि से भी यह आगम महत्त्वपूर्ण है। कही-कही पर अलकारो का प्रयोग हुआ है। सख्याओ के सहारे भगवान् पार्श्व और उनके पूर्ववर्ती चौदहपूर्वी, अवधिज्ञानी, और विशिष्ट ज्ञानी मुनियो का भी उल्लेख है, जो इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

तुलनात्मक अध्ययन

समवायागसूत्र मे विभिन्न विषयो का जितना अधिक सकलन हुआ है, उतना विषयो की दृष्टि से सकलन अन्य आगमो मे कम हुआ है। भगवती सूत्र विषय बहुल है तो आकार की दृष्टि से भी विराट् है। समवायाग सूत्र आकार की दृष्टि से बहुत ही छोटा है। जैसे विष्णु मुनि ने तीन पैर से विराट् विश्व को नाप लिया था, वैसे ही समवायाग की स्थिति है। यदि हम समवायाग सूत्र मे आये हुये विषयो की तुलना अन्य आगम साहित्य से करे तो सहज ही यह ज्ञात होगा कि व्यवहार सूत्र मे यथार्थ ही कहा गया है कि स्थानाग और समवायाग का ज्ञाता ही आचार्य और उपाध्याय जैसे गौरवपूर्ण पद को धारण कर सकता है क्योकि स्थानांग और समावयाग मे उन सभी विषयो की सक्षेप मे चर्चाएँ आ गयी है, आचार्य व उपाध्याय पद के लिए जिनका जानना अत्यधिक आवश्यक है। सक्षेप मे यो कहा जा सकता है कि जिनवाणी रूपी विराट् सागर को समवायाग रूपी गागर मे भर दिया गया है। यही कारण है कि अन्य आगम साहित्य मे इस की स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनाई देती है। अत हम यहा पर बहुत ही सक्षेप मे अन्य आगमो के आलोक मे समवायागगत विषयो की तुलना कर रहे है।

---

२२७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वितीय वक्षस्कार मे पन्द्रह कुलकर, दिगम्बर ग्रन्थ "सिद्धान्त-सग्रह" मे चौदह कुलकर कहे गए है।

२२८ ठाण-समवायधरे कप्पइ आयरियत्ताए उवज्झायत्ताए गणावच्छेइयत्ताए उद्दिसित्ताए।—व्यवहारसूत्र उद्देशक ३

समवायांग और आचारांग

जिनवाणी के जिज्ञासुओ के लिए आचाराग का सर्वाधिक महत्त्व है। वह सबसे प्रथम अग है—रचना की दृष्टि से और स्थापना की दृष्टि से भी। आचारांग रचनाशैली, भाषाशैली, व विषयवस्तु की दृष्टि से अद्भुत है। आचार और दर्शन दोनो ही दृष्टि से उसका महत्त्व है। हम समवायाग की आचाराग के साथ संक्षेप में तुलना कर रहे हैं।

समवायाग के प्रथम समवाय का तृतीय सूत्र है—एगे दण्डे, आचाराग[२२९] मे भी इसका उल्लेख है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'पच महव्वया पण्णत्ता ' है तो आचाराग[२३०] मे भी यह निरूपण है।

समवायांग के पाँचवे समवाय का तृतीय सूत्र—'पंच कामगुणा पण्णत्ता ' है तो आचाराग[२३१] मे भी इसका प्रतिपादन हुआ है।

समवायाग के पाँचवे समवाय मे छट्ठा सूत्र—'पच निजरट्ठाणा पण्णत्ता ' है तो आचाराग[२३२] मे भी यह वर्णन प्राप्त है।

समवायाग के छट्ठे समवाय का द्वितीय सूत्र—'छ जीवनिकाय पण्णत्ता ' है तो आचाराग[२३३] मे भी इसका निरूपण है।

समवायांग के सातवे समवाय का तृतीय सूत्र—'समणे भगव महावीरे सत्तरयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था ' है तो आचाराग[२३४] मे भी महावीर की अवगाहना का यही वर्णन है।

समवायाग के नवम समवाय का तृतीय सूत्र—''नव बभचेरा पण्णत्ता '' है तो आचाराग[२३५] मे भी ब्रह्मचर्य का वर्णन प्राप्त है।

समवायाग के पच्चीसवे समवाय का पहला सूत्र—''पुरिम-पच्छिमगाण तित्थगराण पच-जामस्स पणवीस भावणाओ पण्णत्ताओ ... '' है तो आचाराग [२३६] मे भी पाच महाव्रतो की पच्चीस भावनाओ का उल्लेख हुआ है।

समवायाग के तीसवे समवाय मे ''समणे भगव महावीरे तीस वासाइ आगारवासमज्झे वसित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइए . '' है तो आचाराग[२३७] मे भी भगवान् महावीर की दीक्षा का यही वर्णन है।

---

२२९. आचाराग श्रु १ अ १ उ ४
२३०. आचाराग श्रु ३ सू १७९
२३१ आचाराग श्रु १ अ २ उ १ सू ६५
२३२ आचाराग श्रु ३ सू १७९
२३३ आचाराग श्रु १ अ १ उ १ से ७
२३४ आचारांग श्रु २ अ १५ उ १ सू १६६
२३५ आचाराग श्रु १ अ १ से ९
२३६ आचाराग श्रु २ चु ३ सू. १७९
२३७. आचाराग श्रु. २ चु ३ सू १७९

समवायांग के एकावनवें समवाय का प्रथम सूत्र है—'मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पण्णासं अज्जिया साहस्सीओ होत्था ' है तो आचाराग[238] मे भी मुनिसुव्रत की आर्यिकाओ का वर्णन है।

समवायाग सूत्र के वियासीवे समवाय का द्वितीय सूत्र है 'समणे भगव महावीरे बासीए राइदिएहिं वीइक्कतेहिं गब्भाओ गब्भ साहरिए[239] ··· · ' तो आचारांग[240] मे भी भगवान् महावीर के गर्भ-परिवर्तन का उल्लेख है।

समवायाग के बानवे समवाय का प्रथम सूत्र है—'बाणउई पडिमाओ पण्णत्ताओ' ·· · ·· ··· ' तो आचाराग[241] मे भी बानवे प्रतिमाओ का उल्लेख हुआ है।

समवायाग के सूत्रो के साथ आचारागगत विषयो का जो साम्य है, वह यहा पर निर्दिष्ट किया गया है।

समवायांग और सूत्रकृतांग

सूत्रकृताग द्वितीय अग है। आचाराग मे मुख्य रूप से आचार की प्रधानता रही है तो सूत्रकृताग मे दर्शन की प्रधानता है। महावीर युगीन दर्शनो की स्पष्ट झाकी इसमे है। आचाराग की तरह यह भी भाव-भाषा और शैली की दृष्टि से अलग-थलग विलक्षणता लिए हुए है। सक्षेप मे यहा प्रस्तुत है समवाययोग के साथ सूत्रकृताग की तुलना।

समवायाग के प्रथम समवाय का नवम सूत्र है—"एगे धम्मे" तो सूत्रकृताग[242] मे भी इस धर्म का उल्लेख है।

समवायाग के प्रथम समवाय का दशवा सूत्र है—'एगे अधम्मे' तो सूत्रकृताग[243] मे भी यही वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र है—"एगे पुण्णे" तो सूत्रकृताग[244] मे भी पुण्य का वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का बारहवाँ सूत्र है—"एगे पावे" तो सूत्रकृताग[245] मे भी पाप का निरूपण हुआ है।

समवायाग के प्रथम समवाय का तेरहवा सूत्र है "एगे बधे" तो सूत्रकृताग[246] मे भी बन्ध का वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का चौदहवाँ सूत्र है—"एगे मोक्खे" तो सूत्रकृताग[247] में भी मोक्ष का उल्लेख है।

---

२३८ आचाराग—श्रु १
२३९ आचाराग—श्रु २ अ २४
२४० आचाराग—श्रु २ अ २४
२४१ आचाराग—श्रु २
२४२ सूत्रकृताग—श्रु २ अ ५
२४३ सूत्रकृताग—श्रु. २ अ ५
२४४. सूत्रकृताग—श्रु २ अ. ५
२४५. सूत्रकृताग—श्रु २ अ ५
२४६ सूत्रकृताग—श्रु २ अ ५
२४७ सूत्रकृतांग—श्रु २ अ ५

समवायांग के प्रथम समवाय का पन्द्रहवां सूत्र है—"एगे आसवे" तो सूत्रकृतांग[२४८] मे भी आश्रव का निरूपण है।

समवायाग के प्रथम समवाय का सोलहवा सूत्र—"एगे सवरे" है तो सूत्रकृताग[२४९] मे भी सवर की प्ररूपणा हुयी है।

समवायाग के प्रथम समवाय का सत्तरहवा सूत्र—"एगा वेयणा" है तो सूत्रकृताग[२५०] मे भी वेदना का वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का अठारहवा सूत्र है—"एगा निज्जरा" तो सूत्रकृताग[२५१] मे भी निर्जरा का वर्णन है।

समवायांग के द्वितीय समवाय का प्रथम सूत्र—"दो दण्डा पण्णत्ता ..." है तो सूत्रकृताग[२५२] मे भी अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड का वर्णन है।

समवायाग के तेरहवें समवाय का प्रथम सूत्र—"तेरस किरियाठाणा पण्णत्ता " है तो सूत्रकृताग[२५३] मे भी क्रियाओ का वर्णन है।

समवायाग के बावीसवे समवाय का प्रथम सूत्र है—"बावीस परीसहा पण्णत्ता" तो सूत्रकृताग[२५४] मे भी परीषहो का वर्णन है।

इस तरह समवायांग और सूत्रकृताग मे अनेक विषयो की समानता है।

स्थानाङ्ग और समवायाग ये दोनो आगम एक शैली मे निर्मित हैं। अत दोनो मे अत्यधिक विषयसाम्य है। इन दोनो की तुलना स्थानाङ्गसूत्र की प्रस्तावना मे की जा चुकी है, अतएव यहाँ उसे नही दोहरा रहे है। जिज्ञासुजन उस प्रस्तावना का अवलोकन करें।

समवायांग और भगवती

समवायाग और भगवती इन दोनो आगमो मे भी अनेक स्थलो पर विषय मे सदृशता है। अत यहा समवायागगत विषयो का भगवती के साथ तुलनात्मक अध्ययन दे रहे है।

समवायाग के प्रथम समवाय का प्रथम सूत्र है—"एगे आया" तो भगवती [२५५] मे भी चैतन्य गुण की दृष्टि से आत्मा एक स्वरूप प्रतिपादित किया है।

समवायाग के प्रथम समवाय का द्वितीय सूत्र है—"एगे अणाया" तो भगवती[२५६] सूत्र मे भी अनुपयोग लक्षण की दृष्टि से अनात्मा का एक रूप प्रतिपादित है।

---

२४८ सूत्रकृताग—श्रु २ अ ५
२४९ सूत्रकृतांग—श्रु २ अ ५
२५० सूत्रकृताग—श्रु २ अ ५
२५१ सूत्रकृताग—श्रु २ अ ५
२५२. सूत्रकृताग—श्रु २ अ २
२५३. सूत्रकृताग—श्रु २ अ २
२५४ सूत्रकृताग—श्रु २ अ २
२५५ भगवती—शतक १२ उद्देशक १०
२५६ भगवती—शतक १ उ ४

समवायांग के प्रथम समवाय का चतुर्थ सूत्र है 'एगे अदण्डे' तो भगवती[257] मे भी प्रशस्त योगों का प्रवृत्तिरूप व्यापार—अदण्ड को एक बताया है।

समवायाग के प्रथम समवाय का पाचवाँ सूत्र है—'एगा किरिया' तो भगवती[258] मे भी योगो की प्रवृत्ति रूप क्रिया एक है।

समवायाग के प्रथम समवाय का छठा सूत्र है 'एगा अकिरिया' तो भगवती[259] मे भी योगनिरोधरूप अक्रिया एक मानी है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सातवाँ सूत्र है 'एगे लोए' तो भगवती[260] मे भी धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो का आधारभूत लोकाकाश एक प्रतिपादित किया है।

समवायाग के प्रथम समवाय का आठवाँ सूत्र है—'एगे अलोए' तो भगवती[261] मे भी धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो के अभाव रूप अलोकाश का वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का छब्बीसवा सूत्र है—'इमोसे ण रयणप्पहाए पुढवीए · ' तो भगवती[262] मे भी रत्नप्रभा नामक पृथ्वी के कुछ नारको की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

समवायाग सूत्र के प्रथम समवाय का सत्ताईसवाँ सूत्र है—'इमीसे ण · ' तो भगवती[263] मे भी रत्नप्रभा-नारको की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की कही है।

समवायाग के प्रथम समवाय का उनतीसवाँ सूत्र है—'असुरकुमाराण देवाण ' तो भगवती[264] मे भी असुरकुमार देवो की स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायाग के प्रथम समवाय का तीसवाँ सूत्र है—'असुरकुमाराण ' तो भगवती[265] मे भी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के प्रथम समवाय का इकतीसवाँ सूत्र है—'असुरकुमारिंद · ' तो भगवती[266] मे भी असुरकुमारेन्द्र को छोडकर कुछ भवनपति देवो की स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायाग के प्रथम समवाय का बत्तीसवा सूत्र है—'असखिज्जवासाउय · · ' तो भगवती[267] मे भी असख्य वर्ष की आयु वाले कुछ गर्भज तिर्यंचो की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

---

२५७ भगवती—शत ११ उ ११
२५८ भगवती—श १ उ ६
२५९ भगवती—श २५ उ ७
२६० भगवती—श १२ उ ७
२६१ भगवती—श १२ उ ७
२६२ भगवती—श १ उ १
२६३ भगवती—श १ उ १
२६४ भगवती—श १ उ १
२६५ भगवती—श १ उ १
२६६ भगवती—श १ उ १
२६७ भगवती—श १ उ १

समवायांग के प्रथम समवाय का तेतीसवा सूत्र है—'असखिज्ज वासाउय ' तो भगवती[268] में भी असंख्य वर्षों की आयुवाले कुछ गर्भज मनुष्यो की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

समवायग के प्रथम समवाय का चौतीसवाँ सूत्र है—'वाणमतराण देवाण ···' तो भगवती[269] मे भी वाणव्यन्तर देवो की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायाग के प्रथम समवाय का पैंतीसवाँ सूत्र है 'जोइसियाण··· · ' तो भगवती[270] मे भी ज्योतिष्क देवो की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम अधिक लाख वर्ष की कही है।

समवायाग के प्रथम समवाय का छत्तीसवाँ सूत्र—'सोहम्मे कप्पे देवाण' ' है तो भगवती-सूत्र[271] मे भी सौधर्मकल्प के देवो की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की कही है।

समवायांग के प्रथम समवाय का सेंतीसवाँ सूत्र है—'सोहम्मे कप्पे · ' तो भगवती[272] मे भी सौधर्म कल्प के कुछ देवो की स्थिति एक सागरोपम की कही है।

समवायाग के प्रथम समवाय का अड़तीसवाँ सूत्र है—'ईसाणे कप्पे देवाण ' तो भगवती[273] मे भी ईशान कल्प के देवो की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम की कही है।

समवायाग सूत्र के प्रथम समवाय का उनचालीसवाँ सूत्र है—'ईसाणे कप्पे देवाण ' तो भगवती[274] सूत्र मे भी ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति एक सागरोपम की कही है।

समवयाग के प्रथम समवाय का तयालीसवाँ सूत्र है—'सतेगइया भवसिद्धिया ' तो भगवती[275] मे भी इस का वर्णन है।

समवायाग के तृतीय समवाय का तेरहवाँ सूत्र है—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[276] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति तीन पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के तृतीय समवाय का चौदहवाँ सूत्र है—'दोच्चाए ण पुढवीए ' तो भगवती[277] मे भी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के तृतीय समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र है—'तच्चाए ण पुढवीए ' तो भगवती[278] मे भी बालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की बतायी है।

---

२६८ भगवती—श १ उ १
२६९. भगवती—श. १ उ १
२७० भगवती—श १ उ १
२७१ भगवती—श. १ उ. १
२७२ भगवती—श १ उ १
२७३. भगवती—श. १ उ १
२७४. भगवती—श १ उ १
२७५. भगवती—श ६, १२, उ. १०, २
२७६. भगवती—श. १ उ १
२७७ भगवती—श १ उ १
२७८ भगवती—श १ उ. १

समवायांग के तृतीय समवाय का सोलहवाँ सूत्र है—'असुरकुमाराणं देवाणं ....' इसी तरह भगवती[२७९] मे भी कुछ असुरकुमार देवो की स्थिति तीन पल्योपम की कही है।

समवायांग सूत्र के तृतीय समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र है—'असखिज्जवासाउय ..' तो भगवती[२८०] मे भी असख्य वर्ष की आयु वाले सज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रियो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बतायी है।

समवायाग सूत्र के तृतीय समवाय का अठारहवां सूत्र—'असखिज्जवासाउय ' है तो भगवती[२८१] मे भी असख्य वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के तृतीय समवाय का उन्नीसवां सूत्र है—'सोहम्मीसाणेसु ' तो भगवती[२८२] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति यही कही है।

समवायाग के तृतीय समवाय का बीसवाँ सूत्र —'सणकुमार-माहिंदेसु ' है तो भगवती[२८३] मे भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कुछ देवो की स्थिति तीन सागरोपम की कही है।

समवायाग के तृतीय समवाय का इकवीसवाँ सूत्र है—'जे देवा आभकर पभकर' है तो भगवती[२८४] मे आभकर प्रभकर देवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के तृतीय समवाय का चौवीसवाँ सूत्र—'सतेगइया भवसिद्धिया ' है तो भगवती[२८५] मे भी कुछ जीव तीन भव कर मुक्त होगे, ऐसा वर्णन है।

समवायाग के चतुर्थ समवाय का दशवा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[२८६] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति चार पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के चतुर्थ समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'तच्चाए ण पुढवए ' है तो भगवती[२८७] में भी बालुका पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति चार सागरोपम की कही है।

समवायाग के चतुर्थ समवाय का बारहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण देवाणं ' है तो भगवती [२८८] मे भी असुरकुमार देवो की चार पल्योपम की स्थिति प्रतिपादित है।

समवायाग सूत्र के चतुर्थ समवाय का तेरहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु ' है तो भगवती[२८९] में भी सौधर्म ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति चार पल्योपम की कही है।

---

२७९ भगवती—श १ उ १
२८० भगवती—श १ उ १
२८१ भगवती—श १ उ १
२८२ भगवती—श १ उ १
२८३ भगवती—श १ उ १
२८४ भगवती—श १ उ १
२८५ भगवती—श ६, १२ उ १०, २
२८६ भगवती—श. १ उ १
२८७ भगवती—श १ उ १
२८८ भगवती—श १ उ १
२८९ भगवती—श १ उ १

समवायांग के चौथे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'सणतकुमार-माहिंदेसु ' है तो भगवती[290] मे भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कुमार के कुछ देवो की स्थिति चार पल्योपम की कही है।

समवायाग के चतुर्थ समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'जे देवा किट्ठि सुकिट्ठि ' है तो भगवती[291] मे भी कृष्टि, सुकृष्टि, आदि वैमानिक देवो की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम की कही है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का छठा सूत्र—'पच निज्जरट्ठाणा पण्णत्ता' है तो—भगवती[292] मे भी निर्जरा के प्राणातिपातविरति आदि पाँच स्थान बताये है।

समवायाग के पाचवें समवाय का आठवाँ सूत्र—'पच अत्थिकाया पण्णत्ता ' है तो भगवती[293] मे भी धर्मास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकाय बताये है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[294] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति पाँच पल्योपम की कही है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'तच्चाए ण पुढवीए ' है तो भगवती[295] मे भी बालुकाप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरकियो की स्थिति पाच पल्योपम की कही है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[296] मे भी असुरकुमार देवो की स्थिति पाँच पल्योपम की कही है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु ' है तो भगवती[297] मे भी सौधर्म ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति पाँच पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का अठारहवाँ सूत्र—'सणकुमार-माहिंदेसु ' है तो भगवती[298] मे भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कुछ देवो की स्थिति पाँच सागरोपम की कही है।

समवायाग के पाँचवे समवाय का उन्नीसवाँ सूत्र—'जे देवा वाय सुवाय ' है तो भगवती[299] मे भी वात-सुवात आदि वैमानिक देवो की उत्कृष्ट स्थिति पाँच सागर की कही है।

समवायाग के छठे समवाय का तृतीय सूत्र है—'छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते ' तो भगवती[300] मे भी बाह्यतप के अनशन आदि छ भेद बताये है।

---

२९० भगवती—श १ उ १
२९१ भगवती—श १ उ १
२९२ भगवती—श ७ उ १०
२९३ भगवती—श २ उ १०
२९४ भगवती—श १ उ १
२९५ भगवती—श १ उ १
२९६ भगवती—श १ उ १
२९७ भगवती—श १ उ. १
२९८ भगवती—श १ उ १
२९९. भगवती—श १ उ १
३०० भगवती—श २५ उ ७

समवायाग के छठे समवाय का चौथा सूत्र—'छब्विहे अब्भितरे तवोकम्मे पण्णत्ते ···' है तो भगवती[301] मे भी छ. आभ्यन्तर तप का वर्णन है।

समवायाग के छठे समवाय का पाँचवाँ सूत्र—'छ छाउमत्थिया समुग्घाया ' है तो भगवती[302] मे भी छाद्मस्थिको के छ समुद्घात बताए हैं।

समवायाग के छठे समवाय का दसवाँ सूत्र—'तच्चाए ण पुढवीए ' है तो भगवती[303] मे भी बालुकाप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति छ सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के छठे समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण ' है तो भगवती[304] मे भी कुछ असुरकुमार देवो की स्थिति छ पल्योपम की प्रतिपादित है।

समवायाग के छठे समवाय का बारहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो भगवती[305] मे भी सौधर्म व ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति छ पल्योपम की बतायी है।

समवायाग सूत्र के छठे समवाय का तेरहवाँ सूत्र—'सणकुमारमाहिंदेसु ' है तो भगवती[306] मे भी सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कुछ देवो की स्थिति छ पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के छठे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'जे देवा सयभूरमण ' है तो भगवती[307] मे भी स्वयभू स्वयभूरमण विमान मे उत्पन्न होने वालो की उत्कृष्ट स्थिति छ सागर की कही है।

समवायाग के छठे समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'तेण देवा, छण्ह अद्धमासाण ' है तो भगवती[308] मे भी स्वयभू आदि विमानो के देव छ पक्ष मे श्वासोच्छ्वास लेते है, ऐसा वर्णन है।

समवायाग के छठे समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'तेसि ण देवाण ' है तो भगवती[309] में भी स्वयभू यावत् विमानवासी देवो की इच्छा आहार लेने की छ हजार वर्ष के बाद होती है।

समवायाग सूत्र के सातवें समवाय का तृतीय सूत्र—'समणे भगव ' है तो भगवती[310] मे भी श्रमण भगवान् महावीर सात हाथ के ऊँचे कहे गए है।

समवायाग के सातवें समवाय का बारहवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए णं···· ' है तो भगवती[311] में भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति सात पल्योपम की प्रतिपादित है।

---

३०१ भगवती श २५ उ ७
३०२ भगवती श १३ उ १०
३०३ भगवती श १ उ १
३०४ भगवती श १ उ १
३०५ भगवती श १ उ १
३०६ भगवती श १ उ १
३०७ भगवती श १ उ १
३०८ भगवती श १ उ १
३०९ भगवती श १ उ १
३१० भगवती श १ उ १
३११ भगवती श १ उ १

समवायाग के सातवें समवाय का तेरहवाँ सूत्र—'तच्चाए ण पुढवीए ·· ' है तो भगवती[३१२] मे भी बालुकाप्रभा के कुछ नैरयिको की स्थिति सात सागरोपम की वर्णित है।

समवायाग के मातवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'चउत्थीए ण पुढवीए ' है तो भगवती[३१३] मे भी पकप्रभा नैरयिको की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की कही है।

समवायाग के सातवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण ' है तो भगवती[३१४] मे भी कुछ कुमारो की स्थिति सात पल्योपम की वर्णित है।

समवायाग के सातवे समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो भगवती[३१५] मे सौधर्म ईशान कल्प की स्थिति सात पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के सातवें समवाय का सत्तरहवा सूत्र—'सणकुमारे कप्पे देवाण ' है तो भगवती[३१६] मे भी सनत्कुमार देवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के सातवें समवाय का अठारहवाँ सूत्र—'माहिंदे कप्पे देवाण ' है तो भगवती[३१७] मे भी माहेन्द्र कल्प के देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के सातवे समवाय का उन्नीसवाँ सूत्र—'बभलोए कप्पे ' है तो भगवती[३१८] मे भी ब्रह्म लोक के देवो की स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की कही है।

समवायाग के सातवें समवाय का बीसवाँ सूत्र—'जे देवा सम समप्पभ ' है तो भगवती[३१९] मे भी सम, समप्रभ, महाप्रभ, आदि देवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही है।

समवायाग के सातवें समवाय का इक्कीसवाँ सूत्र—'ते ण देवा सत्तण्ह ' है तो भगवती[३२०] मे भी सनत्कुमारावतसक विमान मे जो देव उत्पन्न होते हैं, वे सात पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते है, ऐसा कथन है।

समवायाग से सातवें समवाय का बावीसवाँ सूत्र—'तेसि ण देवाण ' है तो भगवती[३२१] मे भी सनत्कुमारावतसक देवो की आहार लेने की इच्छा सात हजार वर्ष से होनी कही है।

समवायाग के आठवे समवाय का दशवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पभाए ' है तो भगवती[३२२] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति आठ पल्योपम की कही है।

---

३१२ भगवती श १ उ १
३१३ भगवती श १ उ १
३१४ भगवती श १ उ १
३१५ भगवती श १ उ १
३१६ भगवती श १ उ १
३१७ भगवती श १ उ. १
३१८ भगवती श १ उ १
३१९ भगवती श १ उ १
३२० भगवती श १ उ १
३२१ भगवती श १ उ १
३२२ भगवती श १ उ १

समवायाग के आठवें समवाय का ग्यारहवा सूत्र—'चउत्थीए पुढवीए ' है तो भगवती[323] मे भी पकप्रभा नैरयिको की स्थिति आठ सागरोपम की है।

समवायाग के आठवें समवाय का बारहवां सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[324] मे भी असुरकुमारो की स्थिति आठ पल्योपम की कही है।

समवायाग के आठवें समवाय का तेरहवा सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो भगवती[325] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प के देवो की स्थिति आठ पल्योपम की कही है।

समवायाग के आठवें समवाय का चौदहवा सूत्र—'बभलोए कप्पे ' है तो भगवती[326] मे भी ब्रह्म-लोक कल्प के देवो की स्थिति आठ सागरोपम की प्रतिपादित है।

समवायाग के आठवे समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'जे देवा अच्चि ' है तो भगवती[327] मे भी अचि, अचिमाली आदि की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागर की कही है।

समवायाग के आठवें समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'ते ण देवा अट्ठण्ह ' है तो भगवती[328] मे भी अचि आदि देव आठ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते है।

समवायाग के आठवें समवाय का सत्तरहवा सूत्र—'तेसि ण देवाण अट्ठहि ' है तो भगवती[329] मे भी अचि, आदि देवो को आहार लेने की इच्छा आठ हजार वर्ष से होती कही है।

समवायाग नवमे समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'दसणावरणिज्जस्स कम्मस्स' है तो भगवती[330] मे भी निद्रा, प्रचला आदि दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ कही हैं।

समवायाग से नवमे समवाय का बारहवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[331] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति नौ पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के नवमे समवाय का तेरहवा सूत्र—'चउत्थीए पुढवीए ' है तो भगवती[332] मे भी पकप्रभा क कुछ नैरयिको की स्थिति नौ सागर की बतायी है।

समवायाग के नवमे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—"असुरकुमाराण देवाण " है तो भगवती[333] मे भी असुरकुमार देवो की स्थिति नौ पल्योपम की कही है।

---

३२३ भगवती—श १ उ १
३२४ भगवती—श १ उ १
३२५ भगवती—श १ उ १
३२६ भगवती—श १ उ १
३२७ भगवती—श १ उ १
३२८ भगवती—श १ उ १
३२९ भगवती—श १ उ १
३३० भगवती—श १ उ १
३३१ भगवती—श १ उ १
३३२ भगवती—श १ उ १
३३३ भगवती—श १ उ १

समवायाग के नवम समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो भगवती[334] मे भी सौधर्म व ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति नौ पल्योपम की कही है।

समवायाग के नवम समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'बभलोए कप्पे ' है तो भगवती[335] मे भी ब्रह्म-लोक कल्प के कुछ देवो की स्थिति नौ सागरोपम की कही है।

समवायाग के नवम समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—'जे देवा पम्ह सुपम्ह ' है तो भगवती[336] मे भी पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त आदि देवो की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के नवम समवाय का अठारहवाँ सूत्र—'ते ण देवा नवण्ह ' है तो भगवती[337] मे भी पक्ष्म, आदि देव नौ पक्ष मे श्वासोच्छ्वास लेते है ऐसा कथन है।

समवायाग के नवम समवाय का उन्नीसवाँ सूत्र—'तेसि ण देवाण ' है तो भगवती[338] मे भी पक्ष्म, सुपक्ष्म आदि देवो को आहार लेने की इच्छा नौ हजार वर्ष से होती कही है।

समवायाग के दशम समवाय का नौवा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[339] मे भी रत्नप्रभा नैरयिको की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है।

समवायाग के दशम समवाय का दशम सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[340] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति दश पल्योपम की कही है।

समवायाग के दशम समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'चउत्थीए पुढवीए ' है तो भगवती[341] मे पक-प्रभा पृथ्वी मे दस लाख नारकावास कहे है, ऐसा वर्णन है।

समवायाग के दशवे समवाय का बारहवाँ सूत्र—'चउत्थीए पुढवीए ' है तो भगवती[342] मे भी पकप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के दशवें समवाय का तेरहवाँ सूत्र—'पचमीए पुढवीए ' है तो भगवती[343] मे भी धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की जघन्य स्थिति दश सागरपोम की कही है।

समवायाग के दशवें समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[344] मे भी असुरकुमार देवो की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की प्ररूपित है।

---

३३४ भगवती—श १ उ १
३३५ भगवती—श १ उ १
३३६ भगवती—श १ उ १
३३७ भगवती—श १ उ १
३३८ भगवती—श १ उ १
३३९ भगवती—श १ उ १
३४० भगवती—श १ उ १
३४१ भगवती—श १ उ. १
३४२ भगवती—श १ उ १
३४३. भगवती—श. १ उ १
३४४ भगवती—श १ उ १

समवायाग के दशवें समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'असुरिंदवज्जाण ....' है तो भगवती[345] मे भी असुरेन्द्र को छोडकर शेष भवनपति देवो की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही है।

समवायाग के दशवें समवाय का सोहलवा सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[346] मे भी असुरकुमार देवो की स्थिति कही है।

समवायाग के दशवे समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—'बायरवणस्सइकाइए ' है तो भगवती[347] मे भी प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही है।

समवायाग के दशवे समवाय का अठारहवाँ सूत्र—'वाणमतराण देवाण ' है तो भगवती[348] मे भी व्यन्तरदेवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की बतायी है।

समवायाग के दशवें समवाय का उन्नीसवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो भगवती[349] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति दश पल्योपम की कही है।

समवायाग के दशवें समवाय का बीसवाँ सूत्र—'बभलोए कप्पे ' है तो भगवती[350] मे भी ब्रह्मलोक देव की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की बतायी है।

समवायाग सूत्र के दशवें समवाय का इकवीसवाँ सूत्र—'लतए कप्पे देवाण · ' है तो भगवती[351] मे भी लान्तक देवो की जघन्य स्थिति दश सागर की बतायी है।

समवायाग के दशवें समवाय का बावीसवाँ सूत्र—'जे देवा घोस सुघोस ' है तो भगवती[352] मे भी घोष, सुघोष आदि देवो की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही है।

समवायाग के दशवे समवाय का तेवीसवाँ सूत्र—'ते ण देवा ण अद्धमासाण ' है तो भगवती[353] मे भी घोष यावत ब्रह्मलोकावतसक विमान के देव दश पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

समवायाग के दशवे समवाय का चौबीसवाँ सूत्र—'तेसि ण देवाण ' है तो भगवती[354] मे भी घोष, यावत् ब्रह्मलोकावतसक के देवो की आहार लेने की इच्छा दश हजार वर्ष मे कही है।

समवायाग के ग्यारहवे समवाय का आठवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए··· ' है तो भगवती[355] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही है।

---

३४५ भगवती—श १ उ १
३४६ भगवती—श १ उ १
३४७ भगवती—श १ उ १
३४८ भगवती—श १ उ १
३४९ भगवती—श १ उ १
३५० भगवती—श १ उ १
३५१ भगवती—श १ उ १
३५२ भगवती—श १ उ १
३५३ भगवती—श १ उ १
३५४ भगवती—श १ उ १
३५५ भगवती—श १ उ १

समवायाग के ग्यारहवें समवाय का नवम सूत्र—'पचमीए पुढवीए ·····' है तो भगवती[३५६] मे भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति ग्यारह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के ग्यारहवे समवाय का दशवा सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[३५७] मे भी कुछ असुरकुमार देवो की स्थिति ग्यारह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के ग्यारहवे समवाय का ग्यारहवां सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु " ' है तो भगवती[३५८] मे भी सौधर्म ईशानकल्प के कुछ देवो की स्थिति ग्यारह पल्योपम की प्ररूपित है।

समवायाग के ग्यारहवें समवाय का बारहवां सूत्र—'लतए कप्पे ·' है तो भगवती[३५९] मे भी लातक कल्प के कुछ देवो की स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही है।

समवायाग के ग्यारहवें समवाय का तेरहवा सूत्र—'जे देवा बभ सुबभ ' है तो भगवती[३६०] मे भी ब्रह्म, सुब्रह्म आदि देवो की उत्कृष्ट स्थिति ग्यारह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के ग्यारहवे समवाय का चौदहवां सूत्र—'ते ण देवा ' है तो भगवती[३६१] मे भी ब्रह्म यावत् ब्रह्मोत्तरावतसक देव ग्यारह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

समवायाग के ग्यारहवे समवाय का पन्द्रहवां सूत्र—'तेसि देवाण ' है तो भगवती[३६२] मे भी ब्रह्म ब्रह्मोत्तरावतसक देवो की आहार लेने की इच्छा ग्यारह हजार वर्ष से होती बतलाई है।

समवायाग के बारहवे समवाय का बारहवां सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[३६३] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति बारह सागरोपम की कही है।

समवायाग के बारहवे समवाय का तेरहवां सूत्र—'पचमीए पुढवीए ' है तो भगवती[३६४] मे भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नरयिको की स्थिति बारह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के बारहवे समवाय का चौदहवा सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[३६५] मे भी कुछ असुरकुमार देवो की स्थिति बारह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के बारहवे समवाय का पन्द्रहवां सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो भगवती[३६६] मे भी सौधर्म ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति बारह पल्योपम की बतायी है।

---

३५६ भगवती—श १ उ १
३५७ भगवती—श १ उ १
३५८ भगवती—श १ उ १
३५९ भगवती—श १ उ १
३६० भगवती—श १ उ १
३६१ भगवती—श १ उ १
३६२ भगवती—श १ उ १
३६३ भगवती—श १ उ १
३६४ भगवती—श १ उ १
३६५ भगवती—श १ उ १
३६६ भगवती—श १ उ १

समवायाग के बारहवे समवाय का सोलहवाँ सूत्र—'लतए कप्पे अत्थेगइयाण ' है तो भगवती[367] मे भी लातक कल्प के कुछ देवो की स्थिति बारह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के बारहवे समवाय का सत्तरहवाँ सूत्र—'जे देवा माहिंद ' है तो भगवती[368] मे भी माहेन्द्रध्वज, आदि देवो की उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम की कही है।

समवायाग के तेरहवें समवाय का नवमा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[369] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति तेरह पल्योपम की कही है।

समवायाग के तेरहवे समवाय का दशमाँ सूत्र—'पचमीए पुढवीए ' है तो भगवती[370] मे भी धूम-प्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति तेरह सागरोपम प्रतिपादित है।

समवायाग के तेरहवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'असुरकुमारण देवाण ' है तो भगवती[371] मे भी कुछ असुरकुमार देवो की स्थिति तेरह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के तेरहवें समवाय का बारहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेमु ' है तो भगवती[372] मे भी सौधर्म व ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति तेरह पल्योपम की कही है।

समवायाग के तेरहवे समवाय का तेरहवाँ सूत्र—'लतए कप्पे ' है तो भगवती[373] मे भी लातक कल्प के कुछ देवो की स्थिति तेरह सागरोपम की कही है।

समवायाग क तेरहवे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'जे देवा वज्ज सुवज्ज ' है तो भगवती[374] मे भी वज्र-सुवज्र आदि देवो की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के तेरहवे समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'ते ण देवा ' है तो भगवती[375] मे भी वज्र आदि लोकावतसक देव तेरह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे है।

समवायाग के चौदहवे समवाय का प्रथम सूत्र—'चउद्दस भूयग्गामा ' है तो भगवती[376] मे भी सूक्ष्म-अपर्याप्त पर्याप्त आदि चौदह भूतग्राम बताये है।

समवायाग के चौदहवे समवाय का नवमा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[377] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति चौदह पल्योपम की कही है।

---

३६७ भगवती—श १ उ १
३६८ भगवती—श १ उ १
३६९ भगवती—श १ उ १
३७० भगवती—श १ उ १
३७१ भगवती—श १ उ १
३७२ भगवती—श १ उ १
३७३ भगवती—श १ उ १
३७४ भगवती—श १ उ १
३७५ भगवती—श १ उ १
३७६ भगवती—श २५ उ १
३७७. भगवती—श १ उ १

समवायांग के चौदहवें समवाय का दशवाँ सूत्र—'पचमीए पुढवीए ' है तो[378] भगवती मे भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति चौदह सागरोपम की कही है।

समवायाग के चौदहवें समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण देवाणं ' है तो भगवती[379] मे भी असुरकुमारदेवो की स्थिति चौदह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के चौदहवे समवाय का बारहवाँ सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु ' है तो भगवती[380] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति चौदह पल्योपम की कही है।

समवायाग के चौदहवे समवाय का तेरहवाँ सूत्र—'लतए कप्पे ' है तो भगवती[381] मे भी लातक कल्प के देवो की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के चौदहवे समवाय का चौदहवाँ सूत्र—'महासुक्के कप्पे ' है तो भगवती[382] मे भी महाशुक्र कल्प के देवो की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के चौदहवे समवाय का पन्द्रहवाँ सूत्र—'जे देवा ' है तो भगवती[383] मे भी श्रीकान्त देवो के चौदह सागर की स्थिति कही है।

समवायाग के पन्द्रहवे समवाय का पाँचवाँ सूत्र—'चेत्तासोएसु ण मासेसु ' है तो भगवती[384] मे भी छ नक्षत्र चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्तपर्यन्त योग करते हैं।

समवायाग के पन्द्रहवें समवाय का सातवाँ सूत्र—'मणूसाण ' है तो भगवती[385] मे भी मनुष्य के पन्द्रह योग कहे हैं।

समवायाग के पन्द्रहवे समवाय का आठवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[386] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के पन्द्रहवे समवाय का नवमा सूत्र—'पचमीए पुढवीए ' है तो भगवती[387] मे भी धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की कही है।

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[388] मे भी कुछ असुर कुमार देवो की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही है।

---

३७८ भगवती—श. १ उ १
३७९. भगवती—श १ उ १
३८० भगवती—श १ उ १
३८१ भगवती—श १ उ १
३८२ भगवती—श १ उ १
३८३ भगवती—श १ उ १
३८४ भगवती—श ११ उ ११
३८५ भगवती—श १ उ १
३८६ भगवती—श १ उ १
३८७ भगवती—श १ उ १
३८८ भगवती—श १ उ १

समवायांग के पन्द्रहवें समवाय का ग्यारहवां सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु ' है तो भगवती[389] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प के कुछ देवो की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही है।

समवायाग के पन्द्रहवे समवाय का बारहवां सूत्र—'महासुक्के कप्पे ' है तो भगवती[390] मे भी महाशुक्र कल्प के कुछ देवो की स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही है।

समवायाग के सोलहवें समवाय का आठवां सूत्र—इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[391] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति सोलह पल्योपम की कही है।

समवायाग के सोलहवे समवाय का नवम सूत्र—'पचमीए पुढवीए ' है तो भगवती[392] मे भी धूमप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति सोलह सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के सत्तरहवे समवाय का छट्ठा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[393] मे रत्नप्रभा पृथ्वी के समभूभाग से कुछ अधिक सत्तरह हजार योजन की ऊँचाई पर जघाचारण और विद्याचारण मुनियो की तिरछी गति कही है।

समवायाग के सत्तरहवे समवाय का सातवा सूत्र—'चमरस्स ण असुरिंदस्स ' है तो भगवती[394] मे भी चरम असुरेन्द्र के तिगिच्छकूट उत्पात पर्वत की ऊँचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की है।

समवायाग के सत्तरहवे समवाय का आठवा सूत्र –'सत्तरसविहे मरणे पण्णत्ते ' है तो भगवती[395] मे भी मरण के सत्तरह प्रकार बताये है।

समवायाग के सत्तरहवे समवाय का ग्यारहवा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[396] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति सत्तरह पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के अठारहवे समवाय का आठवा सूत्र—'पोसाऽऽसाढेसु ' है तो भगवती[397] मे भी पौष और आषाढ मास मे एक दिन उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का होता है तथा एक रात्रि अठारह मुहूर्त की होती कही है।

समवायाग के अठारहवें समवाय का नवमा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[398] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति अठारह पल्योपम की कही है।

---

३८९ भगवती श १ उ १
३९० भगवती श १ उ १
३९१ भगवती श १ उ १
३९२ भगवती श १ उ १
३९३ भगवती श २० उ ९
३९४ भगवती श ३ उ १
३९५ भगवती श १३ उ ७
३९६ भगवती श १ उ १
३९७ भगवती श ११ उ १
३९८ भगवती श १ उ १

समवायाग के उन्नीसवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'जबुद्दीवे ण दीवे ' है तो भगवती[399] मे भी जम्बूद्वीप मे सूर्य ऊँचे तथा नीचे उन्नीस सौ योजन तक ताप पहुँचाते कहे हैं।

समवायाग के उन्नीसवे समवाय का छठा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[400] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति उन्नीस पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के बीसवे समवाय का सातवां सूत्र—'उस्सप्पिणी ओसप्पिणी ' है तो भगवती[401] मे भी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मिलकर बीस कोटाकोटि सागरोपम का काल-चक्र कहा है।

समवायाग सूत्र के इक्कीसवे समवाय का पाँचवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[402] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति इक्कीस पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के बावीसवे समवाय का प्रथम सूत्र—'बावीस परीसहा पण्णत्ता ' है तो भगवती[403] मे भी बावीस परीषहो का उल्लेख है।

समवायाग के बावीसवे समवाय का छठा सूत्र—'बावीसविहे पोग्गलपरिणामे ' है तो भगवती[404] मे भी कृष्ण, नील आदि पुद्गल के बाईस परिणाम कहे है।

समवायाग के बावीसवे समवाय का सातवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए पुढवीए ' है तो भगवती[405] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको की बावीस पल्योपम की स्थिति बतायी है।

समवायाग के तेवीसवे समवाय का छठा सूत्र—'अहे सत्तमाए पुढवीए ' है तो भगवती[406] मे भी तमस्तमा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति तेवीस सागरोपम की कही है।

समवायाग के तेवीसवे समवाय का सातवाँ सूत्र—'असुरकुमाराण देवाण ' है तो भगवती[407] मे भी असुरकुमार देवो की स्थिति तेवीस पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के चौवीसवे समवाय का प्रथम सूत्र—'चउवीस देवाहिदेवा ' है तो भगवती[408] मे भी ऋषभ, अजित, सभव, आदि ये चौवीस देवाधिदेव कहे है।

समवायाग के चौवीसवें समवाय का सातवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[409] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति चौवीस पल्योपम की बतायी है।

---

३९९ भगवती श ८ उ ८
४०० भगवती श १ उ १
४०१ भगवती श ६ उ. ७
४०२ भगवती श १ उ १
४०३ भगवती श ८ उ ८
४०४. भगवती श. ८ उ १०
४०५ भगवती श १ उ १
४०६ भगवती श १ उ १
४०७. भगवती श १ उ १
४०८ भगवती श. २ उ ८
४०९ भगवती श १ उ १

समवायाग के पच्चीसवे समवाय का दशवाँ सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[410] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही है।

समवायाग के छब्बीसवें समवाय का दूसरा सूत्र—'अभवसिद्धिया ' है तो भगवती[411] मे भी अभवसिद्धिक जीवो के मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृतियाँ सत्ता मे कही हैं।

समवायाग के छब्बीसवे समवाय का तीसरा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो भगवती[412] मे भी रत्नप्रभा-नैरयिको की स्थिति छब्बीस पल्योपम की प्रतिपादित है।

समवायाग के अट्ठाईसवें समवाय का तृतीय सूत्र—'आभिणिबोहियनाणे ' है तो भगवती[413] मे भी आभिनिबोधिक ज्ञान २८ प्रकार का बताया है।

समवायाग के अट्ठाईसवें समवाय का छठा सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए पुढवीए ' है तो भगवती[414] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के उनतीसवे समवाय का दशवाँ सूत्र—'इमीसे ण ' है तो भगवती[415] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति उनतीस पल्योपम की बतायी है।

समवायाग के तीसवे समवाय का सातवाँ सूत्र—'समणे भगव महावीरे ' है तो भगवती[416] मे भी कहा है कि श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहवास मे रहकर प्रव्रजित हुये थे।

समवायाग के इकतीसवे समवाय का सातवाँ सूत्र—'अहेसत्तमाए पुढवीए ' है तो भगवती[417] मे भी तमस्तमा पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति इकतीस सागरोपम की बतायी है।

समवायाग के बत्तीसवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'बत्तीस देविंदा पण्णत्ता ' है तो भगवती[418] मे भी भवनपतियो के बीस, ज्योतिष्को के दो, वैमानिको के दश, इस तरह बत्तीस इन्द्र कहे हैं।

समवायाग के तेतीसवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'चमरस्स ण असुरिंदस्स ' है तो भगवती[419] मे भी चमरेन्द्र की चमरचचा राजधानी के प्रत्येक द्वार के बाहर तेतीस-तेतीस भौम नगर कहे है।

समवायाग के पैंतीसवे समवाय का पाँचवा सूत्र—'सोहम्मे कप्पे सभाए ' है तो भगवती[420] मे भी यही वर्णन है।

---

४१० भगवती—श १ उ १

४११ भगवती—श १ उ १

४१२ भगवती—श १ उ १

४१३ भगवती—श ८ उ २

४१४ भगवती—श १ उ १

४१५ भगवती—श १ उ १

४१६ भगवती—श. १५

४१७ भगवती—श १ उ १

४१८ भगवती—श ३ उ ८

४१९ भगवती—श ८ उ २

४२० भगवती—श १ उ १

समवायाग के छत्तीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'चमरस्स ण असुरिंदस्स ' है तो भगवती[421] मे भी चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊँची बतायी है।

समवायाग के बियालिसवे समवाय का नवमाँ सूत्र —'एगमेगाए ओसप्पिणीए ' है तो भगवती[422] मे भी यही वर्णन है।

समवायाग के छियालिसवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'बभीए ण लिवीए ' है तो भगवती[423] मे भी ब्राह्मी लिपि के छियालिस मात्रिकाक्षर कहे है।

समवायाग के एकावनवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'चमरस्स ण असुरिंदस्स ' है तो भगवती[424] मे भी चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा के एकावन सौ स्तम्भ कहे गये हैं।

समवायाग के बावनवे समवाय का प्रथम सूत्र—'मोहणिज्जस्स कम्मस्स ' है तो भगवती[425] मे भी क्रोध, कोप, आदि मोहनीय कर्म के बावन नाम हैं।

समवायाग के छासठवे समवाय का छठा सूत्र—'आभिणिबोहिनाणस्स ' है तो भगवती[426] मे भी अभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छासठ सागरोपम कही है।

समवायाग के अठहत्तरवे समवाय का प्रथम सूत्र—'सक्कस्स ण देविंदस्स ' है तो भगवती[427] मे भी कहा है कि शक्र देवेन्द्र के वैश्रमण, सेनानायक के रूप मे आज्ञा का पालन करते है।

समवायाग के इकासीवे समवाय का तीसरा सूत्र—'विवाहपन्नीए एकासीर्ति ' है तो भगवती[428] मे भी प्रस्तुत आगम के इक्यासी महायुग्म शतक कहे गये हैं।

इस तरह भगवती सूत्र मे अनेक पाठो का समवायाग के साथ समन्वय है। कितने ही सूत्रों मे नारक व देवो की स्थिति के सम्बन्ध मे अपेक्षादृष्टि से पुनरावृत्ति भी हुयी है अत हमने जानकर उसकी तुलना नही की है।

समवायांग और प्रश्नव्याकरण—

समवायाग और प्रश्नव्याकरण ये दोनो ही अग सूत्र है। समवायाग मे ऐसे अनेक स्थल है जिन की तुलना प्रश्नव्याकरण के साथ की जा सकती है। प्रश्नव्याकरण का प्रतिपाद्य विषय पाँच आश्रव और पाँच सवर है। इसलिये विषय की दृष्टि से यह सीमित है।

समवायांग के द्वितीय समवाय का तृतीय सूत्र—'दुविहे बधणे ' है तो इसकी प्रतिध्वनि प्रश्नव्याकरण[429] मे भी मुखरित हुयी है।

---

४२१ भगवती—श ८ उ २

४२२ भगवती—श ३ उ ७

४२३ भगवती—श १ उ. १

४२४ भगवती—श १३ उ ६

४२५ भगवती—श १२ उ ५

४२६ भगवती—श ७ उ २ सू ११०

४२७ भगवती—श ३ उ ७

४२८ भगवती—उपसहार

४२९ प्रश्नव्याकरण—५ सवरद्वार

समवायांग के तृतीय समवाय का प्रथम सूत्र—'तओ दडा पण्णत्ता ···' है तो प्रश्नव्याकरण[४३०] मे भी तीन दण्ड का उल्लेख है।

समवायाग के तृतीय समवाय का द्वितीय सूत्र—'तओ गुत्तीओ पण्णता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३१] मे भी तीन गुप्तियो का उल्लेख हुआ है।

समवायांग के तृतीय समवाय का तृतीय सूत्र—'तओ सल्ला पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३२] मे भी तीन शल्यो का वर्णन है।

समवायाग के तृतीय समवाय का चतुर्थ सूत्र—'तओ गारवा पण्णता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३३] मे भी गर्व के तीन भेद बताये है।

समवायाग सूत्र के तृतीय समवाय का पाचवां सूत्र—'तओ विराहणा पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३४] मे भी तीन विराधनाओ का उल्लेख है।

समवायाग सूत्र के चतुर्थ समवाय का चतुर्थ सूत्र—'चत्तारि सण्णा पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३५] मे भी चार सज्ञाओ का वर्णन है।

समवायाग के पाचवे समवाय का दूसरा सूत्र—'पच महव्वया पण्णत्ता ·' है तो प्रश्नव्याकरण[४३६] मे भी पाच महाव्रतो का वर्णन है।

समवायाग के पाचवे समवाय का चतुर्थ सूत्र -'पच आसवदारा पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३७] मे भी पाच आश्रवद्वारो का निरूपण हुआ है।

समवायाग के पाचवे समवायाग का पाचवां सूत्र—'पच सवरदारा पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३८] मे भी पाच सवरद्वारो का विश्लेषण है।

समवायाग के सातवे समवाय का पहला सूत्र—'सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४३९] मे भी सात भयस्थान बताये है।

समवायाग के आठवें समवाय का पहला सूत्र—'अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता ' है तो प्रश्नव्याकरण[४४०] मे मे भी आठ मदस्थान बताये है।

समवायाग के नौवे समवाय का प्रथम सूत्र—'नव बभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ ' है तो प्रश्नव्याकरण[४४१] मे भी नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियो का उल्लेख है।

---

४३० प्रश्नव्याकरण ५ सवरद्वार

४३१ प्रश्नव्याकरण ५ सवरद्वार

४३२ प्रश्नव्याकरण ५ सवरद्वार

४३३ प्रश्नव्याकरण ५ सवरद्वार

४३४ प्रश्नव्याकरण ५ वा सवरद्वार

४३५ प्रश्नव्याकरण ५ वा सवरद्वार

४३६ प्रश्नव्याकरण ५ वा सवरद्वार

४३७ प्रश्नव्याकरण ५ वा आश्रवद्वार

४३८ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार

४३९ प्रश्नव्याकरण ५ वा सवरद्वार

४४० प्रश्नव्याकरण ५ वा सवरद्वार

४४१ प्रश्नव्याकरण ५ सवरद्वार

समवायाग सूत्र के नौवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'नव बभचेर-अगुत्तीओ पण्णत्ताओ' है तो प्रश्न-व्याकरण[४४२] मे भी नौ ब्रह्मचर्य की अगुप्तियो का वर्णन है।

समवायाग सूत्र के दशवे समवाय का पहला सूत्र- 'दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते' है तो प्रश्नव्याकरण[४४३] मे भी श्रमणधर्म के दस प्रकार बताये है।

समवायाग सूत्र के ग्यारहवे समवाय का पहला सूत्र—'एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ' है तो प्रश्नव्याकरण[४४४] मे भी उपासक की ग्यारह प्रतिमाओ का उल्लेख है।

समवायाग सूत्र के बारहवे समवाय का पहला सूत्र—'बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ' है तो प्रश्न-व्याकरण[४४५] मे भी बारह प्रकार की भिक्षुप्रतिमाओ का उल्लेख हुआ है।

समवायाग के सोलहवें समवाय का पहला सूत्र—'सोलस य गाहासोलसगा पण्णत्ता' है तो प्रश्न-व्याकरण[४४६] मे सूत्रकृताग के सोलहवें अध्ययन का नाम गाथाषोडशक बताया है।

समवायाग के सत्तरहवे समवाय का पहला सूत्र—'सत्तरसविहे असजमे पण्णत्ते' है तो प्रश्नव्याकरण[४४७] मे भी सत्तरह प्रकार के असयम का प्रतिपादन है।

समवायाग सूत्र के अठारहवे समवाय का पहला सूत्र—'अट्ठारसविहे बभे पण्णत्ते' है तो प्रश्नव्याकरण[४४८] मे भी ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार बताये हैं।

समवायाग सूत्र के उन्नीसवे समवाय का पहला सूत्र—'एगूणवीस णायज्झयणा पण्णत्ता' है तो प्रश्न-व्याकरण[४४९] मे भी ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययन बताये है।

समवायाग के तेईसवे समवाय का पहला सूत्र—'तेवीस सूयगडज्झयणा पण्णत्ता' है तो प्रश्नव्याकरण[४५०] मे भी सूत्रकृताग के तेईस अध्ययनो का सूचन है।

समवायाग के पच्चीसवे समवाय का पहला सूत्र—'पुरिम-पच्छिमगाण तित्थगराण पचजामस्स पणवीस भावणाओ पण्णत्ताओ' है तो प्रश्नव्याकरण[४५१] मे भी प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरो के पाच महाव्रतो की पच्चीस भावनाएँ बताई है।

समवायाग के सत्तावीसवे समवाय का पहला सूत्र—'सत्तावीस अणगारगुणा पण्णत्ता' है तो प्रश्न-व्याकरण[४५२] मे भी श्रमणो के सत्तावीस गुणो का प्रतिपादन किया है।

समवायाग के अट्ठाईसवें समवाय का प्रथम सूत्र—'अट्ठावीसविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते' है तो प्रश्न-व्याकरण[४५३] मे भी आचारप्रकल्प के अट्ठावीस प्रकार बताये है।

---

४४२ प्रश्नव्याकरण आश्रवद्वार ४
४४३ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४४४ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४४५ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४४६ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४४७ प्रश्नव्याकरण संवरद्वार ५
४४८ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ४
४४९ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४५० प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४५१ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४५२ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५
४५३ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार ५

समवायांग के उन्तीसवे समवाय का पहला सूत्र—'एगूणतीसविहे पावसुयपसगे' है तो प्रश्नव्याकरण[454] मे भी पापश्रुत के उन्तीस प्रसग बताये हैं।

समवायाग के तीसवें समवाय का प्रथम सूत्र—'तीस मोहणीयठाणा पण्णत्ता' है तो प्रश्नव्याकरण[455] मे भी मोहनीय के तीस स्थानो का उल्लेख है।

समवायाग के इकतीसवे समवाय का पहला सूत्र—'एक्कतीस सिद्धाइगुणा पण्णत्ता' है तो प्रश्नव्याकरण[456] मे भी सिद्धो के एकत्तीस गुण कहे हैं।

समवायाग के तेतीसवें समवाय का पहला सूत्र—'तेत्तीस आसायणाओ पण्णत्ताओ ' है तो प्रश्न-व्याकरण[457] मे भी तेतीस आशातना का उल्लेख है।

इस तरह समवायाग और प्रश्नव्याकरण के अनेक स्थलो पर समान विषयो का निरूपण हुआ है।

समवायांग और औपपातिक

उपाग साहित्य मे प्रथम उपाग सूत्र "औपपातिक" है। समवायाग मे कुछ विषय ऐसे होते है जिनकी सहज रूप से तुलना औपपातिक के साथ की जा सकती है। हम उन्ही पर यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं।

समवायाग के प्रथम समवाय का छठा सूत्र—'एगा अकिरिया' है तो औपपातिक[458] मे भी इसका वर्णन प्राप्त है।

समवायाग के प्रथम समवाय का सातवाँ सूत्र —'एगे लोए' है तो औपपातिक[459] मे भी लोक के स्वरूप का प्रतिपादन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का आठवाँ सूत्र—'एगे अलोए' है तो औपपातिक[460] मे भी अलोक का वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय का ग्यारहवाँ सूत्र —'एगे पुण्णे' है तो औपपातिक[461] मे भी पुण्य के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है।

समवायाग के प्रथम समवाय का बारहवाँ सूत्र—'एगे पावे' है तो औपपातिक[462] मे भी पाप का वर्णन है।

समवायाग के प्रथम समवाय के बन्ध, मोक्ष, आस्रव, सवर, वेदना, निर्जरा का कथन है तो औपपातिक[463] मे भी उक्त विषयो का निरूपण हुआ है।

समवायाग के चतुर्थ समवाय का दूसरा सूत्र— 'चत्तारि झाणा पण्णत्ता' है तो औपपातिक[464] मे भी ध्यान के इन प्रकारों का निरूपण हुआ है।

४५४ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार
४५५ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार
४५६ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार
४५७ प्रश्नव्याकरण सवरद्वार
४५८ औपपातिक २०
४५९ औपपातिक ५६
४६० औपपातिक ५६
४६१ औपपातिक ३४
४६२ औपपातिक ३४
४६३ औपपातिक ३४
४६४ औपपातिक ३०

समवायाग के छट्ठे समवाय का तीसरा सूत्र—'छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे' है और चौथा सूत्र 'छव्विहे अभिंतरे तवोकम्मे ' है तो औपपातिक[465] मे छह बाह्य और छह आभ्यतर तपो का उल्लेख है।

समवायाग के सातवे समवाय का तीसरा सूत्र—'समणे भगव महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था' है तो औपपातिक[466] मे भी महावीर के सात हाथ ऊचे होने का वर्णन है।

समवायाग के आठवे समवाय का सातवा सूत्र—'अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए ' है तो औपपातिक[467] मे भी केवलीसमुद्घात का उल्लेख है।

समवायाग के बारहवे समवाय का दसवा सूत्र—'सव्वट्ठसिद्धस्स ण महाविमाणस्य ' है और ग्यारहवा सूत्र 'ईसिपब्भाराए ण पुढवीए' है तो औपपातिक[468] मे भी ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का वर्णन है और उसके बारह नाम बताये है।

समवायाग के चौतीसवे समवाय का पहला सूत्र—'चोत्तीस बुद्धाइसेसा पण्णत्ता' है तो औपपातिक[469] मे भी बुद्धातिशय के चौतीस भेद बताये हैं।

समवायाग के पैतीसवे समवाय का पहला सूत्र—'पणतीस सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता' है तो औपपातिक[470] मे भी सत्य-वचनातिशय पैतीस बताये है।

समवायाग पैतालीसवे समवाय का चतुर्थ सूत्र—'ईसिपब्भारा ण पुढवी एव चेव' है तो औपपातिक[471] मे भी 'ईषत् प्राग्भारा' पृथ्वी का आयाम-विष्कभ पैतालीस लाख योजन का बताया है।

समवायाग सूत्र के एक्कानवेवा समवाय का पहला सूत्र —'एकाणउई परवेयावच्चकम्मपडिमाओ पण्णत्ताओ' है तो औपपातिक[472] मे भी दूसरे की वैयावृत्य करने की प्रतिज्ञाए एक्कानवे बताई हैं।

इस तरह समवायाग और औपपातिक मे विषयसाम्य है।

समवायांग और जीवाभिगम

समवायाग मे आये हुए कुछ विषयो की तुलना अब हम तृतीय उपाङ्ग जीवाभिगम सूत्र के साथ करेगे।

समवायाग के द्वितीय समवाय का दूसरा सूत्र—'दुवे रासी पण्णत्ता' है तो जीवाभिगम[473] मे भी दो राशियो का उल्लेख है।

समवायाग के छठे समवाय का द्वितीय सूत्र—'छ जीव-निकाया पण्णत्ता' है तो जीवाभिगम[474] मे भी यह वर्णन है।

समवायाग के नौवे समवाय का नौवा सूत्र—'विजयस्स ण दारस्स एगमेगाए बाहाए नव-नव भोमा पण्णत्ता' है तो जीवाभिगम[475] मे भी विजयद्वार के प्रत्येक पार्श्वभाग मे नौ नौ भौम नगर है, ऐसा उल्लेख है।

---

४६५ औपपातिक सूत्र ३०
४६६ औपपातिक सूत्र १०
४६७ औपपातिक सूत्र ४२
४६८ औपपातिक सूत्र ४३
४६९ औपपातिक सूत्र १०
४७० औपपातिक सूत्र १०
४७१ औपपातिक सूत्र ४३
४७२ औपपातिक सूत्र २०
४७३ जीवाभिगम प्र १, सूत्र १
४७४ जीवाभिगम प्र. ५, सूत्र २२८
४७५ जीवाभिगम प्र ३, सूत्र १३२

समवायाग के नौवें समवाय मे दर्शनावरण की नौ प्रकृत्तियाँ कही हैं तो जीवाभिगम[४७६] मे भी दर्शनावरण कर्म की नौ प्रकृतिया कही हैं ।

समवायाग के बारहवे समवाय का चौथा सूत्र—'विजया ण रायहाणी दुवालस ' है तो जीवाभिगम[४७७] मे भी विजया राजधानी का आयाम-विष्कम्भ बारह लाख योजन का प्रतिपादन किया है ।

समवायाग के तेरहवें समवाय का पाचवा सूत्र—'जलयर-पचिंदियतिरिक्खजोणिआण.... ' है तो जीवाभिगम[४७८] मे भी जलचर तिर्यंच पचेन्द्रिय की साढे तेरह लाख कुलकोटिया कही है ।

सत्तरहवें समवाय का तृतीय सूत्र—'माणुमुत्तरे ण पव्वए सत्तरस ' है तो जीवाभिगम[४७९] मे भी मानुषोत्तर पर्वत की ऊचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की कही है ।

सत्तरहवे समवाय का चौथा सूत्र—'सव्वेसि पि ण वेलधर ' है तो जीवाभिगम[४८०] मे भी सर्व वेलधर और अणुवेलधर नागराजो के आवासपर्वतो की ऊचाई सत्तरह सौ इक्कीस योजन की बतायी है ।

समवायाग के सत्तरहवें समवाय का पाचवाँ सूत्र –'लवणे ण समुद्दे ' है तो जीवाभिगम[४८१] मे भी लवणसमुद्र के पेदे से ऊपर की सतह की ऊचाई सत्तर हजार योजन की बताई है ।

अठारहवें समवाय का सातवा सूत्र—'धूमप्पहाए ण ' है तो जीवाभिगम[४८२] मे भी धूमप्रभा पृथ्वी का विस्तार एक लाख अठारह योजन का बताया है ।

पच्चीसवे समवाय का चौथा सूत्र—'दोच्चाए ण पुढवीए ' है तो जीवाभिगम[४८३] मे भी शर्कराप्रभा पृथ्वी मे पच्चीस लाख नारकावास बताये हैं ।

सत्ताईसवे समवाय का चौथा सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो जीवाभिगम[४८४] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प मे सत्ताईस पल्योपम स्थिति बताई है ।

चौतीसवे समवाय का छठा सूत्र—'पढम-पचम ' है तो जीवाभिगम[४८५] मे भी पहली, पाचवी, छठी और सातवी इन चार पृथ्वियो मे चौतीस लाख नारकावास बताये हैं ।

पैंतीसवें समवाय का छठा सूत्र—'बिनिय-चउत्थीसु ' है तो जीवाभिगम[४८६] मे भी दूसरी और चौथी-इन दो पृथ्वियों म पैंतीस लाख नारकावास बताये हैं ।

सैंतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र—'सव्वासु ण विजय ' है तो जीवाभिगम[४८७] मे भी विजय-वैजयन्त और अपराजिता इन सब राजधानियो के प्राकारो की ऊचाई सैंतीस योजन की बतायी है ।

४७६ जीवाभिगम—प्र ३, सू १३२
४७७ जीवाभिगम—प्र ३, सू १३५
४७८ जीवाभिगम—प्र ३, सू ९७
४७९ जीवाभिगम—प्र ३, सू १७८
४८० जीवाभिगम—प्र ३, सू १५९
४८१ जीवाभिगम—प्र ३, सू १७३
४८२ जीवाभिगम—प्र ३, सू ६८
४८३ जीवाभिगम—प्र ३, सू ७०
४८४ जीवाभिगम—प्र २, सू २१०
४८५ जीवाभिगम—प्र ३, सू ८१
४८६ जीवाभिगम—प्र ३, सू ८१
४८७ जीवाभिगम—प्र ३, सू १३५

सैंतीसवे समवाय का चतुर्थ सूत्र—'खुड्डियाए ण विमाण ' है तो जीवाभिगम[488] मे भी क्षुद्रिका विमान प्रविभक्ति के प्रथम वर्ग मे सैंतीस उद्देशन काल कहे है।

उनचालीसवें समवाय का तृतीय सूत्र—'दोच्च-चउत्थ ' है तो जीवाभिगम[489] मे भी दूसरी, चौथी पाँचमी, छठी और सातवी इन पाच पृथ्वियो मे उनचालीस लाख नारकावास बताये हैं।

इकतालीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'चउसु-पुढवीसु ' है तो जीवाभिगम[490] मे भी चार पृथ्वियो मे इकतालीस लाख नारकावास बताये है।

बयालीसवे समवाय का चौथा सूत्र—'कालोए ण समुद्दे ' है तो जीवाभिगम[491] मे भी कालोद समुद्र मे बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य बताये हैं।

बयालीसवे समवाय का सातवा सूत्र—'लवणे णं समुद्दे ' है तो जीवाभिगम[492] मे भी लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को बयालीस हजार नागदेवता धारण करते बताये है।

तयालीसवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'पढम-चउत्थ ' है तो जीवाभिगम[493] मे भी पहली, चौथी और पाचमी इस तीन पृथ्वियो मे तयालीस लाख नारकावास बताये है।

पैंतालीसवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'सीमतए ण नरए ' है तो जीवाभिगम[494] मे भी सीमान्तक नारकावास का आयाम-विष्कम्भ पैंतालीस लाख योजन का बताया है।

पचपनवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'मदरस्स ण पव्वयस्स ' है तो जीवाभिगम[495] मे भी मेरु पर्वत के पश्चिमी चरमान्त मे विजय द्वार के पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पचपन हजार योजन का बताया है।

साठवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'लवणस्स समुद्दस्स ' है तो जीवाभिगम[496] मे भी लवण समुद्र के अग्रोदक को साठ हजार नागदेवता धारण करते है ऐसा उल्लेख है।

चौसठवें समवाय का चौथा सूत्र—'सव्वे वि ण दहीमुहा पव्वया ' है तो जीवाभिगम[497] मे भी सभी दधिमुख पर्वत माला के आकार वाले हैं। अत उन का विष्कम्भ सर्वत्र समान है, उन की उचाई चौंसठ हजार योजन की है।

छासठवे समवाय का प्रथम सूत्र है—दाहिणड्ढ-माणुस्स-खेत्ताण, द्वितीय सूत्र है—छावट्ठि सूरिया तविसु, तृतीत सूत्र है—उत्तरड्ढ माणुस्स खेत्ताण , चतुर्थसूत्र है—छावट्ठि सूरिया तविसु वा ३, तो जीवाभिगम[498] मे भी दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र मे छासठ-छासठ चन्द्र और सूर्य बताये हैं।

---

४८८. जीवाभिगम—प्र ३, सू १३७
४८९ जीवाभिगम—प्र ३, सू ८१
४९० जीवाभिगम—प्र ३, सू ८१
४९१ जीवाभिगम—प्र ३, सू १७५
४९२ जीवाभिगम—प्र ३, सू १५८
४९३ जीवाभिगम—प्र ३, सू ८
४९४ जीवाभिगम—प्र ३
४९५ जीवाभिगम—प्र ३, सू १२९
४९६. जीवाभिगम—प्र ३, सू १५८
४९७ जीवाभिगम—प्र ३, सू १८३
४९८ जीवाभिगम—प्र ३, सू १७७

सठसठवें समवाय का तृतीय सूत्र—'मदरस्स ण पव्वयस्स ' है तो जीवाभिगम[४९९] मे भी मेरुपर्वत के चरमान्त से गौतमद्वीप के पूर्वी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर सडसठ हजार योजन का कहा है ।

उनहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र—'समयखित्ते ण मदरवज्जा ' है तो जीवाभिगम[५००] मे भी लिखा है 'समयक्षेत्र मे मेरु को छोडकर उनहत्तर वर्ष और वर्षधर पर्वत हैं, जैसे—पैतीस वर्ष, तीस वर्षधर पर्वत और चार इषुकार पर्वत ।

बहत्तरवें समवाय का दूसरा सूत्र—'बावत्तरिं सुवन्नकुमारावास ' है तो जीवाभिगम[५०१] मे भी सुवर्ण कुमारावास बहत्तर लाख बताये हैं

बहत्तरवे समवाय का पाचवा सूत्र—'अब्भितरपुक्खरद्धे ण ' है तो जीवाभिगम[५०२] मे भी बहत्तर चन्द्र और सूर्य का वर्णन प्राप्त है ।

उनासीवे समवाय का पहला सूत्र—'वलयामुहस्स ' दूसरा सूत्र 'एव केउस्सवि ' तृतीय सूत्र छट्ठीए पुढवीए और चतुर्थ सूत्र—'जम्बुद्दीवस्स ण दीवस्स ' है तो जीवाभिगम[५०३] मे भी वडवामुख पातालकलश का एव केतुक यूपक आदि पाताल कलशो का छठी पृथ्वी के मध्यभाग से छट्ठे घनोदधि तक का वर्णन और जम्बूद्वीप के प्रत्येक द्वार का अव्यवहित अन्तर उन्नासी हजार योजन का है, यह वर्णन मिलता है ।

अस्सीवें समवाय का पाचवा सूत्र—'जम्बुद्दीवे ण दीवे ' है तो जीवाभिगम[५०४] मे भी जम्बूद्वीप मे एक सौ अस्सी योजन जाने पर सर्वप्रथम आभ्यतर मण्डल मे सूर्योदय होता है, यह वर्णन है ।

चौरासीवे समवाय का पहला सूत्र—'चउरासीइ निरयावास ' है तो जीवाभिगम[५०५] मे भी नारकावास चौरासी लाख बताये हैं ।

चौरासीवे समवाय का सातवा सूत्र—'सव्वेवि ण अजणगपव्वया ' है तो जीवाभिगम[५०६] मे भी सर्व अजनग पर्वतो की ऊचाई चौरासी-चौरासी हजार योजन की है ।

चौरासीवे समवाय का आठवा सूत्र—'हरिवास-रम्यवासियाण ' है तो जीवाभिगम[५०७] मे भी 'सर्व अजनगपर्वतो की ऊचाई चौरासी हजार योजन की कही है ।

चौरासीवें समवाय का दसवा सूत्र—'विवाहपन्नतीए ण भगवतीए ' है तो जीवाभिगम[५०८] मे भी विवाहप्रज्ञप्ति के चौरासी हजार पद हैं ।

पचासीवे समवाय का दूसरा सूत्र—'धायइसडस्स ण मदरा ' है तो जीवाभिगम[५०९] मे भी धातकी खण्ड के मेरुपर्वत पचासी हजार योजन ऊचे हैं, यह वर्णन है ।

---

४९९ जीवाभिगम—प्र ३, सूत्र १६१
५०० जीवाभिगम—प्र ३, सूत्र १७७
५०१ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे २, सूत्र १७६
५०२ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे २, सूत्र १५८
५०३ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे २, सूत्र १५६, उद्दे १, सूत्र ७६, उद्दे २, सूत्र १४५
५०४ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे १, सूत्र ७२
५०५ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे १, सूत्र ८१
५०६ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे २
५०७ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे २, सूत्र १८३
५०८ जीवाभिगम—प्र ३, उद्दे १, सूत्र ७९
५०९ जीवाभिगम—प्र ३

छियासीवे समवाय का तृतीय सूत्र—'दोच्चाए ण पुढवीए ' है तो जीवाभिगम[५१०] मे भी दूसरी पृथ्वी के मध्यभाग से दूसरे घनोदधि के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अतर छियासी हजार योजन का कहा है।

अठासीवे समवाय का पहला सूत्र—'एगमेगस्स ण चदिमसूरियस्स' है तो जीवाभिगम[५११] मे प्रत्येक चन्द्र सूर्य का अठासी-अठासी ग्रहो का परिवार बताया है।

इक्कानवेवे समवाय का दूसरे सूत्र—'कालोए ण समुद्दे' है तो जीवाभिगम[५१२] के अनुसार भी कालोद समुद्र की परिधि कुछ अधिक इक्कानवे लाख योजन की है।

पचानवें समवाय का दूसरा सूत्र—'जबुद्दीवस्स ण दीवस्स ' है तो जीवाभिगम[५१३] मे भी जम्बूद्वीप के चरमान्त से चारो दिशाओ मे लवणसमुद्र मे पचानवें-पचानवें हजार योजन अन्दर जाने पर चार महापाताल कलश कहे हैं।

सौवें समवाय का आठवा सूत्र—'सव्वेवि ण कचणगपव्वया ' है तो 'जीवाभिगम[५१४] मे भी सर्व कांचनक पर्वत सौ-सौ योजन ऊचे हैं, सौ-सौ कोश पृथ्वी मे गहरे हैं और उनके मूल का विष्कम्भ सौ-सौ योजन का कहा है।

पाचसौवे समवाय का आठवा सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा ' है तो जीवाभिगम[५१५] मे सौधर्म और ईशानकल्प मे सभी विमान पाच सौ-पाच सौ योजन ऊचे कहे है।

छहसौवे समवाय का पहला सूत्र—'सणकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु ' है तो जीवाभिगम[५१६] म भी सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प मे सभी विमान छह सौ योजन ऊचे कहे है।

सातसौवे समवाय का प्रथम सूत्र—'बभलतयकप्पेसु ' है तो जीवाभिगम[५१७] मे भी ब्रह्म और लान्तक कल्प के सभी विमान सात सौ योजन ऊचे बतलाए है।

आठसौवे समवाय का प्रथम सूत्र—'महासुक्क-सहस्सारेसु ' है तो जीवाभिगम[५१८] मे भी यही है।

नव सौवें समवाय का प्रथम सूत्र—'आणय-पाणय ' है हजारवे समवाय का प्रथम सूत्र है—सव्वेवि ण गेवेज्ज नौ ग्यारह सौवे समवाय का प्रथम सूत्र है—अणुत्तरोववाइयाण देवाण — तीन हजारवे—समवाय काइमीसे ण रयणप्पहाए — तो इन सूत्रो जैसा वर्णन जीवाभिगम[५१९] मे भी प्राप्त है।

समवायाग सूत्र के सात हजारवें समवाय का प्रथम सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए पुढवीए ' है तो जीवाभिगम[५२०] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकाण्ड के ऊपर के चरमान्त से पुलक काण्ड के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अन्तर सात हजार योजन का बताया है।

---

५१० जीवाभिगम—प्र ३, सू ७९
५११ जीवाभिगम—प्र ३, उ २, सू १९४
५१२ जीवाभिगम—प्र ३, उ २, सू १७५
५१३ जीवाभिगम—प्र ३, उ २, सू १५६
५१४ जीवाभिगम—प्र ३, उ २, सू १५०
५१५ जीवाभिगम—प्र ३, उ १, सू २११
५१६ जीवाभिगम—प्र ३, उ १, सू २११
५१७ जीवाभिगम—प्र ३, उ १, सू २११
५१८ जीवाभिगम—प्र ३, उ १, सू २११
५१९ जीवाभिगम—प्र ३, उ १, सू २११, १९५
५२० जीवाभिगम—प्र ३

दो लाखवे समवाय का प्रथम सूत्र—'लवणे ण समुद्दे ' है तो जीवाभिगम[५२१] मे भी लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कम्भ दो लाख योजन का बताया है।

चार लाखवें समवाय का प्रथम सूत्र—'धायइखंडे ण दीवे ' है तो जीवाभिगम[५२२] मे भी धातकी-खण्ड का चक्रवाल-विष्कम्भ चार लाख योजन का बताया है।

पाँच लाखवे समवाय का प्रथम सूत्र—'लवणस्स ण समुद्दस्स ' है तो जीवाभिगम[५२३] मे भी लवण समुद्र के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पाच लाख योजन का बतलाया है।

इस तरह जीवाभिगम मे, समवायाग मे आये अनेक विषयो की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है।

समवायांग और प्रज्ञापना

प्रज्ञापना चतुर्थ उपाग है। प्रज्ञापना का अर्थ है—जीव, अजीव का निरूपण करने वाला शास्त्र। आचार्य मलयगिरि प्रज्ञापना को समवाय का उपाग मानते है। प्रज्ञापना का समवायाग के साथ कब से सम्बन्ध स्थापित हुआ, यह अनुसन्धान का विषय है। स्वय श्यामाचार्य प्रज्ञापना को दृष्टिवाद से लिया सूचित करते हैं। किन्तु आज दृष्टिवाद अनुपलब्ध है। इसलिए स्पष्ट नही कहा जा सकता कि दृष्टिवाद मे से कितनी सामग्री इसमे ली गई है। दृष्टिवाद मे मुख्य रूप से दृष्टि याने दर्शन का ही वर्णन है। समवायाग मे भी मुख्य रूप से जीव अजीव आदि तत्त्वो का प्रतिपादन है। तो प्रज्ञापना मे भी वही निरूपण है। अत प्रज्ञापना को समवायाग उपाग मानने मे किसी प्रकार की बाधा नही है। अतएव समवायाग मे आये हुये विषयो की तुलना प्रज्ञापना के साथ सहज रूप से की जा सकती है।

प्रथम समवाय का पाँचवाँ सूत्र है—'एगा किरिया' तो प्रज्ञापना[५२४] मे भी क्रिया का निरूपण हुआ है।

प्रथम समवाय का बीसवा सूत्र—'अप्पइट्ठाणे नरए ' है तो प्रज्ञापना[५२५] मे भी अप्रतिष्ठान नरक का आयाम विष्कम्भ प्रतिपादित है।

प्रथम समवाय का बावीसवाँ सूत्र—'सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे ' है तो प्रज्ञापना[५२६] मे भी सर्वार्थसिद्ध विमान का आयाम विष्कम्भ एक लाख योजन का बताया है।

प्रथम समवाय का छब्बीसवाँ सूत्र –'इमीसे ण रयणप्पहाए ण ' है तो प्रज्ञापना[५२७] मे भी रत्नप्रभा के कुछ नारको की स्थिति एक पल्योपम की बतायी है।

प्रथम समवाय के सत्तावीसवे सूत्र से लेकर चालीसवे सूत्र तक जो वर्णन है वह प्रज्ञापना[५२८] के चतुर्थ पद मे उसी तरह से प्राप्त होता है।

---

५२१ जीवाभिगम—प्र ३, सू १७३
५२२ जीवाभिगम—प्र ३, उ २, सू १७४
५२३ जीवाभिगम—प्र ३, उ २, सू १५४
५२४ प्रज्ञापना—पद २२
५२५ प्रज्ञापना—पद २
५२६ प्रज्ञापना—पद २
५२७. प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४
५२८ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र —९४ ९५, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३

समवायाग के प्रथम समवाय का इकतालीसवा सूत्र—'ते ण देवा ' है तो प्रज्ञापना[५२९] मे भी सागर यावत् लोकहितविमानो मे जो देव उत्पन्न होते है, वे एक पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते कहे हैं।

प्रथम समवाय का बयालीसवां सूत्र—'तेसि ण देवाण ' है तो प्रज्ञापना[५३०] मे उन देवो की आहार लेने की इच्छा एक हजार वर्ष से होती है।

दूसरे समवाय का दूसरा सूत्र—'दुविहा रासी पण्णत्ता ' है तो प्रज्ञापना[५३१] मे भी दो राशियो का उल्लेख है।

दूसरे समवाय के आठवे सूत्र से लेकर बाईसवें सूत्र तक का वणन प्रज्ञापना[५३२] मे भी इसी तरह प्राप्त है।

तृतीय समवाय के तेरहवे सूत्र से तेवीसवे सूत्र तक का वर्णन प्रज्ञापना[५३३] मे भी इसी तरह सप्राप्त है।

चतुर्थ समवाय के दशवे सूत्र से सत्तरहवे सूत्र तक का विषय प्रज्ञापना[५३४] मे भी इसी तरह उपलब्ध होता है।

पांचवे समवाय के चौदहवे सूत्र से इक्कीसवें सूत्र तक जिस विषय का प्रतिपादन हुआ है वह प्रज्ञापना[५३५] मे भी निहारा जा सकता है।

छठे समवाय का पहला सूत्र—'छ लेसाओ पण्णत्ताओ ' है तो प्रज्ञापना[५३६] मे भी छह लेश्याओ का वणन प्राप्त है।

छठे समवाय का दूसरा सूत्र—'छ जीवनिकाया पण्णत्ता ' है तो प्रज्ञापना[५३७] मे भी वह वर्णन उपलब्ध होता है।

छठे समवाय का पाचवा सूत्र—'छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता ' है तो प्रज्ञापना[५३८] मे भी छाद्मस्थिक समुद्घात के छह प्रकार बताये है।

छठे समवाय के दशवे सूत्र से सत्तरहवे सूत्र तक का वर्णन प्रज्ञापना[५३९] मे भी प्राप्त है।

सातवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'सत्त समुग्घाया पण्णत्ता ' है तो प्रज्ञापना[५४०] मे भी सात समुद्घात का उल्लेख हुआ है।

---

५२९ प्रज्ञापना—पद ७, सूत्र १४६
५३० प्रज्ञापना—पद २८, सू ३०४
५३१ प्रज्ञापना—पद १, सू १
५३२ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९८, ९९, १०२, १०३, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०३
५३३ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, ९८, ९९, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६
५३४ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६
५३५ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६
५३६ प्रज्ञापना—पद १७, सूत्र २१४
५३७ प्रज्ञापना—पद १, सूत्र १२
५३८ प्रज्ञापना—पद ३६, सूत्र ३३१
५३९ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, १०२, १०३, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सू ३०६
५४० प्रज्ञापना—पद ३६, सू ३३१

सातवें समवाय के बारहवें सूत्र से लेकर बावीसवें सूत्र तक जिन विषयो का उल्लेख हुआ है, वे विषय प्रज्ञापना[५४१] मे भी उसी तरह प्राप्त है।

आठवें समवाय का सातवाँ सूत्र—'अट्ठसामइए केवलीसमुग्घाए ' है तो प्रज्ञापना[५४२] मे भी केवली समुद्घात के आठ समय बताये हैं।

आठवे समवाय के दशवे सूत्र से लेकर सत्तरहवे सूत्र तक जिन विषयो की चर्चाएँ हुयी हैं, वे प्रज्ञापना[५४३] मे भी इसी तरह प्रतिपादित हैं।

नवमे समवाय के ग्यारहवे सूत्र से लेकर उन्नीसवे सूत्र तक जिन विषयो पर चिन्तन किया गया है वे, प्रज्ञापना[५४४] मे भी निहारे जा सकते है।

दशवे समवाय के नवम सूत्र से लेकर चौवीसवे सूत्र तक जिन-जिन विषयो पर विचारणा हुयी है, वे प्रज्ञापना [५४५] मे भी चर्चित हैं।

ग्यारहवे समवाय का छठा सूत्र—'हेट्ठिमगेविज्जाण 'है तो प्रज्ञापना[५४६] मे भी नीचे के तीन ग्रैवेयक देवो के एक सौ ग्यारह विमान बताये हैं।

ग्यारहवे समवाय के आठवें सूत्र स लेकर पन्द्रहवे सूत्र तक जिन चिन्तनबिन्दुओ का उल्लेख है, प्रज्ञापना[५४७] मे भी उन सभी पर प्रकाश डाला गया है।

बारहवे समवाय के बारहवे सूत्र से उन्नीसवें सूत्र तक जिन विषयो के सम्बन्ध मे विवेचन हुआ है, प्रज्ञापना[५४८] मे भी उन सब पर चिन्तन हुआ है।

तेरहवे समवाय का सातवाँ सूत्र—'गब्भ वक्कति य है तो प्रज्ञापना[५४९] मे भी गर्भजतिर्यञ्च पचेन्द्रिय के तेरह योग प्रतिपादित है।

तेरहवे समवाय के नवमे सूत्र से लेकर सोलहवे सूत्र तक जिन पहलुओ पर विचार किया गया है, वे विषय प्रज्ञापना[५५०] मे भी प्रज्ञापित है।

चौदहवे समवाय के नवमे सूत्र से लेकर सत्तरहवे समवाय तक जिन विषयो को उजागर किया गया है, वे प्रज्ञापना[५५१] मे भी अपने ढग से विवेचित हुये है।

---

५४१ प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, १०२, १०३, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०६

५४२ प्रज्ञापना—पद ३६, सू ३३१

५४३ प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, १०२, १०३, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४

५४४ प्रज्ञापना—पद २३, पद ४, सू ९४, ९५, १०२, १०३ पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४

५४५ प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, ९६, १००, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०६

५४६ प्रज्ञापना—पद २, सू ५३

५४७ प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०६

५४८ प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४

५४९ प्रज्ञापना—पद १६, सू २०२

५५० प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०६

५५१ प्रज्ञापना—पद ४, सू ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४

पन्द्रहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर सोलहवें सूत्र तक जिन पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, वे प्रज्ञापना[५५२] में भी हैं।

सोलहवें समवाय का द्वितीय सूत्र—'सोलस कसाया पण्णत्ता ' है तो प्रज्ञापना[५५३] में भी अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय चर्चित हुये हैं।

सोलहवें समवाय के आठवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक जिन बातों पर प्रकाश डाला है, वे प्रज्ञापना[५५४] में भी विश्लेषित हैं।

सत्तरहवें समवाय के ग्यारहवें सूत्र से लेकर बीसवें सूत्र तक जिन विषयों पर चिन्तन-मनन किया गया है, उन विषयों पर प्रज्ञापना[५५५] में भी प्रकाश डाला गया है।

अठारहवें समवाय का पांचवां सूत्र—'बंभीए णं लिवीए ' है तो प्रज्ञापना[५५६] में भी ब्राह्मी लिपी का लेखन अठारह प्रकार का बताया है।

अठारहवें समवाय के नौवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक जिन विषयों को प्रकाशित किया गया है, वे विषय प्रज्ञापना[५५७] में भी विस्तार से निरूपित हैं।

उन्नीसवें समवाय में छठे सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक जिन विषयों की चर्चा की गई है, वे विषय प्रज्ञापना[५५८] में भी आये हैं।

बीसवें समवाय का चौथा सूत्र—'पाणयस्स णं देविंदस्स ' है तो प्रज्ञापना[५५९] में भी प्राणत कल्पेन्द्र के बीस हजार सामानिक देव बताये हैं।

बीसवें समवाय के आठवें सूत्र से सत्तरहवें सूत्र तक जो वर्णन है वह प्रज्ञापना[५६०] में भी मिलता है।

इक्कीसवें समवाय में पांचवें सूत्र से लेकर चौदहवें समवाय तक जिन विषयों की चर्चा है, वे प्रज्ञापना[५६१] में भी चर्चित हुए हैं।

बावीसवें समवाय में सातवें सूत्र से लेकर सोलहवें सूत्र तक जिन विषयों पर चिन्तन हुआ है, उन विषयों पर प्रज्ञापना[५६२] में भी विश्लेषण हुआ है।

---

५५२ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४
५५३ प्रज्ञापना—पद १४, सूत्र १८८
५५४ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २९, सू ३०४
५५५ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद सू १४६, पद २८, सू ३०४
५५६ प्रज्ञापना—पद १, सूत्र ३७
५५७ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४
५५८ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४
५५९ प्रज्ञापना—पद ५, सूत्र ५३
५६० प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४
५६१ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २८, सू ३०४
५६२ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सू १४६, पद २९, सू ३०४

तेईसवें समवाय के पाचवें सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक जिन भावो की प्ररूपणा हुई है वे भाव प्रज्ञापना[५६३] मे भी इसी तरह प्ररूपित हैं।

चौबीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर चौदहवे सूत्र तक जिन विचारो को गुम्फित किया गया है, वह प्रज्ञापना[५६४] मे भी उसी रूप मे व्यक्त हुए हैं।

पच्चीसवें समवाय के दशवें सूत्र से लेकर सत्तरहवें सूत्र तक जो वर्णन है वह प्रज्ञापना[५६५] मे भी उसी तरह मिलता है।

छब्बीसवें समवाय के दूसरे सूत्र से दशवे सूत्र तक जो विचारसूत्र आये हैं वे प्रज्ञापना[५६६] मे भी देखे जा सकते हैं।

सत्ताईसवें समवाय के सातवे सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक जिन विचारो को निरूपित किया है वे प्रज्ञापना[५६७] मे भी उसी तरह मिलते हैं।

अठाईसवें समवाय का चौथा सूत्र—'ईसाणे णं कप्पे अट्ठावीस विमाण-सय-सहस्सा पण्णत्ता' है तो प्रज्ञापन[५६८] मे भी ईशान कल्प के अठावीस लाख विमान बताये है।

अठाईसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर तेरहवे सूत्र तक, उनतीसवे समवाय के दसवें सूत्र से लेकर सत्तरहवे सूत्र तक, तीसवें समवाय के आठवे सूत्र से लेकर पन्द्रहवे सूत्र तक, एकतीसवे समवाय के छठे सूत्र से लेकर तेरहवे सूत्र तक, बत्तीसवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, तेतीसवें समवाय के पाचवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक जिन विषयो पर चिन्तन हुआ है, वे विषय प्रज्ञापना[५६९] मे भी अच्छी तरह से चर्चित किये गये हैं।

चौतीसवे समवाय का पाचवां सूत्र—'चमरस्स ण असुरिंदस्स ' है तो प्रज्ञापना[५७०] मे भी चमरेन्द्र के चौतीस लाख भवनावास बताये है।

उनचालीसवें समवाय का चौथा सूत्र—'नाणावरणिज्जस्स ' है तो प्रज्ञापना[५७१] मे भी ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र, और आयु—इन चार मूल कर्म प्रकृतियो की उनचालीस उत्तरकर्म प्रकृतियाँ बताई है।

चालीसवें समवाय का चौथा सूत्र—'भूयाणदस्स ण नागकुमारस्स नागरण्णो ' है तो प्रज्ञापना[५७२] मे भी भूतानन्द नागकुमारेन्द्र के चालीस लाख भवनावास बताये हैं।

चालीसवें समवाय का आठवा सूत्र—'महासुक्के कप्पे ' है तो प्रज्ञापना[५७३] मे भी महाशुक्र कल्प मे चालीस हजार विमानावास का वर्णन है।

---

५६३ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६

५६४ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६

५६५ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६

५६६ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६

५६७. प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६

५६८ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३

५६९ प्रज्ञापना—पद ४, सूत्र ९४, ९५, १०२, पद ७, सूत्र १४६, पद २८, सूत्र ३०६

५७० प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४६

५७१. प्रज्ञापना—पद २३, सूत्र २९३

५७२. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र १३२

५७३ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र १३२

बियालीसवें समवाय का पांचवां सूत्र—'संमुच्छिम-भुयपरिसप्पाण ...' है तो प्रज्ञापना[५७४] मे भी सम्मूर्छिम भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति बियालीस हजार वर्ष की बताई है।

बियालीसवें समवाय का छठा सूत्र—'नामकम्मे बायालीसविहे पण्णत्ते... ....' है तो प्रज्ञापना[५७५] मे भी नामकर्म की बियालीस प्रकृतियां बताई हैं।

पैंतालीसवे समवाय का चौथा सूत्र—'ईसिपब्भारा ण पुढवी एव चेव ......' है तो प्रज्ञापना[५७६] मे भी ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी के आयाम-विष्कम्भ का वर्णन है।

छियालीसवें समवाय का तीसरा सूत्र—'पभजणस्स ण वाउकुमारिंदस्स .....' है तो प्रज्ञापना[५७७] मे भी वायुकुमारेन्द्र प्रभजन के छियालीस लाख भवनावास बताये हैं।

उनपचासवें समवाय का तृतीय सूत्र—'तेइदियाण उक्केसेण ... ' है तो प्रज्ञापना[५७८] मे भी त्रीन्द्रियो की उत्कृष्ट स्थिति उनपचास अहोरात्रि की बताई है।

पचासवें समवाय का पाचवां सूत्र—'लतए कप्पे पन्नास ' है तो प्रज्ञापना[५७९] मे भी लातक कल्प मे पचास हजार विमान बताये हैं।

एकावनवें समवाय का पाचवां सूत्र—'दसणावरण-नामाण .' है तो प्रज्ञापना[५८०] मे भी ऐसा ही कथन है।

बावनवे समवाय का चौथा सूत्र—'नाणावरणिज्जस्स, नामस्स ' है तो प्रज्ञापना[५८१] मे भी ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय इन तीन मूल प्रकृतियो की बावन उत्तर प्रकृतियाँ बताई हैं।

बावनवें समवाय का पाचवां सूत्र—'सोहम्म-सणकुमार .' है तो प्रज्ञापना[५८२] मे भी सौधर्म सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन देवलोको मे बावन लाख विमानावास कहे हैं।

त्रेपनवे समवाय का चौथा सूत्र—'सम्मुच्छिम-उरपरिसप्पाणं ' है तो प्रज्ञापना[५८३] मे भी सम्मूर्छिम उरपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति त्रेपन हजार वर्ष की कही है।

पचपनवें समवाय का पांचवां सूत्र—'पढम-विइयासु दोसु ' है तो प्रज्ञापना[५८४] मे भी प्रथम और द्वितीय इन दो पृथ्वियो मे पचपन लाख नरकावास बताये हैं।

पचपनवे समवाय का छठा सूत्र—'दसणावरणिज्ज-नामाउयाण ' है तो प्रज्ञापना[५८५] मे भी दर्शनावरणीय, नाम और आयु इन तीन मूल प्रकृतियो की पचपन उत्तर प्रकृतियां हैं।

---

५७४ प्रज्ञापना पद ४

५७५ प्रज्ञापना पद १३, सूत्र २९३

५७६ प्रज्ञापना पद २

५७७ प्रज्ञापना पद २, सूत्र १३२

५७८ प्रज्ञापना पद ४, सूत्र ९७

५७९ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ५३

५८० प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३

५८१ प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३

५८२ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४३

५८३. प्रज्ञापना पद ४, सूत्र १७

५८४. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ८१

५८५ प्रज्ञापना पद २३, सूत्र २९३

अठावनवें समवाय का पहला सूत्र—'पढम-दोच्च-पंचमासु ' है तो प्रज्ञापना[५८६] में भी पहली, दूसरी और पाचवी इन तीन पृथ्वियो मे अठावन लाख नारकावास बताए हैं।

अठावनवें समवाय का दूसरा सूत्र—'नाणावरणिज्जस्स वेयणिय ' है तो प्रज्ञापना[५८७] मे ज्ञानावरणीय, वेदनीय आयु, नाम और अन्तराय इन पाँच मूल कर्मप्रकृतियो की अठावन उत्तर प्रकृतिया कही हैं।

साठवें समवाय का चतुर्थ सूत्र—'बलिस्स णं बइरोयणिंदस्स ' है तो प्रज्ञापना[५८८] मे भी बलेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव बताये हैं।

साठवें समवाय का पाचवाँ सूत्र—'बंभस्स ण देविंदस्स ' है तो प्रज्ञापना[५८९] मे भी ब्रह्म देवेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव बताये हैं।

साठवें समवाय का छठा सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु दोसु ' है तो प्रज्ञापना[५९०] मे भी सौधर्म और ईशान इन दो कल्पो मे साठ लाख विमानावास कहे हैं।

बासठवें समवाय का चौथा सूत्र—'सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु ' है तो प्रज्ञापना[५९१] मे भी सौधर्म और ईशान कल्प के प्रथम प्रस्तट की प्रथम आवलिका एव प्रत्येक दिशा मे बासठ-बासठ विमान हैं।

बासठवे समवाय का पांचवाँ सूत्र—'सव्वे वेमाणियाण बासट्ठि ' है तो प्रज्ञापना[५९२] मे भी सर्व वैमानिक देवो के बासठ विमान प्रस्तट कथित हैं।

चौसठवें समवाय का दूसरा सूत्र—'चउसट्ठि असुरकुमाराण ' है तो प्रज्ञापना[५९३] मे भी चौसठ लाख असुरकुमारावास बताये हैं।

बहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र—'बावत्तरिं सुवण्णकुमारावासा ' है तो प्रज्ञापना[५९४] मे भी सुवर्णकुमारावास बहत्तर लाख बताये हैं।

बहत्तरवे समवाय का आठवाँ सूत्र—'सम्मुच्छिम-खहयर ' है तो प्रज्ञापना[५९५] मे भी सम्मूर्च्छिम खेचर तिर्यञ्च पचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्ष की बतायी है।

चौहत्तरवें समवाय का चतुर्थ सूत्र—'चउत्थवज्जासु छसु ' है तो प्रज्ञापना[५९६] मे भी चौथी पृथ्वी को छोडकर शेष छह पृथ्वियो मे चौहत्तर लाख नरकावास कहे हैं।

छिहत्तरहवे समवाय का पहला सूत्र—'छावत्तरिं विज्जुकुमारावास ' है तो प्रज्ञापना[५९७] मे भी विद्युत् कुमारावास छिहत्तर लाख बताये हैं।

---

५८६ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ८१
५८७ प्रज्ञापना पद २३, सूत्र ८१
५८८ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ३१
५८९ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ५३
५९० प्रज्ञापना पद २, सूत्र ३३
५९१ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४७
५९२. प्रज्ञापना पद २
५९३ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४७
५९४ प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४६
५९५ प्रज्ञापना पद ४, सूत्र ९८
५९६ प्रज्ञापना पद २
५९७. प्रज्ञापना पद २, सूत्र ४६

छिहत्तरहवें समवाय का दूसरा सूत्र—'एवं दीव-दिसा-उदहीणं ' है तो प्रज्ञापना[५९८] मे भी द्वीपकुमार दिशाकुमार आदि के छिहत्तर लाख भवन बताये हैं।

अस्सीवे समवाय का छठा सूत्र—'ईसाणस्स देविंदस्स ' है तो प्रज्ञापना[५९९] मे भी ईशान देवेन्द्र के अस्सी हजार सामानिक देव बताये हैं।

चौरासीवे समवाय का छठा सूत्र—'सव्वेवि ण बाहिरया मदरा ' है तो प्रज्ञापना[६००] मे भी ऐसा ही वर्णन है।

चौरासीवें समवाय का बारहवाँ सूत्र—'चोरासीइ पइन्नग ' है तो प्रज्ञापना[६०१] मे भी ऐसा ही कथन है।

छियानवेवें समवाय का दूसरा सूत्र—'वायुकुमाराण छण्णउइ ...' है तो प्रज्ञापना[६०२] मे भी वायुकुमार के छानवे लाख भवन बताये हैं।

निन्यानवेवें समवाय का सातवा सूत्र—'दक्खिणाओ ण कट्ठाओ ' है तो प्रज्ञापना[६०३] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के अजनकाण्ड के नीचे के चरमान्त से व्यन्तरो के भौमेय विहारो के ऊपरी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर निन्यानवे सौ योजन का है।

डेढ़सौवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'आरणे कप्पे ' है तो प्रज्ञापना[६०४] मे भी आरण कल्प के डेढ सौ विमान बताये हैं।

ढाई सौवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'असुरकुमाराण ' है तो प्रज्ञापना[६०५] मे भी असुरकुमारो के प्रासाद ढाई सौ योजन ऊँचे बताये हैं।

चार सौवे समवाय का चतुर्थ सूत्र—'आणयपाणएसु ' है तो प्रज्ञापना[६०६] मे भी आनत और प्राणत इन दो कल्पो मे चार सौ विमान बताये हैं।

आठ सौवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'इमीसे ण रयणप्पहाए ' है तो प्रज्ञापना[६०७] मे भी रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम रमणीय भूभाग से आठ सौ योजन के ऊपर सूर्य गति करता कहा गया है।

छह हजारवे समवाय का प्रथम सूत्र—'सहस्सारे ण कप्पे ..' है तो प्रज्ञापना[६०८] मे भी—सहस्रार कल्प मे छह हजार विमान बताये हैं।

आठ लाखवे समवाय का प्रथम सूत्र—'माहिंदे ण कप्पे ' है तो प्रज्ञापना[६०९] मे भी माहेन्द्र कल्प मे आठ लाख विमान बताये है।

---

५९८ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४६
५९९ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०० प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५२
६०१. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४६
६०२ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ३७
६०३ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र २८
६०४ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०५. प्रज्ञापना—पद २, सूत्र २८
६०६ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०७ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ४७
६०८ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३
६०९ प्रज्ञापना—पद २, सूत्र ५३

इस तरह प्रज्ञापना मे समवायाग के अनेक विषय प्रतिपादित हैं। कितने ही सूत्र तो समवायांगगत सूत्रो से प्राय. मिलते हैं। समवायाग मे जिन विषयो के सकेत किये गये है, उन विषयो को श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना मे विस्तार से निरूपित किया है। अत्यधिक साम्य होने के कारण ही इसे समवायाग का उपाग माना गया लगता है।

समवायांग और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्राचीन जैन भूगोल का महत्त्वपूर्ण आगम है। इस आगम मे जैन दृष्टि से सृष्टिविद्या के बीज यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भगवान् ऋषभदेव का प्राग् ऐतिहासिक जीवन भी इसमे मिलता है।

प्रस्तुत आगम के साथ अनेक विषयो की तुलना सहज रूप से इसके साथ की जा सकती है।

आठवें समवाय का चौथा सूत्र—'जबू ण सुदसणा अट्ठ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१०] मे भी जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति के सुदर्शन वृक्ष की आठ योजन की ऊँचाई कही है।

आठवें समवाय का पाचवा सूत्र—'कूडस्स सालमलिस्स ण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६११] मे भी गरुडावास कूट शल्मली वृक्ष आठ योजन के ऊँचे बताये हैं।

आठवें समवाय का छठा सूत्र—'जबूद्वीपप्रज्ञप्ति ण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१२] मे भी जम्बूद्वीप की जगती आठ योजन ऊँची बतायी है।

नवमे समवाय का नवमा सूत्र—'विजयस्स ण दारस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१३] मे भी विजय द्वार के प्रत्येक पार्श्व भाग मे नौ-नौ भौम नगर कहे हैं।

दशवे समवाय का तृतीय सूत्र—'मदरे ण पव्वए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१४] मे भी मेरु पर्वत के मूल का विष्कम्भ दश हजार योजन का बताया है।

दशवें समवाय का आठवाँ सूत्र—'अकम्मभूमियाण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१५] मे भी अकर्मभूमिज मनुष्यो के उपयोग के लिये कल्पवृक्षो का वर्णन है।

ग्यारहवे समवाय का द्वितीय सूत्र—'लोगताओ इक्कारसएहिं ' ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१६] मे भी लोकान्त से अव्यवहित ग्यारह सौ ग्यारह योजन दूरी पर ज्योतिष्कचक्र प्रारम्भ होता है।

ग्यारहवें समवाय का तीसरा सूत्र—'जम्बुद्दीवे दीवे मदरस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१७] मे भी जम्बू-द्वीप मे मेरु पर्वत से अव्यवहित ग्यारह सौ ग्यारह योजन की दूरी पर ज्योतिष्कचक्र प्रारम्भ होता है।

ग्यारहवे समवाय का सातवा सूत्र—'मदरे ण पव्वए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१८] मे भी मेरु पर्वत के पृथ्वीतल के विष्कम्भ से शिखर तल का विष्कम्भ ऊँचाई की अपेक्षा ग्यारह भाग हीन है।

बारहवें समवाय का चतुर्थ सूत्र—'विजया ण रायहाणी ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६१९] मे भी विजया राजधानी का आयाम-विष्कम्भ बारह लाख योजन का बताया है।

---

६१० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्षस्कार ४, सू ९०
६११ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सू १००
६१२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सू ४
६१३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सू ४
६१४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सू १०३
६१५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सू १३०
६१६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सू १६४
६१७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सू १६४
६१८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सू. १०३
६१९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सू. ८

बारहवें समवाय का छठा सूत्र—'मदरस्स ण पव्वयस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२०] मे भी मेरु पर्वत की चूलिका के मूल का विष्कम्भ बारह योजन बताया है।

बारहवें समवाय का सातवाँ सूत्र—'जम्बूदीवस्स ण दीवस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२१] मे भी जम्बूद्वीप की वेदिका के मूल का विष्कम्भ बारह योजन का बताया है।

तेरहवे समवाय का आठवाँ सूत्र—'सूरमडल जोयणेण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२२] मे भी एक योजन के इकसठ भागो मे से तेरह भाग कम करने पर जितना रहे उतना सूर्यमडल है।

चौदहवें समवाय का छठा सूत्र—'भरहेरवयाम्रो ण जीवाओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२३] मे भी भरत और ऐरवत की जीवा का आयाम चौदह हजार चार सौ इकहत्तर एक योजन के उन्नीस भागो मे से छह भाग का कहा है।

चौदहवें समवाय का सातवाँ सूत्र—'एगमेगस्स ण रन्नो ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२४] मे प्रत्येक चक्रवर्त्ती के चौदह रत्न बताये हैं।

चौदहवें समवाय का आठवा सूत्र—'जबुद्दीवे ण दीवे ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२५] मे भी कहा है कि गगा, सिन्धु, रोहिता, रोहिताशा आदि चौदह मोटी नदिया पूर्व पश्चिम से लवण समुद्र मे मिलती हैं।

सोलहवे समवाय का तीसरा सूत्र—'मदरस्स ण पव्वयस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२६] मे भी मेरु पर्वत के सोलह नाम बताये हैं।

अठारहवें समवाय का पाचवा सूत्र—'बभीए ण लिवीए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२७] मे भी ब्राह्मी लिपि के अठारह प्रकार बताये हैं।

उन्नीसवे समवाय का दूसरा सूत्र—'जम्बूद्दीवे ण दीवे सूरिआ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२८] मे 'जम्बूद्वीप मे सूर्य ऊचे तथा नीचे उन्नीस सौ योजन ताप पहुँचाते हैं।'

बीसवे समवाय का सातवा सूत्र—'उस्सप्पिणि-ओसप्पिणिमडले ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६२९] मे भी कालचक्र को बीस कोटाकोटी सागरोपम का बताया है।

इक्कीसवे समवाय का तीसरा सूत्र—'एक्कमेक्काए ण म्रोसप्पिणीए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६३०] मे भी प्रत्येक अवसर्पिणी का पाचवाँ दुषमा और छठा दुषम-दुषमा आरा इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का कहा है।

---

६२० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०६
६२१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १२५
६२२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३०
६२३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र १६
६२४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६८
६२५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६, सूत्र १२५
६२६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०९
६२७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३७
६२८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३९
६२९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष. २, सूत्र १९
६३० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३५-३६

इक्कीसवें समवाय का चौथा सूत्र—'एगमेगाए ण उस्सप्पिणीए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[631] मे भी प्रत्येक उत्सर्पिणी का पहला दुषमा और दूसरा दुषम-दुषमा आरा इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का है।

चौबीसवें समवाय का दूसरा सूत्र—'चुल्लहिमवत-सिहरीणं ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[632] मे लघुहिमवत और शिखरी वर्षधर पर्वतो की जीवा का आयाम चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन तथा एक योजन के अडतीसवें भाग से कुछ अधिक कहा है।

चौबीसवे समवाय का तीसरा सूत्र—'चउवीस देवठाणा ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[633] मे भी देवताओ के चौबीस स्थान इन्द्रवाले शेष अहमिन्द्र—अर्थात् इन्द्र और पुरोहित रहित कहे गए हैं।

चौबीसवे समवाय का पाचवाँ सूत्र—'गगा-सिंधूओ णं महाणदीओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[634] मे भी महानदी गगा और सिन्धु का प्रवाह कुछ अधिक चौबीस कोश का चौडा बतलाया है।

चौबीसवें समवाय का छठा सूत्र—'रत्तारत्तवतीओ ण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[635] मे भी यही विषय वर्णित है।

पच्चीसवे समवाय का तीसरा सूत्र—'सव्वे वि दीहवेयड्ढपव्वया ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[636] मे भी सर्वदीर्घ वैताढ्य पर्वत इसी प्रकार के कहे हैं।

पच्चीसवे समवाय का सातवा सूत्र—'गगासिंधूओ ण महाणदीओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[637] मे भी वर्णन है कि महानदी गगा-सिंधु का मुक्तावली हार की आकृतिवाला पच्चीस कोश का विस्तृत प्रवाह पूर्व-पश्चिम दिशा मे घटमुख से अपने-अपने कुण्ड मे गिरता है।

इकतीसवे समवाय का दूसरा सूत्र—'मदरे पव्वए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[638] मे भी लिखा है 'पृथ्वीतल पर मेरु की परिधि कुछ कम इकतीस हजार छह सौ तेईस योजन की है।'

इकतीसवे समवाय का तीसरा सूत्र—'जया ण सूरिए ' ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[639] मे भी सूर्यदर्शन का वर्णन है।

तेतीसवे समवाय का तीसरा सूत्र—'महाविदेहे ण वासे ···' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[640] मे महाविदेह का विष्कम्भ कुछ अधिक तेतीस हजार योजन का बताया है।

---

६३१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३७
६३२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ७२
६३३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ५, सूत्र ११५
६३४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ५, सूत्र ७४
६३५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ७४
६३६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र १२
६३७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ७४
६३८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०३
६३९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष. ७, सूत्र १३३
६४० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ८५

तेतीसवें समवाय का चौथा सूत्र—'जया ण सूरिए' ...' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[641] मे जम्बूद्वीप मे कुछ न्यून तेतीस हजार योजन दूर से सूर्य-दर्शन होता कहा है।

चौतीसवे समवाय का दूसरा सूत्र—'जंबुद्दीवे ण दीवे ....' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[642] मे भी जम्बूद्वीप मे चौतीस चक्रवर्त्तीविजय कहे हैं।

चौतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र—'जबुद्दीवे ण दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा ....' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे भी जम्बूद्वीप[643] मे चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत बतलाए है।

चौतीसवें समवाय का चौथा सूत्र—'जबुद्दीवे ण दीवे ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[644] मे भी जम्बूद्वीप मे उत्कृष्ट चौतीस तीर्थंकर उत्पन्न होना कहा है।

सैंतीसवे समवाय का दूसरा सूत्र—'हेमवय-हेरण्णवयाओ ण'' ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[645] मे भी हेमवन्त और हेरण्यवत की जीवा के आयाम का वर्णन है।

अडतीसवें समवाय या दूसरा सूत्र—'हेमवए—एरण्णवईमाण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[646] मे भी हेमवन्त और हेरण्यवत की जीवा के आयाम का वर्णन है।

अडतीसवें समवाय का तीसरा सूत्र—'अत्थस्स ण पव्वयरण्णो ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[647] मे भी मेरुपर्वत के द्वितीय काण्ड की ऊचाई अडतीस हजार योजन की बताई है।

उनचालीसवें समवाय का दूसरा सूत्र—'समयखेत्ते एगूणचत्तालीस ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[648] मे भी समयक्षेत्र मे उनचालीस कुल-पर्वत बताये हैं।

चालीसवें समवाय का दूसरा सूत्र—'मदरचूलिया ण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[649] मे भी वर्णन है कि मेरु की चूलिका चालीस योजन ऊची है।

पैतालीसवे समवाय का पहला सूत्र—'समयखेत्ते ण पणयालीस ' ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[650] मे भी समयक्षेत्र का आयाम-विष्कम्भ पैतालीस लाख योजन का बताया है।

पैतालीसवें समवाय का छठा सूत्र—'मदरस्स ण पव्वयस्स ' ' तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[651] मे भी मेरुपर्वत एव लवण समुद्र का अव्यवहित अन्तर चारो दिशाओ मे पैतालीस-पैतालीस हजार योजन का बताया है।

---

६४१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३३
६४२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ९५
६४३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६, सूत्र १२५
६४४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ९५
६४५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ७९
६४६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १११
६४७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०८
६४८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६, सूत्र १२५
६४९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०६
६५० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १७७
६५१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०३

सैतालीसवें समवाय का पहला सूत्र—'जया ण सूरिए सव्वब्भिंतर ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५२] मे
ी सूर्यदर्शन का इसी तरह वर्णन प्राप्त है।

अडतालीसवें समवाय का पहला सूत्र—'एगमेगस्स ण रन्नो ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५३] मे भी
त्येक चक्रवर्ती के अडतालीस हजार पट्टण बताये हैं।

अडतालीसवें समवाय का तीसरा सूत्र—'सूरमडले ण अडयालीस ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५४] मे भी
र्यविमान का विष्कम्भ एक योजन के इकसठ भागो मे से अडतालीस भाग जितना है।

उनपचासवे समवाय का दूसरा सूत्र—'देवकुरु-उत्तरकुरुएसु ण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५५] मे भी
वकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्य उनपचास अहोरात्रि मे युवा हो जाते कहे है।

पचासवें समवाय का चौथा सूत्र—'सव्वेवि ण दीहवेयड्ढा मूले ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५६] मे भी
र्वदीर्घ वैताढ्य पर्वतो के मूल का विष्कभ पचास योजन का है।

पचासवें समवाय का छठा सूत्र—'सव्वाओ ण तिमिस्सगुहाओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५७] मे भी
व तिमिश्र गुफा और खण्डप्रपात गुफाओ का आयाम पचास-पचास योजन का है।

त्रेपनवें समवाय का पहला सूत्र—'देवकुरु-उत्तरकुरुयाओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५८] मे भी
वकुरु और उत्तरकुरु की जीवा का आयाम त्रेपन हजार योजन का बताया है।

त्रेपनवे समवाय का दूसरा सूत्र—'महाहिमवतरुप्पीण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५५९] मे भी महाहिमवत
ौर रुक्मी आदि के आयाम का वर्णन है।

पचपनवे समवाय का दूसरा सूत्र—'मन्दरस्स ण पव्वयस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५६०] मे भी मेरु-
र्वत के पश्चिमी चरमान्त से विजयद्वार के पश्चिमी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर पचपन हजार योजन का है।

सत्तावनवे समवाय का पाँचवा सूत्र—'महाहिमवत-रुप्पीण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५६१] मे भी
हाहिमवत और रुक्मी वर्षधर पर्वतो की जीवा का वर्णन है।

साठवे समवाय का पहला सूत्र—'एगमेगे ण मडले ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[५६२] मे भी वर्णन है कि
त्येक मण्डल मे सूर्य साठ-साठ मुहूत पूरे करता है।

---

५२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७ सूत्र १३३
५३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३ सूत्र ६९
५४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७ सूत्र १३०
५५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २ सूत्र २५
५६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १ सूत्र १२
५७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १ सूत्र १२
५८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४ सूत्र ८७
५९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४ सूत्र ७९
६० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १ सूत्र ८
६१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४ सूत्र ७९
६२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६ सूत्र १२७

इकसठवें समवाय का तीसरा सूत्र—'चदमडलेण एगसट्ठि ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[663] मे भी चन्द्र-मण्डल का समाश एक योजन के इकसठ विभाग करने पर (४५ समाश) होता है।

बासठवें समवाय का तीसरा सूत्र—'सुक्कपक्खस्स ण चदे ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[664] मे शुक्लपक्ष मे चन्द्र बासठ भाग प्रतिदिन बढता है और कृष्ण पक्ष मे उतना ही घटता है, यह कथन है।

त्रेसठवें समवाय के चारो सूत्रो मे जो वर्णन है वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[665] मे ज्यो का त्यो मिलता है।

चौसठवे समवाय का छठा सूत्र—'सव्वस्स वि य ण रन्नो ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[666] मे भी वर्णन है कि सभी चक्रवर्तियो का मुक्तामणिमय हार महामूल्यवान् एव चौसठ लडियो वाला होता है।

पैसठवें समवाय का पहला सूत्र—'जबुद्दीवे ण दीवे पणसट्ठि सूरमडला ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[667] मे भी जम्बूद्वीप मे सूर्य के पैंसठ मडल बताये है।

सडसठवें समवाय का दूसरा सूत्र—'हेमयवएरन्नवयाओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[668] मे भी हेमवत और एरण्यवत की बाहा का आयाम सडसठ सौ पचावन योजन तथा एक योजन के तीन भाग जितना है।

अडसठवे समवाय के दूसरे, तीसरे और चौथे सूत्र—'उक्कोसपए अडसट्ठि अरहता ' 'चक्कवट्टी बलदेवा 'पुक्खरवरदीवड्ढे ण' वर्णन है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[669] मे भी 'उत्कृष्ट अडसठ तीर्थंकर, चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव होते है वैसे ही पुष्कराधद्वीप मे भी होते कहे है।

बहत्तरवे समवाय का छठा सूत्र —'एगमेगस्स ण रन्नो ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[670] मे भी यह वर्णन है कि प्रत्येक चक्रवर्ती के बहत्तर हजार श्रेष्ठ पुर होते है।

बहत्तरवे समवाय का सातवाँ सूत्र—'बावत्तरि कलाओ पण्णत्ताओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[671] मे भी बहत्तर कलाओ का उल्लेख है।

तिहत्तरवें समवाय का प्रथम सूत्र—'हरिवास-रम्मयवासयाओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे भी हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष की जीवा के आयाम का वर्णन है।

चौहत्तरवे समवाय का दूसरा सूत्र—'निसहाओ ण वासहर ' है तो तीसरा सूत्र है—'एव सीतावि ' इसी तरह जम्बूद्वीप[672] प्रज्ञप्ति मे भी निषध पर्वत और सीतोदा महानदी का वर्णन है।

सतहत्तरवे समवाय का पहला सूत्र—'भरहे राया चाउरत-चक्कवट्टी ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[673]

---

६६३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १४४-१४५

६६४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३४

६६५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३, व ४, सू ८२, वक्ष ७, सू १२७

६६६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६८

६६७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १२७

६६८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ७६

६६९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७,

६७० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६९

६७१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ३०

६७२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ८२

६७३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ७०

मे भी भरत चक्रवर्ती सतहत्तर लाख पूर्व तक कुमार पद मे रहने के पश्चात् राजपद को प्राप्त हुए, यह उल्लेख है।

अठहत्तरवे समवाय का तीसरा सूत्र—'उत्तरायणनियट्टे ण सूरिए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७४] मे उत्तरायण से लौटता हुआ सूर्य प्रथम मडल से उनचालीसवे मडल तक एक मुहूर्त के इकसठिए अठहत्तर भाग प्रमाण दिन तथा रात्रि को बढाकर गति करता कहा है।

उन्नीसवें समवाय का चतुर्थ सूत्र—'जबुद्दीवस्स ण दीवस्स ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७५] मे भी वर्णन है कि जम्बूद्वीप के प्रत्येक द्वार का अव्यवहित अन्तर उन्नासी हजार योजन का है।

बियासीवें समवाय का पहला सूत्र—'जबुद्दीवे दीवे बासीय ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७६] मे कहा है—जम्बूद्वीप मे एक सौ बियासीवे सूर्यमण्डल मे सूर्य दो बार गति करता है।

तियासीवे समवाय का चौथा सूत्र—'उसभे ण अरहा कोसलिए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७७] मे भी लिखा है अरहत कौसलिक ऋषभदेव तियासी लाख पूर्व गृहवास मे रहकर मुडित यावत् प्रव्रजित हुए।

तियासीवे समवाय का पाचवा सूत्र—'भरहे ण राया चाउरतचक्कवट्टी ' है तो जम्बूद्वीप[६७८] प्रज्ञप्ति मे भी वर्णन है कि भरत चक्रवर्ती तियासी लाख पूर्व गृहवास मे रहकर जिन हुए।

चौरासीवे समवाय का दूसरा सूत्र—'उसभे ण अरहा कोसलिए ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६७९] के अनुसार भी अरहत कौसलिक ऋषभदेव चौरासी लाख पूर्व का आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुःखो से मुक्त हुए।

चौरासीवे समवाय का तीसरा सूत्र—'सिज्जसे ण अरहा चउरासीइ ' है तो जम्बूद्वीप[६८०] प्रज्ञप्ति मे भी उल्लेख है कि ऋषभदेव जो भी तरह भरत बाहुबली ब्राह्मी और सुन्दरी भी सिद्ध हुए।

चौरासीवे समवाय का पन्द्रहवा सूत्र— उसभस्स ण अरहओ ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८१] मे अरहत ऋषभदेव के चौरासी गण और चौरासी गणधरो का उल्लेख है।

अठासीवे समवाय का तीसरा सूत्र—'मदरस्स ण पव्वयस्स ··· ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८२] मे भी मेरु पर्वत के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त का अव्यवहित अन्तर अठासी हजार योजन का बताया है।

६७४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३१
६७५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र ९
६७६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ७, सूत्र १३४
६७७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३०, ३१
६७८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ७०
६७९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३३
६८० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३३
६८१ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र १८
६८२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र १०३

नवासीवें समवाय का पहला सूत्र—'उसभे ण ग्ररहा ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८३] मे भी अरहत कौसलिक ऋषभदेव इस अवसर्पिणी के तृतीय सुषम-दुषमा काल के अन्तिम भाग मे नवासी पक्ष शेष रहने पर कालधर्म को प्राप्त हुए।

नब्बेवे समवाय का पाँचवाँ सूत्र—'सव्वेसि ण वट्टवेयड्ढपव्वयाण ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८४] मे भी सर्ववृत्तवैताढ्य पर्वतो के शिखर के ऊपर मे सौगधिक काण्ड के नीचे के चरमान्त का अव्यवहित अन्तर नब्बे सौ योजन कहा है।

छियानबेवें समवाय का पहला सूत्र—'एगमेगस्स ण रन्नो चाउरत-चक्कवट्टिस्स ' है तो जम्बूद्वीप[६८५] प्रज्ञप्ति मे भी प्रत्येक चक्रवर्ती के छानवे-छानवे करोड ग्राम बताये हैं।

निन्यानवेवे समवाय के पहले सूत्र से लेकर छट्ठे सूत्र तक जो वर्णन है वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८६] मे भी ज्यो का त्यो मिलता है।

सौवे समवाय का छठा सूत्र—'सव्वेवि ण दीहवेयड्ढपव्वया ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८७] मे सर्व दीर्घवैताढ्य पर्वत सौ-सौ कोश ऊँचे प्ररूपित है।

दो सौवे समवाय का तीसरा सूत्र—'जबुद्दीवे ण दीवे दो कचणपव्वय-सया पण्णत्ता ' है तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८८] मे भी जम्बूद्वीप मे दो सौ काचनक पर्वतो का वर्णन है।

पाच सौवें समवाय मे प्रथम सूत्र से लेकर सातवे सूत्र तक जो वर्णन है वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६८९] मे भी इसी तरह मिलता है।

हजारवे समवाय मे दूसरे सूत्र से लेकर छठे सूत्र तक जो वर्णन है, वह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[६९०] मे भी इसी तरह देखा जा सकता है।

इस तरह समवायाग और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति मे अनेक स्थलो पर विषयसाम्य है। विस्तारभय से कुछ सूत्रो की तुलना जानकर हमने यहाँ पर छोड दी है।

समवायांग और सूर्यप्रज्ञप्ति

सूर्यप्रज्ञप्ति छठा उपाग है। डॉ विन्टर नित्ज ने सूर्यप्रज्ञति को एक वैज्ञानिक ग्रन्थ माना है। डॉ शुब्रिंग ने जर्मनी की हेम्बर्ग युनिवर्सिटी मे अपने भाषण मे कहा था कि 'जैन विचारको ने जिन तर्कसम्मत एव सुसगत सिद्धान्तो को प्रस्तुत किया है वे आधुनिक विज्ञानवेत्ताग्रो की दृष्टि से भी अमूल्य एव महत्त्वपूर्ण

६८३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष २, सूत्र ३१, ३३
६८४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ८, सूत्र ८२
६८५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ३, सूत्र ६७
६८६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, ७, सूत्र १०३, १३४
६८७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष १, सूत्र १२
६८८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ६, सूत्र १२५
६८९ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, ३ सूत्र १२५, ३३, ७०, ८६, ९१, ९७, ७५
६९० जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—वक्ष ४, सूत्र ८८, ७२

है। विश्व रचना के सिद्धान्त के साथ उसमे उच्चकोटि का गणित एव ज्योतिषविज्ञान भी मिलता है। सूर्यप्रज्ञप्ति मे गणित और ज्योतिष पर गहराई से विचार किया गया है, अत सूर्यप्रज्ञप्ति के अध्ययन के बिना भारतीय ज्योतिष के इतिहास को सही रूप से नही समझा जा सकता।[६९१]

हम यहा पर सक्षेप मे समवायाग मे आये हुए विषयो के साथ सूर्यप्रज्ञप्ति की तुलना करेगे।

समवायाग के प्रथम समवाय मे तेवीस, चौवीस और पच्चीसवें सूत्र मे जिन आर्द्रा, चित्रा और स्वाति नक्षत्रो का वर्णन है, वह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[६९२] मे भी है।

दूसरे समवाय के चौथे से सातवे समवाय तक पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तराभद्रपदा के तारो का वर्णन है। वह सूर्यप्रज्ञप्ति[६९३] मे भी प्राप्त है।

तीसरे समवाय के छठे सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक मृगशिर, पुष्य, जेष्ठा, अभिजित, श्रवण, अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रो का वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[६९४] मे भी मिलता है।

चौथे समवाय के सातवें, आठवें और नौवे सूत्र मे अनुराधा, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्रो के चार तारो का वर्णन है, सूर्यप्रज्ञप्ति[६९५] मे भी उन तारो का वर्णन दर्शनीय है।

पाचवें समवाय के नौवे सूत्र से लेकर तेरहवे सूत्र तक रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, धनिष्ठा नक्षत्रो के पाच-पाच तारो का वर्णन है, सूर्यज्ञप्रप्ति[६९६] मे भी वह वर्णन इसी तरह मिलता है।

छठे समवाय के सातवे एव आठवे सूत्र मे कृत्तिका, अश्लेषा नक्षण के छह-छह तारे बताये हैं तो सूर्यप्रज्ञप्ति[६९७] मे भी उनका उल्लेख है।

सातवें समवाय के सातवें सूत्र से लेकर ग्यारहवे सूत्र तक मघा, कृत्तिका, अनुराधा और धनिष्ठा नक्षत्रो के तारे तथा उनके द्वारो का वर्णन है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[६९८] मे भी वह मिलता है।

आठवें समवाय के नौवे सूत्र मे "अट्ठनक्खत्ता चदेण " है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[६९९] मे भी चन्द्र के साथ प्रमर्द योग करने वाले कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्ता, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा इन आठ नक्षत्रो का वर्णन है।

नौवे समवाय के पाचवें, छठे, और सातवें सूत्र मे अभिजित् नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने का वर्णन है तथा रत्नप्रभा पृथ्वी से नौ सौ योजन ऊंचे तारा है, यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७००] मे भी है। समवायाग और सूर्यप्रज्ञप्ति

---

६९१ He who has a thorough knowledge of the structure of the world cannot but admire the inward logic and harmony of Jain ideas Hand in hand with refined casmographical ideas goes a high standard of Astronomy and Mathematics A history of Indian Astronomy is not conceivable without the famous "Surya Pragyapati"

—Dr Schubring

६९२ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९

६९३ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

६९४. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

६९५ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

६९६ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

६९७ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

६९८ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

६९९ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ९, सूत्र ४२

७०० सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ११, सूत्र ४४

में अन्तर इतना ही है कि समवायाग मे अभिजित् का चन्द्र के साथ योगकाल ९ मुहूर्त का बताया है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७०१] मे १२ मुहूर्त का बताया है ।

ग्यारहवें समवाय के दूसरे, तीसरे और पाचवे सूत्र मे ज्योतिष चक्र के प्रारम्भ का वर्णन है और मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे बताये हैं, यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०२] मे भी मिलता है ।

बारहवे समवाय के आठवें और नौवे सूत्र मे जघन्य रात और दिन बारह मुहूर्त के बताये हैं तो सूर्य-प्रज्ञप्ति[७०३] मे भी उसका निरूपण हुआ है ।

पन्द्रहवे समवाय के तीसरे और चौथे सूत्र मे ध्रुवराहु का चन्द्र को आवृत और अनावृत करने का वर्णन है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७०४] मे भी वह वर्णन द्रष्टव्य है ।

अठारहवें समवाय के आठवे सूत्र मे पौष और आषाढ मास मे एक दिन उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का होता है तथा एक रात्रि अठारह मुहूर्त की होती है । सूयप्रज्ञप्ति[७०५] मे भी यही वर्णन उपलब्ध है ।

उन्नीसवें समवाय के द्वितीय सूत्र मे जम्बूद्वीप मे सूर्य ऊंचे और नीचे उन्नीस सौ योजन ताप पहुँचाता है । यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०६] मे भी है ।

चौवीसवें समवाय के चौथे सूत्र मे वर्णन है—उत्तरायण मे रहा हुआ सूर्य चौबीस अगुल प्रमाण प्रथम प्रहर की छाया करके पीछे मुडता है । यह वर्णन सूयप्रज्ञप्ति[७०७] मे भी है ।

सत्तावीसवें समवाय के दूसरे और तीसरे सूत्र मे क्रमश यह वर्णन है कि जम्बूद्वीप मे अभिजित को छोडकर सत्तावीस नक्षत्रो से व्यवहार होता है और नक्षत्र मास सत्तावीस अहोरात्रि का होता है । यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०८] मे भी है ।

उनतीसवे समवाय के तीसरे से सातवे तक जो वर्णन है, वह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[७०९] मे भी उपलब्ध है ।

तीसवे समवाय के तीसरे सूत्र मे तीस मुहूर्त्तो के नाम बताये हैं, वे नाम सूर्यप्रज्ञप्ति[७१०] मे भी मिलते है ।

इकतीसवे समवाय के चौथे और पाचवे सूत्र मे क्रमश अधिक मास कुछ अधिक इकतीस रात्रि का बताया है । और सूर्यमास कुछ न्यून इकतीस अहोरात्रि का बताया है । सूर्यप्रज्ञप्ति[७११] मे यही है ।

बत्तीसवे समवाय के पाचवें सूत्र मे रेवती नक्षत्र के बत्तीस तारे बताये हैं तो सूर्यप्रज्ञप्ति[७१२] मे भी यह वर्णन है ।

७०१ सूयप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, प्रा ११, सूत्र ४४
७०२ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १८, सूत्र ९२
७०३ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १ प्रा १ सूत्र ११
७०४ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत २०, प्रा ३, प्रा सूत्र १०५, सू ३५
७०५ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १, प्रा ६, सू १८
७०६ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत ४ प्रा सू २५
७०७ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १० प्रा सू ४६
७०८ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्राभृत १०, १२, प्रा १ सू ३२, ७२
७०९ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १२ सू, ७२
७१० सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १०, पा १३, सू ४७
७११ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १२, सू ७२
७१२ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा प्रा १०, ९, सू ७२

छत्तीसवें समवाय के चौथे सूत्र मे चैत्र और आश्विन मास मे एक दिन पौरुषी छाया का प्रमाण छत्तीस अगुल का होता कहा है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[713] मे भी यही वर्णन है।

सैतीसवें समवाय के पाचवे सूत्र मे कार्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैतीस अगुलप्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[714] मे है।

चालीसवें समवाय के छठे सूत्र मे फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सूर्य चालीस अगुलप्रमाण पौरुषी छाया करके गति करता है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[715] मे भी है।

पैंतालीसवें समवाय के सातवें सूत्र मे डेढ क्षत्र वाले सभी नक्षत्र चन्द्र क माथ पैंतालीस मुहूर्त्त का योग करते है। यह वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[716] मे भी है।

छप्पनवे समवाय के प्रथम सूत्र मे जम्बूद्वीप मे छप्पन नक्षत्रो ने चन्द्र के साथ योग किया व करते हैं, यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[717] मे भी उपलब्ध होता है।

बामठवे समवाय के प्रथम सूत्र मे वर्णन है कि पाँच सवत्सर वाले युग की बामठ पूर्णिमाएँ और बासठ अमावस्याएँ होती है, यह वर्णन सूत्रप्रज्ञप्ति[718] मे भी है।

इकहत्तरवें समवाय के प्रथम सूत्र मे वणन है कि चौथे चन्द्र-सवत्सर की हेमन्त ऋतु के इकहत्तर अहोरात्रि व्यतीत होने पर सर्वबाह्य मण्डल से सूर्य पुनरावृत्ति करता है। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[719] मे प्राप्त है।

बहत्तरवें समवाय का पाँचवा सूत्र है, पुष्करार्ध द्वीप मे बहत्तर चन्द्र व सूर्य प्रकाश करते हैं। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[720] मे भी है।

अठासीवें समवाय के प्रथम सूत्र मे वर्णन है कि प्रत्येक चन्द्र, सूर्य का अठासी-अठासी ग्रह का परिवार है। यही वर्णन सूर्यप्रज्ञप्ति[721] मे भी प्राप्त होता है।

अठानवे वें समवाय के चतुर्थ सूत्र से लेकर सातवें सूत्र तक जो वर्णन है, वह सूर्यप्रज्ञप्ति[722] मे भी इसी तरह मिलता है।

इस तरह सूर्यप्रज्ञप्ति के साथ समवायाग के अनेक सूत्र मिलते है।

समवायाग और उत्तराध्ययन

मूल सूत्रो मे उत्तराध्ययन का प्रथम स्थान है। यह आगम भाव-भाषा और शैली की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे धर्म, दर्शन, अध्यात्म, योग आदि का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। हम यहाँ पर सक्षेप मे

---

७१३ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १०, प्रा २, सू ४३
७१४ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १०, सू ४३
७१५ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १०, सू ४३
७१६ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा ३, सू ३५
७१७ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १०, प्रा २२, सू ६०
७१८ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १३, सू ८०
७१९ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा ११
७२०. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १९
७२१ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १८, सू ५१
७२२ सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा १, १०, प्रा ९, सू ४२

समवायाग मे ग्राये हुये विषयो का उत्तराध्ययन मे आये हुये विषयो के साथ दिग्दर्शन करेंगे, जिससे समवायाग की महत्ता का सहज ही ग्राभास हो सके।

दूसरे समवाय के तीसरे सूत्र मे बन्ध के राग और द्वेष ये दो प्रकार बताये हैं। तो उत्तराध्ययन[७२३] मे भी उनका निरूपण है।

तीसरे समवाय के प्रथम सूत्र मे तीन दण्डो का निरूपण है—तो उत्तराध्ययन[७२४] मे भी वह वर्णन है।

तीसरे समवाय के दूसरे सूत्र मे तीन गुप्तियो का उल्लेख है तो उत्तराध्ययन[७२५] मे भी गुप्तियो का वर्णन प्राप्त है।

तीसरे समवाय के तीसरे सूत्र मे तीन शल्यो का वर्णन है तो उत्तराध्ययन[७२६] मे भी शल्यो का वर्णन प्राप्त है।

पाँचवें समवाय के सातवे सूत्र मे पाँच समिति के नाम दिये गये हैं। उत्तराध्ययन[७२७] मे उन पर विस्तार से निरूपण है।

छठे समवाय का तीसरे और चौथे सूत्र मे बाह्य और आभ्यन्तर तप का वर्णन है। उत्तराध्ययन[७२८] मे भी वह प्राप्त है।

सातवे समवाय के प्रथम सूत्र मे सप्त भयस्थानो का निरूपण किया गया है, उत्तराध्ययन[७२९] मे भी उनके सम्बन्ध मे सकेत है।

ग्राठवे समवाय के प्रथम सूत्र मे ग्राठ मदस्थानो की चर्चा है तो उत्तराध्ययन[७३०] मे उनका सूचन है।

ग्राठवे समवाय के दूसरे सूत्र मे ग्रष्ट प्रवचनमाताओ के नाम हैं, उत्तराध्ययन[७३१] मे भी उनका निरूपण है।

नवमे समवाय के प्रथम सूत्र मे नव ब्रह्मचर्य-गुप्तियाँ निरूपति है तो उत्तराध्ययन[७३२] मे भी यह विषय चर्चित है।

नवमे समवाय केग्यारहवें सूत्र मे दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ बतायी है तो उत्तराध्ययन[७३३] मे भी उनका कथन है।

दशवें समवाय के प्रथम सूत्र मे श्रमण के दश धर्मों का वर्णन है, तो उत्तराध्ययन[७३४] मे भी उनका सकेत है।

७२३ उत्तराध्ययन—अ २१
७२४ उत्तराध्ययन—अ ३१
७२५ उत्तराध्ययन—अ २४
७२६ उत्तराध्ययन—अ ३१
७२७ उत्तराध्ययन—अ २४
७२८ उत्तराध्ययन—अ ३०
७२९ उत्तराध्ययन—ग्र ३१
७३० उत्तराध्ययन—अ ३१
७३१ उत्तराध्ययन—ग्र २४
७३२ उत्तराध्ययन—अ ३६
७३३ उत्तराध्ययन—अ ३३
७३४ उत्तराध्ययन—अ ३१

ग्यारहवें समवाय के प्रथम सूत्र मे उपासक की ग्यारह प्रतिमाओ का निरूपण है तो उत्तराध्ययन[७३५] मे भी सक्षेप मे सूचन है।

बारहवें समवाय के पहले सूत्र मे भिक्षु की बारह प्रतिमाएँ गिनाई हैं तो उत्तराध्ययन [७३६] मे भी उनकी सक्षेप मे सूचना है।

सोलहवें समवाय के पहले सूत्र मे सूत्रकृताग के सोलह अध्ययनो के नाम निर्दिष्ट हैं तो उत्तराध्ययन[७३७] मे भी उनका सकेत है।

सत्तरहवे समवाय के प्रथम सूत्र मे सत्तरह प्रकार के असयम बताये हैं, उनका निर्देश उत्तराध्ययन[७३८] मे भी है।

अठारहवें समवाय के प्रथम सूत्र मे ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार बताये हैं, इनका सकेत उत्तराध्ययन[७३९] मे भी प्राप्त होता है।

उन्नीसवे समवाय के प्रथम सूत्र मे ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययनो के नाम आये हैं तो उत्तराध्ययन[७४०] मे उनका सकेत है।

बावीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे बावीस-परीषहो के नाम निर्दिष्ट हैं तो उत्तराध्ययन[७४१] मे उनका विस्तार से निरूपण है।

तेवीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे सूत्रकृताग के तेईस अध्ययनो के नाम हैं, उत्तराध्ययन[७४२] मे भी उनका सकेत है।

चौबीसवे समवाय के चौथे सूत्र के अनुसार उत्तरायण मे रहा हुआ सूर्य चौवीस अगुल प्रमाण प्रथम प्रहर की छाया करता हुआ पीछे मुडता है, यह वर्णन उत्तराध्ययन[७४३] मे भी है।

सत्तावीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे अनगार के सत्तावीस गुण प्रतिपादित है, तो उत्तराध्ययन[७४४] मे भी उनका सूचन है।

तीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे मोहनीय के तीस स्थान बताये हैं, उत्तराध्ययन[७४५] मे भी इसका निर्देश है।

इकतीसवें समवाय के प्रथम सूत्र में सिद्धो के इकतीस गुण कहे है, तो उत्तराध्ययन [७४६] मे भी इनका सकेत है।

७३५ उत्तराध्ययन—अ ४१
७३६ उत्तराध्ययन—अ ३१
७३७ उत्तराध्ययन—अ ३१
७३८ उत्तराध्ययन—अ ३१
७३९ उत्तराध्ययन—अ ३१
७४० उत्तराध्ययन—अ ३१
७४१ उत्तराध्ययन—अ २
७४२ उत्तराध्ययन—अ ३१
७४३ उत्तराध्ययन—अ २६
७४४ उत्तराध्ययन—अ ३१
७४५ उत्तराध्ययन—अ ३१
७४६ उत्तराध्ययन—अ ३१

बत्तीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे योगसग्रह के बत्तीस प्रकार बताये हैं, उत्तराध्ययन[७४७] मे भी उनकी सूचना है।

तेतीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे तेतीस आशातनाग्रो का नाम-निर्देश है तो उत्तराध्ययन[७४८] मे भी इनका मूचन किया गया है।

छत्तीसवें समवाय के प्रथम सूत्र मे उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनो के नाम आये हैं।[७४९]

उनहत्तरवें समवाय के तीसरे सूत्र मे मोहनीय कर्म को छोडकर शेष सात मूल कर्म-प्रकृतियो की उनहत्तर उत्तर कर्म-प्रकृतियाँ बतायी है। यह वर्णन उत्तराध्ययन[७५०] मे भी प्राप्त है।

सत्तरहवे समवाय के चौथे मूत्र के ग्रनुसार मोहनीय कर्म की स्थिति, अबाधाकाल सात-हजार वर्ष छोडकर सत्तर कोटाकोटि सागरोपम की बतायी है। उत्तराध्ययन[७५१] मे यही वर्णन मिलता है।

सत्तासीवें समवाय के पाँचवें सूत्र के अनुमार प्रथम ग्रोर ग्रन्तिम को छोडकर छह मूल कर्मप्रकृतियो की सत्तासी उत्तरप्रकृतियाँ होती हे, यही वर्णन उत्तराध्ययन [७५२] मे भी है।

सत्तानवें समवाय के तीसरे सूत्र के अनुसार आठ मूल कर्म-प्रकृतियो की सत्तानवे उत्तरकर्म-प्रकृतियाँ है, यही वर्णन उत्तराध्ययन[७५३] मे प्राप्त है।

इस तरह उत्तराध्ययन मे समवायागगत ऐसे अनेक विषय हैं, जिनकी उत्तराध्ययन मे कही सक्षेप मे और कही विस्तार से चर्चा मिलती है।

समवायांग और अनुयोगद्वार

मूल सूत्रो की परिगणना मे अनुयोगद्वार का चतुर्थ स्थान है। अनुयोग का अर्थ है—शब्दो की व्याख्या या विवेचन करने की प्रक्रिया-विशेष। समवायाग मे आये हुए ग्रनेक विषय ग्रनुयोगद्वार मे भी प्रतिपादित हुये हैं।

प्रथम समवाय के छब्बीसवें सूत्र से लेकर चालीसवे मूत्र तक जिन विषयो की चर्चा है, वे विषय अनुयोगद्वार [७५४] मे भी चर्चित हैं।

दूसरे समवाय के आठवें सूत्र से लेकर बीसवें समवाय तक जिन-जिन विषयो की चर्चा की गयी है, वे अनुयोगद्वार[७५५] मे चर्चित हुये है।

तृतीय समवाय के तेरहवे सूत्र से लेकर इक्कीसवे मूत्र तक जिन विषयो का उल्लेख किया गया है वे विषय अनुयोगद्वार[७५६] मे भी आये है।

---

७४७ उत्तराध्ययन—ग्र ३१
७४८ उत्तराध्ययन—ग्र ३१
७४९. उत्तराध्ययन—अ १ से ३६ तक
७५० उत्तराध्ययन—ग्र ३३
७५१ उत्तराध्ययन—अ ३३ गा ३१
७५२ उत्तराध्ययन—अ ३३
७५३ उत्तराध्ययन—अ ३३
७५४ अनुयोगद्वार सूत्र—सू. १३९
७५५ अनुयोगद्वार सूत्र—सू १३९
७५६ ग्रनुयोगद्वार सूत्र—सू. १३९, १४०

चौथे समवाय के दसवें सूत्र से लेकर सत्तहरवें सूत्र तक के विषयो पर अनुयोगद्वारसूत्र[757] मे भी चिन्तन किया गया है।

पाँचवें समवाय के चौदहवें सूत्र से लेकर उन्नीसवें सूत्र तक जो भाव प्रज्ञापित हुये है, वे अनुयोगद्वार मे भी द्रष्टव्य हैं।

छठे समवाय के दसवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवें सूत्र तक, और सातवे समवाय के बारहवें सूत्र से लेकर बीसवे सूत्र तक, आठवे समवाय के दसवे सूत्र से लेकर चौदहवे सूत्र तक, नौवे समवाय के बारहवें सूत्र से लेकर सत्तरहवे सूत्र तक, दसवें समवाय के दसवे सूत्र से लेकर बावीसवे सूत्र तक, ग्यारहवे समवाय के आठवे सूत्र से लेकर तेरहवे सूत्र तक, बारहवे समवाय के बारहवे सूत्र तक, तेरहवे समवाय के नवमे सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, चौदहवे समवाय के नवमे सूत्र से लेकर पन्द्रहवे सूत्र तक, पन्द्रहवे समवाय के आठवे सूत्र से लेकर चौदहवे सूत्र तक, सोलहवे समवाय के आठवें सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, सत्तरहवे समवाय के ग्यारहवे सूत्र से लेकर अठारहवें सूत्र तक, अठारहवें समवाय के नवम सूत्र से लेकर, पन्द्रहवे सूत्र तक, उन्नीसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर बारहवे सूत्र तक, बीसवे समवाय के आठवें सूत्र से लेकर चौदहवे सूत्र तक, इक्कीसवें समवाय के पाँचवें सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, बावीसवे समवाय के सातवे सूत्र से लेकर चौदहवें सूत्र तक, तेवीसवें समवाय के पाँचवे सूत्र से लेकर दसवें सूत्र तक, चौवीसवे समवाय के सातवें सूत्र से लेकर बारहवे सूत्र तक, पच्चीसवे समवाय के दशवें सूत्र से लेकर पन्द्रहवे सूत्र तक, छब्बीसवे समवाय के दूसरे सूत्र से लेकर आठवें सूत्र तक, सत्तावीसवे समवाय के सातवें सूत्र से लेकर बारहवें सूत्र तक अठावीसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, उनतीसवे समवाय के दशवे सूत्र से लेकर पन्द्रहवे सूत्र तक, तीसवें समवाय के आठवे सूत्र से लेकर तेरहवें सूत्र तक, इकतीसवें समवाय के छठे सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, बत्तीसवे समवाय के सातवें सूत्र लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, तेतीसवे समवाय के पाचवें सूत्र से लेकर ग्यारहवें सूत्र तक, जिन-जिन विषयो का वर्णन आया है वे विषय अनुयोगद्वार[758] मे भी कही सक्षेप मे तो कही विस्तार से चर्चित हैं।

इस तरह समवायाग का विषय-वर्णन इतना अधिक व्यापक है कि आगम साहित्य मे अनेक स्थलो पर उस सम्बन्ध मे विचारचर्चाएँ की गई है। आगमों मे कही पर सूत्र शैली का उपयोग हुआ है तो कही पर जिज्ञासुओ को समझाने के लिए व्यासशैली का उपयोग भी हुआ है। हमने उपर्युक्त पक्तियो मे मुख्य रूप से समवायागगत विषय जिन आगमो मे आये हैं, उन पर सप्रमाण चिन्तन किया है। यो दशवैकालिक, नन्दी, दशा-श्रुतस्कन्ध व कल्पसूत्र के विषय भी कुछ समवायाग के साथ मिलते है पर उनकी सख्या अधिक न होने से हमने उनका यहाँ पर उल्लेख नही किया है और न आगमेतर ग्रन्थो के साथ विषयो की तुलना की है।

वैदिक और बौद्ध ग्रन्थो के विषयो के साथ भी समवायागगत विषयो की तुलना सहजरूप से की जा सकती है। यो सक्षेप मे यथास्थान उनका उल्लेख किया गया है। आज आवश्यकता है आगम साहित्य की अन्य साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने की। मूर्धन्य मनीषियो का ध्यान इस ओर केन्द्रित हो तो समन्वय और सत्य के अनेक द्वार उद्घाटित हो सकते है।

व्याख्या-साहित्य

समवायाग सूत्र मे न दर्शन सम्बन्धी गहन गुत्थियाँ हैं और न अध्यात्म सम्बन्धी गभीर विवेचन ही हैं। जो भी विषय निरूपित हैं वे सहज, सुगम और सुबोध है, जिसके कारण इस पर न निर्युक्तिया लिखी गईं और न

७५७ अनुयोगद्वार सूत्र—सूत्र १३९
७५८ अनुयोगद्वार सूत्र—सूत्र १३९

भाष्य का निर्माण ही किया गया, और न चूर्णिया ही रची गई। सर्वप्रथम नवाङ्गी-टीकाकार आचार्य अभयदेव ने इस पर वृत्ति का निर्माण किया। यह वृत्ति न अतिसक्षिप्त है और न अतिविस्तृत ही। वृत्ति के प्रारम्भ मे आचार्य ने श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया है, क्योकि प्रस्तुत आगम के अर्थ-प्ररूपक भगवान् महावीर हैं। आचार्य अभयदेव ने विज्ञो से यह अभ्यर्थना की है कि मेरे सामने आगम के गुरुगभीर रहस्यो को उद्घाटित करने वाली अर्थपरम्परा का अभाव है, अत कही पर विपरीत अर्थप्ररूपणा हो गई हो तो विज्ञगण परिष्कृत करने का अनुग्रह[७५९] करें।

वृत्ति मे आचार्य ने समवाय शब्द की व्याख्या भी की है। व्याख्या करते हुए अनेक स्थलो पर पाठान्तरो के उल्लेख भी किये हैं।[७६०] प्रज्ञापना सूत्र तथा गन्धहस्ती के भाष्य का भी उल्लेख है। यह वृत्ति वि स ११२० मे अणहिल पाटण मे लिखी गयी है। इस का ग्रन्थमान ३५७५ श्लोक-प्रमाण है।

इस आगम पर दूसरी सस्कृत टीका करने वाले पूज्य श्री घासीलालजी म हैं।[७६१] उन्होने आचार्य अभयदेव का अनुसरण करते हुये टीका का निर्माण किया है। यह टीका अपने ढग की है। कही-कही पर टीकाकार ने अपनी दृष्टि से अर्थ की सगति के लिये पाठ मे भी परिवर्तन कर दिया है। जैसे आगामी काल के उत्सर्पिणी मे होने वाले तीर्थंकरो के नामो मे परिवर्तन हुआ है।[७६२] हमारी दृष्टि से, टीका या विवेचन मे लेखक अपने स्वतन्त्र विचार दे, इस मे किसी को आपत्ति नही हो सकती, किन्तु मूल पाठो मे परिवर्तन करने से उनकी प्रामाणिकता लुप्त हो जाती है। अत पाठो को परिवर्तित करना उचित नही।

समवायागसूत्र पर सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद करने वाले आचार्य अमोलक ऋषि जी म हुये है। उन्होने बत्तीस आगमो का हिन्दी मे अनुवाद कर महान् श्रुतसेवा की है।[७६३]

गुजराती भाषा मे पण्डितप्रवर दलसुखभाई मालवणिया[७६४] ने महत्त्वपूर्ण अनुवाद किया है। यह अनुवाद अनुवाद न होकर एक विशिष्ट रचना हो गई है। सर्वत्र मालवणियाजी का पाण्डित्य छलकता है। उन्होने अनुवाद के साथ जो टिप्पण दिये है वे उनके गम्भीर अध्ययन के द्योतक है। अनुसन्धानकर्त्ताओ के लिये यह सस्करण अत्यन्त उपयोगी है।

पण्डितप्रवर मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' ने हिन्दी अनुवाद के साथ समवायाग का प्रकाशन किया है। ग्रन्थ का परिशिष्ट विभाग महत्त्वपूर्ण है। यह सस्करण जिज्ञासुओ के लिए श्रेयस्कर है।[७६५]

---

७५९ समवायाग वृत्ति १-२

७६० "जबुद्दीवे दीवे एग जोयणसयसहस्स आयायविक्खभेण" के स्थान पर "जबुद्दीवे देवे एग जोयणसयसहस्स चक्कवालविक्खभेण" आदि पाठ मिलता है 'नवर जबुद्दीवे इह सूत्रे' 'आयायविक्खभेण' ति क्वचित् पाठो दृश्यते क्वचित्तु "चक्कवालविक्खभेण ति ॥"

—समवायाग वृत्ति—अहमदाबाद सस्करण, पृ ५

७६१ जैनशास्त्रोद्धार समिति, राजकोट सन् १९६२

७६२ श्रीकृष्ण के आगामी भव—एक अनुचिन्तन। लेखक—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

७६३ लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद जी, हैदराबाद वी स २४४६

७६४ गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद सन् १९५५

७६५ आगम अनुयोग प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स न ११४१, दिल्ली ७

आचार्य अभयदेव वृत्ति सहित सर्वप्रथम सन् १८८० मे रायबहादुर धनपतसिंह जी ने एक सस्करण प्रकाशित किया और उसके पश्चात् सन् १९१९ मे आगमोदय समिति सूरत से उसका अभिनव संस्करण प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् सन् १९३८ मे मफतलाल झवेरचन्द ने अहमदाबाद से वृत्ति सहित ही एक सस्करण मुद्रित किया। विक्रम सवत् १९९५ मे जैनधर्म प्रचारक सभा भावनगर से गुजराती अनुवाद सहित सस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

केवल मूलपाठ के रूप मे "सुत्तागमे"[७६६] अगसुत्ताणि,[७६७] अगपविट्ठाणि[७६८] आदि अन्य अग-आगमो के साथ यह आगम भी प्रकाशित है।

इन सस्करणो के अतिरिक्त स्थानकवासी जैन समाज के प्रबुद्ध आचार्य श्री धर्मसिंह मुनि ने समवायाग पर मूलस्पर्शी शब्दार्थ को स्पष्ट करने वाला टब्बा लिखा था पर वह अभी तक अप्रकाशित है।

प्रस्तुत संस्करण

इस तरह समय-समय पर समवायाग सूत्र के सस्करण प्रकाशित होते रहे हैं। प्रस्तुत सस्करण के प्रधान सम्पादक है—श्रमणसघ के तेजस्वी युवाचार्य श्रीमधुकर मुनि जी म। आपके कुशल नेतृत्व मे आगम-प्रकाशन-समिति आगमो के शानदार सस्करण प्रकाशित करने मे सलग्न है। स्वल्पावधि मे अनेक आगम प्रकाशित हो चुके है। प्रत्येक आगम के सम्पादक और विवेचक पृथक्-पृथक् व्यक्ति होने के कारण ग्रन्थमाला मे जो एकरूपता आनी चाहिये थी वह नही आ सकी है। वह आ भी नही सकती है, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र लेखन व सम्पादन शैली होती है। तथापि युवाचार्यश्री ने यह महान् भगीरथ कार्य उठाया है। श्रमणसघ के सम्मेलनो मे तथा स्थानकवासी कान्फ्रेंस दीर्घकाल से यह प्रयत्न कर रही थी कि आगम-बत्तीसी का अभिनव प्रकाशन हो। मुझे परम आह्लाद है कि मेरे परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थानकेशरी अध्यात्मयोगी उपाध्यायप्रवर श्री पुष्करमुनि जी म के सहपाठी व स्नेही सहयोगी युवाचार्यप्रवर ने दत्तचित्त होकर इस कार्य को अतिशीघ्र रूप से सम्पन्न करने का दृढ सकल्प किया है। यह गौरव की बात है। हम सभी का कर्तव्य है कि उन्हे पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य को अधिकाधिक मौलिक रूप मे प्रतिष्ठित करे।

समवायाग के सम्पादक व विवेचक पण्डितप्रवर श्री हीरालाल जी शास्त्री हैं। पण्डित हीरालाल जी शास्त्री दिगम्बर जैन परम्परा के जाने-माने प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। उन्होने अनेक दिगम्बर-ग्रन्थो का सम्पादन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। जीवन की सान्ध्यवेला मे उन्होने श्वेताम्बर परम्परा के महनीय आगम स्थानाग और समवायाग का सम्पादन किया। स्थानाग इसी आगममाला से पूर्व प्रकाशित हो चुका है। अब उनके द्वारा सम्पादित समवायाग सूत्र प्रकाशित हो रहा है। वृद्धावस्था के कारण जितना चाहिये, उतना श्रम वे नही कर सके है। तथा कही-कही परम्पराभेद होने के कारण विषय को पूर्ण स्पष्ट भी नही कर सके हैं। मैंने अपनी प्रस्तावना मे उन सभी विषयो की पूर्ति करने का प्रयास किया है। तथापि मूलस्पर्शी भावानुवाद और जो यथास्थान सक्षिप्त विवेचन दिया है, वह उन के पाण्डित्य का स्पष्ट परिचायक है।

सम्पादनकलामर्मज्ञ कलमकलाधर पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, जो श्वेताम्बर आगमो के तलस्पर्शी

७६६ धर्मोपदेष्टा फूलचन्द जी म सम्पादित, गुडगाव—पजाब

७६७ मुनि श्री नथमल जी सम्पादित, जैन विश्वभारती, लाडनू

७६८ जैन सस्कृति रक्षक सघ-सैलाना (मध्यप्रदेश)

विद्वान् हैं, उनकी सम्पादनकला का यत्र-तत्र सहज ही दिग्दर्शन होता है। वस्तुत भारिल्ल जी आगमो को सर्वाधिक सुन्दर व प्रामाणिक बनाने के लिये जो श्रमसाध्य कार्य कर रहे हैं, वह उन की आगम-निष्ठा का द्योतक है।

समवायाग की प्रस्तावना का आलेखन करते समय अनेक व्यवधान उपस्थित हुये। उन में सबसे बडा व्यवधान प्रकृष्ट प्रतिभा की धनी आगम व दर्शन की गम्भीर ज्ञाता पूज्य मातेश्वरी साध्वीरत्न महासती श्री प्रभावती जी का सथारे के साथ अकस्मात् दि २७ जनवरी १९८२ को स्वर्गवास हो जाना रहा। माँ की ममता निराली होती है। माता-पिता के उपकारो को भुलाया नही जा सकता। जिस मातेश्वरी ने मुझे जन्म ही नही दिया, अपितु साधना के महामार्ग पर बढने के लिये उत्प्रेरित किया, उसके महान् उपकार को कैसे भुलाया जा सकता है, तथापि कर्तव्य की जीती जागती प्रतिमा का यही हार्दिक आशीर्वाद था कि 'वत्स ! खूब श्रुतसेवा करो!' उसी सबल को लेकर मैं प्रस्तावना की ये पक्तियाँ लिख गया हूँ। आशा है प्रस्तुत आगम अत्यधिक लोकप्रिय होगा और स्वाध्यायप्रेमियों के लिये यह सस्करण अत्यन्त उपयोगी रहेगा।

जैन स्थानक
मोकलसर (राज)
दि २६ फरवरी, १९८२

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

नवस्थानक-समवाय	२२
ब्रह्मचर्यगुप्तियाँ, अगुप्तियाँ, ब्रह्मचर्य-अध्ययन, पार्श्वनाथ की अवगाहना, नक्षत्र, तारा-सचार, जम्बूद्वीप मे मत्स्यप्रवेश, विजयद्वार, वाण-व्यन्तरो की सुधर्मा सभा, दर्शनावरण की प्रकृतियाँ, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	
दशस्थानक-समवाय	२५
श्रमणधर्म, समाधिस्थान, मन्दर पर्वत, अरिष्टनेमि-अवगाहना, ज्ञानवृद्धिकारी नक्षत्र, कल्पवृक्ष, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	
एकादशस्थानक-समवाय	२९
उपासकप्रतिमा, ज्योतिश्चक्र, भ महावीर के गणधर, मूलनक्षत्र, ग्रैवेयक, मदर पवत, स्थिति श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	
द्वादशस्थानक-समवाय	३२
भिक्षुप्रतिमा, सभोग, कृतिकर्म, विजया राजधानी, राम बलदेव, मन्दर-चूलिका, जम्बूद्वीपवेदिका, जघन्य रात्रि-दिवस, ईषत्प्राग्भार पृथ्वी, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	
त्रयोदशस्थानक-समवाय	३८
क्रियास्थान, विमानप्रस्तट, जलचरपचेन्द्रिय जीवो की कुलकोटि, प्राणायुपूव की वस्तु, प्रयोग, सूर्यमडल का विस्तार, स्थिति, आहार, सिद्धि।	
चतुर्दशस्थानक-समवाय	४०
भूतग्राम, पूर्व, जीवस्थान, भरत-ऐरवत-जीवा, चक्रवर्तीरत्न, महानदी, स्थिति, श्वासोच्छ्वास आहार, सिद्धि।	
पञ्चदशस्थानक-समवाय	४६
परमाधार्मिक देव, नमि अर्हत् की अवगाहना, ध्रुवराहु, नक्षत्र, १५ मुहूर्त के दिन-रात्रि, विद्यानुवादपूर्व के वस्तु, मनुष्य प्रयोग, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	
षोडशस्थानक-समवाय	४९
गाथाषोडशक, कषाय, मन्दर-नाम, पार्श्व की श्रमणसपदा, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, स्थिति।	
सप्तदशस्थानक-समवाय	५१
असयम, सयम, मानुषोत्तर पर्वत, आवासपर्वत, चारणगति, चमर का उत्पातपर्वत, मरण, कर्मप्रकृतिवेदन, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	
अष्टादशस्थानक-समवाय	५६
ब्रह्मचर्य, अरिष्टनेमि की श्रमणसम्पदा, निर्ग्रन्थस्थान, आचाराग-पद, ब्राह्मीलिपि के लेखविधान, अस्तिनास्तिप्रवाद के वस्तु, धूमप्रभा पृथ्वी, उत्कृष्ट रात-दिन, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि।	

एकोनविंशतिस्थानक समवाय	५९
ज्ञाता-अध्ययन, जम्बूद्वीप मे सूर्य, शुक्र महाग्रह, जम्बूद्वीप, तीर्थंकरो का अगारवास, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
विंशतिस्थानक समवाय	६१
असमाधिस्थान, मुनिसुव्रत की अवगाहना, घनोदधि का बाहल्य, प्राणतेन्द्र के सामानिक देव, कर्मस्थिति, प्रत्याख्यानपूर्व के वस्तु, कालचक्र, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
एकविंशतिस्थानक समवाय	६३
शबल दोष, कर्मप्रकृति, पचम-षष्ठ आरक का कालप्रमाण, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
द्वाविंशतिस्थानक समवाय	६५
परीषह, दृष्टिवाद, पुद्गलपरिणाम, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
त्रयोविंशतिस्थानक समवाय	६७
सूत्रकृताग के अध्ययन, तेईस तीर्थंकरो को सूर्योदयकाल मे केवलज्ञान, पूर्वभव मे एकादशागी, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
चतुर्विंशतिस्थानक समवाय	६९
देवाधिदेव (तीर्थंकर), चुल्लहिमवत-शिखरिजीवा, स-इन्द्र देवस्थान, उत्तरायणसूर्य, गगा, गगा-सिन्धु महानदी, रक्ता-रक्तोदा महानदी, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
पचविंशतिस्थानक समवाय	७०
पच यामो की भावनाएँ, मल्लिनाथ की अवगाहना, दीर्घवैताढ्य पर्वत, दूसरी पृथ्वी के नारकावास, आचाराग के अध्ययन, मिथ्यादृष्टि-विकलेन्द्रिय का कर्मप्रकृतिबध, गगा-सिन्धु, रक्ता-रक्तवती महानदी, लोकबिन्दुसार के वस्तु, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
षड्विंशतिस्थानक समवाय	७५
दशाकल्प-व्यवहार के उद्देशनकाल, कर्मप्रकृतिसत्ता, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
सप्तविंशतिस्थानक समवाय	७६
अनगार-गुण, नक्षत्रो से व्यवहार, नक्षत्रमास, सौधर्म-ईशान कल्प की पृथ्वी का बाहल्य, कर्मप्रकृति, सूर्य का चार, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
अष्टाविंशतिस्थानक समवाय	७९
आचारप्रकल्प, मोहकर्म की सत्ता, आभिनिबोधिक ज्ञान, ईशान कल्प मे विमानो की सख्या, कर्मप्रकृतिबन्ध, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	
एकोनत्रिंशत्स्थानक समवाय	८३
पापश्रुतप्रसग, आषाढ आदि मासो मे रात्रि-दिवस की सख्या, देवो मे उत्पत्ति, स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार, सिद्धि ।	

एकोनसप्ततिस्थानक समवाय	१२८
समयक्षेत्र मे वर्ष और वर्षधर पवत, मदर पर्वत का अन्तर, कर्म-प्रकृतियाँ ।	
सप्ततिस्थानक समवाय	१२९
श्रमण भ महावीर का वर्षावास, पार्श्व जिन की श्रमण पर्याय, वासुपूज्य, जिन की अवगाहना, मोहनीय कर्म की स्थिति, माहेन्द्र देवराज के सामानिक देव ।	
एकसप्ततिस्थानक समवाय	१३०
चन्द्रमा का अयन-परिवर्त्तन, वीर्यप्रवाद पूर्व के प्राभृत, अजित जिन का गृहवासकाल, सगर चक्रवर्त्ती का गृहवासकाल और श्रामण्य ।	
द्विसप्ततिस्थानक समवाय	१३०
सुपर्णकुमारो के आवास, लवणसमुद्र की वेला का धारण, महावीर जिन का आयुष्य, आभ्यन्तर पुष्करार्ध मे चन्द्र-सूर्य, बहत्तर कलाएँ, खेचरो की स्थिति ।	
त्रिसप्ततिस्थानक समवाय	१३४
हरिवास-रम्यकवास की जीवाएँ, विजय बलदेव की सिद्धि ।	
चतु सप्ततिस्थानक समवाय	१३४
अग्निभूति की आयु, सीतोदा तथा सीता महानदी, नारकावास ।	
पञ्चसप्ततिस्थानक समवाय	१३५
सुविधि जिन के केवली, शीतल और शान्तिनाथ का गृहवास ।	
षटसप्ततिस्थानक समवाय	१३६
विद्युत्कुमार आदि भवनपतियो का आवास ।	
सप्तसप्ततिस्थानक समवाय	१३६
भरत चक्रवर्त्ती, अगवश के राजाओ की प्रव्रज्या, गर्दतोय तुषित लोकान्तिको का परिहार, मुहूर्त्त का परिमाण ।	
अष्टसप्ततिस्थानक समवाय	१३७
वैश्रमण लोकपाल, स्थविर अकपित, सूर्य-सचार से दिन रात्रि के वृद्धि-ह्रास का नियम ।	
एकोनाशीतिस्थानक समवाय	१३७
रत्नप्रभा पृथ्वी से वलयामुख पाताल का तथा अन्य पातालो का अन्तर, छठी पृथ्वी और घनोदधि का अन्तर, जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर ।	
अशीतिस्थानक समवाय	१३९
श्रेयास जिन की अवगाहना, त्रिपृष्ठ वासुदेव की अवगाहना, अचल बलदेव की अवगाहना, त्रिपृष्ठ वासुदेव का राजकाल, अप्-बहुल काण्ड की मोटाई, ईशानेन्द्र के सामानिक देव, जम्बूद्वीप मे प्रथम मडल मे सूर्योदय ।	

एकाशीतिस्थानक समवाय १३९

भिक्षुप्रतिमा, कुन्थु जिन के मन पर्यवज्ञानी, व्याख्याप्रज्ञप्ति के महायुग्मशत ।

द्वि-अशीतिस्थानक समवाय १४०

सूर्य-सचार, भ महावीर का गर्भापहरण, महाहिमवन्त एव रुक्मि पर्वत के सौगधिक काण्ड का अन्तर ।

त्रि-अशीतिस्थानक समवाय १४१

भ महावीर का गर्भापहार, शीतल जिन के गण और गणधर, स्थ मडितपुत्र का आयुष्य, ऋषभ का गृहवासकाल, भरत राजा का गृहस्थकाल ।

चतुरशीतिस्थानक समवाय १४२

नारकावास, ऋषभ जिन का आयुष्य, भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी का आयुष्य, श्रेयास जिन का आयु, त्रिपृष्ठ वासुदेव का नरक मे उत्पाद, देवेन्द्र शक्र के सामानिक देव, जम्बूद्वीप के बाहर के मदिरो और अजनक पर्वतो की ऊचाई, हरिवर्ष एव रम्यक वर्ष की जीवाओ के धनु पृष्ठ का परिक्षेप, पकबहुल काण्ड के चरमान्तो का अन्तर, व्याख्याप्रज्ञप्ति के पद, नागकुमारावास, प्रकीर्णक, जीवयोनियाँ, पूर्वादि सख्याओ का गुणाकार, ऋषभ जिन की श्रमणसम्पदा, विमानावास ।

पञ्चाशीतिस्थानक समवाय १४४

आचाराग के उद्देशनकाल, धातकीखड के मदर रुचकद्वीप के माण्डलिक पर्वतो की ऊचाई, नन्दनवन ।

षडशीतिस्थानक समवाय १४५

सुविधि जिन के गण और गणधर, सुपार्श्व जिन की वादी-सम्पदा, दूसरी पृथ्वी से घनोदधि का अन्तर ।

सप्ताशीतिस्थानक समवाय १४६

मन्दर पर्वत, कर्मप्रकृति, महाहिमवन्तपर्वत एव सौगधिक कूट का अन्तर ।

अष्टाशीतिस्थानक समवाय १४७

सूर्य-चन्द्र के महाग्रह, दृष्टिवाद के सूत्र, मन्दर एव गोस्तूभ पर्वत का अन्तर, सूर्यसचार से दिवस-रात्रिक्षेत्र का वृद्धि-ह्रास ।

एकोननवतिस्थानक समवाय १४९

ऋषभ जिन का सिद्धिकाल, महावीर जिन का निर्वाणकाल, हरिषेण चक्रवर्ती का राजकाल, शान्ति जिन की आर्याएँ ।

नवतिस्थानक समवाय १४९

शीतलनाथ की अवगाहना, स्वयभू वासुदेव का विजयकाल, वैताढय पर्वत और सौगधिक काण्ड का अन्तर ।

द्वादशाङ्ग गणिपिटक

पचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं चउत्थ अगं

समवायंगसुत्तं

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्मस्वामि-विरचित चतुर्थम् अङ्गम्

समवायांगसूत्रम्

श्रीसमवायाङ्गसूत्रम्

१—सुय मे आउस ! तेण भगवया एवमक्खाय—[इह खलु समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयसबुद्धेण पुरिसुत्तमेण पुरिससीहेणं पुरिसवरपुडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगुत्तमेणं लोगनाहेणं लोगहिएण लोगपईवेणं लोगपज्जोअगरेण अभयदएण चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएण जीवदएण बोहिदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मसारहिणा धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टिणा अप्पडिहय-वर-नाण-दसणधरेणं वियट्टछउमेण जिणेण जावएण तिन्नेण तारएणं बुद्धेणं बोहएण मुत्तेणं मोयगेण सव्वन्नुणा सव्वदरिसिणा सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धि-गइनामधेय ठाणं सपाविउकामेण इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पन्नते । त जहा —

आयारे १ सूयगडे २ ठाणे ३. समवाए ४. विवाहपन्नती ५ नायाधम्मकहाओ ६. उवासग-दसाओ ७. अतगडदसाओ ८. अणुत्तरोववाइदसाओ ९ पण्हावागरण १०. विवागसुयं ११ दिट्ठिवाए १२ ।

हे आयुष्मन् ! उन भगवान् ने ऐसा कहा है, मैंने सुना है। [इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के अन्तिम समय मे विद्यमान उन श्रमण भगवान् महावीर ने द्वादशाग गणिपिटक कहा है । वे भगवान्—आचार आदि श्रुतधर्म के आदिकर है, (अपने समय मे धर्म के आदि प्रणेता है) । तीर्थंकर है, (धर्मरूप तीर्थ के प्रवर्तक है) स्वय सम्यक् बोधि को प्राप्त हुए हैं। पुरुषो मे रूपातिशय आदि विशिष्ट गुणो के धारक होने से, एव उत्तम वृत्ति वाले होने से पुरुषोत्तम हैं। सिह के समान पराक्रमी होवे से पुरुषसिह है, पुरुषो मे उत्तम सहस्र पत्र वाले श्वेत कमल के समान श्रेष्ठ होने से पुरुषवर-पुण्डरीक है। पुरुषो मे श्रेष्ठ गन्धहस्ती जैसे है, जैसे गन्धहस्ती के मद की गन्ध से बडे-बडे हाथी भाग जाते हैं, उसी प्रकार आपके नाम की गन्धमात्र से बडे-बडे प्रवादी रूपी हाथी भाग खडे होते हैं। वे लोकोत्तम है, क्योकि ज्ञानातिशय आदि असाधारण गुणो से युक्त हैं और तीनो लोको के स्वामियो द्वारा नमस्कृत है, इसलिए तीनो लोको के नाथ है और अधिप अर्थात् स्वामी है क्योकि जो प्राणियो के योग-क्षेम को करना है, वही नाथ और स्वामी कहा जाता है । लोक के हित करने से—उनका उद्धार करने से—लोकहितकर है। लोक मे प्रकाश और उद्योत करने से लोक-प्रदीप और लोक-प्रद्योतकर हैं। जीवमात्र को अभयदान के दाता हैं, अर्थात् प्राणिमात्र पर अभया (दया और करुणा) के धारक हैं, चक्षु (नेत्र) का दाता जैसे महान् उपकारी होता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर अज्ञान रूप अन्धकार मे पडे प्राणियो को सन्मार्ग के प्रकाशक होने से चक्षु-दाता हैं और सन्मार्ग पर लगाने से मार्गदाता हैं, बिना किसी भेद-भाव के प्राणिमात्र के शरणदाता है, जन्म-मरण के चक्र से छुडाने के कारण अक्षय जीवन के दाता हैं, सम्यक् बोधि प्रदान करने वाले है, दुर्गतियो मे गिरते हुए जीवो को बचाने के कारण धर्म-दाता हैं, सद्धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नायक है, धर्मरूप रथ के सचालन करने से धर्म के सारथी हैं। धर्मरूप चक्र के चतुर्दिशाओ मे और चारो गतियो मे प्रवर्तन करने से धर्मवर-चातुरन्त चक्रवती है। प्रतिघात-रहित निरावरण श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल-दर्शन के धारक हैं। छद्म अर्थात् आवरण और छल-प्रपच से सर्वथा निवृत्त होने के कारण व्यावृत्तछद्म है—सर्वथा निर्दोष

हैं। विषय-कषायो को जीतने से स्वय जिन हैं, और दूसरो के भी विषय-कषायो को छुडाने से और उन पर विजय प्राप्त कराने का मार्ग बताने से ज्ञापक है या जय-प्रापक हैं। स्वय ससार-सागर से उत्तीर्ण हैं और दूसरो के उत्तारक हैं। स्वय बोध को प्राप्त होने से बुद्ध हैं और दूसरो को बोध देने से बोधक है। स्वय कर्मों से मुक्त है और दूसरो के भी कर्मों के मोचक है। जो सर्व जगत् के जानने से सर्वज्ञ और सर्वलोक के देखने से सर्वदर्शी है। जो अचल, अरुज, (रोग-रहित) अनन्त, अक्षय, अव्याबाध (बाधाओ से रहित) और पुन आगमन से रहित ऐसी सिद्ध-गति नाम के अनुपम स्थान को प्राप्त करने वाले हैं। ऐसे उन भगवान् महावीर ने यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक कहा है।

वह इस प्रकार है—आचाराङ्ग १, सूत्रकृताङ्ग २, स्थानाङ्ग ३, समवायाङ्ग ४, व्याख्या-प्रज्ञप्ति-अङ्ग ५, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ६, उपासकदशाङ्ग ७, अन्तकृतदशाङ्ग ८, अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग ९, प्रश्नव्याकरणाग १०, विपाक-सूत्राग ११, और दृष्टिवादाग १२।

विवेचन—श्रमण भगवान् महावीर ने अपनी धर्मदेशना मे जिस बारह अगरूप गणिपिटक का उपदेश दिया, उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ **आचाराङ्ग**—मे साधुजनो के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य, इन पाच प्रकार के आचारधर्म का विवेचन है।

२ **सूत्रकृताङ्ग**—मे स्वमत, पर-मत और स्व-पर-मत का विवेचन किया गया है, तथा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष इन नौ पदार्थों का निरूपण है।

३. **स्थानाङ्ग**—मे एक से लेकर दश स्थानो के द्वारा एक-एक, दो-दो आदि की सख्या वाले पदार्थों या स्थानो का निरूपण है।

४. **समवायाङ्ग**—मे एक, दो आदि सख्यावाले पदार्थों से लेकर सहस्रो पदार्थों के समुदाय का निरूपण है।

५ **व्याख्याप्रज्ञप्ति-अग**—मे गणधर देव के द्वारा पूछे गये ३६ हजार प्रश्नो का और भगवान् के द्वारा दिये गये उत्तरो का सकलन है।

६. **ज्ञाताधर्मकथाङ्ग**—मे परीषह-उपसर्ग-विजेता पुरुषो के अर्थ-गर्भित दृष्टान्तो एव धार्मिक पुरुषो के कथानको का विवेचन है।

७. **उपासकदशाङ्ग**—मे उपासको (श्रावको) के परम धर्म का विधिवत् पालन करने और अन्त समय मे सलेखना की आराधना करने वाले दश महाश्रावको के चरित्रो का वर्णन है।

८ **अतकृत्दशाङ्ग**—के महाघोर परीषह और उपसर्ग सहन करते हुए केवल-ज्ञानी हो अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही कर्मों का अन्त करने वाले महान् अनगारो के चरितो का वर्णन है।

९. **अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग**—मे घोर-परीषह सहन कर और अन्त मे समाधि से प्राण त्याग कर पच अनुत्तर महाविमानो मे उत्पन्न होने वाले अनगारो का वर्णन है।

१०. **प्रश्नव्याकरणाङ्ग**—मे स्वसमय, पर-समय, और स्व-परसमय-विषयक प्रश्नो का, मन्त्र-विद्या आदि के साधने का और उनके अतिशयो का वर्णन है।

११. **विपाकसूत्राङ्ग**—मे महापाप करने वाले और उसके फलस्वरूप घोर दु.ख पाने वाले

पापी पुरुषो का, तथा महान् पुण्योपार्जन करनेवाले और उसके फलस्वरूप सासारिक सुखो को पाने वाले पुण्यात्मा जनो का चरित्र-वर्णन है।

१२. **दृष्टिवादाङ्ग**—मे परिकर्म, सूत्र, पूर्व, अनुयोग और चूलिका नामक पाच महा अधिकारो के द्वारा गणितशास्त्र का, ३६३ अन्य मतो का, चौदह पूर्वों का, महापुरुषो के चरितो का एव जलगता, आकाशगता आदि पाच चूलिकाओ का बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है। वस्तुत· द्वादशाङ्ग श्रुत में यह दृष्टिवाद अग ही सबसे बडा है।

इस द्वादशाग श्रुत को 'गणिपिटक' कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे 'पिटक' पिटारी, पेटी, मजूषा या आज के शब्दो मे सन्दूक या बॉक्स मे कोई भी व्यापारी अपनी मूल्यवान् वस्तुओ को सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार गणी अर्थात् साधु-साध्वी-सघ के स्वामी आचार्य का यह भगवान् के द्वादशाग श्रुतरूप अमूल्य प्रवचनो को सुरक्षित रखने वाला पिटक या पिटारा है।

२· **तत्थ ण जे से चउत्थे अगे समवाए त्ति आहिते तस्स ण अयमट्ठे पन्नत्ते। त जहा—**

उस द्वादशाग श्रुतरूप गणिपिटक मे यह समवायाग चौथा अग कहा गया है, उसका यह अर्थ इस प्रकार है—

विवेचन—प्रतिनियत सख्या वाले पदार्थों के सम्-सम्यक् प्रकार से अवाय—निश्चय या परिज्ञान कराने से इस अग का 'समवाय' यह सार्थक नाम है।

एकस्थानक-समवाय

३—**एगे आया, एगे अणाया। एगे दडे, एगे अदडे। एगा किरिया, एगा अकिरिया। एगे लोए, एगे अलोए। एगे धम्मे, एगे अधम्मे। एगे पुण्णे, एगे पावे। एगे बधे, एगे मोक्खे। एगे आसवे, एगे संवरे। एगा वेयणा, एगा णिज्जरा।**

आत्मा एक है, अनात्मा एक है, दड एक है, अदड एक है, क्रिया एक है, अक्रिया एक है, लोक एक है, अलोक एक है, धर्मास्तिकाय एक है, अधर्मास्तिकाय एक है, पुण्य एक है, पाप एक है, बन्ध एक है, मोक्ष एक है, आस्रव एक है, सवर एक है, वेदना एक है और निर्जरा एक है।

विवेचन—यद्यपि आत्मा-अनात्मा आदि (अचेतन पुद्गलादि) पदार्थ अनेक हैं, किन्तु द्रव्यार्थिक-सग्रह नय की अपेक्षा उनकी एकता उक्त सूत्रो मे प्रतिपादित की गई है। इसका कारण यह है कि सभी जीव प्रदेशो की अपेक्षा असख्यात प्रदेशी होते हुए भी जीव द्रव्य की अपेक्षा एक है। अथवा त्रिकाल अनुगामी चेतनत्व की अपेक्षा एक है। इसी प्रकार अनात्मा-आत्मा से भिन्न घट-पटादि अचेतन पदार्थ अचेतनत्व सामान्य की अपेक्षा एक है। दण्ड अर्थात् हिंसादि सभी प्रकार के पाप, मन, वचन, काय की खोटी प्रवृत्ति रूप है अत दण्ड भी एक है। अहिंसक या प्रशस्त मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप होने से अदण्ड भी एक है। इसो प्रकार क्रिया-अक्रिया, लोक-अलोक, धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय, पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष, आस्रव-सवर, वेदना और निर्जरा इन सभी परस्पर प्रतिपक्षी या

सापेक्ष पदार्थों को भी सग्रह नय की अपेक्षा समान धर्मवाले होने से एक-एक जानना चाहिए। जैन सिद्धान्त मे सभी कथन नयो की अपेक्षा से किया जाता है। समवायाङ्ग के इस प्रथम स्थानक मे सर्व कथन सग्रह नय की अपेक्षा से एक रूप मे किया गया है।

४—जबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्स आयामविक्खमेण पन्नत्ते। पालए जाणविमाणे एगं जोयणसयसहस्स आयाम-विक्खमेण पन्नत्ते। सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे एग जोयणसयसहस्स आयाम-विक्खमेणं पन्नत्ते।

जम्बूद्वीप नामक यह प्रथम द्वीप आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौडाई) की अपेक्षा शत-सहस्र (एक लाख) योजन विस्तीर्ण कहा गया है। सौधर्मेन्द्र का पालक नाम का यान (यात्रा के समय उपयोग मे आने वाला पालक नाम के आभियोग्य देव की विक्रिया से निर्मित विमान) एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है। सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर महाविमान एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है।

भावार्थ—जम्बूद्वीप, पालक यान-विमान और सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर महाविमान एक एक लाख योजन रूप समान विस्तार वाले है।

५ अद्दानक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते। चित्तानक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते। सातिनखत्ते एगतारे पन्नत्ते।

आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है। स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है।

६—इमीसे ण रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण एग पलिओवम ठिई पन्नत्ता। इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेण एग सागरोवम ठिई पन्नत्ता। दोच्चाए पुढवीए नेरइयाण जहन्नेण एग सागरोवम ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइयाण एग पलिओवम ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराण देवाण उक्कोसेण एग साहिय सागरोवम ठिई पन्नत्ता। असुरकुमारिंद-वज्जियाण भोमिज्जाणं देवाण अत्थेगइयाण एगं पलिओवम ठिई पन्नता। असखिज्जवासाउअसन्नि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं अत्थेगइयाणं एव पलिओवम ठिई पन्नत्ता। असखिज्जवासाउय-गब्भ-वक्कंतियसन्निमणुयाण अत्थेगइयाण एगं पलिओवमं ठिई पन्नता।

इसी रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। इसी रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है। दूसरी शर्करा पृथिवी मे नारकियो की जघन्य स्थिति एक सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। असुरकुमार देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक सागरोपम कही गई है। असुरकुमारेन्द्रो को छोड कर शेष भवनवासी कितनेक देवो की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। कितनेक असख्यात वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। कितनेक असख्यात वर्षायुष्क गर्भोपक्रान्तिक सज्ञी मनुष्यो की स्थिति एक पल्योपम कही गई है।

७—वाणमंतराण देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवम ठिई पन्नता। जोइसियाणं देवाण उक्कोसेणं एगं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहिय ठिई पन्नत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाण जहन्नेणं एगं

पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाण एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं जहन्नेणं साइरेगं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवम ठिई पन्नत्ता।

वानव्यन्तर देवो की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम कही गई है। ज्योतिष्क देवो की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष से अधिक एक पल्योपम कही गई है। सौधर्मकल्प मे देवो की जघन्य स्थिति एक पल्योपम कही गई है। सौधर्मकल्प मे कितनेक देवो की स्थिति एक सागरोपम कही गई है। ईशानकल्प मे देवो की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम कही गई है। ईशानकल्प मे कितनेक देवो की स्थिति एक सागरोपम कही गई है।

८—जे देवा सागर सुसागर सागरकंत भवं मणु माणुसोत्तरं लोगहियं विमाण देवत्ताए उववन्ना, तेसि ण देवाण उक्कोसेण एग सागरोवम ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा एकस्स अद्धमासस्स आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति या नीससंति वा। तेसि ण देवाण एगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगेण भवग्गहणेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमत करिस्संति।

जो देव सागर, सुसागर, सागरकान्त, भव, मनु मानुषोत्तर और लोकहित नाम के विशिष्ट विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है। वे देव एक अर्धमास मे (पन्द्रह दिन मे) आन-प्राण अथवा उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के एक हजार वर्ष मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो एक मनुष्य भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। एकस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्विस्थानक-समवाय

९—दो दडा पन्नत्ता। त जहा—अट्ठादंडे चेव, अणत्थादडे चेव। दुवे रासी पण्णत्ता। त जहा—जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव। दुविहे बधणे पन्नत्ते। त जहा—रागबधणे चेव, दोस-बधणे चेव।

दो दण्ड कहे गये हैं, जैसे—अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड। दो राशि कही गई हैं, जैसे—जीवराशि और अजीवराशि। दो प्रकार के बधन कहे गये हैं, जैसे—रागबधन और द्वेषबधन।

विवेचन—हिंसादि पापरूप प्रवृत्ति को दड कहते हैं। जो दड अपने और पर के उपकार के लिए प्रयोजन-वश किया जाता है, उसे अर्थदड कहते है। किन्तु जो पापरूप दड विना किसी प्रयोजन के निरर्थक किया जाता है, उसे अनर्थदड कहते है। कर्मों का बन्ध कराने वाले बन्धन रागरूप भी होते हैं और द्वेषरूप भी होते हैं। कषायो से कर्मबन्ध होता है। क्रोध और मान कषाय द्वेष रूप हैं और माया तथा लोभकषाय रागरूप हैं।

१०—पुव्वा फग्गुणी नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते। उत्तराफग्गुणी नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते। पुव्वाभद्दवया नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते। उत्तराभद्दवया नक्खत्ते दुतारे पन्नत्ते।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है।

११—इमीसे ण रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण दो पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। दुच्चाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण दो सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। दूसरी पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति दो सागरोपम कही गई है।

१२—असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइयाण दो पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। असुरकुमारिंद-वज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाण उक्कोसेण देसूणाइ दो पलिम्रोवमाइ ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासाउय-सन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण अत्थेगइयाण दो पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। असंखिज्जवासउय-गब्भवक्कंतियसन्निपंचिंदिय-मणुस्साण अत्थेगइयाणं, दो पलिम्रोवमाइ ठिई पन्नत्ता।

कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। असुरकुमारेन्द्रो को छोडकर शेष भवनवासी देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम दो पल्योपम कही गई है। असख्यात वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक कितने ही जीवो की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। असख्यात वर्षायुष्क गर्भोपक्रान्तिक पचेन्द्रिय सज्ञी कितनेक मनुष्यो की स्थिति दो पल्योपम कही गई है।

१३—सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाण देवाण दो पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे अत्थे-गइयाण देवाणं दो पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाण देवाण उक्कोसेणं दो सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। ईसाणे कप्पे देवाण उक्कोसेण साहियाइ दो सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। सणंकुमारे कप्पे देवाण जहण्णेणं दो सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। माहिंदे कप्पे देवाण जहण्णेण साहियाइ दो सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता।

सौधर्म कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। ईशान कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। सौधर्म कल्प मे कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है। ईशान कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम कही गई है। सनत्कुमार कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति दो सागरोपम कही गई है। माहेन्द्रकल्प मे देवो की जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम कही गई है।

१४—जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंध सुभलेस्सं सुभफास सोहम्मवडिंसग विमाण देवत्ताए उववण्णा, तेसिं णं देवाण उक्कोसेणं दो सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। ते ण देवा दोण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, उससंति वा, नीससंति वा। तेसिं ण देवाण दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दोहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

जो देव शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्शवाले सौधर्मावतंसक विशिष्ट विमानो में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है। वे देव दो अर्धमासों में (एक मास में) आनप्राण या उच्छ्वास-नि:श्वास लेते हैं। उन दो देवो के दो हजार वर्ष मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दो भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दु:खो का अन्त करेंगे।

।। द्विस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रिस्थानक-समवाय

१५—तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे वयदंडे कायदंडे। तओ गुत्तीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती, वयगुत्ती, कायगुत्ती। तओ सल्ला पन्नत्ता। तं जहा—मायासल्ले णं नियाणसल्ले णं मिच्छादंसणसल्ले ण। तओ गारवा पन्नत्ता, तं जहा—इड्ढीगारवे ण रसगारवे ण सायागारवे ण। तओ विराहणा पन्नत्ता, तं जहा—नाणविराहणा दंसणविराहणा चरित्तविराहणा।

तीन दड कहे गये हैं, जैसे—मनदड, वचनदड, कायदड। तीन गुप्तियाँ कही गई है, जैसे—मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। तीन शल्य कही गई हैं, जैसे—मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यादर्शन-शल्य। तीन गौरव कहे गये हैं, जैसे—ऋद्धिगौरव, रसगौरव, सातागौरव। तीन विराधना कही गई हैं, जैसे—ज्ञानविराधना, दर्शनविराधना, चारित्रविराधना।

विवेचन—जिसके द्वारा चारित्र रूप ऐश्वर्य नि सार किया जावे, उसे दड कहते हैं। मन, वचन, काय की खोटी प्रवृत्ति के द्वारा चरित्र नष्ट होता है, अत: दड के तीन भेद कहे गये हैं। यत: मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्ति के रोकने को, एव शुभ प्रवृत्ति के करने को गुप्ति कहते है, अत गुप्ति के भी तीन भेद कहे गये हैं। जो शरीर मे चुभे हुए—भीतर ही भीतर प्रविष्ट वाण आदि के समान अन्तरग मे दु:ख का वेदन करावे उन्हे शल्य कहते है। मायाचारी की माया उसे भीतर पीडित करती रहती है कि कही मेरी माया या छल-छद्म प्रकट न हो जावे। दूसरी शल्य निदान है। देवादिक के ऋद्धि-वैभवादि को देखकर अपनी तपस्या के फलस्वरूप उनकी कामना करने को निदान कहते हैं। निदान करने वाले का चित्त सदा उन सुखादि को पाने की लालसा से निरन्तर सन्तप्त रहता है, इस-लिए निदान को भी शल्य कहा है। तीसरी शल्य मिथ्यादर्शन है। इसके प्रभाव से जीव सदा ही पर-वस्तुओ को प्राप्त करने की अभिलाषा से बेचैन रहता है। पर-वस्तु की चाह करना मिथ्यादर्शन है इसीलिए इसे शल्य कहा गया है। अभिमान, लोभ आदि के द्वारा अपनी आत्मा को गुरु या भारी बनाने को गौरव कहते हैं। ऋद्धि-वैभवादि के द्वारा अपने को गौरवशाली मानना ऋद्धिगौरव कहलाता है। घी, दूध, मिष्ट आदि रसो के खाये विना मैं नही रह सकता, अत. उनके खाने-पीने मे गौरव का

अनुभव करना, उनके प्राप्त होने से अभिमान करना रसगौरव कहलाता है। मेरे से ये परीषह-उपसर्गादि नही सहे जाते, मैं शीत-उष्ण की बाधा नही सह सकता, इत्यादि प्रकार से अपनी सुख-शीलता को प्रकट करना या साता प्राप्त होने पर अहकार करना सातागौरव है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीनों मोक्ष के मार्ग है, उनकी विराधना करने से विराधना के भी तीन भेद हो जाते हैं।

१६—मिगसिरनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। पुस्सनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। जेट्ठानक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। अभीइनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। सवणनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। अस्सिणिनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते। भरणीनक्खत्ते तितारे पन्नत्ते।

मृगशिर नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। पुष्य नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। ज्येष्ठा नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। अभिजित् नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। श्रवण नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। अश्विनी नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है। भरणी नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है।

१७—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण णेरइयाण तिण्णि पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। दोच्चाए ण पुढवीए णेरइयाण उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तच्चाए णं पुढवीए णेरइयाण जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

इम रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। दूसरी शर्करा पृथिवी मे नारकियो की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। तीसरी वालुका पृथिवी मे नारकियो की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है।

१८—असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइयाण तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। असखिज्जवासा-उयसन्निपचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। असखिज्जवासाउय-सन्निगब्भवक्कतियमणुस्साणं उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता।

कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। असख्यात वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। असख्यात वर्षायुष्क सज्ञी गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कही गई है।

१९—सणकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण तिण्णि सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। जे देवा आभंकरं पभकर आभकर-पभकर चंद चंदावत्तं चदप्पभ चंदकतं चदवण्णं चदलेस चदज्झय चदसिग चदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसिं णं देवाणं उक्कोसेण तिण्णि सागरोव-माइं ठिई पन्नत्ता, ते ण देवा तिण्हं अद्धमासाण आणमति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा, तेसिं णं देवाण तिहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तिहि भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति, बुज्झिस्संति, मुच्चिस्संति, परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। जो देव

आभकर, प्रभकर, आभकर-प्रभकर, चन्द्र, चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रश्रृ ग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतसक नाम वाले विशिष्ट विमानो मे देव-रूप से उत्पन्न होते है, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। वे देव तीन अर्धमासो मे (डेढ मास मे) आन-प्राण अर्थात् उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को तीन हजार वर्ष मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो तीन भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण प्राप्त करेगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। त्रिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुःस्थानक-समवाय

२०—चत्तारि कसाया पन्नत्ता, तं जहा– कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोभकसाए। चत्तारि झाणा पन्नत्ता, त जहा—अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे। चत्तारि विकहाओ पन्नत्ताओ, तं जहा—इत्थिकहा भत्तकहा रायकहा देसकहा। चत्तारि सण्णा पन्नत्ता, त जहा—आहार-सण्णा भयसण्णा मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा। चउव्विहे बधे पन्नत्ते, तं जहा—पगइबधे ठिइबंधे अणुभावबंधे पएसबंधे। चउगाउए जोयणे पन्नत्ते।

चार कषाय कहे गये है—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय। चार ध्यान कहे गये है—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान। चार विकथाए कही गई है। जैसे—स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा। चार सज्ञाए कही गई हैं। जैसे—आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा, परिग्रहसज्ञा। चार प्रकार का बन्ध कहा गया है। जैसे—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाव-बन्ध, प्रदेशबन्ध। चार गव्यूति का एक योजन कहा गया है।

विवेचन—जो आत्मा को कसे, ऐसे ससार बढाने वाले विकारी भावो को कषाय कहते हैं। चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते है। यह एकाग्रता जब इष्ट-वियोग, अनिष्ट-सयोगादि के होने पर उनके दूर करने के रूप मे होती है, तब उसे आर्तध्यान कहते है। जब वह एकाग्रता हिसादि पाप करने मे होती है, तब उसे रौद्रध्यान कहते हैं। जब वह एकाग्रता जिन-प्रवचन के प्रचार, दया, दान, परोपकार आदि करने मे होती है, तब उसे धर्म्यध्यान कहते है और जब यह एकाग्रता सर्वशुभ-अशुभ भावो से निवृत्त होकर एकमात्र शुद्ध चैतन्य स्वरूप मे स्थिरता रूप होती है, तब उसे शुक्लध्यान कहते है। शुक्लध्यान मोक्ष का साक्षात् कारण है और धर्म्यध्यान परम्परा कारण है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान ससार-बन्धन के कारण है। राग-द्वेषवर्धक निरर्थक कथाओ को विकथा कहते है। इन्द्रियो की विषय-प्रवृत्ति को सज्ञा कहते है। कर्मों के स्वभाव, स्थिति, फल-प्रदानादि रूप से आत्मा के साथ सबद्ध होने को बध कहते हैं। प्रस्तुत सूत्रो मे इनके चार-चार भेदो को गिनाया गया है। चार कोश या गव्यूति को योजन कहते हैं।

२१—अणुराहानक्खत्ते चउत्तारे पन्नत्ते, पुव्वासाढानक्खत्ते चउत्तारे पन्नत्ते। उत्तरासाढानक्खत्ते चउत्तारे पन्नत्ते।

अनुराधा नक्षत्र चार तारावाला कहा गया है। पूर्वाषाढा नक्षत्र चार तारावाला कहा गया है। उत्तराषाढा नक्षत्र चार तारावाला कहा गया है।

२२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं चत्तारि सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति चार सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। सौधर्म-ईशानकल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति चार पल्योपम की है।

२३—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं चत्तारि सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। जे देवा किट्ठि सुकिट्ठि किट्ठियावत्तं किट्ठिप्पभं किट्ठिजुत्त किट्ठिवण्णं किट्ठिलेस किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंग किट्ठिसिट्ठ किट्ठिकूडं किट्ठुत्तरवडिंसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा चउण्हं अद्धमासाण आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससति वा नीससंति वा। तेसि देवाणं चउहि वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउहि भवग्गहणेहि सिज्झिस्सति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्सति सव्वदुक्खाणमंत करिस्सति।

सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति चार सागरोपम है। इन कल्पो के जो देव कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टि-आवर्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टियुक्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिशृ ग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट, और कृष्टि-उत्तरावतसक नाम वाले विशिष्ट विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम कही गई है। वे देव चार अर्धमासो (दो मास) मे आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं। उन देवो के चार हजार वर्ष मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्य-सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चार भवग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेंगे।

॥ चतुःस्थानक समवाय समाप्त ॥

पंचस्थानक-समवाय

२४—पंच किरिया पन्नत्ता, त जहा—काइया अहिगरणिया पाउसिया पारितावणिआ पाणाइवायकिरिया। पंच महव्वया पन्नत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

क्रियाए पाच कही गई है। जैसे—कायिकीक्रिया, आधिकरणिकी क्रिया, प्राद्वेषिकी क्रिया, पारितापनिकी क्रिया, प्राणातिपात क्रिया। पाच महाव्रत कहे गये है। जैसे—सर्व प्राणातिपात से विरमण, सर्वमृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादान से विरमण, सर्व मैथुन से विरमण, सर्व परिग्रह से विरमण।

विवेचन—मन वचन काय के व्यापार-विशेष को क्रिया कहते है। शरीर से होने वाली चेष्टा को कायिकी क्रिया कहते है। हिसा के अधिकरण खड्ग, भाला, बन्दूक आदि के निर्माण आदि करने की क्रिया को आधिकरणिकी क्रिया कहते है। प्रद्वेष या मत्सरभाव वाली क्रिया को प्राद्वेषिकी क्रिया कहते है। प्राणियो को ताडन-परितापन आदि पहुँचाने वाली क्रिया को पारितापनिकी क्रिया कहते हैं। जीवो के प्राण-घात करने वाली क्रिया को प्राणातिपातिकी क्रिया कहते है। सर्व प्रकार की हिंसा का त्याग करना पहला महाव्रत है। सर्व प्रकार के असत्य बोलने का त्याग करना दूसरा महाव्रत है। सर्व प्रकार के अदत्त का त्याग करना अर्थात् बिना दी हुई किसी भी वस्तु का ग्रहण नही करना तीसरा महाव्रत है। देव, मनुष्य और पशु सम्बन्धी सर्व प्रकार के मैथुन-सेवन का त्याग करना चौथा महाव्रत है। सभी प्रकार के परिग्रह (ममत्व) का त्याग करना पाचवा महाव्रत है।

२६—**पच कामगुणा पन्नत्ता, त जहा—सद्दा रूवा रसा गधा फासा। पंच आसवदारा पन्नत्ता, त जहा—मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा। पंच संवरदारा पन्नत्ता, तं जहा—सम्मत्त विरई अप्पमत्तया अकसाया अजोगया। पंच णिज्जरट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहा—पाणाइवायाओ वेरमणं, मुसावायाओ वेरमण, अदिन्नादाणाओ वेरमणं, मेहुणाओ वेरमण, परिग्गहाओ वेरमण। पंच समिईओ पन्नत्ताओ, तं जहा—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्लपारिट्ठावणियासमिई।**

इन्द्रियो के विषयभूत कामगुण पाच कहे गये है। जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द, चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप, रसनेन्द्रिय का विषय रस, घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श। कर्मबध के कारणो को आस्रवद्वार कहते है। वे पाच है। जैसे—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। कर्मों का आस्रव रोकने के उपायो को सवरद्वार कहते है। वे भी पाच कहे गये हैं—सम्यक्त्व, विरति, अप्रमत्तता, अकषायता और अयोगता या योगो की प्रवृत्ति का निरोध। सचित कर्मों की निर्जरा के स्थान, कारण या उपाय पाच कहे गये है। जैसे—प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण। सयम की साधक प्रवृत्ति या यतना-पूर्वक की जाने वाली प्रवृत्ति को समिति कहते है। वे पाच कही गई है—गमनागमन मे सावधानी रखना ईर्यासमिति है। वचन-बोलने मे सावधानी रखकर हित मित प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है। गोचरी मे सावधानी रखना और निर्दोष, अनुद्दिष्ट भिक्षा ग्रहण करना एषणासमिति है। सयम के साधक वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि के ग्रहण करने और रखने मे सावधानी रखना आदानभाड-मात्र निक्षेपणा समिति है। उच्चार (मल), प्रस्रवण (मूत्र), श्लेष्म (कफ), सिंघाण (नासिकामल) और जल्ल (शरीर का मैल) परित्याग करने मे सावधानी रखना पाचवी प्रतिष्ठापना समिति है।

२७—**पंच अत्थिकाया पन्नत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए।**

पाच अस्तिकाय द्रव्य कहे गये है। जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

विवेचन—बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते है। स्वय गमन करते हुए जीव और पुद्गलो के गमन करने मे सहकारी द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते है। स्वय ठहरनेवाले जीव और पुद्गलो के ठहरने मे सहकारी द्रव्य को अधर्मास्तिकाय कहते है। सर्व द्रव्यो को अपने भीतर अवकाश प्रदान करने वाले द्रव्य को आकाशास्तिकाय कहते हैं। चैतन्य गुण वाले द्रव्य को जीवास्तिकाय कहते है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाले द्रव्य को पुद्गलास्तिकाय कहते है। इनमे से प्रारम्भ के दो द्रव्य असख्यात प्रदेश वाले है। आकाश अनन्तप्रदेशी है। एक जीव के प्रदेश असख्यात है। पुद्गल द्रव्य के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश होते है।

२८—**रोहिणीनक्खत्ते पंचतारे पन्नत्ते। पुणव्वसुनक्खत्ते पचतारे पन्नत्ते। हत्थनक्खत्ते पचतारे पन्नत्ते, विसाहानक्खत्ते पचतारे पन्नत्ते, धणिट्ठानक्खत्ते पचतारे पन्नत्ते।**

रोहिणी नक्षत्र पाच तारावाला कहा गया है। पुनर्वसु नक्षत्र पाच तारावाला कहा गया है। हस्त नक्षत्र पाच तारावाला कहा गया है। विशाखा नक्षत्र पाच तारावाला कहा गया हैं, धनिष्ठा नक्षत्र पाच तारावाला कहा गया है।

२९—**इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण पच पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता। तच्चाए ण पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण पंच सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाण। पच पलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता।**

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति पाच पल्योपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति पाच सागरोपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति पाच पल्योपम कही गई है।

३०—**सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाण पच सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। जे देवा वायं सुवायं वायावत्तं वायप्पभ वायकंत वायवण्ण वायलेसं वायज्झयं वायसिंग वायसिट्ठं वायकूडं वाउत्तरवडिंसग सूरं सुसूर सूरावत्त सूरप्पभ सूरकतं सूरवण्ण सूरलेसं सूरज्झय सूरसिंग सूरसिट्ठं सूरकूड सूरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेण पच सागरोवमाइ ठिई पन्नत्ता। ते णं देवा पंचण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससति वा नीससंति वा, तेसिं णं देवाणं पंचहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।**

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पंचहि भवग्गहणेहिं सिज्झिस्सति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति पाच सागरोपम कही गई है। जो देव वात, सुवात, वातावर्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृ ग, वातसृष्ट, वात-कूट, वातोत्तरावतंसक, सूर, सुसूर, सूरावर्त, सूरप्रभ, सूरकान्त, सूरवर्ण, सूरलेश्य, सूरध्वज, सूरशृंग, सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन

देवों की उत्कृष्ट स्थिति पाच सागरोपम कही गई है । वे देव पांच अर्धमासो (ढाई मास) मे उच्छ्वास-नि श्वास लेते है । उन देवो को पाच हजार वर्ष मे आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक ऐसे जीव हैं जो पाच भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे ।

।। पचस्थानक समवाय समाप्त ।।

षट्स्थानक-समवाय

३१—छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा नीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा । छ जीवनिकाया पण्णत्ता, तं जहा—पुढवीकाए आऊकाए तेउकाए वाउकाए वणस्सइकाए तसकाए । छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणे ऊणोयरिया वित्तीसंखेवो रसपरिच्चाओ कायकिलेसो संलीणया । छव्विहे अब्भितरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाण उस्सग्गो ।

छह लेश्याए कही गई हैं । जैसे—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ।

विवेचन—तीव्र-मन्द आदि रूप कषायो के उदय से, कृष्ण आदि द्रव्यो के सहकार से आत्मा की परिणति को लेश्या कहते है । कषायो के अत्यन्त तीव्र उदय होने पर जो अतिसक्लेश रूप रौद्र परिणाम होते है, उन्हे कृष्णलेश्या कहते है । इमसे उतरते हुए सक्लेशरूप जो रौद्र परिणाम होते है, उन्हे नीललेश्या कहते है । इससे भी उतरते हुए आर्तध्यान रूप परिणामो को कापोतलेश्या कहते है । कषायो का मन्द उदय होने पर दान देने और परोपकार आदि करने के शुभ परिणामो को तेजोलेश्या कहते है । कषायो का और भी मन्द उदय होने पर जो विवेक, प्रशम भाव, सवेग आदि जागृत होते है, उन परिणामो को पद्मलेश्या कहते हैं । कषायों का सर्वथा मन्द उदय होने पर जो निर्मलता आती है, उसे शुक्ललेश्या कहते है । मनुष्य और तिर्यंच जीवो मे अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही भावलेश्याओ का परिवर्तन होता रहता है । किन्तु देव और नारक जीवो की लेश्याए अवस्थित रहती है । फिर भी वे अपनी सीमा के भीतर उतार-चढाव रूप होती रहती हैं । शरीर के वर्ण को द्रव्यलेश्या कहते हैं । इसका भावलेश्या से कोई अविनाभावी सम्बन्ध नही है ।

(संसारी) जीवो के छह निकाय (समुदाय) कहे गये हैं । जैसे—पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय । छह प्रकार के बाहिरी तप कर्म कहे गये है । जैसे—अनशन, ऊनोदर्य, वृत्तिसक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश और सलीनता । छह प्रकार के आभ्यन्तर तप कहे गये हैं । जैसे—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ।

विवेचन—छह जीवनिकायो में से आदि के पाच निकाय स्थावरकाय और एकेन्द्रिय जीव हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य और देवगति नरकगति के जीव त्रसकाय कहे जाते हैं ।

जिन तपों से बाह्य शरीर के शोषण-द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है, उन्हे बाह्य तप कहते है ।

यावज्जीवन या नियतकाल के लिए चारो प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन तप है। भूख से कम खाना ऊनोदर्य तप है। गोचरी के नियम करना और विविध प्रकार के अभिग्रह स्वीकार करना वृत्तिसक्षेप तप है। छह प्रकार के रसो का या एक, दो आदि रसो का त्याग करना रस-परित्याग तप है। शीत, उष्णता की बाधा सहना, नाना प्रकार के आसनो से अवस्थित रह कर शरीर को कृश करना कायक्लेश तप है। एकान्त स्थान मे निवास कर अपनी इन्द्रियो की प्रवृत्ति को रोकना सलीनता तप है।

भीतरी मनोवृत्ति के निरोध द्वारा जो कर्मों की निर्जरा का साधन बनता है, उसे आभ्यन्तर तप कहते हैं। अज्ञान, प्रमाद या कषायवेश मे किये हुए, अपराधो के लिए पश्चात्ताप या यथायोग्य तपश्चर्या आदि करना प्रायश्चित्त तप है। अहकार और अभिमान का त्याग कर विनम्र भाव रखना विनय तप है। गुरुजनो की भक्ति करना, रुग्ण होने पर सेवा-टहल करना और उनके दु खो को दूर करना वैयावृत्त्य तप है। शास्त्रो का वांचना, पढना, सुनना, उसका चिन्तन करना और धर्मोपदेश करना स्वाध्याय तप है। आर्त्त और रौद्र विचारो को छोडकर धर्म-अध्यात्म मे मन की एकाग्रता करने को ध्यान कहते है। बाहिरी शरीरादि के और भीतरी रागादि भावो के परित्याग को व्युत्सर्ग-तप कहते हैं। बाह्य तप अन्तरग तपों की वृद्धि के लिए किए जाते हैं और बाह्य तपो की अपेक्षा अन्तरग तप असख्यात गुणी कर्म-निर्जरा के कारण होते है।

३२—छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतिअसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए।

छह छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं—जैसे वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक-समुद्घात।

विवेचन—केवलज्ञान होने के पूर्व तक सब जीव छद्मस्थ कहलाते है। छद्मस्थों के समुद्घात को छाद्मस्थिक समुद्घात कहा गया है। किसी निमित्त से जीव के कुछ प्रदेशो के बाहिर निकलने को समुद्घात कहते हैं। समुद्घात के सात भेद आगम मे बताये गये हैं। उनमें केवलि-समुद्घात को छोड-कर शेष छह समुद्घात छद्मस्थ जीवो के होते हैं। वेदना से पीडित होने पर जीव के कुछ प्रदेशो का बाहर निकलना वेदना-समुद्घात है। क्रोधादि कषाय की तीव्रता के समय कुछ जीव-प्रदेशो का बाहर निकलना कषायसमुद्घात है। मरण होने से पूर्व कुछ जीवप्रदेशो का बाहर निकलना मारणान्तिक-समुद्घात है। देवादि के द्वारा उत्तर शरीर के निर्माण के समय या अणिमा-महिमादि विक्रिया के समय जीव प्रदेशो का फैलना वैक्रिय-समुद्घात है। तेजोलब्धि का प्रयोग करते हुए जीवप्रदेशो का बाहर निकालना तैजससमुद्घात है। चतुर्दश पूर्वधर महामुनि के मन मे किसी गहन तत्त्व के विषय में शका होने पर और उस क्षेत्र मे केवली का अभाव होने पर केवली भगवान् के समीप जाने के लिए मस्तक से जो एक हाथ का पुतला निकलता है, उसे आहारक-समुदघात कहते हैं। वह पुतला केवली के चरण-स्पर्श कर उन मुनि के शरीर मे वापिस प्रविष्ट हो जाता है और उनकी शंका का समाधान हो जाता है।

उक्त सभी समुद्घातो का उत्कृष्ट काल एक अन्तर्मुहूर्त ही है और उक्त समुद्घातो के समय बाहर निकले हुए प्रदेशो का मूल शरीर से बराबर सम्बन्ध बना रहता है।

३३—छव्विहे अत्थुग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियअत्थुग्गहे चक्खुइंदियअत्थुग्गहे घाणिंदिय-अत्थुग्गहे जिब्भिदियअत्थुग्गहे फासिंदियअत्थुग्गहे नोइंदियअत्थुग्गहे।

अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है। जैसे श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह।

विवेचन –किसी पदार्थ को जानने के समय दर्शनोपयोग के पश्चात् जो अव्यक्त रूप सामान्य बोध होता है, वह व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। उसके तत्काल बाद जो अर्थ का ग्रहण या वस्तु का सामान्य ज्ञान होता है, उसे अर्थावग्रह कहते हैं। यह अर्थावग्रह श्रोत्र आदि पाच इन्द्रियो से और नोइन्द्रिय अर्थात् मन से उत्पन्न होता है, अत उसके छह भेद हो जाते हे। किन्तु व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का ही होता है, क्योकि वह चक्षुरिन्द्रिय और मन से नही होता क्योकि यह दोनो अप्राप्यकारी हे, इनका ग्राह्य पदार्थ के साथ सयोग नही होता है। अर्थावग्रह के पश्चात् ही ईहा, अवाय आदि ज्ञान उत्पन्न होते हे।

३४—कत्तियाणक्खत्ते छतारे पण्णत्ते। असिलेसानक्खत्ते छतारे पण्णत्ते।

कृत्तिका नक्षत्र छह तारा वाला कहा गया है। आश्लेषा नक्षत्र छह तारा वाला कहा गया है।

३५—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण छ पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण छ सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाण अत्थेगइयाण छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे कितनेक नारको की स्थिति छह पल्योपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी मे कितनेक नारको की स्थिति छह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुर कुमारो की स्थिति छह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितने देवो की स्थिति छह पल्योपम कही गई है।

३६—सणंकुमार-माहिंदेसु [कप्पेसु] अत्थेगइयाण देवाण छ सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा सयभु सयभुरमण घोस सुघोस महाघोस किट्टिघोस वीर सुवीरं वीरगत वीरसेणिय वीरावत्त वीरप्पभ वीरकत वीरवण्ण वीरलेस वीरज्झय वीरसिग वीरसिट्ठ वीरकूड वीरुत्तरवडिसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि ण देवाण उक्कोसेणं छ सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा छण्हं अद्धमासाणं आणमति वा पाणमति वा, ऊससति वा नीससति वा, तेसि णं देवाण छहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सत्तेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्सति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमतं करिस्सति।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति छह सागरोपम कही गई है। उनमे जो देव स्वयम्भू, स्वम्भूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीर-श्रेणिक, वीरावर्त, वीरप्रभ, वीरकात, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृंग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हे, उन देवो की उत्कृष्ट

स्थिति छह सागरोपम कही गई है। वे देव छह अर्धमासो (तीन मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते है। उन देवो के छह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो छह भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दुखो का अन्त करेगे।

॥ षट्स्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तस्थानक-समवाय

३७—सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगभए परलोगभए आदाणभए अकम्हाभए आजीवभए मरणभए असिलोगभए। सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए केवलिसमुग्घाए।

सात भयस्थान कहे गये है। जैसे—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात् भय, आजीवभय, मरणभय और अश्लोकभय। सात समुद्घात कहे गये है, जैसे—वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात वैक्रियसमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात।

विवेचन—सजातीय जीवो से होने वाले भय को इहलोकभय कहते है, जैसे—मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय। विजातीय जीवो से होने वाले भय को परलोकभय कहते है। जैसे—मनुष्य को पशु से होने वाला भय। उपार्जित धन की सुरक्षा का भय आदानभय कहलाता है। बिना किसी बाह्य निमित्त के अपने ही मानसिक विकल्प से होने वाले भय को अकस्मात्भय कहते है। जीविका सम्बन्धी भय को आजीवभय कहते है। मरण के भय को मरणभय कहते है अश्लोक का अर्थ है—निन्दा या अपकीर्त्ति। निन्दा या अपकीर्त्ति के भय को अश्लोकभय कहते है। समुद्घात के छह भेदो का स्वरूप पहले कह आये है। केवलीभगवान् के वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की स्थिति को आयुकर्म की शेष रही अन्तर्मुहूर्त प्रमाणस्थिति के बराबर करने के लिए जो दड, कपाट, मन्थान और लोकपूरण रूप आत्म-प्रदेशो का विस्तार होता है, उसे केवलिसमुद्घात कहते है।

३८—समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेण होत्था।

श्रमण भगवान् महावीर सात रत्नि-हाथ प्रमाण शरीर से ऊचे थे।

३९—इहेव जबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, त जहा—चुल्लहिमवते महाहिमवते निसढे नोलवते रुप्पी सिहरी मन्दरे। इहेव जबुद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे हेमवते हरिवासे महाविदेहे रम्मए एरण्णवए एरवए।

इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे सात वर्षधर पर्वत कहे गये है। जैसे—क्षुल्लक हिमवत, महा-हिमवत, निषध, नोलवत, रुक्मी, शिखरी और मन्दर (सुमेरु पर्वत)। इस जबूद्वीप नामक द्वीप मे सात क्षेत्र कहे गये है। जैसे—भरत, हैमवत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक, ऐरण्यवत और ऐरवत।

४०—खीणमोहेणं भगवया मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ वेए (ज्ज) ई।

बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह वीतराग मोहनीय कर्म को छोडकर शेष सात कर्मों का वेदन करते हैं।

४१—महानक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते। कत्तिआइआ सत्तनक्खत्ता पुव्वदारिआ पण्णत्ता। [पाठा० अभियाइया सत्त नक्खत्ता] महाइया सत्त नक्खत्ता दाहिणदारिआ पण्णत्ता। अणुराहाइआ सत्त नक्खत्ता अवरदारिआ पण्णत्ता। धणिट्ठाइया सत्त नक्खत्ता उत्तरदारिआ पण्णत्ता।

मघानक्षत्र सात तारावाला कहा गया है। कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा की ओर द्वारवाले कहे गये है। पाठान्तर के अनुसार—अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये हैं। मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये है। अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये है। धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा की ओर द्वार वाले कहे गये है।

४२—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्त पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। तच्चाए ण पुढवीए नेरइयाण उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए ण पुढवीए नेरइयाण जहण्णेण सत्त सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराण देवाणं अत्थेगइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाण सत्त पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सणकुमारे कप्पे अत्थेगइयाण देवाण उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। माहिंदे कप्पे देवाण उक्कोसेण साइरेगाइ सत्त सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी मे नारकियो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है। चौथी पकप्रभा पृथिवी मे नारकियो की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। सनत्कुमार कल्प मे कितनेक देवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है। माहेन्द्र कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है।

४३—बम्भलोए कप्पे अत्थेगइयाण देवाण सत्त साहिया सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा सम समप्पभ महापभ पभास भासुर विमल कचणकूड सणकुमारवडिसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि ण देवाण उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा सत्तण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमति वा, ऊससंति वा, नीससति वा, तेसि ण देवाण सत्तहि वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे णं सत्तहिभवग्गहणेहिं सिज्झिस्सति बुज्झिस्सति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमत करिस्सति।

ब्रह्मलोक मे कितनेक देवो की स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है। उनमे जो देव सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, काचनकूट और सनत्कुमारावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई

है। वे देव सात अर्धमासो (साढे तीन मासो) के बाद आण-प्राण-उच्छ्वास-नि.श्वास लेते हैं। उन देवो की सात हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो सात भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। सप्तस्थानक समवाय समाप्त ।।

अष्टस्थानक-समवाय

४४—अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—जातिमए कुलमए बलमए रूवमए तवमए सुयमए लाभमए इस्सरियमए। अट्ठ पवयणमायाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभडमत्तणिक्खेवणासमिई उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपारिट्ठावणियासमिई मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती।

आठ मदस्थान कहे गये है। जैसे—जातिमद (माता के पक्ष की श्रेष्ठता का अहकार), कुलमद (पिता के वश की श्रेष्ठता का अहकार), बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद (विद्या का अहकार) लाभमद और ऐश्वर्यमद (प्रभुता का अभिमान)। आठ प्रवचन-माताए कही गई है। जैसे—ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाड-मात्र निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल सिंघाण-परिष्ठापनासमिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

विवेचन—मनुष्य जिन स्थानो या कारणो से अहकार या अभिमान करता है उनको मदस्थान कहा जाता है। वे आठ है। विभिन्न कलाओ की प्रवीणता या कुशलता का मद भी होना है, उसे श्रुतमद के अन्तर्गत जानना चाहिए। प्रवचन का अर्थ द्वादशाङ्ग गणिपिटक और उसका आधारभूत सघ है। जैसे माता बालक की रक्षा करती है, उसी प्रकार पाच समितिया और तीन गुप्तिया द्वादशाङ्ग प्रवचन की और सघ की, सघ के सयमरूप धर्म की रक्षा करती है, इसलिए उनको प्रवचनमाता कहा जाता है।

४५—वाणमंतराण देवाणं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता। जबू ण सुदंसणा अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता। कूडसामली ण गरुलावासे अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ते। जंबुद्दीवस्स ण जगई अट्ठ जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता।

वानव्यन्तर देवो के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊचे कहे गये हैं। (उत्तरकुरु मे स्थित पार्थिव) जबूनामक सुदर्शन वृक्ष आठ योजन ऊचा कहा गया है। (देवकुरु मे स्थित) गरुड का आवासभूत पार्थिव कूटशाल्मली वृक्ष आठ योजन ऊचा कहा गया है। जम्बूद्वीप की जगती (प्राकार के समान पाली) आठ योजन ऊची कही गई है।

४६—अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते, तं जहा—पढमे समए दड करेइ, बीए समए कवाड करेइ, तइयसमए मंथं करेइ, चउत्थे समए मथंतराइ पूरेइ, पचमे समए मंथंतराइ पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ। सत्तमे समए कवाड पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंड पडिसाहरइ। ततो पच्छा सरीरत्थे भवइ।

केवलि समुद्घात आठ समयवाला कहा गया है जैसे—केवली भगवान् प्रथम समय मे दड समुद्घात करते है, दूसरे समय मे कपाट समुद्घात करते हैं, तीसरे समय मे मन्थान समुद्घात करते है, चौथे समय मे मन्थान के अन्तरालो को पूरते है, अर्थात् लोकपूरण समुद्घात करते है। पाचवे समय मे मन्थान के अन्तराल से आत्मप्रदेशो का प्रतिसहार (सकोच) करते हैं, छठे समय मे मन्थानसमुद्घात का प्रतिसहार करते हैं, सातवे समय मे कपाट समुद्घात का प्रतिसहार करते है और आठवे समय मे दडसमुद्घात का प्रतिसहार करते है। तत्पश्चात् उनके आत्म-प्रदेश शरीरप्रमाण हो जाते है।

४७—पासस्स ण अरहओ पुरिसादाणिअस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, त जहा—

सुभे य सुभघोसे य वसिट्ठे बभयारि य।
सोमे सिरिधरे चेव वीरभद्दे जसे इ य ॥१॥

पुरुषादानीय अर्थात् पुरुषो के द्वारा जिनका नाम आज भी श्रद्धा और आदार-पूर्वक स्मरण किया जाता है, ऐसे पार्श्वनाथ तीर्थकर देव के आठ गण और आठ गणधर थे।

जैसे—शुभ, शुभघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश ॥१॥

४८—अट्ठ नक्खत्ता चदेण सद्धि पमद्द जोग जोएति, त जहा—कत्तिया १, रोहणी २, पुणव्वसू ३, महा ४, चित्ता ५, विसाहा ६, अणुराहा ७, जेट्ठा ८।

आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्द योग करते हैं। जैसे—कृत्तिका १, रोहिणी २, पुनर्वसु ३, मघा ४, चित्रा ५, विशाखा ६, अनुराधा, ७, और ज्येष्ठा ८।

विवेचन—जिस समय चन्द्रमा उक्त आठ नक्षत्रो के मध्य से गमन करता है, उस समय उसके उत्तर और दक्षिण पार्श्व से उनका चन्द्रमा के साथ जो सयोग होता है, वह प्रमर्दयोग कहलाता है।

४९—इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण अट्ठ सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठ पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति आठ पल्योपम कही गई है। चौथी पकप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति आठ सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति आठ पल्योपम कही है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति आठ पल्योपम कही गई है।

५०—बभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाण अट्ठ सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा अच्चि १, अच्चिमालि २, वइरोयण ३, पभकर ४, चंदाभ ५, सूराभं ६, सुपइट्ठाभं ७, अग्गिच्चाभं ८, रिट्ठाभं ९, अरुणाभं १०, अणुत्तरवडिसगं ११, विमाण देवत्ताए उववण्णा तेसि ण देवाण उक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा अट्ठण्ह अद्धमासाण आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसि ण देवाण अट्ठहि वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

ब्रह्मलोक कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति आठ सागरोपम कही गई है। वहा जो देव अर्चि १, अर्चिमाली २, वैरोचन ३, प्रभकर ४, चन्द्राभ ५, सूराभ ६, सुप्रतिष्ठाभ ७, अग्नि-अर्च्याभ ८, रिष्टाभ ९, अरुणाभ १०, और अनुत्तरावतसक ११, नाम के विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम कही गई है। वे देव आठ अर्धमासो (पखवाडो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं। उन देवो के आठ हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव आठ भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मो से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ अष्टस्थानक समवाय समाप्त ॥

नवस्थानक-समवाय

५१—नव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, त जहा - नो इत्थि-पसु-पडगसंसत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ १, नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ २, नो इत्थीण गणाइ सेवित्ता भवइ ३, नो इत्थीणं इंदियाणि मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४, नो पणीयरसभोई भवइ ५, नो पाण-भोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता भवइ ६, नो इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलिआइं समरइत्ता भवइ ७, नो सद्दाणुवाई, नो रूवाणुवाई, नो गधाणुवाई, नो रसाणुवाई, नो फासाणुवाई, नो सिलोगाणुवाई भवइ ८, नो सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवइ ९ ।

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तिया (सरक्षिकाए) कही गई है। जैसे—स्त्री, पशु और नपु सक से ससक्त शय्या और आसन का सेवन नही करना १, स्त्रियो की कथाओ को नही कहना २, स्त्रीगणो का उपासक नही होना ३, स्त्रियो की मनोहर इन्द्रियो और रमणीय अगो का द्रष्टा और ध्याता नही होना ४, प्रणीत-रस-बहुल भोजन का नही करना ५, अधिक मात्रा मे खान-पान या आहार नही करना ६, स्त्रियो के साथ की गई पूर्व रति और पूर्व क्रीडाओ का स्मरण नही करना ७, कामोद्दीपक शब्दो को नही सुनना, कामोद्दीपक रूपा को नही देखना, कामोद्दीपक गन्धो को नही सू घना, कामोद्दीपक रसो का स्वाद नही लेना, कामोद्दीपक कोमल मृदुशय्यादि का स्पर्श नही करना ८, और सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुख मे प्रतिबद्ध (आसक्त) नही होना ९ ।

विवेचन—ब्रह्मचारी पुरुषो को अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए उक्त नौ प्रकार के कार्यों का सेवन नही करना चाहिए, तभी उनके ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सकती है। आगम मे ये शील की नौ वाडो के नाम से भी प्रसिद्ध है। जिस प्रकार खेत की वाड उसकी रक्षक होती है, उसी प्रकार उक्त नौ वाडे ब्रह्मचर्य की रक्षक है, अतएव इन्हे ब्रह्मचर्य-गुप्तिया कहा गया है।

५२—नव बंभचेर-अगुत्तीओ पण्णत्ताओ। तं जहा—इत्थी-पसु-पडगसंसत्ताण सिज्जासणाण सेवित्ता भवइ १, इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ २, इत्थीण गणाइं सेवित्ता भवइ ३, इत्थीणं इंदियाणि

मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४, पणीयरसभोई भवति ५, पाण-भोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता भवइ ६, इत्थीण पुव्वरयाइं पुव्वकोलिआइं समरइत्ता भवइ ७, सद्दाणुवाई रूवाणुवाई गंधाणुवाई रसाणुवाई फासाणुवाई सिलोगाणुवाई भवइ ८, सायासुक्खपडिबद्धे यावि भवइ ९।

ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ (विनाशिकाए) कही गई है। जैसे—स्त्री, पशु और नपुसक से ससक्त शय्या और आसन का सेवन करना १, स्त्रियो की कथाओ को कहना—स्त्रियो सम्बन्धी बाते करना २, स्त्रीगणो का उपासक होना ३, स्त्रियो की मनोहर इन्द्रियो और मनोरम अगो को देखना और उनका चिन्तन करना ४, प्रणीत-रस-बहुल गरिष्ठ भोजन करना ५, अधिक मात्रा मे आहार-पान करना ६, स्त्रियो के साथ की गई पूर्व रति और पूर्व क्रीडाओ का स्मरण करना ७, कामोद्दीपक शब्दो को सुनना, कामोद्दीपक रूपो को देखना, कामोद्दीपक गन्धो को सूघना, कामोद्दीपक रसो का स्वाद लेना, कामोद्दीपक कोमल मृदुशय्यादि का स्पर्श करना ८, और सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुख मे प्रतिबद्ध (आसक्त) होना ९।

भावार्थ—इन उपर्युक्त नवो प्रकार के कार्यों के सेवन से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है, इसलिए इनको ब्रह्मचर्य की अगुप्ति कहा गया है।

५३—नव बंभचेरा पण्णत्ता त जहा—

सत्थपरिण्णा[1] लोगविजयो[2] सीओसणिज्ज[3] सम्मत्त[4]।
आवंति[5] धुत[6] विमोहा[7] [यण] उवहाणसुय[8] महापरिण्णा[9] ॥ १ ॥

नौ ब्रह्मचर्य अध्ययन कहे गये है। जैसे—

शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजय २, शीतोष्णीय ३, सम्यक्त्व ४, आवन्ती ५, धूत ६, विमोह ७, उपधानश्रुत ८, और महापरिज्ञा ९।

विवेचन—कुशल या प्रशस्त आचरण करने को भी ब्रह्मचर्य कहते हैं। उसके प्रतिपादक अध्ययन भी ब्रह्मचर्य कहलाते है। आचाराग के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे ऐसे कुशल अनुष्ठानो के प्रतिपादक नौ अध्ययनो का उक्त गाथासूत्र मे नामोल्लेख किया गया है। तात्पर्य यह है कि आचारागसूत्र के प्रथम श्रुतस्कध मे नौ अध्ययन है।

५४—पासे ण अरहा पुरिसादाणीए नव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

पुरुषादानीय पार्श्वनाथ तीर्थंकर देव नौ रत्नि (हाथ) ऊँचे थे।

५५—अभीजीनक्खत्ते साइरेगे नव मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ। अभीजियाइया नव नक्खत्ता चंदस्स उत्तरेण जोगं जोएंति, त जहा—अभीजीसवणो जाव भरणी।

अभिजित् नक्षत्र कुछ अधिक नौ मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करता है। अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चद्रमा का उत्तर दिशा की ओर से योग करते हैं। वे नौ नक्षत्र अभिजित् से लगाकर भरणी तक जानना चाहिए।

विवेचन—जो नक्षत्र जितने समय तक चन्द्र के साथ रहता है, वह उसका चन्द्र के साथ योग कहलाता है। अभिजित् आदि जो नौ नक्षत्र उत्तर की ओर रहते हुए चन्द्र के साथ योग का अनुभव करते हैं, उनके नाम इस प्रकार है—अभिजित्, रेवती, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, भरणी।

५६—इमीसे ण रयणप्पभाए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नव जोयणसए उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चार चरइ। जम्बूद्दीवे णं दीवे नवजोयणिया मच्छा पविसिसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा। विजयस्स ण दारस्स एगमेगाए बाहाए नव नव भोमा पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन ऊपर अन्तर करके उपरितन भाग मे ताराए सचार करती है। जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे नौ योजन वाले मत्स्य भूतकाल मे नदीमुखो से प्रवेश करते थे, वर्तमान मे प्रवेश करते हैं और भविष्य मे प्रवेश करेगे। जम्बूद्वीप के विजय नामक पूर्व द्वार की एक-एक बाहु (भुजा) पर नौ-नौ भौम (विशिष्ट स्थान या नगर) कहे गये हैं।

५७—वाणमतराणं देवाणं सभाओ सुहम्माओ नव जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ताओ।

वानव्यन्तर देवो की सुधर्मा नाम की सभाए नौ योजन ऊची कही गई हैं।

५८—दंसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स नव उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ, त जहा—निद्दा पयला निद्दानिद्दा पयलापयला थीणद्धी चक्खुदसणावरणे अचक्खुदसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवल-दंसणावरणे।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तर प्रकृतिया कही गई है। जैसे—निद्रा, प्रचला, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

५९—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण नव पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण नव सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइयाण नव पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति नौ पल्योपम है। चौथी पकप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति नौ सागरोपम है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति नौ पल्योपम है।

६०—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाण नव पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। बम्भलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं नव सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा पम्ह सुपम्ह पम्हावत्त पम्हप्पभ पम्हकत पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झय पम्हसिंगं पम्हसिट्ठ पम्हकूडं पम्हुत्तरवडिंसग, सुज्ज सुसुज्जं सुज्जावात्त सुज्जपभ सुज्जकत्त सुज्जवण्ण सुज्जलेसं सुज्जज्झय सुज्जसिंग सुज्जसिट्ठ सुज्जकूड सुज्जुत्तरवडिसग, [रुइल्लं] रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं रुइल्लकतं रुइल्लवण्णं रुइल्लेस रुइल्लज्झय

रुइल्लसिगं रुइल्लसिट्ठ रुइल्लकूड रुइल्लुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाण नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, ते ण देवा नवण्हं अद्धमासाण आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसिं णं देवाण नवहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे नवहि भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्सति।

सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति नौ पल्योपम है। ब्रह्मलोक कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति नौ सागरोपम है। वहा जो देव पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य, पक्ष्मध्वज, पक्ष्मशृ ग, पक्ष्ममृष्ट, पक्ष्मकूट, पक्ष्मोत्तरावतसक, तथा सूर्य, मुसूर्य, सूर्यावर्त, सूर्यप्रभ, सूर्यकान्त, सूर्यवर्ण, सूर्यलेश्य, सूर्यध्वज, सूर्यशृ ग, सूर्यसृष्ट, सूर्यकूट सूर्योत्तरावतसक, [रुचिर] रुचिरावर्त, रुचिरप्रभ, रुचिरकान्त रुचिरवर्ण, रुचिरलेश्य, रुचिरध्वज, रुचिरशृ ग, रुचिरसृष्ट, रुचिरकूट और रुचिरोत्तरावतसक नामवाले विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की स्थिति नौ सागरोपम कही गई है। वे देव नौ अर्धमासो (साढे चार मासो) के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को नौ हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो नौ भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण प्राप्त करेगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। नवस्थानक समवाय समाप्त ।।

दशस्थानक समवाय

६१. दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, त जहा—खती १, मुत्ती २, अज्जवे ३, मद्दवे ४, लाघवे ५, सच्चे ६, सजमे ७, तवे ८, चियाए ९, बंभचेरवासे १०।

श्रमण धर्म दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—क्षान्ति १, मुक्ति २, आर्जव ३, मार्दव ४, लाघव ५, सत्य ६, सयम ७, तप ८, त्याग ९, ब्रह्मचर्यवास १०।

विवेचन—जो आरम्भ-परिग्रह एव घर-द्वार का परित्याग कर और सयम धारण कर उसका निर्दोष पालन करने के लिये निरन्तर श्रम करते रहते है, उन्हे 'श्रमण' कहते है। उनको अपने विषय-कषायो को जीतने के लिए क्षान्ति आदि दश धर्मों के परिपालन का उपदेश दिया गया है। कषायो मे सबसे प्रधान कषाय क्रोध है। उसके जीतने के लिए क्षान्ति, सहनशीलता या क्षमा का धारण करना अत्यावश्यक है। द्वीपायन जैसे परम तपस्वियो के जीवन भर की सयम-साधना क्षण भर के क्रोध से समाप्त हो गई और वे अधोगति को प्राप्त हुए। दूसरी प्रबल कषाय लोभ है, उसके त्याग के लिए मुक्ति अर्थात् निर्लोभता धर्म का पालन करना आवश्यक है। इसी प्रकार माया कषाय को जीतने के लिए आर्जवधर्म का और मान कषाय को जीतने के लिए मार्दव धर्म को पालने का विधान किया गया है। मान कषाय को जीतने से लाघव धर्म स्वत प्रकट हो जाता है। तथा माया कषाय को जीतने से सत्यधर्म भी प्रकट हो जाता है। पाचो इन्द्रियो के विषयों की प्रवृत्ति को रोकने के लिये सयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्यवास इन चार धर्मों के पालने का उपदेश दिया गया है। यहाँ त्याग धर्म से

अभिप्राय अन्तरंग-बहिरंग सभी प्रकार के संग (परिग्रह) के त्याग से है। दान को भी त्याग कहते हैं। अतः संविग्न मनोज्ञ साधुओं को प्राप्त भिक्षा में से दान का विधान भी साधुओं का कर्त्तव्य माना गया है। ब्रह्मचर्य के धारक परम तपस्वियों के साथ निवास करने पर ही श्रमणधर्म का पूर्ण रूप से पालन सम्भव है, अतः सबसे अन्त में उसे स्थान दिया गया है।

६२—दस चित्तसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जिज्जा सव्वं धम्मं जाणित्तए १, सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए २, सण्णिणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा पुव्वभवे सुमरित्तए ३, देवदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए ४, ओहिनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं जाणित्तए ५, ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं पासित्तए ६, मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा जाव [अड्ढतईअदीवसमुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं] मणोगए भावे जाणित्तए ७, केवलनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं जाणित्तए ८, केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं पासित्तए ९, केवलिमरणं वा मरिज्जा सव्वदुक्खप्पहीणाए १०।

चित्त-समाधि के दश स्थान कहे गये हैं। जैसे—जो पूर्व काल में कभी उत्पन्न नहीं हुई, ऐसी सर्वज्ञ-भाषित श्रुत और चारित्ररूप धर्म को जानने की चिन्ता का उत्पन्न होना यह चित्त की समाधि या शान्ति के उत्पन्न होने का पहला स्थान है (१)।

धर्म-चिन्ता को चित्त-समाधि का प्रथम स्थान कहने का कारण यह है कि इसके होने पर ही धर्म का परिज्ञान और आराधन सम्भव है।

जैसा पहले कभी नहीं देखा, ऐसे याथातथ्य (भविष्य में यथार्थ फल को देने वाले) स्वप्न का देखना चित्त-समाधि का दूसरा स्थान है (२)।

जैसा पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा पूर्व भव का स्मरण करने वाला संज्ञिज्ञान (जाति-स्मरण) होना यह चित्त-समाधि का तीसरा स्थान है। पूर्व भव का स्मरण होने पर संवेग और निर्वेद के साथ चित्त में परम प्रशमभाव जागृत होता है (३)।

जैसा पहले कभी नहीं हुआ, ऐसा देव-दर्शन होना, देवों की दिव्य वैभव-परिवार आदिरूप ऋद्धि का देखना, देवों की दिव्य द्युति (शरीर और आभूषणादि की दीप्ति) का देखना, और दिव्य देवानुभाव (उत्तम विक्रियादि के प्रभाव) को देखना यह चित्त-समाधि का चौथा स्थान है, क्योंकि ऐसा देव-दर्शन होने पर धर्म में दृढ श्रद्धा उत्पन्न होती है (४)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा लोक (मूर्त्त पदार्थों को) प्रत्यक्ष जानने वाला अवधिज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का पांचवां स्थान है। अवधिज्ञान के उत्पन्न होने पर मन में एक अपूर्व शान्ति और प्रसन्नता प्रकट होती है (५)।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा लोक को प्रत्यक्ष देखने वाला अवधिदर्शन उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का छठा स्थान है (६)।

जो पहले कभी उत्पन्न नही हुआ, ऐसा [अढाई द्वीप-समुद्रवर्ती सञ्ज्ञी, पचेन्द्रिय पर्याप्तक] जीवो के मनोगत भावो को जानने वाला मन पर्ययज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का सातवा स्थान है (७)।

जो पहले कभी उत्पन्न नही हुआ, ऐसा सम्पूर्ण लोक को प्रत्यक्ष [त्रिकालवर्ती पर्यायो के साथ] जानने वाला केवलज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का आठवा स्थान है (८)।

जो पहले कभी उत्पन्न नही हुआ, ऐसा [सर्व चराचर] लोक को देखने वाला केवल-दर्शन उत्पन्न होना, यह चित्त-समाधि का नौवा स्थान है (९)।

सर्व दु खो के विनाशक केवलिमरण से मरना यह चित्त-समाधि का दशवा स्थान है (१०)।

इसके होने पर यह आत्मा सर्व सासारिक दु खो से मुक्त हो सिद्ध बुद्ध होकर अनन्त सुख को प्राप्त हो जाता है।

६३—मदरे ण पव्वए मूले दस जोयणसहस्साइ विक्खंभेण पण्णत्ते।

मन्दर (सुमेरु) पर्वत मूल मे दश हजार योजन विष्कम्भ (विस्तार) वाला कहा गया है।

६४—अरिहा ण अरिट्ठनेमि दस धणूइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था। कण्हे ण वासुदेवे दस धणूइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था। रामे ण बलदेवे दस धणूइ उड्ढ उच्चत्तेण होत्था।

अरिष्टनेमि तीर्थकर दश धनुष ऊँचे थे। कृष्ण वासुदेव दश धनुष ऊँचे थे। राम बलराम दश धनुष ऊँचे थे।

६५—दस नक्खत्ता नाणवुड्ढिकरा पण्णत्ता, त जहा—

मिगसिर अद्दा पुस्सो तिण्णि य पुव्वा य मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्तो य तहा दस बुड्ढिकराइ नाणस्स ॥१॥

दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गये है यथा— मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, तीनो पूर्वाए (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा पूर्वा भाद्रपदा) मूल, आश्लेषा, हस्त और चित्रा, ये दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करते है। अर्थात् इन नक्षत्रो मे पढना प्रारम्भ करने पर ज्ञान शीघ्र और विपुल परिमाण मे प्राप्त होता है।

६६—अकम्मभूमियाण मणुआण दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए उवत्थिया पण्णत्ता, त जहा—

मत्तंगया य भिगा, तुडिअगा दीव जोइ चित्तंगा।
चित्तरसा मणिअगा, गेहागारा अनिगिणा य ॥१॥

अकर्मभूमिज मनुष्यो के उपभोग के लिए दश प्रकार के वृक्ष (कल्पवृक्ष) उपस्थित रहते है। जैसे—

मद्याग, भृ ग, तूर्याग, दीपाग, ज्योतिरग, चित्राग, चित्तरस, मण्यग, गेहाकार और अनग्नाग (१)।

विवेचन—जहाँ पर उत्पन्न होने वाले मनुष्यो को असि मषि, कृषि आदि किसी भी प्रकार का आजीविका-सम्बन्धी कार्य नही करना पडता है, किन्तु जिनकी सभी आवश्यकताए वृक्षो से पूर्ण हो जाती हैं, ऐसी भूमि को अकर्मभूमि या भोगभूमि कहते है और जिन वृक्षो से उनकी आवश्यकताए पूरी होती है, उन्हे कल्पवृक्ष कहा जाता है। मद्याग जाति के वृक्षो से अकर्मभूमि के मनुष्यो को मधुर मदिरा प्राप्त होती है। भृग जाति के वृक्षो से उन्हे भाजन पात्र प्राप्त होते है। तूर्याग जाति के वृक्षो से उन्हे वादित्र प्राप्त होते है। दीपाग जाति के वृक्षो से दीप-प्रकाश मिलता है। ज्योतिरग वृक्षों से अग्नि के सदृश प्रकाश प्राप्त होता है। चित्राग वृक्षो से नाना प्रकार के पुष्प प्राप्त होते है। चित्ररस जाति के वृक्षो से अनेक रसवाला भोजन प्राप्त होता है। मण्यग जाति के वृक्षो से आभूषण प्राप्त होते है। गेहाकार वृक्षो से उनको निवासस्थान प्राप्त होता है और अनग्न वृक्षो से उन्हे वस्त्र प्राप्त होते है।

६७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण जहण्णेण दस वासासहस्साइ ठिई पण्णत्ता। इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए दस निरयावाससयसहस्साइं पण्णत्ताइं। चतुत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं दस सारागोवमाइ ठिई पण्णत्ता। पचमीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण जहण्णेण दस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितनेक नारको की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितनेक नारको की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है। चौथी नरक पृथ्वी मे दस लाख नारकावास हैं। चौथी पृथ्वी मे कितनेक नारको की स्थिति दस सागरोपम की होती है। पाचवी पृथ्वी मे किन्ही-किन्ही नारको की जघन्य स्थिति दस सागरोपम कही गई है।

६८—असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइयाणं जहण्णेण दस वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता। असुरिंद-वज्जाण भोमिज्जाण देवाण अत्थेगइयाण जहण्णेणं दस वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराण देवाणं अत्थेगइयाण दस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। बायरवणस्सइकायाण उक्कोसेण दस वास-सहस्साइ ठिई पन्नत्ता। वाणमंतराणं देवाणं अत्थेगइयाण जहण्णेण दस वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता।

कितनेक असुरकुमार देवो की जघन्यस्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है। असुरेन्द्रो को छोडकर कितनेक शेष भवनवासी देवो की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति दश पल्योपम कही गई है। बादर वनस्पतिकायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है। कितनेक वानव्यन्तर देवो की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है।

६९—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाण दस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। बभलोए कप्पे देवाण उक्कोसेण दस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता।

सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति दश पल्योपम कही गई है। ब्रह्मलोक कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम कही गई है।

७०—लंतए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बम्हलोगवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, ते णं देवा दसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा, तेसि णं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

लान्तककल्प मे कितनेक देवो की जघन्य स्थिति दश सागरोपम कही गई है। वहा जो देव घोष, सुघोष, महाघोष, नन्दिघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक, रमणीय, मगलावर्त और ब्रह्मलोकावतसक नाम के विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम कही गई है। वे देव दश अर्धमासो (पाच मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है, उन देवो के दश हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है, जो दश भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण प्राप्त करेगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ दशस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकादश स्थानक-समवाय

७१—एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दसणसावए १, कयव्वयकम्मे २, सामाइयकडे ३, पोसहोववासनिरए ४, दिया बंभयारी रत्तिं परिमाणकडे ५, दिआ वि राओ वि बंभयारी असिणाई वियडभोजी मोलिकडे ६, सचित्तपरिण्णाए ७, आरंभपरिण्णाए ८, पेसपरिण्णाए ९, उद्दिट्ठभत्तपरिण्णाए १०, समणभूए ११, आवि भवइ समणाउसो!

हे आयुष्मान् श्रमणो! उपासको श्रावको की ग्यारह प्रतिमाए कही गई है। जैसे—दर्शन श्रावक १, कृतव्रतकर्मा २, सामायिककृत ३, पौषधोपवास-निरत ४, दिवा ब्रह्मचारी, रात्रि-परिमाणकृत ५, दिवा ब्रह्मचारी भी, रात्रि-ब्रह्मचारी भी, अस्नायी, विकट-भोजी और मौलिकृत ६, सचित्त-परिज्ञात ७, आरम्भपरिज्ञात ८ प्रेष्य-परिज्ञात ९, उद्दिष्टपरिज्ञात १०, और श्रमणभूत ११।

विवेचन—जो श्रमणो—साधुजनो—की उपासना करते है, उन्हे श्रमणोपासक या उपासक कहते है। उनके अभिग्रहरूप विशेष अनुष्ठान या प्रतिज्ञा को प्रतिमा कहा जाता है। उपासक या श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओ का स्वरूप इस प्रकार है--

१. **दर्शनप्रतिमा**—मे उपासक को शकादि दोषो से रहित निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करना आवश्यक है, क्योकि यह सर्व धर्मों का मूल है, इसके होने पर ही व्रतादि का परिपालन हो सकता है, अन्यथा नही।

यहां यह ज्ञातव्य है कि उत्तर-उत्तर प्रतिमाधारियो को पूर्व-पूर्व प्रतिमाओ के आचार का परिपालन करना आवश्यक है।

२ **व्रतप्रतिमा**—मे निरतिचार पाच अणुव्रतो और उनकी रक्षार्थ तीन गुणव्रतो का परिपालन करना चाहिए।

३ **सामायिकप्रतिमा**—मे नियत काल के लिए प्रतिदिन दो वार—प्रात सायकाल सर्व सावद्ययोग का परित्याग कर सामायिक करना आवश्यक है।

४. **पौषधोपवासप्रतिमा**—मे अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों के दिन सर्व प्रकार के आहार का त्याग कर उपवास के साथ धर्मध्यान मे समय बिताना आवश्यक है।

५ पाचवी प्रतिमा का धारक उपासक दिन को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है और रात्रि मे भी स्त्री अथवा भोग का परिमाण करता है और धोती की काछ (लाग) नही लगाता है।

६ छठी प्रतिमा का धारक दिन और रात्रि मे ब्रह्मचर्य का पालन करता है, अर्थात् स्त्री-सेवन का त्याग कर देता है, यह स्नान भी नही करता, रात्रि-भोजन का त्याग कर देता है और दिन मे भी प्रकाश-युक्त स्थान मे भोजन करता है।

७ सातवी प्रतिमा का धारक सचित्त वस्तुओ के खान-पान का त्याग कर देता है।

८ आठवी प्रतिमा का धारक खेती, व्यापार आदि सर्व प्रकार के आरम्भ का त्याग कर देता है।

९ नवमी प्रतिमा का धारक सेवक-परिजनादि से भी आरम्भ-कार्य कराने का त्याग कर देता है।

१० दशवी प्रतिमा को धारक अपने निमित्त से बने हुए भक्त-पान के उपयोग का त्याग करता है। आधाकर्मिक भोजन नही खाता और क्षुरा से शिर मु डाता है।

११ ग्यारहवी प्रतिमा का धारक उपासक घर का त्यागकर, श्रमण—साधु जैसा वेष धारण कर साधुओ के समीप रहता हुआ साधुधर्म पालने का अभ्यास करता है, ईर्यासमिति आदि का पालन करता है और गोचरी के लिए जाने पर 'ग्यारहवी श्रमणभूत प्रतिमा-धारक श्रमणोपासक के लिए भिक्षा दो' ऐसा कह कर भिक्षा की याचना करता है। यह कदाचित् शिर भी मु डाता है और कदाचित् केशलोच भी करता है।

सस्कृत टीकाकार ने मतान्तर का उल्लेख करते हुए आरम्भपरित्याग को नवमी, प्रेष्यारम्भ-परित्याग को दशमी और उद्दिष्ट भक्तत्यागी श्रमणभूत को ग्यारहवी प्रतिमा का निर्देश किया है। तथा पाचवी प्रतिमा मे पर्व के दिन एकरात्रिक प्रतिमा-योग का धारण करना कहा है।

दिगम्बर शास्त्रो मे सचित्तत्याग को पाचवी और स्त्रीभोग त्याग कर ब्रह्मचर्य धारण करने को सातवी प्रतिमा कहा गया है। तथा नवमी प्रतिमा का नाम परिग्रहत्याग और दशमी प्रतिमा का नाम अनुमतित्याग प्रतिमा कहा गया है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे प्रतिमाओ के धारण-पालन की परम्परा विच्छिन्न हो गई है। किन्तु दि० सम्प्रदाय मे वह आज भी प्रचलित है। इन श्रावकप्रतिमाओ का काल एक, दो, तीन आदि मासो का है। अर्थात् पहली प्रतिमा का काल एक मास, दूसरी का दो मास, तीसरी का तीन मास, चौथी का चार यावत् ग्यारहवी का ग्यारह मास का काल है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इन का पालन आजीवन किया जाता है।

७२—लोगताओ इक्कारसएहिं एक्कारेहिं अबाहाए जोइसते पण्णत्ते। जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारसएहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं जोइसे चार चरइ।

लोकान्त से ग्यारह सौ ग्यारह योजन के अन्तराल पर ज्योतिश्चक्र अवस्थित कहा गया है। जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मन्दर पर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन के अन्तराल पर ज्योतिश्चक्र सचार करता है।

७३—सणमस्स ण भगवओ महावीरस्स एक्कारस्स गणहरा होत्था। त जहा—इदभूई अग्गिभूई वायुभूई विअत्ते सोहम्मे मडिए मोरियपुत्ते अकपिए अयलभाए मेअज्जे पभासे।

श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मडित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास।

७४—मूले नक्खत्ते एक्कारस तारे पण्णत्ते। हेट्ठिमगेविज्जयाणं देवाण एक्कारसमुत्तर गेविज्ज-विमाणसत भवइत्ति मक्खाय। मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारस भागपरिहीणे उच्चत्तेण पण्णत्ते।

मूल नक्षत्र ग्यारह तारावाला कहा गया है। अधस्तन ग्रैवेयक-देवो के विमान एक सौ ग्यारह (१११) कहे गये है। मन्दर पर्वत धरणी-तल से शिखर तल पर ऊचाई की अपेक्षा ग्यारहवे भाग से हीन विस्तार वाला कहा गया है।

विवेचन—मन्दर मेरु एक लाख योजन ऊचा है, उसमे से एक हजार योजन भूमि के भीतर मूल रूप मे और भूमितल से ऊपर निन्यानवे (९९) हजार योजन ऊचा है तथा वह धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तृत है और शिखर पर एक हजार योजन विस्तृत है। यत ११ × ९ = ९९ निन्यानवे होते है, अत भूमितल के दश हजार योजन विस्तार वाले भाग से ऊपर ग्यारह योजन जाने पर उसका विस्तार एक योजन कम हो जाता है, इस नियम के अनुसार निन्यानवे योजन ऊपर जाने पर सुमेरु पर्वत का शिखरतल एक हजार योजन विस्तृत सिद्ध हो जाता है। इसी नियम को ध्यान मे रखकर मन्दर पर्वत के धरणीतल के विस्तार से शिखरतल का विस्तार ग्यारहवे भाग से हीन कहा गया है।

७५—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं एक्कारस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण एक्कारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराण देवाण अत्थेगइयाण एक्कारस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाण एक्कारस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही गई है। पाचवी धूमप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति ग्यारह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति ग्यारह पल्योपम कह गई है।

७६—लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एकारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा बंभ सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडिंसगं

विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिं णं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा एक्कारसण्हं अद्धमासाण आणमंति वा पाणमंति वा, ऊससंति वा नीससंति वा। तेसिं ण देवाणं एक्कारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

लान्तक कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति ग्यारह सागरोपम है। वहा पर जो देव ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मश्रृ ग, ब्रह्मसृष्ट, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतसक नाम के विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की स्थिति ग्यारह सागरोपम कही गई है। वे देव ग्यारह अर्धमासो (साढे पाच मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं। उन देवो को ग्यारह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो ग्यारह भव करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। एकादशस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्वादश स्थानक-समवाय

७७—**बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ, त जहा—मासिआ भिक्खुपडिमा, दो मासिआ, भिक्खुपडिमा, तिमासिआ भिक्खुपडिमा, चउमासिआ भिक्खुपडिमा, पचमासिआ भिक्खुपडिमा, छमासिआ भिक्खुपडिमा, सत्तमासिआ भिक्खुपडिमा, पढमा सत्तराइदिया भिक्खुपडिमा, दोच्चा सत्तराइदिया भिक्खुपडिमा, तच्चा सत्तराइदिया भिक्खुपडिमा, अहोराइया भिक्खुपडिमा, एगराइया भिक्खुपडिमा।**

बारह भिक्षु-प्रतिमाए कही गई हैं। जैसे—एकमासिकी भिक्षु-प्रतिमा, दो मासिकी भिक्षु-प्रतिमा, तीन मासिकी भिक्षुप्रतिमा, चार मासिकी भिक्षुप्रतिमा, पाच मासिकी भिक्षुप्रतिमा, छह मासिकी भिक्षुप्रतिमा, सात मासिकी भिक्षुप्रतिमा, प्रथम सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमा, द्वितीय सप्तरात्रि-दिवा प्रतिमा, तृतीय सप्तरात्रिदिवा प्रतिमा, अहोरात्रिक भिक्षुप्रतिमा और एकरात्रिक भिक्षुप्रतिमा।

विवेचन—भिक्षावृत्ति से गोचरी ग्रहण करने वाले साधुओ को भिक्षु कहा जाता है। सामान्य भिक्षुजनो में जो विशिष्ट सहनन और श्रुतधर साधु होते है, वे सयम-विशेष की साधना करने के लिए जिन विशिष्ट अभिग्रहो को स्वीकार करते हैं, उन्हे भिक्षुप्रतिमा कहा जाता है। प्रस्तुत सूत्र मे उनके बारह होने का उल्लेख किया गया है। सस्कृत टीकाकार ने उनके ऊपर कोई खास प्रकाश नही डाला है, अत दशाश्रुतस्कन्ध की सातवी दशा के अनुसार उनका सक्षेप से वर्णन किया जाता है—

एकमासिकी भिक्षुप्रतिमा—इस प्रतिमा के धारी भिक्षु को काय से ममत्व छोडकर एक मास तक आनेवाले सभी देव, मनुष्य और तिर्यंच-कृत उपसर्गों को सहना होता है। वह एक मास तक शुद्ध निर्दोष भोजन और पान की एक-एक दत्ति ग्रहण करता है। एक बार मे अखड धार से दिये गये भोजन या पानी को एकदत्ति कहते है। वह गर्भिणी, अल्पवयस्क बच्चे वाली, बच्चे को दूध पिलाने

वाली, रोगिणी आदि स्त्रियों के हाथ से भक्त-पान को ग्रहण नही करता। वह दिन के प्रथम भाग में ही गोचरी को निकलता है और पेडा-अर्धपेडा आदि गोचर-चर्या करके वापिस आ जाता है। वह कही भी एक या दो रात से अधिक नही रहता। विहार करते हुए जहा भी सूर्य अस्त हो जाता है, वही किसी वृक्ष के नीचे, या उद्यान-गृह मे या दुर्ग मे या पर्वत पर, सम या विषम भूमि पर, पर्वत की गुफा या उपत्यका आदि जो भी समीप उपलब्ध हो, वही ठहर कर रात्रि व्यतीत करता है। मार्ग मे चलते हुए पैर मे काटा लग जाय या आख मे किरकिरी चली जाय, या शरीर मे कोई अस्त्र-वाण आदि प्रवेश कर जाय, तो वह अपने हाथ से नही निकालता है। वह रात्रि मे गहरी नीद नही सोता है, किन्तु बैठे-बैठे ही निद्रा-प्रचला द्वारा अल्पकालिक झपाई लेते हुए और आत्म-चिन्तन करते हुए रात्रि व्यतीत करता है और प्रात काल होते ही आगे चल देता है। वह ठडे या गर्म जल से अपने हाथ पैर मुख, दात आख आदि शरीर के अगो को नही धोता है, विहार करते हुए यदि सामने से कोई शेर, चीता, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणी, या हाथी, घोडा, भैसा आदि कोई उन्मत्त प्राणी आ जाता है तो वह एक पैर भी पीछे नही हटता, किन्तु वही खडा रह जाता है। जब वे प्राणी निकल जाते हैं, तब आगे विहार करता है। वह जहा बैठा हो वहा यदि तेज धूप आ जाय तो उठकर शीतल छाया वाले स्थान मे नही जाता। इसी प्रकार तेज ठड वाले स्थान से उठकर गर्म स्थान पर नही जाता है। इस प्रकार वह आगमोक्त मर्यादा से अपनी प्रतिमा का पालन करता है।

दूसरी से लेकर सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा तक के धारी साधुओ को भी पहली मासिकी प्रतिमाधारी के सभी कर्तव्यो का पालन करना पडता है। अन्तर यह है कि दूसरी भिक्षुप्रतिमा वाला दो मास तक प्रतिदिन भक्त-पान की दो-दो दत्तिया ग्रहण करता है। इसी प्रकार एक-एक दत्ति बढाते हुए सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा वाला सात मास तक भक्त-पान की सात-सात दत्तियो को ग्रहण करता है।

प्रथम सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमावाला साधु चतुर्थ भक्त का नियम लेकर ग्राम के बाहर खडे या बैठे हुए ही समय व्यतीत करता है।

दूसरी सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमावाला षष्ठभक्त का नियम लेकर उत्कुट (उकडू) आदि आसन से अवस्थित रहता है। तीसरी सप्तरात्रिक प्रतिमावाला अष्टम-भक्त का नियम लेकर सात दिन-रात तक गोदोहन या वीरासनादि से अवस्थित रहता है। अहोरात्रिक प्रतिमा वाला अपानक षष्ठ भक्त का नियम लेकर २४ घटे कायोत्सर्ग से ग्रामादि के बाहर अवस्थित रहता है। एकरात्रिक भिक्षु प्रतिमावाला अपानक अष्टम भक्त का नियम लेकर अनिमिष नेत्रो से प्रतिमायोग धारण कर कायोत्सर्ग से अवस्थित रहता है।

७८—दुवालसविहे सम्भोगे पण्णत्ते, त जहा—

उवही सुअ भत्त पाणे अंजली पग्गहे त्ति य।
दायणे य निकाए अ अब्भुट्ठाणे त्ति आवरे ॥१॥

किइकम्मस्स य करणे वेयावच्चकरणे इ अ।
समोसरणं संनिसिज्जा य कहाए अ पबंधणे ॥२॥

सम्भोग बारह प्रकार का कहा गया है। यथा—

१ उपधि-विषयक सम्भोग, २ श्रुत-विषयक सम्भोग, ३. भक्त-पान-विषयक सम्भोग, ४ अजली-प्रग्रह सम्भोग, ५ दान-विषयक सम्भोग, ६ निकाचन-विषयक सम्भोग, ७ अभ्युत्थान-विषयक सम्भोग, ८ कृतिकर्म-करण सम्भोग, ९ वैयावृत्त्य-करण सम्भोग, १० समवसरण-सम्भोग, ११ सनिषद्या सम्भोग और १२. कथा-प्रबन्धन सम्भोग ॥१-२॥

विवेचन—समान समाचारी वाले साधुओ के साथ खान-पान करने, वस्त्र-पात्रादि का आदान-प्रदान करने और दीक्षा-पर्याय के अनुसार विनय, वैयावृत्त्य आदि करने को सम्भोग कहते है। वह उपधि आदि के भेद से बारह प्रकार का कहा गया है। साधु को अनुद्दिष्ट एव निर्दोष वस्त्र-पात्र-तथा भक्त-पानादि के ग्रहण करने का विधान है। यदि कोई साधु अशुद्ध या सदोष उपधि (वस्त्र-पात्रादि) को एक, दो या तीन वार तक ग्रहण करता है, तब तक तो वह प्रायश्चित्त लेकर सम्भोगिक बना रहता है। चौथी वार अशुद्ध वस्त्र-पात्रादि के ग्रहण करने पर वह प्रायश्चित्त लेने पर भी विसम्भोग के योग्य हो जाता है। अर्थात् अन्य साधु उसके साथ खान-पान बन्द कर देते है और उसे अपनी मडली से पृथक् कर देते हैं। ऐसे साधु को विसम्भोगिक कहा जाता है।

(१) जब तक कोई साधु उपधि (वस्त्र-पात्रादि) विषयक मर्यादा का पालन करता है, तब तक वह साम्भोगिक है और उपर्युक्त मर्यादा का उल्लघन करने पर वह पूर्वोक्त रीति से विसम्भोगिक हो जाता है। यह उपधि-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(२) जब तक कोई साधु अन्य सम्भोगिक साधु को श्रुत-विषयक वाचनादि निर्दोष विधि से देता है, तब तक वह सम्भोगिक है और यदि वह उक्त मर्यादा का उल्लघन कर पार्श्वस्थ आदि साधुओ को तीन बार से अधिक श्रुत की वाचनादि देता है, तो वह पूर्ववत् विसम्भोगिक हो जाता है। यह श्रुत-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(३) जब तक कोई साधु भक्त-पान-विषयक निर्दोष मर्यादा का पालन करता है, तब तक वह साम्भोगिक और पूर्ववत् मर्यादा का उल्लघन करने पर विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह भक्त-पान-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(४) साधुओ को दीक्षा-पर्याय के अनुसार परस्पर मे वन्दना करने और हाथो की अजलि जोडकर नमस्कारादि करने का विधान है। जब कोई साधु इसका उल्लघन नही करता है, या पार्श्वस्थ आदि साधुओ की वन्दनादि नही करता है, तब तक वह साम्भोगिक है और उक्त मर्यादा का उल्लघन करने पर वह विसम्भोगिक कर दिया जाता है। यह अजलि-प्रग्रह-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(५) साधु अपने पास के वस्त्र, पात्रादि को अन्य साम्भोगिक साधु के लिए दे सकता है, या देता है, तब तक वह साम्भोगिक है। किन्तु जब वह अपने वस्त्र-पात्रादि उपकरण उक्त मर्यादा का उल्लघन कर अन्य विसम्भोगिक या पार्श्वस्थ आदि साधु को देता है तो वह पूर्वोक्त रीति से विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह दान-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(६) निकाचन का अर्थ निमत्रण देना है। जब कोई साधु यथाविधि अन्य साम्भोगिक साधु को शुद्ध वस्त्र, पात्र या भक्त-पानादि देने के लिए निमत्रण देता है, तब तक वह साम्भोगिक है।

जब वह मर्यादा का उल्लघन कर अन्य विसम्भोगिक या पार्श्वस्थ आदि साधुको वस्त्रादि देने के लिए निमत्रण देता है तो वह पूर्ववत् विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह निकाचन-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(७) साधु को गुरुजन या अधिक दीक्षापर्यायवाले साधु के आने पर अपने आसन से उठकर उसका यथोचित अभिवादन करना चाहिए। जब कोई साधु इस मर्यादा का उल्लघन करता है, अथवा पार्श्वस्थ आदि साधु के लिए अभ्युत्थानादि करता है, तब वह पहले कहे अनुसार विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह अभ्युत्थान-विषयक सम्भोग-विसम्भोग है।

(८) कृतिकर्म वन्दनादि यथाविधि करने पर साधु साम्भोगिक रहता है और उसकी मर्यादा का उल्लघन करने पर वह विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

(९) वैयावृत्यकरण—जब तक साधु वृद्ध, बाल, रोगी आदि साधुओ की यथाविधि वैयावृत्य करता है तब तक वह साम्भोगिक है। उसकी मर्यादा का उल्लघन करने पर वह विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

(१०) प्रवचन-भवन आदि जिस स्थान पर अनेक साधु एक साथ मिलते और उठते-बैठते हैं, उस स्थान को समवसरण कहते हैं। वहा पर मर्यादापूर्वक साम्भोगिक साधुओ के साथ उठना-बैठना समवसरण-विषयक सम्भोग है। तथा वहाँ असम्भोगिक या पार्श्वस्थादि साधुओ के साथ बैठ कर मर्यादा का उल्लघन करता है तो वह पूर्ववत् विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

(११) अपने आसन से उठकर गुरुजनो से प्रश्न पूछना, उनके द्वारा पूछे जाने पर आसन से उठकर उत्तर देना सनिषद्या-विषयक सम्भोग है। यदि कोई साधु गुरुजनो से कोई प्रश्न अपने आसन पर बैठे-बैठे ही पूछता है, या उनके द्वारा कुछ पूछे जाने पर आसन से न उठकर बैठे-बैठे ही उत्तर देता है, तो यह मर्यादा का उल्लघन करने से पूर्ववत् विसभोग के योग्य हो जाता है।

(१२) गुरु के साथ तत्त्व-चर्चा या धर्मकथा के समय वाद-कथा सम्बन्धी नियमो का पालन करना कथा-प्रबन्धन-सम्भोग है। जब कोई साधु कथा-प्रबन्ध के नियमो का उल्लघन करता है, तब वह विसम्भोग के योग्य हो जाता है। यह कथा-प्रबन्ध-विषयक सभोग है।

कहने का साराश यह है कि साधु जब तक अपने सघ की मर्यादा का पालन करता है, तब तक साम्भोगिक रहता है और उसके उल्लघन करने पर विसम्भोग के योग्य हो जाता है।

७९—**दुवालसावत्ते कितिकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—**

दुओणय जहाजाय कितिकम्मं बारसावय।
चउसिरं तिगुत्तं च दुपवेस एगनिक्खमणं ॥१॥

कृतिकर्म बारह आवर्त वाला कहा गया है। जैसे—

कृतिकर्म मे दो अवनत (नमस्कार), यथाजात रूप का धारण, बारह आवर्त, चार शिरोनति, तीन गुप्ति, दो प्रवेश और एक निष्क्रमण होता है ॥१॥

विवेचन—कृतिकर्म की निरुक्ति है—'कृत्यते छिद्यते कर्म येन तत् कृतिकर्म' अर्थात् परिणामो की जिस विशुद्धिरूप मानसिक क्रिया से शब्दोच्चारण रूप वाचनिक क्रिया से और नमस्कार रूप

कायिक क्रिया से ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का कर्त्तन या छेदन किया जाय, उसे कृतिकर्म कहते हैं। अत: देव और गुरु की वन्दना के द्वारा भी पापकर्मों की निर्जरा होती है, अत. वदना को कृतिकर्म कहा गया है।

प्रकृत में यह गाथा इस बात की साक्षी मे दी गई है कि कृतिकर्म मे बारह आवर्त किये जाते हैं। आवर्त्त का क्या अर्थ है, इसके विषय मे सस्कृतटीकाकार ने केवल इतना ही लिखा है—'द्वादशावर्ता: सूत्राभिधानगर्भा कायव्यापारविशेषा यतिजनप्रसिद्धा' अर्थात्—साधुजन प्रसिद्ध, सूत्रकथित आशयवाले शरीर के व्यापार-विशेष को आवर्त कहते है। पर इससे यह स्पष्ट नही होता कि शरीर का वह व्यापार-विशेष क्या है, जिसे कि आवर्त कहते है।

दि० परम्परा मे दोनो हाथो को मुकुलित कर दाहिनी ओर से बायी ओर घुमाने को आवर्त कहा गया है। यह आवर्त मन वचन काय की क्रिया के परावर्तन के प्रतीक माने जाते है, जो सामायिक दडक और चतुर्विशतिस्तव के आदि और अन्त मे किये जाते है।[1] जो सब मिलकर बारह हो जाते है।

आवर्त और कृतिकर्म का विशेष रहस्य सम्प्रदाय-प्रचलित पद्धति से जानना चाहिए। उक्त गाथा स्वल्प पाठ-भेद के साथ दि० मूलाचार मे भी पाई जाती है।

८०—विजया णं रायहाणी दुवालस जोयणसयसहस्साइ आयामविक्खभेण पण्णत्ता। रामे णं बलदेवे दुवालस वाससयाइ सव्वाउय पालित्ता देवत्त गए। मंदरस्स णं पव्वयस्स चूलिया मूले दुवालस जोयणाइ विक्खंभेण पण्णत्ता। जंबूदीवस्स ण दीवस्स वेइया मूले दुवालस जोयणाइ विक्खभेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप के पूर्वदिशावर्ती विजयद्वार के स्वामी विजय नामक देव की विजया राजधानी (यहाँ से असख्यात योजन दूरी पर) बारह लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाली कही गई है। राम नाम के बलदेव बारह सौ (१२००) वर्ष पूर्ण आयु का पालन कर देवत्व को प्राप्त हुए। मन्दर पर्वत की चूलिका मूल मे बारह योजन विस्तार वाली है। जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की वेदिका मूल मे बारह योजन विस्तार वाली है।

८१—सव्वजहण्णिया राई दुवालसमुहुत्तिआ पण्णत्ता। एव दिवसोवि नायव्वो।

सर्व जघन्य रात्रि (सब से छोटी रात) बारह मुहूर्त की होनी है। इसी प्रकार सबसे छोटा दिन भी बारह मुहूर्त का जानना चाहिए।

८२—सव्वट्ठसिद्धस्स णं महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थुभिअग्गाओ दुवालस जोयणाइं उड्ढं उप्पइया ईसिपब्भार नाम पुढवी पण्णत्ता। ईसिपब्भाराए ण पुढवीए दुवालस नामधेज्जा पण्णत्ता। तं

---

१ कथिता द्वादशावर्त्ता वपुर्वचनचेतसाम्।
स्तव-सामायिकाद्यन्तपरावर्तन लक्षणा ॥१३॥
त्रि सम्पुटीकृतौ हस्तौ भ्रामयित्वा पठेत्पुन।
साम्य पठित्वा भ्रामयेत्तौ स्तवेऽप्येतदाचरेत् ॥१४॥ (क्रियाकलाप)

जहा—ईसि त्ति वा, ईसिपब्भारा त्ति वा, तणू इ वा, तणुयतरि त्ति वा, सिद्धि त्ति वा, सिद्धालए त्ति वा, मुत्ती त्ति वा, मुत्तालए त्ति वा, बंभे त्ति वा बंभवडिंसए ति वा, लोकपडिपूरणे ति वा लोगग्ग-चूलिआई वा ।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान की उपरिम स्तूपिका (चूलिका) से बारह योजन ऊपर ईषत् प्राग्भार नामक पृथिवी कही गई है । ईषत् प्राग्भार पृथिवी के बारह नाम कहे गये हैं । जैसे—ईषत् पृथिवी, ईषत् प्राग्भार पृथिवी, तनु पृथिवी, तनुतरी पृथिवी, सिद्धि पृथिवी, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्ता-लय, ब्रह्म, ब्रह्मावतसक, लोकप्रतिपूरणा और लोकाग्रचूलिका ।

८३—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण बारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता । असुरकुमाराणं देवाण अत्थेगइयाणं बारस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता । सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं बारस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है । पांचवी धूमप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति बारह सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है । सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है ।

८४—लतए कप्पे अत्थेगइयाण देवाण बारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता । जे देवा महिंद महिंदज्झय कबु कबुग्गीयं पु ख सुपु ख महापु ख पु ड सुपु ड महापु ड नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडिंसगं विमाण देवत्ताए उववण्णा, तेसिं ण देवाण उक्कोसेण बारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता । ते णं देवा बारसण्ह अद्धमासाण आणमति वा पाणमति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा । तेसिं णं देवाणं बारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंत करिस्संति ।

लान्तक कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति बारह सागरोपम कही गई है । वहा जो देव माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कम्बु, कम्बुग्रीव, पु ख, सुपु ख महापु ख, पु ड, सुपु ड, महापु ड नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उनकी उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम कही गई है । वे देव बारह अर्धमासो (छह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं । देवो के बारह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो बारह भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे ।

।। द्वादशस्थानक समवाय समाप्त १२ ।।

त्रयोदशस्थानक-समवाय

८५—तेरस किरियाठाणा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थादंडे अणत्थादंडे हिंसादण्डे अकम्हादंडे दिट्ठिविपरिआसिआदंडे मुसावायवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अज्झत्थिए मानवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोभवत्तिए इरियावहिए नाम तेरसमे ।

तेरह क्रियास्थान कहे गये हैं। जैसे—अर्थदंड, अनर्थदंड, हिंसादंड, अकस्माद् दंड, दृष्टि-विपर्यास दंड, मृषावाद प्रत्यय दंड, अदत्तादान प्रत्यय दंड, आध्यात्मिक दंड, मानप्रत्यय दंड, मित्रद्वेष-प्रत्यय दंड, मायाप्रत्यय दंड, लोभप्रत्यय दंड और ईर्यापथिक दंड ।

विवेचन—कर्म-बन्ध की कारणभूत चेष्टा को क्रिया कहते है। उसके तेरह स्थान या भेद कहे गये हैं। अपने शरीर, कुटुम्ब आदि के प्रयोजन से जीव-हिंसा होती है, वह अर्थदंड कहलाता है। विना प्रयोजन जीव-हिंसा करना अनर्थदंड कहलाता है। संकल्पपूर्वक किसी प्राणी को मारना हिंसा-दंड है। उपयोग के विना अकस्मात् जीव-घात हो जाना अकस्माद् दंड है। दृष्टि या बुद्धि के विभ्रम से जीव-घात हो जाना दृष्टिविपर्यास दंड है, जैसे मित्र को शत्रु समझ कर मार देना। असत्य बोलने के निमित्त से होने वाला जीव-घात मृषाप्रत्यय दंड है। अदत्त वस्तु के आदान से—चोरी के निमित्त से होने वाले जीव-घात को अदत्तादानप्रत्यय दंड कहते है। अध्यात्म का अर्थ यहा मन है। बाहरी निमित्त के विना मन मे हिंसा का भाव उत्पन्न होना या शोकादिजनित पीडा होना आध्यात्मिक दंड है। अभिमान के निमित्त से होने वाला जीव-घात मानप्रत्यय दंड है। मित्रजन—माता पिता आदि का—अल्प अपराध होने पर भी अधिक दंड देना मित्रद्वेषप्रत्यय दंड है। मायाचार करने से उत्पन्न होने वाला मायाप्रत्यय दंड कहलाता है। लोभ के निमित्त से होने वाला लोभप्रत्यय दण्ड कहलाता है। कषाय के अभाव मे केवल योग के निमित्त होने वाला कर्मबन्ध ईर्यापथिक दंड कहलाता है।

८६—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाणपत्थडा पण्णत्ता। सोहम्मवडिंसगे णं विमाणे अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेण पण्णत्ते। एवं ईसाणवडिंसगे वि। जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिआण अद्धतेरस जाइकुल-कोडीजोणीपमुहसयसहस्साइं पण्णत्ता।

सौधर्म-ईशान कल्पो मे तेरह विमान-प्रस्तट (प्रस्तार, पटल या पाथडे) कहे गये है। सौधर्मा-वतंसक विमान अर्ध-त्रयोदश अर्थात् साढे बारह लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला है। इसी प्रकार ईशानावतंसक विमान भी जानना चाहिए। जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवो की जाति कुल-कोटिया साढे बारह लाख कही गई हैं।

८७—पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता।

प्राणायु नामक बारहवे पूर्व के तेरह वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गये हैं।

८८—गब्भवक्कंतिअपंचिंदियतिरिक्खजोणिआणं तेरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—सच्चमणपओगे मोसमणपओगे सच्चामोसमणपओगे असच्चामोसमणपओगे सच्चवइपओगे मोसवइ-

पओगे सच्चामोसवइपओगे असच्चामोसवइपओगे ओरालियसरीरकायपओगे ओरालियमीससरीरकाय-पओगे वेउव्वियसरीरकायपओगे वेउव्वियमीससरीकायपओगे कम्मइयसरीरकायपओगे ।

गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो मे तेरह प्रकार के योग या प्रयोग होते है। जैसे—सत्य मन प्रयोग, मृषामन प्रयोग, सत्यमृषामन प्रयोग, असत्यामृषामन प्रयोग, सत्यवचनप्रयोग मृषावचन-प्रयोग, सत्यमृषावचनप्रयोग, असत्यामृषावचनप्रयोग, औदारिकशरीरकायप्रयोग, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग, वैक्रियशरीरकायप्रयोग, वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग, और कार्मणशरीरकायप्रयोग ।

८९—सूरमडल जोयणेणं तेरसेहिं एगसट्ठिभागेहिं जोयणस्स ऊणं पण्णत्ते ।

सूर्यमडल एक योजन के इकसठ भागो मे से तेरह भाग ($\frac{13}{61}$) से न्यून अर्थात् ($\frac{48}{61}$) योजन के विस्तार वाला कहा गया है।

९०—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं तेरसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइआण नेरइयाण तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआण देवाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति तेरह पल्योपम कही गई है। पाचवी धूमप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति तेरह पल्योपम कही गई है।

९१—लतए कप्पे अत्थेगइआण देवाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा वज्जं सुवज्ज वज्जावत्त [वज्जप्पभ] वज्जकत वज्जवण्ण वज्जलेसं वज्जरूवं वज्जसिग वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडिसग वइरं वइरावत्त वइरप्पभ वइरकत वइरवण्ण वइरलेस वइररूव वइरसिगं वइरसिट्ठ वइरकूड वइरुत्तरवडिसग लोग लोगावत्त लोगप्पभ लोगकत लोगवण्णं लोगलेस लोगरूव लोगसिगं लोगसिट्ठ लोगकूड लोगुत्तरवडिसग विमाण देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेण तेरस सागरो-वमाइ ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा तेरसहि अद्धमासेहि आणमति वा पाणमति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा। तेसि ण देवाण तेरसहि वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

सतेगइया भवसिद्धिआ जीवा जे तेरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्सति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्सति सव्वदुक्खाणमत करिस्सति ।

लान्तक कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है। वहा जो देव वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त [वज्रप्रभ] वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्ररूप, वज्रश्रृ ग, वज्रसृष्ट, वज्र-कूट, वज्रोत्तरावतसक, वइर, वइरावर्त, वइरप्रभ, वइरकान्त, वइरवर्ण, वइरलेश्य वइररूप, वइर-श्रृ ग, वइरसृष्ट, वइरकूट, वइरोत्तरावतसक, लोक, लोकावर्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकरूप, लोकश्रृ ग, लोकसृष्ट, लोककूट और लोकोत्तरावतसक नाम के विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है। वे तेरह अर्धमासो (साढे छह मासो) के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के तेरह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो तेरह भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मो से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ त्रयोदशस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुर्दशस्थानक-समवाय

९२—चउद्दस भूअग्गामा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा अपज्जत्तया, सुहुमा पज्जत्तया, बादरा अपज्जत्तया, बादरा पज्जत्तया, बेइंदिया अपज्जत्तया, बेइंदिया पज्जत्तया, तेइंदिया अपज्जत्तया, तेइंदिया पज्जत्तया, चउरिंदिया अपज्जत्तया, चउरिंदिया पज्जत्तया, पंचिंदिया असन्नि-अपज्जत्तया, पंचिंदिया असन्नि-पज्जत्तया, पंचिंदिया सन्नि-अपज्जत्तया, पंचिंदिया सन्निपज्जत्तया।

चौदह भूतग्राम (जीवसमास) कहे गये है। जैसे—सूक्ष्म अपर्याप्तक एकेन्द्रिय, सूक्ष्म पर्याप्तक एकेन्द्रिय, बादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्तक एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, पचेन्द्रिय असज्ञी अपर्याप्तक, पचेन्द्रिय असज्ञी पर्याप्तक, पचेन्द्रिय सज्ञी अपर्याप्तक और पचेन्द्रियसज्ञी पर्याप्तक।

विवेचन—पर्याप्ति शब्द का अर्थ पूर्णता है। आहार, शरीर, इन्द्रियादि के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके उन्हे तद्रूप परिणत करने की योग्यता की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है। वे छह है—आहार शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन पर्याप्ति। जिन जीवो मे जितनी पर्याप्तिया सभव है, उनकी पूर्णता जिन्होने प्राप्त करली है वे पर्याप्त कहलाते है। जिन्हे वह पूर्णता प्राप्त नही हुई हो उन्हे अपर्याप्त कहते है। इनकी पूर्ति का काल अन्तर्मुहूर्त है।

९३—चउद्दस पुव्वा पण्णत्ता, तं जहा—

उप्पायपुव्वमग्गेणियं च तइयं च वीरियं पुव्वं।
अत्थीनत्थिपवायं तत्तो नाणप्पवायं च ॥१॥

सच्चप्पवायं पुव्वं तत्तो आयप्पवायपुव्वं च।
कम्मप्पवायपुव्वं पच्चक्खाणं भवे नवमं ॥२॥

विज्जाअनुप्पवायं अबझपाणाउ बारस पुव्वं।
तत्तो किरियविसालं पुव्वं तह बिंदुसारं च ॥३॥

चौदह पूर्व कहे गये है जैसे—

उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद-पूर्व, अस्तिनास्ति प्रवाह-पूर्व, ज्ञानप्रवाद-पूर्व, सत्य-प्रवाद-पूर्व, आत्मप्रवाद-पूर्व, कर्मप्रवाद-पूर्व, प्रत्याख्यानप्रवाद-पूर्व, विद्यानुवाद-पूर्व, अबन्ध्य-पूर्व, प्राणा-वाय-पूर्व, क्रियाविशाल-पूर्व तथा लोकबिन्दुसार-पूर्व।

विवेचन—बारहवे अग दृष्टिवाद का एक विभाग पूर्व कहलाता है। पूर्व चौदह है। उनमे से उत्पाद-पूर्व मे उत्पाद का आश्रय लेकर द्रव्यो के पर्यायो की प्ररूपणा की गई है। अग्रायणीय-पूर्व मे द्रव्यो के अग्र-परिमाण का आश्रय लेकर उनका निरूपण किया गया है। वीर्यप्रवाद-पूर्व मे जीवादि द्रव्यो के वीर्य-शक्ति का निरूपण किया गया है। अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व मे द्रव्यो के स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अस्तित्व का और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा नास्तित्व धर्म का प्ररूपण किया गया है। ज्ञानप्रवादपूर्व मे मतिज्ञानादि ज्ञानो के भेद-प्रभेदो का सस्वरूप निरूपण किया है। सत्यप्रवादपूर्व मे सत्य-सयम, सत्य वचन तथा उनके भेद-प्रभेदो का और उनके प्रति-

पक्षी असयम, असत्य वचनादि का विस्तृत निरूपण किया गया है। आत्मप्रवाद-पूर्व में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध कर उसके भेद-प्रभेदो का अनेक नयो से विवेचन किया गया है। कर्मप्रवाद-पूर्व मे ज्ञानावरणादि कर्मों का अस्तित्व सिद्धकर उनके भेद-प्रभेदो एव उदय-उदीरणादि विविध दशाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रत्याख्यानपूर्व मे अनेक प्रकार के यम-नियमो का, उनके अतिचारो और प्रायश्चित्तो का विस्तृत विवेचन किया गया है। विद्यानुवादपूर्व मे अनेक प्रकार के मन्त्र-तन्त्रों का, रोहिणी आदि महाविद्याओ का, तथा अगुष्ठप्रश्नादि लघुविद्याओ की विधिपूर्वक साधना का वर्णन किया गया है। अबन्ध्यपूर्व मे कभी व्यर्थ नही जाने वाले अतिशयो का, चमत्कारो का तथा जीवों का कल्याण करने वाली तीर्थंकर प्रकृति के बाधने वाली भावनाओ का वर्णन किया गया है। दि० परम्परा मे इस पूर्व का नाम कल्याणवाद दिया गया है। प्राणायु या प्राणावाय-पूर्व मे जीवो के प्राणो के रक्षक आयुर्वेद के अष्टागो का विस्तृत विवेचन किया गया है। क्रियाविशाल-पूर्व में अनेक प्रकार की कलाओ का तथा मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रिया का सभेद विस्तृत निरूपण किया गया है। लोकबिन्दुसार मे लोक का स्वरूप, तथा मोक्ष के जाने के कारणभूत रत्नत्रयधर्म का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

९४—अग्गेणिअस्स ण पुव्वस्स चउद्दस वत्थू पण्णत्ता।
समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

अग्रायणीय पूर्व के वस्तु नामक चौदह अर्थाधिकार कहे गये है।
श्रमण भगवान् महावीर की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा चौदह हजार साधुओ की थी।

९५—**कम्मविसोहिमग्गण पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छादिट्ठी, सासायणसम्मदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी, अविरयसम्मदिट्ठी, विरयाविरए, पमत्तसजय, अप्पमत्तसंजए, निअट्टिबायरे, अनिअट्टिबायरे, सुहुमसपराए—उवसामए वा खवए वा, उवसतमोहे, खीणमोहे, सजोगी केवली, अयोगी केवली।**

कर्मों की विशुद्धि(निराकरण) की गवेषणा करने वाले उपायो की अपेक्षा चौदह जीवस्थान कहे गये है। जैसे—मिथ्यादृष्टि स्थान, सासादन सम्यग्दृष्टि स्थान, सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि स्थान, विरताविरत स्थान, प्रमत्तसयत स्थान, अप्रमत्तसयत स्थान, निवृत्तिबादर स्थान, अनिवृत्तिबादर स्थान, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक स्थान, उपशान्तमोह स्थान, क्षीणमोह स्थान, सयोगिकेवली स्थान, और अयोगिकेवली स्थान।

विवेचन—सूत्र-प्रतिपादित उक्त चौदह जीवस्थान गुणस्थान के नाम से प्रसिद्ध है। उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ **मिथ्यादृष्टि गुणस्थान**—अनादिकाल से इस जीव की दृष्टि, रुचि, प्रतीति या श्रद्धा मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उदय से मिथ्या या विपरीत चली आ रही है। यद्यपि इस गुणस्थान वाले जीवो के कषायो की तीव्रता और मन्दता की अपेक्षा सक्लेश की हीनाधिकता होती रहती है, तथापि उनकी दृष्टि मिथ्या या विपरीत ही बनी रहती है। उन्हे आत्मस्वरूप का कभी यथार्थ भान नही होता। और जब तक जीव को अपना यथार्थ भान (सम्यग्दर्शन) नही होगा, तब तक वह मिथ्यादृष्टि ही बना

रहेगा। फिर भी इसे गुणस्थान सज्ञा दी गई है, इसका कारण यह है कि इस स्थान वाले जीवो के यथार्थ गुणो का विनाश नही हुआ है, किन्तु कर्मों के आवरण से उनका वर्तमान मे प्रकाश नही हो रहा है।

२. **सासादन या सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान**—जब कोई भव्य जीव मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का और अनन्तानुबंधी कषायो का उपशम करके सम्यग्दृष्टि बनता है, तब वह उस अवस्था मे अन्तर्मुहूर्त काल ही रहता है। उस काल के भीतर कुछ समय शेष रहते हुए यदि अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय आ जावे, तो वह नियम से गिरता है और एक समय से लेकर छह आवली काल तक वमन किये गये सम्यक्त्व का कुछ आस्वाद लेता रहता है। इसी मध्यवर्ती पतनोन्मुख दशा का नाम सास्वादन गुणस्थान है। तथा यह जीव सम्यक्त्व की आसादना (विराधना) करके गिरा है, इसलिए इसे सासादान सम्यग्दृष्टि भी कहते है।

३. **सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान**—प्रथम वार उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करते हुए जीव मिथ्यात्व कर्म के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप तीन विभाग करता है। इनमे से उपशम सम्यक्त्व का अन्तर्मुहूर्त काल पूर्ण होते ही यदि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय हो जाता है, तो वह अर्धसम्यक्त्वी और अर्धमिथ्यात्वी जैसी दृष्टिवाला हो जाता है। इसे ही तीसरा सम्यग्मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान कहते है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त ही है। अत उसके पश्चात् यदि सम्यक्त्वप्रकृति का उदय हो जाय तो वह ऊपर चढकर सम्यक्त्वी बन जाता है। और यदि मिथ्यात्व कर्म का उदय हो जाय, तो वह नीचे गिरकर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे आ जाता है।

४. **अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान**—दर्शन मोहनीयकर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम करके जीव सम्यग्दृष्टि बनता है। उसे आत्मस्वरूप का यथार्थ भान हो जाता है, फिर भी चरित्रमोहनीय कर्म के उदय से वह सत्य मार्ग पर चलने मे असमर्थ रहता है और सयमादि के पालन करने की भावना होने पर भी व्रत, सयमादि का लेश मात्र भी पालन नही कर पाता है। विरति या त्याग के अभाव से इसे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहा जाता है। इस गुणस्थान को चारो गतियो के सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव प्राप्त कर सकते है।

५. **विरताविरत गुणस्थान**—जब उक्त सम्यग्दृष्टि जीव के अप्रत्याख्यान कषाय का उपशम या क्षयोपशम होता है, तब वह त्रसहिंसादि स्थूल पापो से विरत होता है, किन्तु स्थावरहिंसादि सूक्ष्म पापो से अविरत ही रहता है। ऐसे देशविरत अणुव्रती जीव को विरताविरत गुणस्थान वाला कहा जाता है। इस गुणस्थान को केवल मनुष्य और कर्मभूमिज कोई सम्यक्त्वी तिर्यंच प्राप्त कर सकते हैं।

६. **प्रमत्तसंयत गुणस्थान**—जब उक्त सम्यग्दृष्टि जीव के प्रत्याख्यानावरण कषाय का उपशम या क्षयोपशम होता है, वह स्थूल और सूक्ष्म सभी हिंसादि पापो का त्याग कर महाव्रतो को अर्थात् सकलसयम को धारण करता है। फिर भी उसके सज्वलन और नोकषायो के तीव्र उदय होने से कुछ प्रमाद बना ही रहता है। ऐसे प्रमाद-युक्त सयमी को प्रमत्तसयत गुणस्थानवाला कहा जाता है।

७. **अप्रमत्तसंयत गुणस्थान**—जब उक्त जीव के सज्वलन और नोकषायो का मन्द उदय होता है, तब वह इन्द्रिय-विषय, विकथा, निद्रादिरूप सर्व प्रमादो से रहित होकर प्रमादहीन सयम का पालन करता है। ऐसे साधु को अप्रमत्तसयत गुणस्थान वाला कहा जाता है।

यहा यह विशेष ज्ञातव्य है कि पाचवे से ऊपर के सभी गुणस्थान केवल मनुष्यों के ही होते हैं और सातवे से ऊपर के सभी गुणस्थान उत्तम सहनन के धारक तद्भव मोक्षगामी को होते हैं। हां, ग्यारहवे गुणस्थान तक निकट भव्य पुरुष भी चढ सकता है। किन्तु उसका नियम से पतन होता है और अपार्ध पुद्गल परावर्तन काल तक वह ससार मे परिभ्रमण कर सकता है।

सातवे गुणस्थान से ऊपर दो श्रेणी होती हैं—उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। जो जीव चारित्रमोहकर्म का उपशम करता है, वह उपशम श्रेणी चढता है। जो जीव चारित्रमोहकर्म का क्षय करने के लिए उद्यत होता है, वह क्षपक श्रेणी चढता है। दोनो श्रेणी वाले गुणस्थानो का काल अन्तर्मुहूर्त है।

८. **निवृत्तिबादर उपशामक क्षपक गुणस्थान**—अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क और दर्शनमोह-त्रिक इन सात प्रकृतियो का उपशमन करने वाला जीव इस आठवे गुणस्थान मे आकर अपनी अपूर्व विशुद्धि के द्वारा चारित्रमोह की शेष रही २१ प्रकृतियो के उपशमन की, तथा उक्त सात प्रकृतियो का क्षय करने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियो के क्षपण की आवश्यक तैयारी करता है। अत इस गुणस्थानवाले सम समयवर्ती जीवो के परिणामो मे भिन्नता रहती है और बादर सज्वलन कषायो का उदय रहता है, अत इसे निवृत्तिबादर गुणस्थान कहते हैं।

९. **अनिवृत्तिबादर उपशामक-क्षपक गुणस्थान**—इस गुणस्थान मे आने वाले एक समयवर्ती सभी जीवो के परिणाम एक से होते है, उनमे निवृत्ति या भिन्नता नही होती, अत इसे अनिवृत्ति-बादर गुणस्थान कहा गया है। इस गुणस्थान मे उपशम श्रेणीवाला जीव सूक्ष्म लोभ को छोडकर शेष सभी चारित्रमोह प्रकृतियो का उपशम और क्षपक श्रेणीवाला जीव उन सभी का क्षय कर डालता है और दशवे गुणस्थान मे पहुचता है।

१०. **सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक-क्षपक गुणस्थान**—इस गुणस्थान मे आने वाले दोनो श्रेणियो के जीव सूक्ष्मलोभकषाय का वेदन करते है, अत इसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते है। सम्पराय नाम कषाय का है। उपशम श्रेणीवाला जीव उस सूक्ष्मलोभ का उपशम करके ग्यारहवे गुणस्थान मे पहुचता है और क्षपक श्रेणी वाला उसका क्षय करके बारहवे गुणस्थान मे पहुचता है। दोनो श्रेणियो के इसी भेद को बतलाने के लिए इस गुणस्थान का नाम 'सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक-क्षपक' दिया गया है।

११. **उपशान्तमोह गुणस्थान**—उपशम श्रेणीवाला जीव दशवे गुणस्थान के अन्तिम समय में सूक्ष्म लोभ का उपशमन कर इस गुणस्थान मे आता है और मोह कर्म की सभी प्रकृतियो का पूर्ण उपशम कर देने से यह उपशान्तमोह गुणस्थान वाला कहा जाता है।

इस गुणस्थान का काल लघु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इसके समाप्त होते ही वह नीचे गिरता हुआ सातवे गुणस्थान को प्राप्त होता है। यदि उसका ससार-परिभ्रमण शेष है, तो वह मिथ्यात्व गुणस्थान तक भी प्राप्त हो जाता है।

१२. **क्षीणमोह गुणस्थान**—क्षपक श्रेणी पर चढा हुआ दशवे गुणस्थानवर्ती जीव उसके अन्तिम समय सूक्ष्म लोभ का भी क्षय करके क्षीणमोही होकर बारहवे गुणस्थान मे पहुचता है। यत. उसका मोहनीयकर्म सर्वथा क्षीण या नष्ट हो चुका है, अत. यह गुणस्थान 'क्षीणमोह' इस सार्थक

नाम से कहा जाता है। इस गुणस्थान का काल भी लघु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसके भीतर यह ज्ञानावरण कर्म की पाच, दर्शनावरण कर्म की नौ और अन्तराय कर्म की पाच इन उन्नीस प्रकृतियो के सत्त्व की असख्यात गुणी प्रतिसमय निर्जरा करता हुआ अन्तिम समय मे सबका सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान-दर्शन को प्राप्त कर तेरहवे गुणस्थान को प्राप्त होता है।

१३. **सयोगिकेवली गुणस्थान**—इस गुणस्थान मे केवली भगवान् के योग विद्यमान रहते है, अत इसका नाम सयोगिकेवली गुणस्थान है। ये सयोगिजिन धर्मदेशना करते हुए विहार करते रहते है। जीवन के अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रहने पर ये योगो का निरोध करके चौदहवे गुणस्थान मे प्रवेश करते हैं।

१४. **अयोगिकेवली गुणस्थान**—इस गुणस्थान का काल 'अ, इ, उ, ऋ, ऌ' इन पाच ह्रस्व अक्षरो के उच्चारणकाल-प्रमाण है। इतने ही समय के भीतर वे वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म की सभी सत्ता मे स्थित प्रकृतियो का क्षय करके शुद्ध निरजन सिद्ध होते हुए सिद्धालय मे जा विराजते है और अनन्त स्वात्मोत्थ सुख के भोक्ता बन जाते हैं।

९६—**भरहेरवयाओ णं जीवाओ चउद्दस चउद्दस जोयणसहस्साइ चत्तारि अ एगुत्तरे जोयणसए छच्च एगूणवीसे भागे जोयणस्स आयामेण पण्णत्ताओ।**

भरत और ऐरवत क्षेत्र की जीवाए प्रत्येक (१४४०१$\frac{६}{१९}$) चौदह हजार चार सौ एक योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से छह भाग प्रमाण लम्बी कही गई है।

विवेचन—डोरी चढे हुए धनुष के समान भरत और ऐरवत क्षेत्र का आकार है। उसमे डोरी रूप लम्बाई को जीवा कहते है। वह उक्त क्षेत्रो की (१४४०१$\frac{६}{१९}$) योजन प्रमाण लम्बी है।

९७—**एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउद्दस रयणा पण्णत्ता, त जहा—इत्थीरयणे, सेणावइरयणे, गाहावइरयणे, पुरोहियरयणे, बड्ढइरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे, असिरयणे, दण्डरयणे चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, मणिरयणे, कागिणिरयणे।**

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के चौदह-चौदह रत्न होते हैं। जैसे—स्त्रीरत्न, सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्न, पुरोहितरत्न, वर्धकीरत्न, अश्वरत्न, हस्तिरत्न, असिरत्न, दडरत्न, चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, मणिरत्न और काकिणिरत्न।

विवेचन—चेतन या अचेतन वस्तुओ मे जो वस्तु अपनी जाति मे सर्वोत्कृष्ट होती है, उसे रत्न कहा जाता है। प्रत्येक चक्रवर्ती के समय मे जो सर्वश्रेष्ठ सुन्दर स्त्री होती है, वह उसकी पट्टरानी बनती है और उसे स्त्रीरत्न कहा जाता है। इसी प्रकार प्रधान सेना-नायक को सेनापतिरत्न, प्रधान कोठारी या भडारी को गृहपतिरत्न, शान्तिकर्मादि करानेवाले पुरोहित को पुरोहितरत्न, रथादि के निर्माण करने वाले बढई को वर्धकिरत्न, सर्वोत्तम घोडे को अश्वरत्न और सर्वश्रेष्ठ हाथी को हस्तिरत्न कहा जाता है। ये सातो चेतन पचेन्द्रिय रत्न है। शेष सात एकेन्द्रिय कायवाले रत्न है। कहा जाता है कि प्रत्येक रत्न की एक-एक हजार देव सेवा करते हैं। इसीसे उन रत्नो की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध है।

९८—जंबुद्दीवे णं दीवे चउद्दस महानईओ पुव्वावरेण लवणसमुद्दं समप्पंति, तं जहा—गंगा, सिंधू, रोहिआ, रोहिअसा, हरी, हरिकंता, सीआ, सीओदा, नरकंता, नारीकता, सुवण्णकूला, रुप्प-कूला, रत्ता, रत्तवई।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे चौदह महानदिया पूर्व और पश्चिम दिशा से लवणसमुद्र मे जाकर मिलती हैं। जैसे—गगा-सिन्धु, रोहिता-रोहितासा, हरी-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नरकान्ता-नारीकान्ता, सुवर्ण-कूला—रुप्यकूला, रक्ता और रक्तवती।

विवेचन—उक्त सात युगलो मे से प्रथम नाम वाली महानदी पूर्व की ओर से और दूसरे नाम वाली महानदी पश्चिम की ओर से लवणसमुद्र मे प्रवेश करती है। नदियो का एक-एक युगल भरत आदि सात क्षेत्रो मे क्रमश. प्रवहमान रहना है।

९९—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पचमीए ण पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं चउद्दस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराण देवाण अत्थेगइयाणं चउद्दस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाण चउद्दस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। लंतए कप्पे देवाण अत्थेगइयाण चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति चौदह पल्योपम कही गई है। पाचवी पृथिवी मे किन्ही-किन्ही नारको की स्थिति चौदह सागरोपम की है। किन्ही-किन्ही असुरकुमार देवो की स्थिति चौदह पल्योपम की है। सौधर्म और ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति चौदह पल्योपम कही गई है। लान्तक कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति चौदह सागरोपम कही गई है।

१००—महासुक्के कप्पे देवाण अत्थेगइयाणं जहण्णेण चउद्दस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा सिरिकत सिरिमहिअ सिरिसोमनस लतय काविट्ठ महिंद महिंदकंत महिंदुत्तरवडिंसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेण चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा चउद्दसहिं अद्धमासेहि आणमति वा पाणमति वा, उस्ससति वा, नीससति वा। तेसिं णं देवाण चउद्दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउद्दसहि भवग्गहणेहि सिज्झिस्सति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्सति सव्वदुक्खाणमत करिस्सति।

महाशुक्र कल्प मे कितनेक देवो की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम कही गई है। वहा जो देव श्रीकान्त श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र महेन्द्रकान्त और महेन्द्रोत्तरावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम कही गई है। वे देव चौदह अर्धमासो (सात मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को चौदह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौदह भव ग्रहण कर सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेंगे।

।। चतुर्दशस्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चदशस्थानक समवाय

१०१—पन्नरस परमाहम्मिआ पण्णत्ता, तं जहा—

[1]अंबे [2]अंबरिसी चेव [3]सामे [4]सबलेत्ति आवरे।
[5]रुद्दो [6]वरुद्द [7]काले अ [8]महाकालेत्ति आवरे ॥१॥

[9]असिपत्ते [10]धणु [11]कुम्भे [12]वालुए वे [13]अरणी ति अ।
[14]खरस्सरे [15]महाघोसे एते पन्नरसाहिआ ॥२॥

पन्द्रह परम अधार्मिक देव कहे गये है—

अम्ब १, अम्बरिषी २, श्याम ३, शबल ४, रुद्र ५, उपरुद्र ६, काल ७, महाकाल ८, असिपत्र ९, धनु १०, कुम्भ ११, वालुका १२, वैतरणी १३, खरस्वर १४, महाघोष १५ ॥१-२॥

विवेचन—यद्यपि ये अम्ब आदि पन्द्रह असुरकुमार जाति के भवनवासी देव है, तथापि ये पूर्व भव के सस्कार से अत्यन्त क्रूर सक्लेश परिणामी होते हैं और इन्हे नारको को लडाने-भिडाने और मार-काट करने मे ही आनन्द आता है, इसलिए ये परम-अधार्मिक कहलाते है। इनमे जो नारको को खीच कर उनके स्थान से नीचे गिराता है और बाँधकर खुले अम्बर (आकाश) मे छोड देता है, उसे अम्ब कहते है। अम्बरिषि असुर उस नारक का गडासो से काट-काट कर भाड मे पकाने के योग्य टुकडे-टुकडे करते है। श्याम असुर कोडो से तथा हाथ के प्रहार आदि से नारको को मारते-पीटते हैं। शबल असुर चीर-फाड कर नारकियो के शरीर से आते, चर्बी, हृदय आदि निकालते है। रुद्र और उपरुद्र असुर भाले बर्छे आदि से छेद कर ऊपर लटकाते है। काल असुर नारको को कण्डु आदि मे पकाते है। महाकाल उनके पके मास को टुकडे-टुकडे करके खाते है। असिपत्र असुर सेमल वृक्ष का रूप धारण कर अपने नीचे छाया के निमित्त से आने वाले नारको को तलवार की धार के समान तीक्ष्ण पत्ते गिरा कर उन्हे कष्ट देते है। धनु असुर धनुष द्वारा छोडे गये तीक्ष्ण नोक वाले बाणो से नारकियो के अगो का छेदन-भेदन करते है। कु भ उन्हे कु भ आदि मे पकाते है। वालुका जाति के असुर वालु के आकार कदम्ब पुष्प के आकार और वज्र के आकार रूप से अपने शरीर की विक्रिया करके उष्ण वालु मे गर्म भाड मे चने के समान नारको को भूनते है। वैतरणी नामक असुर पीव, रक्त आदि से भरी हुई तप्त जल वाली नदी का रूप धारण करके प्यास से पीडित होकर पानी पीने को आने वाले नारको को अपने विक्रिया वाले क्षार उष्ण जल से पीडा पहुँचाते है और उनको उसमे डुबकियाँ लगवाते है। खरस्वर वाले असुर वज्रमय कटकाकीर्ण सेमल वृक्ष पर नारको को बार-बार चढाते-उतारते है। महाघोष असुर भय से भागते हुए नारकियो को बाडो मे घेर कर उन्हे नाना प्रकार की यातनाए देते हैं। इस प्रकार ये क्रूर देव तीसरी पृथिवी तक जा करके वहाँ के नारको को भयानक कष्ट देते हैं।

१०२—नमी ण अरहा पन्नरस धणूइ उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

नमि अर्हन् पन्द्रह धनुष ऊचे थे।

१०३—धुवराहू णं बहुलपक्खस्स पडिवए पन्नरसभागं पन्नरस भागेणं चंदस्सलेसं आवरेत्ताण चिट्ठति। तं जहा—पढमाए पढमं भागं, बीआए दुभागं, तइआए तिभागं, चउत्थीए चउभागं,

पंचमीए पंचभागं, छट्ठीए छभाग, सत्तमीए सत्तभागं, अट्ठमीए अट्ठभागं, नवमीए नवभाग, दसमीए दसभाग, एक्कारसीए एक्कारसभाग, बारसीए बारसभाग, तेरसीए तेरसभाव, चउद्दसीए चउद्दसभाग, पन्नरसेसु पन्नरसभागं, [आवरेत्ताण चिट्ठति] तं चेव सुक्कपक्खस्स य उवदंसेमाणे उवदंसेमणे चिट्ठति । तं जहा—पढमाए पढमभागं जाव पन्नरसेसु पन्नरसभाग उवदसेमाणे उवदंसेमाणे चिट्ठति ।

ध्रुवराहु कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन से चन्द्र लेश्या के पन्द्रहवे-पन्द्रहवे दीप्तिरूप भाग को अपने श्यामवर्ण से आवरण करता रहता है । जैसे—प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग को, द्वितीया के दिन द्वितीय भाग को, तृतीया के दिन तीसरे भाग को, चतुर्थी के दिन चौथे भाग को, पचमी के दिन पाचवे भाग को, षष्ठी के दिन छठे भाग को, सप्तमी के दिन सातवे भाग को, अष्टमी के दिन आठवें भाग को, नवमी के दिन नौवे भाग को, दशमी के दिन दशवे भाग को, एकादशी के दिन ग्यारहवे भाग को, द्वादशी के दिन बारहवे भाग को, त्रयोदशी के दिन तेरहवे भाग को, चतुर्दशी के दिन चौदहवे भाग को और पन्द्रस (अमावस) के दिन पन्द्रहवे भाग को आवरण करके रहता है । वही ध्रुवराहु शुक्ल पक्ष मे चन्द्र के पन्द्रहवे-पन्द्रहवे भाग को उपदर्शन कराता रहता है । जैसे प्रतिपदा के दिन पन्द्रहवे भाग को प्रकट करता है, द्वितीया के दिन दूसरे पन्द्रहवे भाग को प्रकट करता है । इस प्रकार पूर्णमासी के दिन पन्द्रहवे भाग को प्रकट कर पूर्ण चन्द्र को प्रकाशित करता है ।

विवेचन—राहु दो प्रकार के माने गये है—एक पर्वराहु और दूसरा ध्रुवराहु । इनमे से पर्वराहु तो पूर्णिमा के दिन छह मास के बाद चन्द्र-विमान का आवरण करता है और ध्रुवराहु चन्द्र-विमान से चार अगुल नीचे विचरता हुआ चन्द्र की एक-एक कला को कृष्ण पक्ष मे आवृत करता और शुक्ल पक्ष मे एक-एक कला को प्रकाशित करता रहता है । चन्द्रमा की दीप्ति या प्रकाश को चन्द्र-लेश्या कहा जाता है ।

१०४—छ णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसजुत्ता, त जहा—

सतभिसय भरणि अद्दा असलेसा साई तहा जेट्ठा ।
एते छण्णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजुत्ता ॥१॥

छह नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त तक चन्द्र के साथ सयोग करके रहने वाले कहे गये हैं । जैसे—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा । ये छह नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त तक चन्द्र से सयुक्त रहते है ॥१॥

१०५—चेत्तासोएसु णं मासेसु पन्नरसमुहुत्तो दिवसो भवति । एवं चेत्तासोयमासेसु पण्णरस-मुहुत्ता राई भवति ।

चैत्र और आसौज मास मे दिन पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त का होता है । इसी प्रकार चैत्र और आसौज मास मे रात्रि भी पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त की होती है ।

१०६—विज्जाअणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पन्नरस वत्थू पण्णत्ता ।

विद्यानुवाद पूर्व के वस्तु नामक पन्द्रह अर्थाधिकार कहे गये हैं ।

१०७—मणूसाणं पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, त जहा—सच्चमणपओगे (१), मोसमण-पओगे (२), सच्चमोसमणपओगे (३), असच्चामोसमणपओगे (४), सच्चवइपओगे (५), मोसवइ-पओगे (६), सच्चमोसवइपओगे (७), असच्चामोसवइपओगे (८), ओरालिअसरीरकायपओगे (९), ओरालिअमीससरीरकायपओगे (१०), वेउव्वियसरीरकायपओगे (११), वेउव्वियमीससरीकाय-पओगे (१२), आहारयसरीरकायप्पओगे (१३), आहारयमीससरीरकायप्पओगे (१४), कम्मय-सरीरकायप्पओगे (१५)।

मनुष्यो के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गये। जैसे—१ सत्यमन प्रयोग, २ मृषामन प्रयोग, ३ सत्यमृषामन प्रयोग, ४ असत्यमृषामन प्रयोग, ५ सत्यवचनप्रयोग, ६ मृषावचनप्रयोग, ७. सत्यमृषावचनप्रयोग, ८. असत्यमृषावचनप्रयोग, ९ औदारिक शरीरकायप्रयोग, १० औदारिक मिश्र शरीरकायप्रयोग, ११ वैक्रिय शरीरकायप्रयोग, १२ वैक्रियमिश्र शरीरकायप्रयोग, १३. आहारक शरीरकायप्रयोग, १४ आहारकमिश्र शरीरकायप्रयोग और १५ कार्मण शरीरकायप्रयोग।

विवेचन—आत्मा के परिस्पन्द क्रियापरिणाम या व्यापार को प्रयोग कहते है। अथवा जिस क्रियापरिणाम रूप योग के साथ आत्मा प्रकर्ष रूप से सम्बन्ध को प्राप्त हो उसे प्रयोग कहते है। सत्य अर्थ के चिन्तन रूप व्यापार को सत्यमन प्रयोग कहते हैं। इसी प्रकार मृषा (असत्य) अर्थ के चिन्तनरूप व्यापार को मृषामन प्रयोग, सत्य असत्य रूप दोनो प्रकार के मिश्रित अर्थ-चिन्तन रूप व्यापार को सत्य-मृषामन प्रयोग, तथा सत्य-मृषा से रहित अनुभय अर्थ रूप चिन्तन को असत्यामृषामन-प्रयोग कहते है। इसी प्रकार से सत्य, मृषा आदि चारो प्रकार के वचन-प्रयोगो का अर्थ जानना चाहिए। औदारिक शरीर वाले पर्याप्तक मनुष्य-तिर्यंचो के शरीर-व्यापार को औदारिकशरीर काय-प्रयोग और अपर्याप्तक उन्ही मनुष्य-तिर्यचो के शरीर-व्यापार को औदारिकमिश्र शरीरकायप्रयोग कहते हे। इसी प्रकार से पर्याप्तक देव-नारको के वैक्रिय शरीर के व्यापार को वैक्रियशरीर कायप्रयोग और अपर्याप्तक उन्ही देव-नारको के शरीरव्यापार को वैक्रियमिश्र शरीर कायप्रयोग कहते है। अहारकशरीरी होकर औदारिक शरीर पुन ग्रहण करते समय के व्यापार को आहारक मिश्रशरीर कायप्रयोग और आहारकशरीर के व्यापार के समय आहारक शरीरकायप्रयोग होता है। एक गति को छोडकर अन्य गति को जाते हुए विग्रहगति मे जीव के जो योग होता है, उसे कार्मण शरीरकायप्रयोग कहते हे। केवली भगवान् के समुद्‌घात करने की दिशा मे तीसरे, चौथे और पाचवे समय मे भी कार्मणशरीर काययोग होता है।

१०८—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआण नेरइयाणं पन्नरस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। पचमीए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाण पन्नरस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराण देवाण अत्थेगइआणं पन्नरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआण देवाणं पन्नरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है। पाचवी धूमप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है। सौधर्म ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है।

१०९—महासुक्के कप्पे अत्थेगइआणं देवाणं पन्नरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा णंदं सुणंद णंदावत्त णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्ण णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिंगं णंदसिट्ठं णंदकूड णंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि ण देवाणं उक्कोसेणं पन्नरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा पण्णरसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं पण्णरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे पण्णरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंत करिस्संति।

महाशुक्र कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। वहाँ जो देव नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दशृग, नन्दसृष्ट, नन्दकूट और नन्दोत्तरावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। वे देव पन्द्रह अर्धमासो (साढे सात मासो) के बाद आन-प्राण उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को पन्द्रह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है, जो पन्द्रह भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मो से मुक्त होगे, परिनिर्वाण प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। पञ्चदशस्थानक समवाय समाप्त ।।

षोडशस्थानक-समवाय

११०—सोलस य गाहा-सोलसगा पण्णत्ता। त जहा—[1]समए [2]वेयालिए [3]उवसग्गपरिन्ना [4]इत्थीपरिण्णा [5]निरयविभत्ती [6]महावीरथुई [7]कुसीलपरिभासिए [8]वीरिए [9]धम्मे [10]समाही [11]मग्गे [12]समोसरणे [13]आहातहिए [14]गंथे [15]जमईए गाहासोलसमे [16]सोलसगे।

सोलह गाथा-षोडशक कहे गये है। जैसे—१ समय, २ वैतालीय, ३ उपसर्ग परिज्ञा, ४ स्त्री-परिज्ञा, ५ नरकविभक्ति, ६ महावीरस्तुति, ७ कुशीलपरिभाषित, ८ वीर्य, ९ धर्म, १० समाधि, ११ मार्ग, १२ समवसरण, १३ याथातथ्य, १४ ग्रन्थ, १५ यमकीय और १६ सोलहवाँ गाथा।

विवेचन—सूत्रकृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे 'समय' आदि नाम वाले सोलह अध्ययन है, इसलिए वे 'गाथा-षोडशक' के नाम से प्रसिद्ध है। पहले अध्ययन मे नास्तिक आदि के समयो (सिद्धान्तो या मतो) का प्रतिपादन किया गया है। दूसरे अध्ययन की रचना वैतालीय छन्दो मे की गई है, अत उसे वैतालीय कहते है। इसी प्रकार शेष अध्ययनो का कथन जान लेना चाहिए। समवसरण-अध्ययन मे तीन सौ तिरेसठ मतो का समुच्चय रूप से वर्णन किया गया है। सोलहवे अध्ययन को पूर्वोक्त पन्द्रह अध्ययनो के अर्थ का गान करने से, गाथा नाम से कहा गया है।

१११—सोलस कसाया पण्णत्ता। तं जहा—अणंताणुबंधी कोहे, अणताणुबंधी माणे, अणंताणुबंधी माया, अणंताणुबंधी लोभे; अपच्चक्खाणकसाए कोहे, अपच्चक्खाणकसाए माणे, अपच्चक्खाण-

कसाए माया अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, पच्चक्खाणावरणे माणे, पच्चक्खाणा-वरणा माया, पच्चक्खाणावरणे लोभे; सजलणे कोहे, संजलणे माणे, संजलणा माया, सजलणे लोभे।

कषाय सोलह कहे गये है। जैसे—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया, अनन्तानुबन्धी लोभ, अप्रत्याख्यानकषाय क्रोध, अप्रत्याख्यानकषाय मान, अप्रत्याख्यानकषाय माया, अप्रत्याख्यानकषाय लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ, सज्वलन मान, सज्वलन माया और सज्वलन लोभ।

११२—मंदरस्स ण पव्वयस्स सोलस नामधेया पण्णत्ता, त जहा—

मदर[1] मेरु[2] मणोरण[3] सुदसण[4] सयंपभे[5] य गिरिराया[6]।
रयणुच्चय[7] पियदसण[8] मज्झे लोगस्स[9] नाभी[10] य ॥१॥
अत्थे[11] अ सूरिआवत्ते[12] सूरिआ[13] वरणे त्ति अ।
उत्तरे[14] अ दिसाई अ[15] वडिंसे[16] इअ सोलसे ॥२॥

मन्दर पर्वत के सोलह नाम कहे गये हैं। जैसे—

१ मन्दर, २ मेरु, ३ मनोरम, ४ सुदर्शन, ५ स्वयम्प्रभ, ६ गिरिराज, ७ रत्नोच्चय, ८ प्रिय-दर्शन, ९ लोकमध्य, १० लोकनाभि, ११ अर्थ, १२ सूर्यावर्त, १३ सूर्यावरण, १४ उत्तर, १५ दिशादि और १६ अवतस ॥१-२॥

११३—पासस्स णं अरहतो पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समण-संपदा होत्था। आयप्पवायस्स ण पुव्वस सोलस वत्थू पण्णत्ता। चमरबलीणं ओवारियालेणे सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेण पण्णत्ते। लवणे ण समुद्दे सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा सोलह हजार श्रमणो की थी। आत्म-प्रवाद पूर्व के वस्तु नामक सोलह अर्थाधिकार कहे गये हैं। चमरचचा और बलीचचा नामक राजधानियो के मध्य भाग मे उतार-चढाव रूप अवतारिकालयन वृत्ताकार वाले होने से सोलह हजार आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गये है। लवणसमुद्र के मध्य भाग मे जल के उत्सेध की वृद्धि सोलह हजार योजन कही गई है।

११४—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण सोलस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। पचमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण सोलस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं अत्थेगइआण सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं सोलस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है। पांचवी धूमप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुर-कुमार देवो की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है।

११५—महासुक्के कप्पे देवाण अत्थेगइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा आवत्त विआवत्त नंदिआवत्तं महाणंदिआवत्त अंकुस अंकुसपलंबं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडिंसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेण सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा सोलसण्हं अद्धमासाण आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं सोलसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे सोलसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

महाशुक्र कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति सोलह सागरोपम कही गई है। वहा जो देव आवर्त, व्यावर्त, नन्द्यावर्त, महानन्द्यावर्त, अकुश, अकुशप्रलम्ब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतसक नाम के विमानो में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम कही गई है। वे देव मोलह अर्धमासो (आठ मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को सोलह हजार वर्षो के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो मोलह भव करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। षोडशस्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्तदशस्थानक-समवाय

११६—सत्तरसविहे असजमे पण्णत्ते, त जहा—पुढविकायअसजमे आउकायअसजमे तेउकाय-असजमे वाउकायअसंजमे वणस्सइकायअसजमे बेइंदियअसजमे तेइंदियअसजमे चउरिंदियअसंजमे पंचिंदिअअसजमे अजीवकायअसंजमे पेहाअसजमे उवेहाअसजमे अवहट्टुअसजमे अप्पमज्जणाअसंजमे मणअसजमे वइअसजमे कायअसजमे।

सत्तरह प्रकार का असयम कहा गया है। जैसे—१ पृथिवीकाय-असयम, २ अप्काय-असयम, ३ तेजस्काय-असयम, ४ वायुकाय-असयम, ५ वनस्पतिकाय-असयम, ६. द्वीन्द्रिय-असयम, ७. त्रीन्द्रिय-असयम, ८ चतुरिन्द्रिय-असयम, ९ पचेन्द्रिय-असयम, १० अजीवकाय-असयम, ११ प्रेक्षा-असयम, १२ उपेक्षा-असयम, १३ अपहृत्य-असयम, १४ अप्रमार्जना-असयम, १५ मन-असयम, १६. वचन-असयम, १७ काय-असयम।

११७—सत्तरसविहे संजमे पण्णत्ते, त जहा—पुढविकायसजमे आउकायसंजमे तेउकायसजमे वाउकायसंजमे वणस्सइकायसजमे बेइंदियसंजमे तेइंदियसंजमे चउरिंदियसंजमे पंचिदियसंजमे अजीवकायसंजमे पेहासजमे उवेहासजमे अवहट्टुसजमे पमज्जणासंजमे मणसजमे वइसजमे कायसंजमे।

सत्तरह प्रकार का सयम कहा गया है। जैसे—१ पृथिवीकाय-संयम, २. अप्काय-सयम, ३. तेजस्काय-सयम, ४ वायुकाय-सयम, ५ वनस्पतिकाय-सयम, ६ द्वीन्द्रिय-सयम, ७. त्रीन्द्रिय-सयम ८ चतुरिन्द्रिय-संयम, ९ पचेन्द्रिय-सयम, १०. अजीवकाय-सयम, ११. प्रेक्षा-सयम, १२ उपेक्षा-

सयम, १३ अपहृत्य-सयम, १४ प्रमार्जना-सयम, १५. मन -सयम, १६ वचन-सयम, १७ काय-सयम ।

विवेचन—समिति या सावधानीपूर्वक यम-नियमो के पालन करने को सयम कहते हैं और सयम का पालन नही करना असयम है। एकेन्द्रिय पृथिवीकाय आदि जीवो की रक्षा करना, उनको किसी प्रकार से बाधा नही पहुँचाना पृथिवीकायादि जीवविषयक सयम है और उनको बाधादि पहुँचाना उनका असयम है। अजीव पौद्गलिक वस्तुओ सम्बन्धी सयम अजीव-सयम है और उनकी अयतना करना अजीव-असयम है। स्थान, उपकरण, वस्त्र-पात्रादि का विधिपूर्वक पर्यवेक्षण करना प्रेक्षासयम है और उनका पर्यवेक्षण नही करना, या अविधिपूर्वक करना प्रेक्षा-असयम है। शत्रु-मित्र मे, और इष्ट-अनिष्ट वस्तुओ मे राग-द्वेष नही करना, किन्तु उनमे मध्यस्थभाव रखना उपेक्षासयम है। उनमे राग-द्वेषादि करना उपेक्षा-असयम है। सयम के योगो की उपेक्षा करना अथवा असयम के कार्यों मे व्यापार करना उपेक्षा-असयम है। जीवो को दूर कर निर्जीव भूमि मे विधिपूर्वक मल-मूत्रादि का परठना अपहृत्य-सयम है और अविधि से परठना अपहृत्य-असयम है। पात्रादि का विधिपूर्वक प्रमार्जन करना प्रमार्जना सयम है और अविधिपूर्वक करना या न करना अप्रमार्जना-असयम है। मन, वचन, काय का प्रशस्त व्यापार करना उनका सयम है और अप्रशस्त व्यापार करना उनका असयम है।

११८—**माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ते। सव्वेसि पि णं वेलधर-अणुवेलधरणागराईण आवासपव्वया सत्तरसएक्कवीसाइ जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता। लवणे ण समुद्दे सत्तरस जोयणसहस्साइ सव्वग्गेण पण्णत्ते।**

मानुषोत्तर पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊचा कहा गया है। सभी वेलन्धर और अनुवेलन्धर नागराजो के आवास पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊचे कहे गये है। लवणसमुद्र की सर्वाग्र शिखा सत्तरह हजार योजन ऊची कही गई है।

११९—**इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सातिरेगाइ सत्तरस जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पतित्ता ततो पच्छा चारणाण तिरिआ गती पवत्तति।**

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमि भाग से कुछ अधिक सत्तरह हजार योजन ऊपर जाकर (उठ कर) तत्पश्चात् चारण ऋद्धिधारी मुनियो की नन्दीश्वर, रुचक आदि द्वीपो मे जाने के लिए तिर्छी गति होती है।

१२०—**चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण पण्णत्ते। बलिस्स णं असुरिंदस्स रुयगिंदे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइ जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ते।**

असुरेन्द्र असुरराज चमर का तिगिंछिकूटनामक उत्पात पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊचा कहा गया है। असुरेन्द्र बलि का रुचकेन्द्रनामक उत्पात पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊचा कहा गया है।

१२१—सत्तरसविहे मरणे पण्णत्ते। त जहा—आवीईमरणे ओहिमरणे आयंतियमरणे वलाय-मरणे वसट्टमरणे अतोसल्लमरणे तब्भवमरणे बालमरणे पडितमरणे बालपंडितमरणे छउमत्थमरणे केवलिमरणे वेहाणसमरणे गिद्धपिट्ठमरणे भत्तपच्चक्खाणमरणे इगिणिमरणे पाओवगमणमरणे।

मरण सत्तरह प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ आवीचिमरण, २ अवधिमरण, ३ आत्यन्तिकमरण, ४ वलन्मरण, ५ वशार्तमरण, ६ अन्त शल्यमरण, ७ तद्‌भवमरण, ८ बालमरण, ९ पडितमरण, १० बालपडितमरण, ११ छद्मस्थमरण, १२ केवलिमरण, १३ वैहायसमरण, १४ गृद्‌ध्रस्पृष्ट या गृद्‌ध्रपृष्ठमरण, १५ भक्तप्रत्याख्यानमरण, १६. इंगिनीमरण, १७. पादपोपगमनमरण।

विवेचन—विवरण इस प्रकार है—

१. **आवीचिमरण**—जल की तरग या लहर को वीचि कहते हैं। जैसे जल मे वायु के निमित्त से एक के बाद दूसरी तरग उठती रहती है, उसी प्रकार आयुकर्म के दलिक या निषेक प्रतिसमय उदय मे आते हुए झडते या विनष्ट होते रहते है। आयुकर्म के दलिको का झडना ही मरण है। अत. प्रति-समय के इस मरण को आवीचिमरण कहते है। अथवा वीचि नाम विच्छेद का भी है। जिस मरण मे कोई विच्छेद या व्यवधान न हो, उसे आवीचिमरण कहते है। ह्रस्व अकार के स्थान पर दीर्घ आकार प्राकृत मे हो जाता है।

२ **अवधिमरण**—अवधि सीमा या मर्यादा को कहते है। मर्यादा से जो मरण होता है, उसे अवधिमरण कहते हैं। कोई जीव वर्तमान भव की आयु को भोगता हुआ आगामी भव की भी उसी आयु को बाँधकर मरे और आगामी भव मे भी उसी आयु को भोगकर मरेगा, तो ऐसे जीव के वर्तमान भव मे मरण को अवधिमरण कहा जाता है। तात्पर्य यह कि जो जीव आयु के जिन दलिको को अनुभव करके मरता है, यदि पुन उन्ही दलिको का अनुभव करके मरेगा, जो वह अवधिमरण कहलाता है।

३ **आत्यन्तिकमरण**—जो जीव नारकादि के वर्तमान आयुकर्म के दलिको को भोगकर मरेगा और मर कर भविष्य मे उस आयु को भोगकर नही मरेगा, ऐसे जीव के वर्तमान भव के मरण को आत्यन्तिकमरण कहते है।

४. **वलन्मरण**—सयम, व्रत, नियमादि धारण किये हुए धर्म से च्युत या पतित होते हुए अव्रतदशा मे मरने वाले जीवो के मरण को वलन्मरण कहते है।

५. **वशार्तमरण**—इन्द्रियो के विषय के वश होकर अर्थात् उनसे पीडित होकर मरने वाले जीवो के मरण को वशार्तमरण कहते है। जैसे रात मे पतगे दीपक की ज्योति से आकृष्ट होकर मरते हैं, उसी प्रकार किसी भी इन्द्रियो के विषय से पीडित होकर मरना वशार्तमरण कहलाता है।

६. **अन्तःशल्यमरण**—मन के भीतर किसी प्रकार के शल्य को रख कर मरने वाले जीव के मरण को अन्त शल्यमरण कहते हैं। जैसे कोई सयमी पुरुष अपने व्रतो मे लगे हुए दोषो की लज्जा, अभिमान आदि के कारण आलोचना किये विना दोष के शल्य को मन मे रखकर मरे।

७ **तद्‌भवमरण**—जो जीव वर्तमान भव मे जिस आयु को भोग रहा है, उसी भव के योग्य आयु को बाँधकर यदि मरता है, तो ऐसे मरण को तद्‌भवमरण कहा जाता है। यह मरण

मनुष्य या तिर्यंच गति के जीवो का ही होता है। देव या नारको का नही होता है, क्योंकि देव या नारकी मर कर पुन देव या नारकी नही हो सकता, ऐसा नियम है। उनका जन्म मनुष्य या तिर्यंच पचेन्द्रियो मे ही होता है।

८. **बालमरण**--आगम भाषा मे अविरत या मिथ्यादृष्टि जीव को 'बाल' कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि और असयमी जीवो के मरण को बालमरण कहते है। प्रथम गुणस्थान से लेकर चौथे तक के जीवो का मरण बालमरण कहलाता है।

९. **पंडितमरण**—सयम सम्यग्दृष्टि जीव को पडित कहा जाता है। उसके मरण को पडित-मरण कहते है। छठे से लेकर ग्यारहवे गुणस्थान तक का मरण पडितमरण कहलाता है।

१०. **बालपंडितमरण**—देशसयमी पचम गुणस्थानवर्ती श्रावकव्रती मनुष्य या तिर्यंच पचेन्द्रिय जीव के मरण को बाल-पडितमरण कहते है।

११. **छद्मस्थमरण**—केवलज्ञान उत्पन्न होने के पूर्व बारहवे गुणस्थान तक के जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्मस्थो के मरण को छद्मस्थमरण कहते है।

१२ **केवलिमरण**—केवलज्ञान के धारक अयोगिकेवली के सर्व दु खो का अन्त करने वाले मरण को केवलिमरण कहते हैं। तेरहवे गुणस्थानवर्ती सयोगिजिन भी केवली है, किन्तु तेरहवे गुण-स्थान मे मरण नही होता है।

१३ **वैहायसमरण**—विहायस् नाम आकाश का है। गले मे फासी लगाकर किसी वृक्षादि से अधर लटक कर मरने को वैहायसमरण कहते है।

१४ **गृद्धस्पृष्ट या गिद्धपृष्ठमरण**— 'गिद्धपिट्ठ' इस प्राकृत पद के दो सस्कृत रूप होते है—गृद्ध्रस्पृष्ट और गृद्ध्रपृष्ठ। प्रथम रूप के अनुसार गिद्ध, चील आदि पक्षियो के द्वारा जिसका मास नोचनोच कर खाया जा रहा हो, ऐसे जीव के मरण को गृद्ध्रस्पृष्टमरण कहते है। दूसरे रूप के अनुसार मरे हुए हाथी ऊट आदि के शरीर मे प्रवेश कर अपने शरीर को गिद्धो आदि का भक्ष्य बनाकर मरने वाले जीवो के मरण को गृद्धपृष्ठमरण कहते है।

१५. **भक्तप्रत्याख्यानमरण**—उपसर्ग आने पर, दुष्काल पडने पर, असाध्य रोग के हो जाने पर या जरा से जर्जरित शरीर के हो जाने पर यावज्जीवन के लिए त्रिविध या चतुर्विध आहार का यम नियम रूप से त्याग कर सल्लेखना या सन्यास धारण करके मरने वाले मनुष्य के मरण को भक्तप्रत्या-ख्यानमरण कहते है। इस मरण से मरने वाला अपने आप भी अपनी वैयावृत्त्य (सेवा-टहल) करता है और यदि दूसरा व्यक्ति करे तो उसे भी स्वीकार कर लेता है।

१६. **इगिनीमरण**— जो भक्तप्रत्याख्यानी दूसरो के द्वारा की जाने वाली वैयावृत्त्य का त्याग कर देता है और जब तक सामर्थ्य रहती है, तब तक स्वय ही प्रतिनियत देश मे उठता-बैठता और अपनी सेवा-टहल करता है, ऐसे साधु के मरण को इगिनीमरण कहते है।

१७. **पादपोपगममरण**—पादप नाम वृक्ष का है, जैसे वृक्ष वायु आदि के प्रबल वेग से जड से उखड कर भूमि पर जैसा पड जाता है, उसी प्रकार पडा रहता है, इसी प्रकार जो महासाधु भक्त-पान का यावज्जीवन परित्याग कर और स्व-पर की वैयावृत्त्य का भी त्याग कर, कायोत्सर्ग, पद्मासन

या मृतकासन आदि किसी आसन से आत्म-चिन्तन करते हुए तदवस्थ रहकर प्राण त्याग करता है, उसके मरण को पादपोपगमनमरण कहते है।

१२२—सुहुमसपराए णं भगव सुहुमसपरायभावे वट्टमाणे सत्तरस कम्मपगडीओ णिबंधति। त जहा—आभिणिबोहियणाणावरणे सुयणाणावरणे ओहिणाणावरणे मणपज्जवणाणावरणे केवलणाणावरणे चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदसणावरणे सायावेयणिज्ज जसोकित्तिनामं उच्चागोय दाणतराय लाभतराय भोगतराय उवभोगतरायं वीरिअअंतरायं।

सूक्ष्मसाम्पराय भाव मे वर्तमान सूक्ष्मसाम्पराय भगवान् केवल सत्तरह कर्म-प्रकृतियो को बाँधते है। जैसे—१ आभिनिबोधिकज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मन:पर्ययज्ञानावरण, ५. केवलज्ञानावरण, ६ चक्षुदर्शनावरण, ७ अचक्षुदर्शनावरण, ८ अवधिदर्शनावरण, ९ केवलदर्शनावरण, १० सातावेदनीय, ११ यशस्कीर्तिनामकर्म, १२. उच्चगोत्र, १३ दानान्तराय, १४ लाभान्तराय, १५ भोगान्तराय, १६ उपभोगान्तराय और १७ वीर्यान्तराय।

१२३—पचमीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाण अत्थेगइयाण सत्तरस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तरस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। महासुक्के कप्पे देवाण उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पाचवी धूमप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम कही गई है। छठी पृथ्वी तम प्रभा मे किन्ही-किन्ही नारको की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति सत्तरह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति सत्तरह पल्योपम कही गई है। महाशुक्र कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरह सागरोपम कही गई है।

१२४—सहस्सारे कप्पे देवाण जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सामाण सुसामाणं महासामाणं पउम महापउम कुमुद महाकुमुदं नलिणं महानलिण पोडरीअं महापोडरीअ सुक्क महासुक्क सीहं सीहकतं सीहवीअ भाविअ विमाण देवत्ताए उववण्णा, तेसि ण देवाणं उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा सत्तरसहि अद्धमासेहि आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससति वा। तेसि ण देवाण सत्तरसहि वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तरसहि भवग्गहणेहि सिज्झिस्संति बुज्झिस्सति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमतं करिस्संति।

सहस्रार कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम है। वहा जो देव, सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पौण्डरीक, महापौण्डरीक, शुक्र, महाशुक्र, सिह, सिंहकान्त, सिहबीज, और भावित नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरह सागरोपम की होती है। वे देव सत्तरह अर्धमासो (साढे

आठ मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निश्वास लेते हैं। उन देवो के सत्तरह हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो सत्तरह भवग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखो का अन्त करेंगे।

॥ सप्तदशस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टादशस्थानक-समवाय

१२५—अट्ठारसविहे बंभे पण्णत्ते, तं जहा—ओरालिए कामभोगे णेव सयं मणेण सेवइ १, नोवी अण्ण मणेण सेवावेइ २, मणेणं सेवत पि अण्ण न समणुजाणाइ ३, ओरालिए कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ ४, नोवि अण्ण वायाए सेवावेइ ५, वायाए सेवत पि अण्ण न समणुजाणाइ ६। ओरालिए कामभोगे णेव सय काएणं सेवइ ७, णोवि य अण्ण काएण सेवावेइ ८, काएण सेवत पि अण्ण न समणुजाणाइ ९। दिव्वे कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ १०, णोवि अण्ण मणेण सेवावेइ ११, मणेण सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ १२। दिव्वे कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ १३, णोवि अण्ण वायाए सेवावेइ १४, वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ १५। दिव्वे कामभोगे णेव सय काएण सेवइ १६, णोवि अण्ण काएणं सेवावेइ १७, काएणं सेवतं पि अण्ण न समणुजाणाइ १८।

ब्रह्मचर्य अठारह प्रकार का कहा गया है। जैसे—औदारिक (शरीर वाले मनुष्य-तिर्यचो के) काम-भोगो को न हो मन से स्वय सेवन करता है, न ही अन्य को मन से सेवन कराता है और न मन से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है ३। औदारिक-कामभोगो को न ही वचन से स्वय सेवन करता है, न ही अन्य को वचन से सेवन कराता है और न हो सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना करता है ६। औदारिक-कामभोगो को न हो स्वय काय से सेवन करता है, न हो अन्य को काय से सेवन कराता है और न ही काय से सेवन करता है, न ही अन्य की अनुमोदना करता है ९। दिव्य (देव-देवी सम्बन्धी) काम-भोगो को न ही स्वय मन से सेवन करता है, न ही अन्य को मन से सेवन कराता है और न ही मन से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है १२। दिव्य-काम भोगो को न ही स्वय वचन से सेवन करता है, न ही अन्य को वचन से सेवन कराता है और न ही सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना करता है १५। दिव्य-कामभोगो को न ही स्वय काम से सेवन करता है, न ही अन्य को काय से सेवन कराता है और न ही काय से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है १८।

१२६—अरहतो ण अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसपया होत्था। समणेण भगवया महावीरेण समणाण णिग्गथाण सखुड्डयविअत्ताणं अट्ठारस ठाणा पण्णत्ता। त जहा—

वयछक्कं ६ कायछक्कं १२ अकप्पो १३ गिहिभायण १४।
पलियंक १५ निसिज्जा १६ य सिणाणं १७ सोभवज्जणं १८ ॥१॥

अरिष्टनेमि अर्हत् की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा अठारह हजार साधुओ की थी। श्रमण भगवान् महावीर ने सक्षुद्रक-व्यक्त-सभी श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अठारह स्थान कहे हैं। जैसे—व्रतषट्क ६,

कायषट्क १२, अकल्प १३, (वस्त्र, पात्र, भक्त-पानादि) गृहि-भाजन १४, पर्यङ्क (पलग आदि) १५, निषद्या (स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना) १६, स्नान १७ और शरीर-शोभा का त्याग १८।

विवेचन—साधु दो प्रकार के होते हैं—वय (दीक्षा पर्याय) से और श्रुत (शास्त्रज्ञान) से अव्यक्त—अपरिपक्व और वय तथा श्रुत दोनो से व्यक्त—परिपक्व। इनमे अव्यक्त साधु को क्षुद्रक या क्षुल्लक भी कहते है। ऐसे क्षुद्रक और व्यक्त साधुओ के १८ सयमस्थान भगवान् महावीर ने कहे है। हिंसादि पाचो पापो का और रात्रि भोजन का यावज्जीवन के लिए सर्वथा त्याग करना व्रतषट्क है। पृथिवी आदि छह काया के जीवो की रक्षा करना कायषट्कवर्जन है। अकल्पनीय भक्त-पान का त्याग, गृहस्थ के पात्र का उपयोग नही करना, पलगादि पर नही सोना, स्त्री-ससक्त आसन पर नही बैठना, स्नान नही करना और शरीर की शोभा-शृ गारादि नही करना। इन अठारह स्थानो से साधुओ के सयम की रक्षा होती है।

१२७—आयारस्स ण भगवतो सचूलियागस्स अट्ठारस पयसहस्साइ पयग्गेणं पण्णत्ता।

चूलिका-सहित भगवद्-आचाराङ्ग सूत्र के पद-प्रमाण से अठारह हजार पद कहे गये है।

१२८—बभीए ण लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे पण्णत्ते। त जहा—बभी १, जवणालिया २, दोसऊरिया ३, खरोट्ठिया ४, खरसाविआ ५, पहाराइया ६, उच्चत्तरिआ ७, अक्खरपुट्ठिया ८, भोगवइता ९, वेणतिया १०, णिण्हइया ११, अकलिवी १२, गणिअलिवी १३, गधव्वलिवी [भूयलिवी] १४, आदसलिवी १५, माहेसरीलिवी १६, दामिलिवी १७, बोलिंदलिवी १८।

ब्राह्मीलिपि के लेख-विधान अठारह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—१ ब्राह्मीलिपि, २ यावनीलिपि, ३ दोषउपरिकालिपि, ४ खरोष्ट्रिकालिपि, ५. खर-शाविकालिपि, ६. प्रहारातिका-लिपि, ७ उच्चत्तरिकालिपि, ८ अक्षरपृष्ठिकालिपि, ९ भोगवतिकालिपि, १० वैणकियालिपि, ११ निह्नविकालिपि, १२ अकलिपि, १३ गणितलिपि, १४ गन्धर्वलिपि, [भूतलिपि] १५ आदर्शलिपि, १६ माहेश्वरीलिपि, १७. दामिलिपि, १८ पोलिन्दीलिपि।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि इन लिपियो का स्वरूप दृष्टिगोचर नही होता है। फिर भी वर्तमान मे प्रचलित अनेक लिपियो का बोध होता है। जैसे—यावनीलिपि अर्बी-फारसी, उडियालिपि, द्राविडीलिपि आदि। आगम-ग्रन्थो मे भी लिपियो के नामो मे भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

१२९—अत्थिनत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू पण्णत्ता।

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के अठारह वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गये है।

१३०—धूमप्पभा णं पुढवी अट्ठारसुत्तरं जोयणसयसहस्स बाहल्लेणं पण्णत्ता।

पोसासाढेसु ण मासेसु सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवइ।

धूमप्रभा नामक पाचवी पृथिवी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन कही गई है।

पोष और आषाढ मास मे एक वार उत्कृष्ट रात और दिन क्रमश: अठारह मुहूर्त के होते हैं।

विवेचन—पौष मास मे सबसे बडी रात अठारह मुहूर्त की होती है और आषाढ मास में सबसे बडा दिन अठारह मुहूर्त का होता है, यह सामान्य कथन है। हिन्दू ज्योतिष गणित के अनुसार आषाढ मे कर्क सक्रान्ति को सबसे बडा दिन और मकर सक्रान्ति के दिन पौष मे सबसे बडी रात होती है। अग्रेजो ज्योतिष के अनुसार २३ दिसम्बर को सबसे बडी रात और २१ जून को सबसे बडा दिन अठारह मुहूर्त का होता है। एक मुहूर्त मे ४८ मिनिट होते है।

१३१—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाण अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण अट्ठारस पिलओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सहस्सारे कप्पे देवाणं उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की उत्कृष्ट स्थिति अठारह पल्योपम कही कई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है। सहस्रार कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है।

१३२—आणए कप्पे देवाण अत्थेगइयाण जहण्णेण अट्ठारस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा काल सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठ साल समाणं दुम महादुमं विसालं सुसाल पउम पउमगुम्मं कुमुद कुमुदगुम्म नलिणं नलिणगुम्मं पुडरीअ पुंडरीयगुम्म सहस्सारवडिसग विमाण देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवाण अट्ठारसहि अद्धमासेहि आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससति वा, नीससति वा। तेसि ण देवाण अट्ठारस वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठारसहिं भवग्गहणेहि सिज्झिस्संति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमत करिस्सति।

आनत कल्प मे कितनेक देवो को जघन्य स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है। वहा जो देव काल, सुकाल, महाकाल, अजन, रिष्ट, साल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुण्डरीक, पुण्डरीकगुल्म और सहस्रारावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है। वे देव अठारह अर्धमासो (नौ मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के अठारह हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो अठारह भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। अष्टादशस्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनविंशतिस्थानक-समवाय

१३३—एगूणवीसं णायज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

[1]उक्खित्तणाए, [2]सघाडे, [3]अडे, [4]कुम्मे अ, [5]सेलए।
[6]तु बे, अ, [7]रोहिणी, [8]मल्ली, [9]मागंदी, [10]चंदिमाति अ ॥१॥
[11]दावद्दवे, [12]उदगणाए, [13]मडुक्के, [14]तेतली इ अ।
[15]नंदिफले, [16]अवरकका, [17]आइण्णे, [18]सु सुमा इ अ ॥२॥
अवरे अ, [19]पोण्डरीए णाए एगूणवीसइमे।

ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र के (प्रथम श्रुतस्कन्ध के) उन्नीस अध्ययन कहे गये है। जैसे—१. उत्क्षिप्तज्ञात, २ सघाट, ३. अड, ४ कूर्म, ५ शैलक, ६ तुम्ब, ७. रोहिणी, ८ मल्ली, ९ माकदी, १० चन्द्रिमा, ११ दावद्रव, १२ उदकज्ञात, १३ मडूक, १४ तेतली, १५ नन्दिफल, १६. अपरकका, १७ आकीर्ण, १८ सु सुमा और पुण्डरीकज्ञात ॥१-२॥

१३४—जंबूदीवे णं दीवे सूरिआ उक्कोसेण एगूणवीसं जोयणसयाइं उड्ढमहो तवयंति।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे सूर्य उत्कृष्ट रूप से एक हजार नौ सौ योजन ऊपर और नीचे तपते है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के उपरिम भूमिभाग से ऊपर आठ सौ योजन पर सूर्य अवस्थित है और उक्त भूमिभाग से एक हजार योजन गहरा लवणसमुद्र है। इसलिए सूर्य अपने उष्ण प्रकाश से ऊपर सौ योजन तक—जहा तक कि ज्योतिश्चक्र अवस्थित है, तथा नीचे अठारह सौ योजन अर्थात् लवणसमुद्र के अधस्तन तल तक इस प्रकार सर्व मिलाकर उन्नीस सौ (१९००) योजन के क्षेत्र को सतप्त करता है।

१३५—सुक्के ण महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता अवरेण अत्थमण उवागच्छइ।

शुक्र महाग्रह पश्चिम दिशा से उदित होकर उन्नीस नक्षत्रो के साथ सहगमन करता हुआ पश्चिम दिशा मे अस्तगत होता है।

१३६—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीस छेअणाओ पण्णत्ताओ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की कलाए उन्नीस छेदनक (भागरूप) कही गई है।

विवेचन—जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। उसके भीतर जो छ वर्षधर पर्वत और सात क्षेत्र है, वे भारतवर्ष से मेरु पर्वत तक दूने-दूने विस्तार वाले हैं और मेरु से आगे ऐरवत वर्ष तक आधे-आधे विस्तार वाले हैं। इन सबका योग (१+२+४+८+१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१=१९०) एक सौ नव्वे होता है। इस (१९०) का भाग एक लाख में देने पर ५२६ $\frac{१०}{१९०}$ आता है। ऊपर के शून्य का नीचे के शून्य के साथ अपवर्तन कर देने पर $\frac{१}{१९}$ रह जाता है। प्रकृत सूत्र मे इसी उन्नीस भागरूप कलाओ का उल्लेख किया गया है, क्योकि १९० भागो मे जिस

क्षेत्र या कुलाचल (वर्षधर) की जितनी शलाकाए हैं, उनसे इसे गुणित करने पर उस विवक्षित क्षेत्र या कुलाचल का विस्तार निकल आता है।

१३७—एगूणवीसं तित्थयरा अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइआ।

उन्नीस तीर्थंकर अगार-वास मे रह कर फिर मुडित होकर अगार से अनगार प्रव्रज्या को प्राप्त हुए—गृहवास त्याग कर दीक्षित हुए।

विवेचन—वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर, ये पाच तीर्थंकर कुमार अवस्था मे ही प्रव्रजित हुए। शेष उन्नीस तीर्थकरो ने गृहवास छोड कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

१३८—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाण एगूणवीसपलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणवीसपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाण एगूणवीसपलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता आणयकप्पे अत्थेगइयाण देवाण उक्कोसेण एगूणवीससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है। आनत कल्प मे कितनेक देवो की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है।

१३९—पाणए कप्पे अत्थेगइयाण देवाण जहण्णेण एगूणवीससागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा आणत पाणतं णतं विणत घणं सुसिर इद इदोकतं इंदुत्तरवडिसग विमाण देवत्ताए उववण्णा तेसि ण देवाणं उक्कोसेण एगूणवीससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगूणवीसाए अद्धमासाण आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससति वा तेसि णं देवाणं एगूणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे एगूणवीसाए भवग्गहणेहि सिज्झिस्सति बज्झिस्सति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंत करिस्सति।

प्राणत कल्प मे कितनेक देवो की जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है। वहा जो देव आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, सुषिर, इन्द्र, इन्द्रकान्त और इन्द्रोत्तरावतसक नाम के विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है। वे देव उन्नीम अर्धमासो (साढे नौ मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निश्वास लेते है। उन देवो के उन्नीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो उन्नीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखो का अन्त करेगे।

॥ एकोनविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

विंशतिस्थानक-समवाय

१४०—बीसं असमाहिठाणा पण्णत्ता, तं जहा—दवदवचारि यावि भवइ १, अपमज्जियचारि यावि भवइ २, दुप्पमज्जियचारि यावि भवइ ३, अतिरित्तसेज्जासणिए ४, रातिणियपरिभासी ५, थेरोवघाइए ६, भूओवघाइए ७, संजलणे ८, कोहणे ९, पिट्ठिमंसिए १०, अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ ११, णवाणं अधिकरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाएत्ता भवइ १२, पोराणाणं अधिकरणाणं खामिअ विउसविआणं पुणोदीरेत्ता भवइ १३, ससरक्खपाणिपाए १४, अकालसज्झायकारए यावि भवइ १५, कलहकरे १६, सद्दकरे १७, झंझकरे १८, सूरप्पमाणभोई १९, एसणाऽसमिते आवि भवइ २०।

बीस असमाधिस्थान कहे गये है। जैसे—१ दव-दव या धप-धप करते हुए जल्दी-जल्दी जलना, २ अप्रमार्जितचारी होना, ३ दुष्प्रमार्जितचारी होना, ४ अतिरिक्त शय्या-आसन रखना ५ रात्निक साधुओ का पराभव करना, ६ स्थविर साधुओ को दोष लगाकर उनका उपघात या अपमान करना, ७. भूतो (एकेन्द्रिय जीवो) का व्यर्थ उपघात करना, ८ सदा रोषयुक्त प्रवृत्ति करना, ९ अतिक्रोध करना, १० पीठ पीछे दूसरे का अवर्णवाद करना, ११ निरन्तर-सदा ही दूसरो के गुणो का विलोप करना, जो व्यक्ति दास या चोर नही है, उसे दास या चोर आदि कहना, १२ नित्य नये अधिकरणो (कलह अथवा यन्त्रादिको) को उत्पन्न करना, १३ क्षमा किये हुए या उपशान्त हुए अधिकरणो (लडाई-झगडो) को पुन पुन जागृत करना, १४ सरजस्क (सचेतन धूलि आदि से युक्त हाथ-पैर रखना, सरजस्क हाथ वाले व्यक्ति से भिक्षा ग्रहण करना और सरजस्क स्थडिल आदि पर चलना, सरजस्क आसनादि पर बैठना, १५ अकाल मे स्वाध्याय करना और काल मे स्वाध्याय नही करना, १६ कलह करना, १७ रात्रि मे उच्च स्वर से स्वाध्याय और वार्तालाप करना, १८ गण या सघ मे फूट डालने वाले वचन बोलना, १९ सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त होने तक खाते-पीते रहना तथा २० एषणासमिति का पालन नही करना और अनेषणीय भक्त-पान को ग्रहण करना।

विवेचन—जिन कार्यों के करने से अपने या दूसरे व्यक्तियो के चित्त मे सक्लेश उत्पन्न हो उनको असमाधिस्थान कहते है। सूत्र-प्रतिपादित सभी कार्यो से दूसरो को तो सक्लेश और दु ख होता ही है, साथ ही उक्त कार्यो के करने वालो को भी विना देखे, शोधे धप-धप करते हुए चलने पर ठोकर आदि लगने से, तथा साँप, बिच्छू आदि के द्वारा काट लिए जाने पर महान् सक्लेश और दु ख उत्पन्न होता है। साधु मर्यादा से अधिक शय्या-आसनादि के रखने पर, दूसरो का पराभव करने पर, गुरु-जनादिको का अपमान करने पर और नित्य नये झगडे-टटे उठाने पर सघ मे विक्षोभ उत्पन्न होता है और सघ द्वारा बहिष्कार कर दिये जाने पर तथा दिन भर खाने से रोगादि हो जाने पर स्वय को भी भारी दु ख पैदा होता है। इसलिए उक्त सभी बीसो कार्यों को असमाधिस्थान कहा गया है।

१४१—मुणिसुव्वए ण अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वेवि अ घणोदही वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वीसं सामाणिअसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। णपुंसयवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स वीस सागरोवमकोडाकोडीओ बंधओ बंधठिई पण्णत्ता। पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता। उस्सप्पिणिओसप्पिणिमंडले वीसं सागरोवम कोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो।

मुनिसुव्रत अर्हंत् बीस धनुष ऊंचे थे। सभी घनोदधिवातवलय बीस हजार योजन मोटे कहे गये हैं। प्राणत देवराज देवेन्द्र के सामानिक देव बीस हजार कहे गये हैं। नपुंसक वेदनीय कर्म की, नवीन कर्म-बन्ध की अपेक्षा [उत्कृष्ट] स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम कही गई है। प्रत्याख्यान पूर्व के बीस वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गये हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मडल (आर-चक्र) बीस कोडाकोड़ी सागरोपम काल परिमित कहा गया है। अभिप्राय यह है कि दस कोडाकोडी सागरोपम का उत्सर्पिणीकाल और दस कोडाकोडी सागरोपम का अवसर्पिणीकाल मिल कर बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र कहलाता है।

१४२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं बीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाण अत्थेगइयाणं बीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं बीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पाणते कप्पे देवाणं उक्कोसेण बीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति बीस पल्योपम कही गई है। छठी तम प्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति बीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति बीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति बीस पल्योपम कही गई है। प्राणत कल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम कही गई है।

१४३—आरणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं बीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा सायं विसायं सुविसाय सिद्धत्थ उप्पलं भित्तिलं, तिगिच्छं दिसासोवत्थियं पलंबं रुइल पुप्फं सुपुप्फं पुप्फावत्त पुप्फपभ पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिग पुप्फसिद्धं पुप्फुत्तरवडिसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेणं बीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा बीसाए अद्धमासाण आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससति वा, नीससंति वा, तेसिं ण देवाण बीसाए वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे बीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

आरण कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम कही गई है। वहा जो देव सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, भित्तिल, तिगिछ, दिशासौवस्तिक, प्रलम्ब, रुचिर, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त, पुष्पप्रभ पुष्पदकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृंग, पुष्पसिद्ध (पुष्पसृष्ट) और पुष्पोत्तरावतसक नाम के विशिष्ट विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम कही गई है। वे देव बीस अर्धमासो (दश मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते है। उन देवो को बीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परमनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु:खो का अन्त करेंगे।

॥ विंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकविंशतिस्थानक-समवाय

१४४—एक्कवीस सबला पण्णत्ता, त जहा—हत्थकम्म करेमाणे सबले १, मेहुण पडिसेवमाणे सबले २, राइभोअणं भुंजमाणे सबले ३, आहाकम्म भुंजमाणे सबले ४, सागारिय पिंड भुंजमाणे सबले ५, उद्देसिय कीय आहट्टु दिज्जमाण भुंजमाणे सबले ६, अभिक्खणं पडियाइक्खेत्ता ण भुंजमाणे सबले ७, अतो छण्हं मासाण गणाओ गण सकममाणे सबले ८, अतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सबले ९, अतो मासस्स तओ माईठाणे सेवमाणे सबले १०, रायपिंडं भुंजमाणे सबले ११, आउट्टिआए पाणाइवाय करेमाणे सबले १२, आउट्टिआए मुसावाय वदमाणे सबले १३, आउट्टियाए आदिण्णादाण गिण्हमाणे सबले १४, आउट्टियाए अणतरहिआए पुढवीए ठाण वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबले १५, एव आउट्टिआ चित्तमंताए पुढवीए, एव आउट्टिआ चित्तमताए सिलाए कोलावाससि वा दारुए अण्णयरे वा तहप्पगारे ठाण वा सिज्ज वा निसीहिय वा चेतेमाणे सबले १६, जीवपइट्ठिए सपाणे सबीए सहरिए सउत्तिगे पणग-दग-मट्टी-मक्कडासताणए तहप्पगारे ठाण वा सिज्ज वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबले १७, आउट्टिआए मूलभोयण वा कदभोयण वा तयाभोयणं वा, पवालभोयण वा पुप्फ-भोयण वा फलभोयण वा हरियभोयण वा भुंजमाणे सबले १८, अतो सवच्छरस्स दस दगलेवे करेमाणे सबले १९, अतो सवच्छरस्स दस माइठाणाइ सेवमाणे सबले २०, अभिक्खण अभिक्खण सीतोदय-वियडवग्घारियपाणिणा असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबले २१ ।

इक्कीस शबल कहे गये है (जो दोषरूप क्रिया-विशेषो के द्वारा अपने चारित्र को शबल (कर्बुरित, मलिन या धब्बो से दूषित करते है) जैसे—१ हस्त-मैथुन करने वाला शबल, २ स्त्री आदि के साथ मैथुन सेवन करने वाला शबल, ३ रात मे भोजन करने वाला शबल, ४ आधा-कर्मिक भोजन को सेवन करने वाला शबल, ५ सागारिक (शय्यातर स्थान-दाता) का भोजन-पिंड ग्रहण करने वाला शबल, ६. औद्देशिक, बाजार से क्रीत और अन्यत्र से लाकर दिये गये (अभ्याहृत), भोजन को खाने वाला शबल, ७ बार-बार प्रत्याख्यान (त्याग) कर पुन उसी वस्तु को सेवन करने वाला शबल, ८ छह मास के भीतर एक गण से दूसरे गण मे जाने वाला शबल, ९ एक मास के भीतर तीन वार नाभि-प्रमाण जल मे अवगाहन या प्रवेश करने वाला शबल, १० एक मास के भीतर तीन वार मायास्थान को सेवन करने वाला शबल, ११ राजपिण्ड खाने वाला शबल, १२ जान-बूझ कर पृथिवी आदि जीवो का घात करने वाला शबल, १३ जान-बूझ कर असत्य वचन बोलनेवाला शबल, १४. जान-बूझकर विना दी (हुई) वस्तु को ग्रहण करनेवाला शबल, १५ जान-बूझ कर अनन्तर्हित (सचित्त) पृथिवी पर स्थान, आसन, कायोत्सर्ग आदि करने वाला शबल, १६. इसी प्रकार जान-बूझ कर सचेतन पृथिवी पर, सचेतन शिला पर और कोलावास (घुन वाली) लकडी आदि पर स्थान, शयन आसन आदि करने वाला शबल, १७ जीव-प्रतिष्ठित, प्राण-युक्त, सबीज, हरित-सहित, कीडे-मकोडे वाले, पनक, उदक, मृत्तिका कीडीनगरा वाले एव इसी प्रकार के अन्य स्थान पर अवस्थान, शयन, आसनादि करने वाला शबल, १८ जान-बूझ कर मूल-भोजन, कन्द-भोजन, त्वक्-भोजन, प्रबाल-भोजन, पुष्प-भोजन, फल-भोजन और हरित-भोजन करने वाला शबल, १९ एक वर्ष के भीतर दश वार जलावगाहन या जल मे प्रवेश करने वाला शबल, २० एक वर्ष के भीतर दश वार मायास्थानो का सेवन करने वाला शबल और २१ वार-वार शीतल जल से व्याप्त हाथो से अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुओ को ग्रहण कर खाने वाला शबल ।

१४५—णिअट्टिबायरस्स णं खवितसत्तयस्स मोहणिज्जस्स कम्मस्स एक्कवीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा—अपच्चक्खाणकसाए कोहे, अप्पच्चक्खाणकसाए माणे, अप्पच्चक्खाणकसाए माया, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणकसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरणकसाए माया पच्चक्खाणावरणकसाए लोहे, [संजलणकसाए कोहे, संजलणकसाए माणे, संजलणकसाए माया, संजलणकसाए लोहे,] इत्थिवेदे पु वेदे णपु वेदे हासे अरति-रति-भय-सोग-दुगु छा।

जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक (मिथ्यात्व, मिश्र एव सम्यक्त्वमोहनीय) इन सात प्रकृतियो का क्षय कर दिया है ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि अष्टम गुणस्थानवर्त्ती निवृत्तिबादर सयत के मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियो का सत्त्व कहा गया है। जैसे—१ अप्रत्याख्यान क्रोध-कषाय, २. अप्रत्याख्यान मानकषाय, ३ अप्रत्याख्यान माया कषाय, ४. अप्रत्याख्यान लोभ-कषाय, ५ प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय, ६ प्रत्याख्यानावरण मानकषाय, ७. प्रत्याख्याना-वरण मायाकषाय, ८. प्रत्याख्यानावरण लोभकषाय, [९ सज्वलन क्रोधकषाय, १० सज्वलन मानकषाय, ११ सज्वलन मायाकषाय, १२ सज्वलन लोभकषाय] १३ स्त्रीवेद, १४ पुरुषवेद, १५ नपु सकवेद, १६ हास्य, १७ अरति, १८ रति, १९ भय, २० शोक और २१ दुगु छा (जुगुप्सा)।

१४६—एक्कमेक्काए णं ओसप्पिणीए पचम-छट्ठाओ समाओ एक्कवीस एक्कवीस वाससहस्साइं कालेण पण्णत्ताओ, त जहा—दूसमा, दूसमदूसमा, एगमेगाए ण उस्सप्पिणीए पढम-बितिआओ समाओ एक्कवीसं एक्कवीस वाससहस्साइं कालेण पण्णत्ताओ, तं जहा—दूसमदूसमाए, दूसमाए य।

प्रत्येक अवसर्पिणा के पाचवे और छठे आरे इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के काल वाले कहे गये है। जैसे—दु.षमा और दु षम-दु षमा। प्रत्येक उत्सर्पिणी के प्रथम और द्वितीय आरे इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के काल वाले कहे गये हैं। जैसे—दु षम-दु षमा और दु षमा।

१४७—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण एक्कवीच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कवीसं सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराण देवाणं अत्थेगइयाण एगवीसपलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है। छठी तम:प्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुर-कुमार देवो की स्थिति इक्कीस पल्योपम कही गई है।

१४८—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। आरणे कप्पे देवाण उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति इक्कीस पल्योपम कही गई है। आरणकल्प मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है।

१४९—अच्चुते कप्पे देवाणं जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामकंडं मल्लं किट्टं चावोण्णतं अरण्णवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं

देवाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाणं एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिआ जीवा जे एक्कवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

अच्युत कल्प मे देवो की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है। वहाँ जो देव श्रीवत्स, श्रीदामकाण्ड, मल्ल, कृष्ट, चापोन्नत और आरणावतसक नाम के विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है। वे देव इक्कीस अर्धमासो (साढे दश मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं। उन देवो के इक्कीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे, और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। एकविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्वाविंशतिस्थानक-समवाय

१५०—बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा—दिगिंछापरीसहे १, पिवासापरीसहे २, सीतपरीसहे ३, उसिणपरीसहे ४, दसमसगपरीसहे ५, अचेलपरीसहे ६, अरइपरीसहे ७, इत्थीपरीसहे ८, चरिआपरीसहे ९, निसीहिआपरीसहे १०, सिज्जापरीसहे ११, अक्कोसपरीसहे १२, वहपरीसहे १३, जायणापरीसहे १४, अलाभपरीसहे १५, रोगपरीसहे १६, तणफासपरीसहे १७, जल्लपरीसहे १८, सक्कारपुरक्कारपरीसहे १९, पण्णापरीसहे २०, अण्णाणपरीसहे २१, अदंसणपरीसहे २२।

बाईस परीषह कहे गये हैं। जैसे—१ दिगिंछा (बुभुक्षा) परीषह, २. पिपासापरीषह, ३. शीतपरीषह, ४ उष्णपरीषह, ५ दशमशक परीषह, ६. अचेल परीषह, ७. अरति-परीषह, ८ स्त्रीपरीषह, ९. चर्यापरीषह, १० निषद्यापरीषह, ११. शय्यापरीषह, १२ आक्रोशपरीषह, १३ वधपरीषह, १४ याचनापरीषह, १५ अलाभपरीषह, १६. रोगपरीषह, १७ तृणस्पर्शपरीषह, १८. जल्लपरीषह, १९ सत्कार-पुरस्कारपरीषह, २०. प्रज्ञापरीषह, २१. अज्ञानपरीषह और २२ अदर्शनपरीषह।

विवेचन—मोक्षमार्ग से पतन न हो और पूर्व सचित कर्मों की निर्जरा हो, इस भावना से भूख, प्यास शीत, उष्ण, डास-मच्छर आदि की जो बाधा या कष्ट स्वय समभावपूर्वक सहन किये जाते है, उन्हे परीषह कहा जाता है। वे बाईस है, जिनके नाम ऊपर गिनाये गये हैं।

१५१—दिट्ठिवायस्स णं बावीसं सुत्ताइं छिन्नछेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए, बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्नछेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए, बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं समयसुत्तपरिवाडीए।

दृष्टिवाद नामक बारहवे अग मे बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रपरिपाटी से छिन्न-छेदनयिक है। बाईस सूत्र आजीविकसूत्रपरिपाटी से अच्छिन्न-छेदनयिक हैं। बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्रपरिपाटी से नयत्रिक-सम्बन्धी हैं। बाईस सूत्र चतुष्कनयिक है जो चार नयो की अपेक्षा से कहे गये है।

विवेचन—जो नय छिन्न सूत्र को छेद या भेद से स्वीकार करता है, अर्थात् दूसरे श्लोकादि की अपेक्षा नही रखता है, वह छेदनयस्थित कहलाता है। जैसे 'धम्मो मगलमुक्किट्ठ' इत्यादि श्लोक अपने अर्थ को प्रकट करने के लिए अन्य श्लोक की अपेक्षा नही रखता। इसी प्रकार जो सूत्र छिन्न-छेदनय वाले होते है उन्हे छिन्नछेदनयिक कहा जाता है। दृष्टिवाद अग मे ऐसे बाईस सूत्र है जो जिनमत की परिपाटी या पद्धति से निरूपण किये है। जो नय अच्छिन्न (अभिन्न) सूत्र की छेद से अपेक्षा रखता है, वह अच्छिन्नछेदनक कहलाता है अर्थात् द्वितीय आदि श्लोको की अपेक्षा रखता है। ऐसे बाईस सूत्र आजीविक गोशालक के मत की परिपाटी से कहे गये है। जो सूत्र द्रव्यास्तिक, पर्यायास्तिक और उभयास्तिक इन तीन नयो की अपेक्षा से कहे गये है, वे त्रिकनयिक या त्रैराशिक मत की परिपाटी से कहे गये है। जो सूत्र सग्रह, व्यवहार, ऋजु-सूत्र और शब्दादित्रिक, इन चार नयो की अपेक्षा से कहे गये हैं वे चतुष्कनयिक कहे जाते हैं। वे स्वसमय से सम्बद्ध है।

१५२—बावीसविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णपरिणामे, नीलवण्णपरिणामे, लोहियवण्णपरिणामे, हलिद्दवण्णपरिणामे, सुक्किल्लवण्णपरिणामे, सुब्भिगधपरिणामे, दुब्भिगंध-परिणामे, तित्तरसपरिणामे, कडुयरसपरिणामे, कसायरसपरिणामे, अंबिलरसपरिणामे, महुररस-परिणामे, कक्खडफासपरिणामे, मउयफासपरिणामे, गुरुफासपरिणामे, लहुफासपरिणामे, सीतफास-परिणामे, उसिणफासपरिणामे, णिद्धफासपरिणामे, लुक्खफासपरिणामे, अगुरुलहुफासपरिणामे, गुरुलहु-फासपरिणामे।

पुद्गल के परिणाम (धर्म) बाईस प्रकार के कहे गये है। जैसे—१. कृष्णवर्णपरिणाम २ नीलवर्णपरिणाम, ३ लोहितवर्णपरिणाम, ४ हारिद्रवर्णपरिणाम, ५ शुक्लवर्णपरिणाम, ६ सुरभिगन्धपरिणाम, ७ दुरभिगन्धपरिणाम, ८ तिक्तरसपरिणाम, ९ कटुकरसपरिणाम १० कषायरसपरिणाम, ११ आम्लरसपरिणाम, १२ मधुररसपरिणाम, १३ कर्कशस्पर्श परिणाम, १४ मृदुस्पर्शपरिणाम, १५ गुरुस्पर्शपरिणाम, १६ लघुस्पर्शपरिणाम, १७ शीतस्पर्शपरिणाम, १८. उष्णस्पर्शपरिणाम, १९ स्निग्धस्पर्शपरिणाम २० रूक्षस्पर्शपरिणाम, २१ अगुरुलघुस्पर्शपरिणाम और २२ गुरुलघुस्पर्शपरिणाम।

१५३—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण बावीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराण देवाणं अत्थेगइयाणं बावीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं बावीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति बाईस पल्योपम कही गई है। छठी तम प्रभा पृथिवी मे नारकियो की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। अधस्तन सातवी तमस्तमा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। कितनेक

असुरकुमार देवो की स्थिति बाईस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो में कितनेक देवो की स्थिति बाईस पल्योपम कही गई है।

१५४—अच्चुते कप्पे देवाण [उक्कोसेणं] बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेवेज्जगाणं देवाणं जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा महियं विसूहियं विमलं पभासं वणमालं अच्चुतवडिंसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाण उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा [बावीस अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा, उस्ससंति वा नीससंति वा।] तेसि णं देवाणं बावीसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बावीस भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंत करिस्संति।

अच्युत कल्प मे देवो की [उत्कृष्ट] स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक देवो को जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। वहा जो देव महित, विसूहित (विश्रुत), विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतसक नाम के विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है। वे देव बाईस अर्धमासो (ग्यारह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के बाईस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव बाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे कर्मो से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। द्वाविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रयोविंशतिस्थानक-समवाय

१५५—तेवीसं सूयगडज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—समए १, वेतालिए २, उवसग्गपरिण्णा ३, थीपरिण्णा ४, नरयविभत्ती ५, महावीरथुई ६, कुसीलपरिभासिए ७, विरिए ८, धम्मे ९, समाही १०, मग्गे ११, समोसरणे १२, आहत्तहिए १३, गंथे १४, जमईए १५ गाथा १६, पुण्डरीए १७, किरिया-ठाणा १८, आहारपरिण्णा १९, अपच्चक्खाणकिरिआ २०, अणगारसुय २१, अद्दइज्जं २२, णालंद-इज्जं २३।

सूत्रकृताङ्ग मे तेईस अध्ययन कहे गये है। जैसे—१ समय, २ वैतालिक, ३ उपसर्ग-परिज्ञा, ३. स्त्रीपरिज्ञा, ५. नरकविभक्ति, ६. महावीरस्तुति, ७ कुशीलपरिभाषित, ८ वीर्य, ९. धर्म, १०. समाधि, ११ मार्ग, १२ समवसरण, १३. याथातथ्य (आख्यातहित) १४. ग्रन्थ, १५. यमतीत, १६. गाथा, १७. पुण्डरीक, १८. क्रियास्थान, १९. आहारपरिज्ञा, २०. अप्रत्याख्यानक्रिया, २१. अनगारश्रुत, २२ आर्द्रीय, २३. नालन्दीय।

१५६—जम्बुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमण-मुहुत्तंसि केवलवरनाण-दंसणे समुप्पण्णे। जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थकरा

पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था । तं जहा—अजित-सम्भव अभिणंदण-सुमई जाव पासो वद्धमाणो य । उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे, इसी भारतवर्ष मे, इसी अवसर्पिणी मे तेईस तीर्थंकर जिनो को सूर्योदय मे मुहूर्त्त मे केवल-वर-ज्ञान और केवल-वर-दर्शन उत्पन्न हुए। जम्बूद्वीपनामक इसी द्वीप मे इसी अवसर्पिणीकाल के तेईस तीर्थंकर पूर्वभव मे ग्यारह अगश्रुत के धारी थे। जैसे—अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति यावत् पार्श्वनाथ, महावीर। कौशलिक ऋषभ अर्हत् चतुर्दशपूर्वी थे।

१५७—जम्बुद्दीवे ण दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीस तित्थंकरा पुव्वभवे मडलियरायाणो होत्था। तं जहा—अजित-सम्भव-अभिणदण जाव पासो वद्धमाणो य। उसभे ण अरहा कोसलिए पुव्वभवे चक्कवट्टी होत्था ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे इस अवसर्पिणी काल के तेईस तीर्थंकर पूर्वभव मे माडलिक राजा थे। जैसे—अजित, सभव, अभिनन्दन यावत् पार्श्वनाथ तथा वर्धमान। कौशलिक ऋषभ अर्हत् पूर्वभव मे चक्रवर्ती थे।

१५८—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण तेवीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए ण पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाण अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणाणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है। सौधर्म ईशान कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है।

१५९—हेट्ठिममज्झिमगेविज्जाण देवाण जहण्णेण तेवीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि ण देवाण उक्कोसेणं तेवीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा तेवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाण तेवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जई ।

संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे तेवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक के देवो की जघन्य स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है। जो देव अधस्तन ग्रैवेयव विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है। वे देव तेईस अर्धमासो (साढे ग्यारह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के तेईस हजार वर्षो के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है, जो तेईस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ त्रयोविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुर्विंशतिस्थानक-समवाय

१६०—चउव्वीस देवाहिदेवा पण्णत्ता । तं जहा—उसभ-अजित-संभव-अभिणदण-सुमइ-पउमप्पह-सुपास-चंदप्पह-सुविधि-सीअल-सिज्जस - वासुपुज्ज-विमल-अणत-धम्म-संति-कु थु - अर-मल्ली-मुणिसुव्वय-नमि-नेमी-पास-वद्धमाणा ।

चौबीस देवाधिदेव कहे गये हैं । जैसे—ऋषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त) शीतल, श्रेयान्स, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान ।

१६१—चुल्लहिमवंत-सिहरीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ चउव्वीसं चउव्वीसं जोयणसहस्साइं णव-बत्तीसे जोयणसए एग अट्ठत्तीसइ भागं जोयणस्स किंचि विसेसाहियाओ आयामेण पण्णत्ता ।

क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वतो की जीवाए चौबीस-चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन और एक योजन के अडतीस भागो मे से एक भाग से कुछ अधिक (२४९३२$\frac{1}{38}$ साधिक) लम्बी कही गई है ।

१६२— चउवीसं देवट्ठाणा सइंदया पण्णत्ता, सेसा अहमिंदा अनिंदा अपुरोहिआ ।

चौबीस देवस्थान इन्द्र-सहित कहे गये है । शेष देवस्थान इन्द्र-रहित, पुरोहित-रहित हैं और वहा के देव अहमिन्द्र कहे जाते है ।

विवेचन—जो चौबीस देवस्थान इन्द्र-सहित कहे गये है, वे इस प्रकार हैं—दश जाति के भवन-वासी देवो के दश स्थान, आठ जाति के व्यन्तर देवो के आठ स्थान, पाच प्रकार के ज्योतिष्क देवो के पाँच स्थान और सौधर्मादि कल्पवासी देवो का एक स्थान । इस प्रकार ये सब मिलकर (१०+८+५+१=२४) चौबीस होते है । इन सभी स्थानो मे राजा-प्रजा आदि जैसी व्यवस्था है, अत उनके अधिपतियो को इन्द्र कहा जाता है । किन्तु नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमानो मे राजा प्रजा आदि की कल्पना नही है, किन्तु वहाँ के सभी देव समान ऐश्वर्य एव वैभववाले हैं, वे सभी अपने को 'अहम्+इन्द्र ' 'मै इन्द्र हूँ' इस प्रकार अनुभव करते है, इसलिये वे 'अहमिन्द्र' कहलाते है और इसी कारण उन चौदह ही स्थानो को अनिन्द्र (इन्द्र-रहित) और अपुरोहित (पुरोहित-रहित) कहा गया है । यह अपुरोहित शब्द उपलक्षण है, अतः जहाँ इन्द्र होता है, वहाँ उसके साथ सामानिक, त्रायस्त्रिश, आत्म-रक्षक, पुरोहित और लोकपालादि भी होते है । किन्तु जहाँ इन्द्र की कल्पना नही है, उन देवस्थानो को 'अनिन्द्र, अपुरोहित' आदि शब्दो से कहा गया है ।

१६३—उत्तरायणगते णं सूरिए चउवीसगुलिए पोरिसिछायं णिव्वत्तइत्ता ण णिअट्टति । गंगा-सिंधूओ ण महाणदीओ पवहे सातिरेगेणं चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ते । रत्ता-रत्तवतीओ णं महाणदीओ पवाहे सातिरेगे चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ते ।

उत्तरायण-गत सूर्य चौबीस अगुलवाली पौरुषी छाया को करके कर्क सक्रान्ति के दिन सर्वाभ्यन्तर मडल से निवृत्त होता है, अर्थात् दूसरे मडल पर आता है । गगा-सिन्धु महानदियाँ प्रवाह

(उद्‌गम-) स्थान पर कुछ अधिक चौबीस-चौबीस कोश विस्तार वाली कही गई है। [इसी प्रकार] रक्ता-रक्तवती महानदियाँ प्रवाह-स्थान पर कुछ अधिक चौबीस-चौबीस कोश विस्तारवाली कही गई है।

१६४—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआण नेरइयाण ठिई चउवीसं पलिओवमाइं पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं चउवीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणे ण देवाण अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुर-कुमार देवो की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है।

१६५—हेट्ठिम-उवरिमगेवेज्जाण देवाणं जहण्णेणं चउवीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि ण देवाण उक्कोसेण चउवीस सागरो-वमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा चउवीसाए अद्धमासाण आणमति वा, पाणमति वा, ऊससंति वा णीससंति वा। तेसि ण देवाणं चउवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्सति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्सति।

अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है। जो देव अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है। वे देव चौबीस अर्धमासो (बारह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को चौबीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे है जो चौबीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मो से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ चतुर्विंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

पंचविंशतिस्थानक-समवाय

१६६—पुरिम-पच्छिमगाणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—ईरिआसमिई मणगुत्ती वयगुत्ती आलोयपाणभोयणं आदाण-भंड-मत्तणिक्खेवणासिई ५, अणुवीति-भासणया कोहविवेगे लोभविवेगे भयविवेगे हासविवेगे ५, उग्गहअणुण्णवणया उग्गहसीमजाणणया सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया साहारणभत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया ५, इत्थी-पसु-पंडगससत्तगसयणासणवज्जणया इत्थीकहविवज्जणया इत्थीणं इंदियाण-

मालोयणवज्जणया पुव्वरय-पुव्व-कोलिआणं अणणुसरणया पणीताहारविवज्जणया ४, सोइंदियरागोवरई चक्खिदियरागोवरई घाणिंदियरागोवरई जिब्भिदियरागोवरई फासिंदियरागोवरई ५।

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरो के (द्वारा उपदिष्ट) पचयाम की पच्चीस भावनाए कही गई हैं। जैसे—[प्राणातिपात-विरमण या अहिंसा महाव्रत की पाच भावनाए—] १. ईर्यासमिति, २ मनोगुप्ति, ३. वचनगुप्ति, ४ आलोकितपान-भोजन, ५. आदानभाड-मात्रनिक्षेपणासमिति। [मृषावाद-विरमण या सत्य महाव्रत की पाच भावनाए—] १ अनुवीचिभाषण, २ क्रोध-विवेक, ३ लोभ-विवेक, ४. भय-विवेक, ५ हास्य-विवेक। [अदत्तादान-विरमण या अचौर्य महाव्रत की पाच भावनाए—] १ अवग्रह-अनुज्ञापनता, २ अवग्रहसीम-ज्ञापनता, ३ स्वयमेव अवग्रह-अनुग्रहणता, ४ साधर्मिक अवग्रह-अनुज्ञापनता, ५ साधारण भक्तपान-अनुज्ञाप्य परिभु जनता, [मैथुन-विरमण या ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाच भावनाए—] १ स्त्री-पशु-नपु सक-ससक्त शयन-आसन वर्जनता, २. स्त्रीकथाविवर्जनता, ३ स्त्री इन्द्रिय-[मनोहराङ्ग] आलोकनवर्जनता, ४ पूर्वरत-पूर्वक्रीडा-अननुस्मरणता, ५ प्रणीत-आहार-विवर्जनता। [परिग्रह-वेरमण महाव्रत की पाच भावनाए—] १ श्रोत्रेन्द्रिय-रागोपरति, २ चक्षुरिन्द्रिय-रागोपरति, ३ घ्राणेन्द्रिय-रागोपरति, ४ जिह्वेन्द्रिय-रागोपरति, और ५. स्पर्शनेन्द्रिय-रागोपरति।

विवेचन—मध्य के बाईस तीर्थकरो के शासन मे पचमहाव्रत के स्थान पर चातुर्याम धर्म प्रचलित था, अतएव यहाँ प्रथम और चरम तीर्थकर का ग्रहण किया गया है। आदितीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव और चरम तीर्थकर वर्धमान स्वामी ने जिन पचयाम व्रतो का उपदेश दिया तथा उनकी रक्षा के लिए प्रत्येक व्रत की पाच-पाँच भावनाओ के चिन्तन, मनन और आचरण करने का भी विधान किया है। यावज्जीवन के लिए स्वीकृत अहिंसा महाव्रत तभी सुरक्षित रह सकता है जबकि भूमि पर दृष्टि रख कर जीवो की रक्षा करते हुए गमन किया जाए, मन की चचलता पर नियन्त्रण रखा जाए, बोलते समय नियन्त्रण रखते हुए हित, मित, प्रिय वचन बोले जाए, सूर्य से प्रकाशित स्थान पर भली-भाति देख-शोध कर खान-पान किया जाए और वस्त्र-पात्र आदि को उठाते और रखते समय सावधानी रखी जाए। ये ही प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाए है।

सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए आवश्यक है कि खूब सोच-विचार करके बोला जाए, क्रोध का त्याग किया जाए, लोभ का त्याग किया जाए, भय का त्याग किया जाए, और हास-परिहास का त्याग किया जाए। विचार किये विना बोलने से असत्य वचन का मुख से निकलना सम्भव है, क्रोध के आवेश मे भी प्राय असत्य वचन मुख से निकल जाते है, लोभ से तो मनुष्य प्राय झूठ बोलते ही है, भय से भी व्यक्ति असत्य बोल जाता है और हसी मे भी दूसरे को अपमानित करने या उसका मजाक उडाने के लिए असत्य बोलना प्राय देखा जाता है। अत सत्य महाव्रत की पूर्ण रक्षा के लिए अनुवीचिभाषण और क्रोध, लोभ, भय और हास्य का परित्याग आवश्यक है।

अचौर्य महाव्रत की रक्षा के लिए आवश्यक है कि किसी भी वस्तु को ग्रहण करने से पहले उसके स्वामी से अनुज्ञा या स्वीकृति प्राप्त कर ली जाए, अपनी सीमा या मर्यादा के ज्ञानपूर्वक ही वस्तु ग्रहण की जाय, स्वय याचना करके वस्तु ग्रहण की जाए, अपने साधर्मिको को आहार-पानी के लिए आमन्त्रण देकर खान-पान किया जाए और याचना करके लाये हुए भक्त-पानादि को गुरुजनो के आगे निवेदन कर और उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर आहार किया जाय। सस्कृतटीकाकार ने परिभु जनता की

व्याख्या करते हुए अथवा कह कर उसका निवास अर्थ भी किया है, जिसका अभिप्राय यह है कि जिस स्थानक या उपाश्रय आदि मे निवास किया जाए, उसके स्वामी से स्वीकृति प्राप्त करके ही निवास किया जाय।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की रक्षा के लिए स्त्री, पशु, नपु सक दुराचारी मनुष्यो के सम्पर्क वाले स्थान पर सोने या बैठने का त्याग किया जाए, स्त्रियो की राग-वर्धक कथाओ का और उनके मनोहर अगोपागों को देखने का त्याग किया जाए, पूर्वकाल मे स्त्री के साथ भोगे हुए भोगो को और काम-क्रीडाओ को याद न किया जाए तथा पौष्टिक गरिष्ठ और रस-बहुल आहार-पान का त्याग किया जाए।

परिग्रह-त्याग महाव्रत की रक्षा के लिए पाचो इन्द्रियो के शब्दादि इष्ट विषयो मे राग का और अनिष्ट विषयो मे द्वेष का त्याग आवश्यक है।

इन भावनाओ के करने पर ही उक्त महाव्रत स्थिर और दृढ रह सकते है, अन्यथा नही। अत उक्त भावनाओ का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्र मे भी उक्त व्रतो की २५ भावनाए कही गई है, किन्तु श्वे० और दि० सम्मत पाठो मे तीसरे अचौर्य महाव्रत की भावनाओ मे कुछ अन्तर है, प्रकरण-सगत होने एव कुछ महत्त्वपूर्ण होने से उनका यहाँ निर्देश किया जाता है—

श्वे० तत्त्वार्थाधिगम भाष्य के अनुसार—

१ अनुवीचि-अवग्रह-याचन—हिंसादि दोषो से रहित निर्दोष अवग्रह का ग्रहण करना और उसी की याचना करना।

२ अभीक्ष्णावग्रहयाचन—निरन्तर उसी प्रकार से ग्रहण और याचन करना।

३. एतावदित्यवग्रहावधारण—मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है, ऐसा कह कर उतनी ही वस्तु को और भक्त-पान को ग्रहण करना।

४ समानधार्मिको से अवग्रह-याचन—अपने ही समान समाचारी वालो से याचना करना और उन्ही के पदार्थों को ग्रहण करना।

५. अनुज्ञापित पान-भोजन—अनुज्ञा या स्वीकृति मिलने पर भोजन-पान करना।

दि० तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार—

१. शून्यागार-आवास—जिनका कोई स्वामी नही रहा है और जो सर्वसाधारण लोगो के ठहरने के लिए घोषित कर दिये गये हैं, ऐसे सूने घर, मठ आदि मे निवास करना।

२ विमोचितावास—जिन घरो के स्वामियो को राजा आदि ने निकाल कर देश से बाहर कर दिया और उन्हे सर्वसाधारण के रहने या ठहरने के लिए घोषित कर दिया ऐसे घरो मे निवास करना।

३. परोपरोधाकरण—जहा स्वय निवास कर रहे हो, उस स्थान पर यदि कोई साधर्मी ठहरने को आवे तो उसे मना नही करना।

४. भैक्ष्यशुद्धि—भिक्षा-सम्बन्धी सर्व दोषो और अन्तरायो को टाल भिक्षा ग्रहण करना।

५. सधर्माविसवाद—साधर्मी जनों से विसवाद या कलह नही करना।

१६७—मल्ली णं अरहा पणवीसं धणुइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सव्वे वि दीहवेयड्ढपव्वया पणवीसं जोयणाणि उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ता। पणवीसं पणवीसं गाउग्राणि उव्विद्धेणं पण्णत्ता।

दोच्चाए ण पुढवीए पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

मल्ली अर्हन् पच्चीस धनुष ऊंचे थे।

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत पच्चीस धनुष ऊंचे कहे गये है। तथा वे पच्चीस कोश भूमि मे गहरे कहे गये है।

दूसरी पृथिवी में पच्चीस लाख नारकावास कहे गये हैं।

१६८—आयारस्स णं भगवग्रो सचूलिग्रायस्स पणवीसं ग्रज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

सत्थपरिण्णा[1] लोगविजओ[2] सीओसणीअ[3] सम्मत्तं[4]।
ग्रावंति[5] धुय[6] विमोह[7] उवहाण[8] सुयं महपरिण्णा[9] ॥१॥
पिंडेसण[10] सिज्जिरि[11] आ[12] भासज्झयणा[13] य वत्थ[14] पाएसा[15]।
उग्गहपडिमा[16] सत्तिक्कसत्तया[17-23] भावण[24] विमुत्ती[25] ॥२॥

णिसीहज्झयणं पणुवीसइम।

चूलिका-सहित भगवद्-आचाराङ्ग सूत्र के पच्चीस अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—१. शस्त्र-परिज्ञा, २ लोकविजय, ३, शीतोष्णीय, ४. सम्यक्त्व, ५ आवन्ती, ६ धूत, ७. विमोह, ८. उपधान-श्रुत, ९ महापरिज्ञा, १० पिण्डैषणा, ११ शय्या, १२ ईर्या, १३, भाषाध्ययन, १४ वस्त्रैषणा, १५ पात्रैषणा, १६ अवग्रहप्रतिमा, १७-२३ सप्तैकक (१७ स्थान, १८ निषीधिका, १९ उच्चारप्रस्रवण, २० शब्द, २१ रूप, २२ परक्रिया, २३ अन्योन्य क्रिया) २४ भावना अध्ययन और २५. विमुक्ति अध्ययन ॥१-२॥

अन्तिम विमुक्ति अध्ययन निशीथ अध्ययन सहित पच्चीसवा है।

१६९—मिच्छादिट्ठिविगलिंदिए णं अपज्जत्तए ण संकिलिट्ठपरिणामे णामस्स कम्मस्स पणवीसं उत्तरपयडीओ णिबधति तिरियगतिनाम १, विगलिंदियजातिनाम २, ओरालियसरीरणामं ३, तेअगसरीरणाम ४, कम्मणसरीरनाम ५, हुडगसठाणनामं ६, ओरालिग्रसरीरगोवंगणाम ७, छेवट्ठ-सघयणनाम ८, वण्णनामं ९, गधनाम १०, रसनाम ११, फासनाम १२, तिरिआणुपुव्विनामं १३, अगुरुलहुनामं १४, उवघायनाम १५, तसनामं १६, बादरनाम १७, अपज्जत्तयनाम १८, पत्तेयसरीर-नाम १९, अथिरनाम २०, असुभनामं २१, दुभगनाम २२, अणादेज्जनाम २३, अजसोकित्तिनामं २४, निम्माणनामं २५।

सक्लिष्ट परिणामवाले अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) जीव नामकर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियो को बाधते हैं। जैसे—१. तिर्यग्गतिनाम, २ विकलेन्द्रिय जातिनाम, ३. औदारिकशरीरनाम, ४. तैजसशरीरनाम, ५ कार्मणशरीरनाम, ६ हुडकसस्थान नाम, ७ औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम, ८ सेवार्त्तसहनननाम, ९. वर्णनाम, १०. गन्धनाम, ११. रसनाम १२. स्पर्शनाम, १३. तिर्यंचानुपूर्वीनाम, १४ अगुरुलघुनाम, १५ उपघातनाम, १६. त्रसनाम, १७. बादरनाम, १८ अपर्याप्तकनाम, १९ प्रत्येकशरीरनाम, २० अस्थिरनाम, २१ अशुभनाम, २२. दुर्भगनाम, २३. अनादेयनाम, २४ अयशस्कीर्त्तिनाम और २५, निर्माणनाम।

विवेचन—अत्यन्त सक्लेश परिणामो से युक्त मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक विकलेन्द्रिय जीव नामकर्म की उक्त २५ प्रकृतियो को बाँधता है। यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि विकलेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के भेद से तीन प्रकार के होते है। अत जब कोई जीव द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक के योग्य उक्त प्रकृतियो का बन्ध करेगा, तब वह विकलेन्द्रियजातिनाम के स्थान पर द्वीन्द्रियजाति नामकर्म का बन्ध करेगा। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय या चतुरिन्द्रिय जाति के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाला त्रीन्द्रिय या चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म का बन्ध करेगा। इसका कारण यह है कि जातिनाम कर्म के ५ भेदो मे विकलेन्द्रिय जाति नाम का कोई भेद नही है। प्रस्तुत सूत्र मे पच्चीस-पच्चीस सख्या के अनुरोध से और द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियो के तीन वार उक्त प्रकृतियो के कथन के विस्तार के भय से 'विकलेन्द्रिय' पद का प्रयोग किया गया है।

१७०—गंगा-सिंधूओ णं महानदीओ पणवीसं गाउयाणि पुहुत्तेणं दुहओ घडमुहपवित्तिएण मुत्तावलिहारसठिएण पवातेण पडति। रत्ता-रत्तावईओ णं महाणदीओ पणवीस गाउयाणि पुहुत्तेणं मकरमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं पवातेण पडंति।

गगा-सिन्धु महानदियाँ पच्चीस कोश पृथुल (मोटी) घडे के मुख-समान मुख मे प्रवेश कर और मकर (मगर) के मुख की जिह्वा के समान पनाले से निकल कर मुक्तावली हार के आकार से प्रपातद्रह मे गिरती है। इसी प्रकार रक्ता-रक्तवती महानदियाँ भी पच्चीस कोश पृथुल घडे के मुख-समान मुख मे प्रवेश कर और मकर के मुख की जिह्वा के समान पनाले से निकलकर मुक्तावली-हार के आकार से प्रपातद्रह मे गिरती हैं।

विवेचन—क्षुल्लक हिमवत कुलाचल या वर्षधरपर्वत के ऊपर स्थित पद्मद्रह के पूर्वी तोरण द्वार से गगा महानदी और पश्चिमी तोरणद्वार से सिन्धुमहानदी निकलती है। इसी प्रकार शिखरी कुलाचल के ऊपर स्थित पु डरीकद्रह के पूर्वी तोरणद्वार से रक्तामहानदी और पश्चिमी तोरणद्वार से रक्तवती महानदी निकलती है। ये चारो ही महानदियाँ द्रहो से निकल कर पहले पाच-पाच सौ योजन पर्वत के ऊपर ही बहती है। तत्पश्चात् गगा-सिन्धु भरतक्षेत्र की ओर दक्षिणाभिमुख होकर और रक्ता-रक्तवती ऐरवतक्षेत्र की ओर उत्तराभिमुख होकर भूमि पर अवस्थित अपने-अपने नाम वाले गगाकूट आदि प्रपात कूटो मे गिरती हैं। पर्वत से गिरने के स्थान पर उनके निकलने के लिए एक बडा वज्रमयी पनाला बना हुआ है उसका मुख पर्वत की ओर घडे के मुख समान गोल है और भरतादि क्षेत्रो की ओर मकर के मुख की लम्बी जीभ के समान है। तथा पर्वत से नीचे भूमि पर गिरती हुई जलधारा मोतियो के सहस्रो लडीवाले हार के समान प्रतीत होती है। यह जलधारा पच्चीस कोश या सवा छह योजन चौडी होती है।

१७१—लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीस वत्थू पण्णत्ता।

लोकविन्दुसार नामक चौदहवे पूर्व के वस्तुनामक पच्चीस अर्थाधिकार कहे गये है।

१७२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभापृथिवी में कितनेक नारकियो की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी महातम प्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्प मे कितनेक देवो की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है।

१७३—मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि ण देवाणं उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा पणवीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, निस्ससंति वा। तेसि णं देवाणं पणवीस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्सति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्सति।

मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है। जो देव अधस्तन-उपरिमग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है। वे देव पच्चीस अर्धमासो (साढे बारह मासो) के बाद आन-प्राण या श्वासोच्छ्वास लेते है। उन देवो के पच्चीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे है जो पच्चीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दु खो का अन्त करेंगे।

॥ पर्चावशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

षड्विंशतिस्थानक-समवाय

१७४—छव्वीसं दसकप्पववहाराणं उद्देसणकाला पण्णत्ता, तं जहा— दस दसाणं छ, कप्पस्स, दस ववहारस्स।

दशासूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध) कल्पसूत्र और व्यवहारसूत्र के छब्बीस उद्देशनकाल कहे गये हैं। जैसे—दशासूत्र के दश, कल्पसूत्र के छह और व्यवहारसूत्र के दश।

विवेचन—आगम या शास्त्र की वाचना देने के काल को उद्देशन-काल कहते हैं। जिस श्रुतस्कन्ध अथवा अध्ययन मे जितने अध्ययन या उद्देशक होते है, उनके उद्देशनकाल या अवसर भी उतने ही होते है।

१७५—अभवसिद्धियाण जीवाण मोहणिज्जस्स कम्मस्स छव्वीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तमोहणिज्ज, सोलस कसाया, इत्थीवेदे पुरिसवेदे नपुंसकवेदे हासं अरति रति भयं सोगं दुगुंछा।

अभव्यसिद्धिक जीवो के मोहनीय, कर्म के छब्बीस कर्मांश (प्रकृतियां) सत्ता मे कहे गये हैं। जैसे—१ मिथ्यात्व मोहनीय, १७ सोलह कषाय, १८ स्त्रीवेद, १९ पुरुषवेद, २० नपुसकवेद, २१. हास्य, २२ अरति, २३. रति, २४ भय, २५. शोक और २६ जुगुप्सा।

विवेचन—दर्शनमोह का जब कोई जीव सर्वप्रथम उपशमन करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, तब वह अनादिकाल से चले आ रहे दर्शनमोहनीय कर्म के तीन विभाग करता है। तब वह चारित्र-मोह के उक्त पच्चीस भेदो के साथ अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्तावाला होता है। परन्तु अभव्य जीव कभी सम्यग्दर्शन को प्राप्त ही नही करते, अत. अनादि मिथ्यात्व के वे तीन विभाग भी नही कर पाते हैं। इससे उनके सदा ही मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृतियाँ ही सत्ता मे रहती हैं। मिश्र और सम्यक्त्वमोहनीय की सत्ता उनमे नही होती।

१७६—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणे ण देवाण अत्थे-गइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति छब्बीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी महातम प्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति छब्बीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति छब्बीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्प मे रहनेवाले किननेक देवो की स्थिति छब्बीस पल्योपम कही गई है।

१७७—मज्झिममज्झिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि ण देवाण उक्कोसेण छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा छव्वीसाए अद्धमासेहि आणमति वा, पाणमति वा, ऊससति वा, नीससति वा। तेसि ण देवाणं छव्वीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छव्वीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्सति बुज्झिसति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्सति सव्वदुक्खाणमंत करिस्सति।

मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपम कही गई है। जो देव मध्य-अधस्तनग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति छब्बीस सागरोपम कही गई है। वे देव छब्बीस अर्धमासो (तेरह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के छब्बीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छब्बीस भव करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्वदु खो का अन्त करेगे।

॥ षड्विंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तविंशतिस्थानक-समवाय

१७८—सत्तावीसं अणगारगुणा पण्णत्ता, तं जहा—पाणाइवायाओ वेरमणं १, मुसावायाओ वेरमणं २, अदिन्नादाणाओ वेरमणं ३, मेहुणाओ वेरमणं ४, परिग्गहाओ वेरमणं ५, सोइंदियनिग्गहे ६, चक्खिदियनिग्गहे ७, घाणिंदियणिग्गहे ८, जिब्भिदियणिग्गहे ९, फासिंदियनिग्गहे १०, कोहविवेगे

११, माणविवेगे १२, मायाविवेगे १३, लोभविवेगे १४, भावसच्चे १५, करणसच्चे १६, जोगसच्चे १७, खमा १८, विरागया १९, मणसमाहरणया २०, वयसमाहरणया २१, कायसमाहरणया २२, णाणसपण्णया २३, दंसणसपण्णया २४, चरित्तसंपण्णया २५, वेयण अहियासणया २६, मारणंतिय अहियासणया २७ ।

अनगार-निर्ग्रन्थ साधुओ के सत्ताईस गुण है। जैसे—१ प्राणातिपात-विरमण, २ मृषावाद-विरमण, ३ अदत्तादान-विरमण, ४ मैथुन-विरमण, ५ परिग्रह-विरमण, ६ श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह, ७ चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह, ८ घ्राणेन्द्रिय-निग्रह, ९ जिह्वेन्द्रिय-निग्रह, १० स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह, ११ क्रोध-विवेक, १२ मानविवेक, १३ मायाविवेक, १४ लोभविवेक, १५ भावसत्य, १६ करणसत्य, १७ योग-सत्य, १८ क्षमा, १९ विरागता, २० मन समाहरणता, २१ वचनसमाहरणता, २२ कायसमाहरणता, २३ ज्ञानसम्पन्नता, २४ दर्शनसम्पन्नता, २५ चारित्रसम्पन्नता, २६ वेदनातिसहनता और मारणान्तिकातिसहनता ।

विवेचन—अनगार श्रमणो के प्राणातिपात-विरमण आदि पाँच महाव्रत मूलगुण हैं। शेष बाईस उत्तर गुण है। जिनमे पाँचो इन्द्रियो के विषयो का निग्रह करना, अर्थात् उनकी उच्छृखल प्रवृत्ति को रोकना और क्रोधादि चारो कषायो का विवेक अर्थात् परित्याग करना आवश्यक है। अन्तरात्मा की शुद्धि को भावसत्य कहते है। वस्त्रादि का यथाविधि प्रतिलेखन करते पूर्ण सावधानी रखना करणसत्य है। मन वचन काय की प्रवृत्ति समीचीन रखना अर्थात् तीनो योगो की शुद्धि या पवित्रता रखना योगसत्य है। मन मे भी क्रोध भाव न लाना, द्वेष और अभिमान का भाव जागृत न होने देना क्षमा गुण है। किसी भी वस्तु मे आसक्ति नही रखना विरागता गुण है। मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति का निरोध करना उनकी समाहरणता कहलाती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से सम्पन्नता तो साधुओ के होना ही चाहिए। शीत-उष्ण आदि वेदनाओ को सहना वेदनातिसहनता है। मरण के समय सर्व प्रकार के परीषहो और उपसर्गों को सहना, तथा किसी व्यक्ति के द्वारा होने वाले मारणान्तिक कष्ट को सहते हुए भी उस पर कल्याणकारी मित्र की बुद्धि रखना मारणा-न्तिकातिसहनता है।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि दिगम्बर-परम्परा मे साधुओ के २८ गुण कहे गये हैं। उनमे पाँच महाव्रत और पाँचो इन्द्रियो का निरोध रूप १० गुण तो उपर्युक्त ही है। शेष १८ गुण इस प्रकार हैं—पाँच समितियो का परिपालन, तीन गुप्तियो का पालन, सामायिक वन्दनादि छह आवश्यक करना, अचेल रहना, एक बार भोजन करना, केश लुच करना, और स्नान-दन्त-धावनादि का त्याग करना।

दोनो मे एक अचेल या नग्न रहने का ही मौलिक अन्तर है। शेष गुणो का परस्पर एक-दूसरे गुणो मे अन्तर्भाव हो जाता है।

१७९—जंबुद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टति। एगमेगे णं णक्खत्तमासे सत्तावीसाहिं राइंदियाहिं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपनामक इस द्वीप में अभिजित् नक्षत्र को छोडकर शेष नक्षत्रों के द्वारा मास आदि

का व्यवहार प्रवर्तता है। (अभिजित् नक्षत्र का उत्तराषाढा नक्षत्र के चतुर्थ चरण मे प्रवेश हो जाता है।) नक्षत्र मास सत्ताईस दिन-रात की प्रधानता वाला कहा गया है। अर्थात् नक्षत्र मास मे २७ दिन होते हैं। सौधर्म-ईशान कल्पो मे उनके विमानो की पृथिवी सत्ताईस सौ (२७००) योजन मोटी कही गई है।

१८०—वेयगसम्मत्तबंधोवरयस्स णं मोहणिज्जस्स कम्मस्स सत्तावीस उत्तरपगडोओ संत-कम्मंसा पण्णत्ता। सावणसुद्धसत्तमीसु ण सूरिए सत्तावीसगुलिय पोरिसिच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं नियट्टेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवट्टमाणे चारं चरइ।

वेदक सम्यक्त्व के बन्ध रहित जीव के मोहनीय कर्म की सत्ताईस प्रकृतियो की सत्ता कही गई है। श्रावण सुदी सप्तमी के दिन सूर्य सत्ताईस अगुल की पौरुषी छाया करके दिवस क्षेत्र (सूर्य से प्रकाशित आकाश) की ओर लौटता हुआ और रजनी क्षेत्र (प्रकाश की हानि करता और अन्धकार को) बढ़ता हुआ सचार करता है।

१८१—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण सत्तावीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाण अत्थेगइयाणं सत्तावीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाणं सत्तावीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है। अधस्तन सप्तम महानम प्रभा पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है।

१८२—मज्झिम-उवरिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि ण देवाण उक्कोसेण सत्तावीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तावीसाए अद्धमासेहि आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससति वा, नीससति वा। तेसि णं देवाणं सत्तावीसं वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्सति मुच्चि-स्सति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। जो देव मध्यम ग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है। ये देव सत्ताईस अर्धमासो (साढे तेरह मासो) के बाद आन-प्राण अर्थात् उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को सत्ताईस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो सत्ताईस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु.खो का अन्त करेंगे।

॥ सप्तविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टाविंशतिस्थानक-समवाय

१८३—अट्ठावीसविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—मासिआ आरोवणा १, सपंचराई मासिआ आरोवणा २, सदसराईमासिया आरोवणा ३। [सपण्णरसराइ मासिआ आरोवणा ४, सवीसइ राई मासिआ आरोवणा ५, सपंचवीसराइ मासिआ आरोवणा ६,] एवं चेव दो मासिआ आरोवणा सपंचराई दो मासिया आरोवणा० ६। एवं तिमासिया आरोवणा ६, चउमासिया आरोवणा ६, उवघाइया आरोवणा २५, अणुवघाइया आरोवणा २६, कसिणा आरोवणा २७, अकसिणा आरोवणा २८,। एतावता आयारपकप्पे एताव ताव आयरियव्वे।

आचारप्रकल्प अट्ठाईस प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ मासिकी आरोपणा, २ सपच-रात्रिमासिकी आरोपणा, ३ सदशरात्रिमासिकी आरोपणा, ४ सपचदशरात्रिमासिकी आरोपणा, सविंशतिरात्रिकीमासिकी आरोपण, ५ सपचविंशतिरात्रिमासिकी आरोपणा ६ इसी प्रकार द्विमासिकी आरोपणा, ६ त्रिमासिकी आरोपणा, ६ चतुर्मासिकी आरोपणा, ६ उपघातिका आरोपणा, २५ अनुपघातिका आरोपणा, २६ कृत्स्ना आरोपणा, २७ अकृत्स्ना आरोपणा, २८ यह अट्ठाईस प्रकार का आचारप्रकल्प है। यह तब तक आचरणीय है। (जब तक कि आचरित दोष की शुद्धि न हो जावे।)

विवेचन—'आचार' नाम का प्रथम अग है। उसके अध्ययन-विशेष को प्रकल्प कहते हैं। उसका दूसरा नाम 'निशीथ' भी है। उसमे अज्ञान, प्रमाद या आवेश आदि से साधु-साध्वी द्वारा किये गये अपराधो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। इसको आचारप्रकल्प कहने का कारण यह है कि प्रायश्चित्त देकर साधु-साध्वी को उसके ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप आचार में पुन स्थापित किया जाता है। इस आचारप्रकल्प या प्रायश्चित्त के प्रकृत सूत्र मे अट्ठाईस भेद कहे गये है, उनका विवरण इस प्रकार है—

किसी अनाचार का सेवन करने पर साधु को उसकी शुद्धि के लिए कुछ दिनो तक तप करने का प्रायश्चित्त दिया गया। उस प्रायश्चित्त की अवधि पूर्ण होने के पहले ही उसने पूर्व से भी बडा कोई अपराध कर डाला, जिसकी शुद्धि एक मास के तप से होना सम्भव हो, तब उसे उसी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में एक मास के वहन-योग्य जो मास भर का प्रायश्चित्त दिया जाता है, उसे मासिकी आरोपणा कहते हैं।१।

कोई ऐसा अपराध करे जिसकी शुद्धि पाँच दिन-रात्रि के तप के साथ एक मास के तप से हो, तो ऐसे दोषी को उसी पूर्वदत्त प्रायश्चित्त मे पाच दिन-रात सहित एक मास के प्रायश्चित्त को पूर्वदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित करने को 'सपचरात्रिमासिकी आरोपणा' कहते है।।१।।

इसी प्रकार पूर्व से भी कुछ बडा अपराध होने पर दश दिन-रात्रि सहित एक मास के तप द्वारा शुद्धि योग्य प्रायश्चित्त देने को सदशरात्रिमासिकी आरोपणा कहते है।।३।। इसी प्रकार मास सहित पन्द्रह, बीस और पच्चीस दिन रात्रि के वहन योग्य प्रायश्चित्त मासिक प्रायश्चित्त मे आरोपण करने पर क्रमश पचदशरात्रमासिकी आरोपणा ४, विंशतिरात्र मासिकी आरोपणा ५ और पचविंशतिरात्रमासिकी ६, आरोपणा होती है।

जैसे मासिकी आरोपणा के छह भेद ऊपर बतलाये गये हैं, उसी प्रकार द्विमासिकी आरोपणा

के ६ भेद, त्रिमासिकी आरोपणा के ६ भेद और चतुर्मासिकी आरोपणा के ६ भेद जानना चाहिए। इस प्रकार चारो मासिकी आरोपणा के २४ भेद हो जाते हैं।

२७ दिन-रात के दिये गये प्रायश्चित्तो को लघुमासिक प्रायश्चित्त कहते हैं। ऐसे डेढ मास के प्रायश्चित्त को लघु द्विमासिक प्रायश्चित्त कहते हैं। ऐसे लघु त्रिमासिक, लघु चतुर्मासिक प्रायश्चित्तो को उपघातिक आरोपणा कहते हैं। यही पच्चीसवी आरोपणा है। इसे उद्घातिक आरोपणा भी कहते है।

पूरे मास भर के प्रायश्चित्त को गुरुमासिक कहा जाता है। इसके साथ अर्धपक्ष, पक्ष आदि के प्रायश्चित्तो के आरोपण करने को अनुपघातिक आरोपण कहते है। इसे अनुद्घातिक मासिक प्रायश्चित्त भी कहा जाता है। यह छब्बीसवी आरोपणा है।

साधु ने जितने अपराध किये है, उन सब के प्रायश्चित्तो को एक साथ देने को कृत्स्ना आरोपणा कहते है। यह सत्ताईसवी आरोपणा है।

बहुत अधिक अपराध करनेवाले साधु को भी प्रायश्चित्तो को सम्मिलित करके छह मास के तपप्रायश्चित्त को अकृत्स्ना आरोपणा कहते हैं। यह अट्ठाईसवी आरोपणा है। इसमे सभी छोटे-मोटे प्रायश्चित्त सम्मिलित हो जाते है।

कितना ही बडा अपराध किया हो, पर छह मास से अधिक तप का विधान नही है।

१८४—भवसिद्धियाणं जीवाणं अत्थेइगइयाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स अट्ठावीस कम्मसा संतकम्मा पण्णत्ता। त जहा—सम्मत्तवेयणिज्ज मिच्छत्तवेयणिज्ज सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जं, सोलस कसाया, णव णोकसाया।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीवो के मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता कही गई है। जैसे—सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्ववेदनीय, सम्यग्मिथ्यात्व वेदनीय, सोलह कषाय और नौ नोकषाय।

१८५—आभिणिबोहियाणाणे अट्ठावीसविहे पण्णत्ते। त जहा—सोइंदियअत्थावग्गहे १, चक्खिदियअत्थावग्गहे २, घाणिंदियअत्थावग्गहे ३, जिब्भिंदियअत्थावग्गहे ४, फासिंदियअत्थावग्गहे ५, णोइंदियअत्थावग्गहे ६, सोइंदियवंजणोग्गहे ७, घाणिंदियवंजणोग्गहे ८, जिब्भिंदियवंजणोवग्गहे ९, फासिंदियवंजणोग्गहे १०, सोतिंदियईहा ११, चक्खिदियईहा १२, घाणिंदियईहा १३, जिब्भिंदियईहा १४, फासिंदियईहा १५ णोइंदियईहा १६, सोतिंदियावाए १७, चक्खिदियावाए १८, घाणिंदियावाए, १९, जिब्भिंदियावाए २०, फासिंदियावाए २१, णोइंदियावाए २२। सोइंदियधारणा २३, चक्खिदियधारणा २४, घाणिंदियधारणा २५, जिब्भिंदियधारणा २६, फासिंदियधारणा २७, णोइंदियधारणा २८।

आभिनिबोधिकज्ञान अट्ठाईस प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, ३ घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ४ जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ५ स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह ६ नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह, ७ श्रोत्रेन्द्रिय-व्यजनावग्रह, ८ घ्राणेन्द्रिय-व्यजनावग्रह, ९ जिह्वेन्द्रिय-व्यजनावग्रह, १० स्पर्शनेन्द्रिय-व्यजनावग्रह, ११ श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, १२ चक्षुरिन्द्रिय-ईहा, १३ घ्राणेन्द्रिय-ईहा, १४ जिह्वेन्द्रिय-ईहा, १५ स्पर्शनेन्द्रिय-ईहा, १६ नोइन्द्रिय-ईहा, १७ श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, १८ चक्षुरि-

न्द्रिय-अवाय, १९ घ्राणेन्द्रिय-अवाय, २० जिह्वेन्द्रिय-अवाय, २१ स्पर्शनेन्द्रिय-अवाय, २२ नोइन्द्रिय-अवाय, २३ श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, २४ चक्षुरिन्द्रिय-धारणा, २५ घ्राणेन्द्रिय-धारणा, २६ जिह्वेन्द्रिय-धारणा, २७ स्पर्शनेन्द्रिय-धारणा और २८ नोइन्द्रिय-धारणा।

विवेचन—किसी भी पदार्थ के जानने के पूर्व 'कुछ है' इस प्रकार का अस्पष्ट आभास होता है, उसे **दर्शन** कहते हैं। उसके तत्काल बाद ही कुछ स्पष्ट किन्तु अव्यक्त बोध होता है, उसे व्यजनावग्रह कहते हैं। उसके बाद 'यह मनुष्य है' ऐसा जो सामान्य बोध या ज्ञान होता है, उसे अर्थावग्रह कहते है। तत्पश्चात् यह जानने की इच्छा होती है कि यह मनुष्य बगाली है, या मद्रासी ? इस जिज्ञासा को ईहा कहते है। पुन उसकी बोली आदि सुनकर निश्चय हो जाता है कि यह बगाली नही किन्तु मद्रासी है, इस प्रकार के निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहते है। यही ज्ञान जब दृढ हो जाता है, तब धारणा कहलाता है। कालान्तर मे वह स्मरण का कारण बनता है। स्मरण स्वय भी धारणा का एक अग है। इनमे व्यजनावग्रह मन और चक्षुरिन्द्रिय से नही होता क्योकि इनसे देखी या सोची-विचारी गई वस्तु व्यक्त ही होती है, किन्तु व्यजनावग्रह ज्ञान अव्यक्त या अस्पष्ट होता है। अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के चारो ज्ञान पाचो इन्द्रियो और छठे मन से होते हैं। अत चार को छह से गुणित करने पर (४×६=२४) चौबीस भेद अर्थावग्रह सम्बन्धी होते है। और व्यजनावग्रह मन और चक्षु के सिवाय शेष चार इन्द्रियो से होता है अत उन चार भेदो को ऊपर के चौबीस भेदो मे जोड़ देने पर (२४+४=२८) अट्ठाईस भेद आभिनिबोधिक ज्ञान के होते है। इसको ही मतिज्ञान कहते है। मन को 'नोइन्द्रिय' कहा जाता है, क्योकि वह बाहर दिखाई नही देता। पर सोच-विचार से उसके अस्तित्व का सभी को परिज्ञान अवश्य होता है।

१८६—ईसाणे ण कप्पे अट्ठावीस विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

ईशान कल्प मे अट्ठाईस लाख विमानावास कहे गये है।

१८७—जीवे ण देवगइम्मि बधमाणे नामस्स कम्मस्स अट्ठावीस उत्तरपगडीओ निबंधति। तं जहा—देवगतिनामं १, पंचिदियजातिनाम २, वेउव्वियसरीरनामं ३, तेयगसरीरनामं ४, कम्मण-सरीरनामं ५, समचउरंससठाणनाम ६, वेउव्वियसरीरगोवंगणामं ७, वण्णनामं ८, गधनामं ९, रस-नामं १०, फासनाम ११, देवाणुपुव्विनाम १२, अगुरुलहुनाम १३, उवघायनाम १४, पराघायनामं १५, उस्सासनामं १६, पसत्थविहायोगइनाम १७, तसनामं १८, बायरनाम १९, पज्जत्तनाम २०, पत्तेयसरीरनामं २१, थिराथिराण सुभासुभाण आएज्जाणाएज्जाण दोण्ह अण्णयरं एग नामं २४, निबधइ। [सुभगनाम २५, सुस्सरनाम २६,] जसोकित्तिनाम २७, निम्माणनाम २८।

देवगति को बाधने वाला जीव नामकर्म की अट्ठाईस उत्तरप्रकृतियो को बाधता है। वे इस प्रकार है—१ देवगतिनाम, २ पचेन्द्रियजातिनाम, ३ वैक्रियकशरीरनाम, ४ तैजसशरीरनाम, ५ कार्मण-शरीरनाम, ६ समचतुरस्रसस्थाननाम, ७ वैक्रियकशरीराङ्गोपाङ्गनाम, ८ वर्णनाम, ९ गन्धनाम, १० रसनाम, ११ स्पर्शनाम, १२ देवानुपूर्वीनाम, १३ अगुरुलघुनाम, १४ उपघातनाम, १५ पराघातनाम, १६ उच्छ्वासनाम, १७ प्रशस्त विहायोगतिनाम, १८ त्रसनाम, १९ बादरनाम, २० पर्याप्तनाम, २१ प्रत्येकशरीरनाम, २२ स्थिर-अस्थिर नामो मे से कोई एक, २३ शुभ-अशुभनामो में से कोई एक,

२४ आदेय-अनादेय नामो में से कोई एक, [२५ सुभगनाम, २६ सुस्वरनाम, १७ यशस्कीर्त्तिनाम और २८ निर्माण नाम, इन अट्ठाईस प्रकृतियो को बाधता है।

१८८—एवं चेव नेरइया वि, णाणत्तं—अप्पसत्थविहायोगइनामं हुंडगसठाणणामं अथिरणामं दुब्भगणामं असुभणामं दुस्सरणामं अणादिज्जणाम अजसोकित्तिणाम निम्माणणामं।

इसी प्रकार नरकगति को बाधनेवाला जीव भी नामकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियो को बाधता है। किन्तु वह प्रशस्त प्रकृतियो के स्थान पर अप्रशस्त प्रकृतियो को बाधता है। जैसे—अप्रशस्त विहायोगतिनाम, हुडकसस्थाननाम, अस्थिरनाम, दुर्भगनाम, अशुभनाम, दु स्वरनाम, अनादेयनाम, अयशस्कीर्त्तिनाम और निर्माणनाम। इतनी मात्र ही भिन्नता है।

१८९—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं अट्ठावीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराण देवाण अत्थेगइयाण अट्ठावीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाण अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति अट्ठाईस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमारो की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है।

१९०—उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जयाण देवाणं जहण्णेण अट्ठावीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिमउवरिमगेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेणं अट्ठावीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा अट्ठावीसाए अद्धमासेहिं आणमति वा, पाणमति वा, ऊससति वा, नीससति वा। तेसि णं देवाण अट्ठावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठावीसाए भवग्गहणेहि सिज्झिस्सति बुज्झिस्सति मुच्चिस्सति परिनिव्वाइस्सति सव्वदुक्खाणमत करिस्सति।

उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानवासी देवो की जघन्य स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की है। जो देव मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति अट्ठाईस सागरोपम होती है। वे देव अट्ठाईस अर्धमासो (चौदह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो को अट्ठाईस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अट्ठाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

।। अष्टाविंशतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनत्रिंशत्स्थानक-समवाय

१९१—एगूणतीसइविहे पावसुयपसंगे णं पण्णत्ते। तं जहा—भोमे उप्पाए सुमिणे अंतलिक्खे अंगे सरे बंजणे लक्खणे ८। भोमे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—सुत्ते वित्ती वत्तिए ३। एवं एक्केक्कं तिविहं २४। विकहाणुजोगे २५, विज्जाणुजोगे २६, मंताणुजोगे २७, जोगाणुजोगे २८, अण्णतित्थिय-पवत्ताणुजोगे २९।

पापश्रुतप्रसग-पापो के उपार्जन करनेवाले शास्त्रो का श्रवण-सेवन उनतीस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ भौमश्रुत—भूमि के विकार, भूकम्प आदि का फल-वर्णन करनेवाला निमित्त-शास्त्र।

२ उत्पातश्रुत—अकस्मात् रक्त-वर्षा आदि उत्पातो का फल बतानेवाला निमित्तशास्त्र।

३ स्वप्नश्रुत—शुभ-अशुभ स्वप्नो का फल वर्णन करनेवाला श्रुत।

४ अन्तरिक्षश्रुत—आकाश मे विचरनेवाले ग्रहो के युद्धादि होने, ताराओ के टूटने और सूर्यादि के ग्रहण, ग्रहोपराग आदि का फल बतानेवाला श्रुत।

५ अगश्रुत—शरीर के विभिन्न अगो के हीनाधिक होने और नेत्र, भुजा आदि के फडकने का फल बताने वाला श्रुत।

६ स्वरश्रुत—मनुष्यो, पशु-पक्षियो एव अकस्मात् काष्ठ-पाषाणादि-जनित स्वरो (शब्दो) को सुनकर उनके फल को बतानेवाला श्रुत।

७. व्यजनश्रुत—शरीर मे उत्पन्न हुए तिल, मषा आदि का फल बतानेवाला श्रुत।

८ लक्षणश्रुत—शरीर मे उत्पन्न चक्र, खड्ग, शखादि चिह्नो का फल बतानेवाला श्रुत।

भौमश्रुत तीन प्रकार का है, जैसे—सूत्र, वृति और वार्त्तिक।

१ अगश्रुत के सिवाय अन्य मतो की सहस्र पद-प्रमाण रचना को सूत्र कहते हैं।

२ उन्ही सूत्रो की लक्ष-पद-प्रमाण व्याख्या को वृत्ति कहते है।

३ उस वृत्ति की कोटि-पद प्रमाण व्याख्या को वार्त्तिक कहते है।

इन सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक के भेद से उपर्युक्त भौम, उत्पात आदि आठो प्रकार के श्रुत के (८ × ३ = २४) चौवीस भेद हो जाते है।

अगश्रुत की लक्ष-पद-प्रमाण रचना को सूत्र, कोटि-पद प्रमाण व्याख्या को वृत्ति और अपरिमित पद-प्रमाण व्याख्या को वार्त्तिक कहा जाता है।

२५ विकथानुयोगश्रुत्र—स्त्री, भोजन-पान आदि की कथा करनेवाले तथा अर्थ-काम आदि की प्ररूपणा करनेवाले पाकशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र आदि।

२६. विद्यानुयोगश्रुत—रोहिणी, प्रज्ञप्ति, अगुष्ठप्रसेनादि विद्याओ को साधने के उपाय और उनका उपयोग बतानेवाले शास्त्र।

२७. मन्त्रानुयोगश्रुत—लौकिक प्रयोजनों के साधक अनेक प्रकार के मन्त्रो का साधन बताने वाला मंत्रशास्त्र।

२८ योगानुयोगश्रुत—स्त्री-पुरुषादि को वश मे करनेवाले अजन, गुटिका आदि के निरूपक शास्त्र।

२९. अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोग—कपिल, बौद्ध आदि मतावलम्बियो के द्वारा रचित शास्त्र।

उक्त प्रकार के शास्त्रो के पढने और सुनने से मनुष्यो का मन-इन्द्रिय-विषयो की ओर आकृष्ट होता है और भौम, स्वप्न आदि का फलादि बतानेवाले शास्त्रो के पठन-श्रवण से मुमुक्षु साधक अपनी साधना से भटक सकता है, अत मोक्षाभिलाषी जनो के लिए उक्त सभी प्रकार के शास्त्रो को पापश्रुत कहा गया है।

१९२—आसाढे णं मासे एगूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेण पण्णत्ता। [एवं चेव] भद्दवए ण मासे, कत्तिए णं मासे, पोसे ण मासे, फग्गुणे णं मासे, वइसाहे णं मासे। चंददिणे ण एगूणतीस मुहुत्ते सातिरेगे मुहुत्तग्गेण पण्णत्ते।

आषाढ मास रात्रि-दिन की गणना की अपेक्षा उनतीस रात-दिन का कहा गया है। [इसी प्रकार] भाद्रपदमास, कार्त्तिक मास, पौषमास, फाल्गुणमास, और वैशाखमास भी उनतीस-उनतीस रात-दिन के कहे गये है। चन्द्र दिन मुहूर्त्तगणना की अपेक्षा कुछ अधिक उनतीस मुहूर्त्त का कहा गया है।

१९३—जीवे ण पसत्थज्झवसाणजुत्ते भविए सम्मदिट्ठी तित्थकरनामसहिआओ णामस्स णियमा एगूणतीसं उत्तरपगडीओ णिबंधित्ता वेमाणिएसु देवेसु देवत्ताए उववज्जइ।

प्रशस्त अध्यवसान (परिणाम) से युक्त सम्यग्दृष्टि भव्य जीव तीर्थकरनाम-सहित नामकर्म की उनतीस प्रकृतियो को बाधकर नियम से वैमानिक देवो मे देवरूप से उत्पन्न होता है।

१९४—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं एगूणतीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाण एगूणतीस सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराण देवाण अत्थेगइयाण एगूणतीस पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाण अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति उनतीस पल्योपम की है। अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति उनतीस सागरोपम की है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति उनतीस पल्योपम की है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति उनतीस पल्योपम की होती है।

१९५—उवरिममज्झिमगेवेज्जयाणं देवाण जहण्णेण एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगूणतीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा। तेसि णं देवाण एगूणतीस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणतीसभवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम कही गई है। जो देव उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम कही गई है। वे देव उनतीस अर्धमासो (साढे चौदह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं। उन देवो के उनतीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो उनतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ एकोनत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिंशत्स्थानक-समवाय

१९६—तीसं मोहणीयठाणा पण्णत्ता। तं जहा—

जे यावि तसे पाणे वारिमज्झे विगाहिया।
उदएण क्कम्म मारेइ महामोह पकुव्वइ ॥१॥
सीसावेढेण जे केई आवेढेइ अभिक्खणं।
तिव्वासुभसमायारे महामोहं पकुव्वइ ॥२॥
पाणिणा संपिहित्ताण सोयमावरिय पाणिण।
अतोनदत मारेई महामोहं पकुव्वइ ॥३॥
जायतेयं समारब्भ बहु आरभिया जण।
अंतोधूमेण मारेई महामोहं पकुव्वइ ॥४॥
सिस्सम्मि [सीसम्मि] जे पहणइ उत्तमंगम्मि चेयसा।
विभज्ज मत्थयं फाले महामोह पकुव्वइ ॥५॥
पुणो पुणो पणिधिए हणित्ता उवहसे जणं।
फलेणं अदुवा दंडेणं महामोहं पकुव्वइ ॥६॥
गूढायारी निगूहिज्जा माय मायाए छायए।
असच्चवाई णिण्हाई महामोहं पकुव्वइ ॥७॥
धंसेइ जो अभूएण अकम्म अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुम कासि त्ति महामोहं पकुव्वइ ॥८॥
जाणमाणो परिसओ सच्चामोसाणि भासइ।
अक्खीणझझे पुरिसे महामोहं पकुव्वइ ॥९॥
अणागयस्स नयवं दारे तस्सेव धसिया।
विउल विक्खोभइत्ताण किच्चा ण पडिबाहिरं ॥१०॥
उवगसतं पि झपित्ता पडिलोमाइ वग्गुहिं।
भोगभोगे वियारेई मोहमाहं पकुव्वइ ॥११॥
अकुमारभूए जे केई कुमारभूए त्ति ह वए।
इत्थीहिं गिद्धे वसए महामोहं पकुव्वइ ॥१२॥

अबंभयारी जे केई बंभयारि त्ति हं वए।
गद्दहे व्व गवां मज्झे विस्सरं नयई नदं ।।१३।।
अप्पणो अहिए बाले मायामोसं बहु भसे।
इत्थीविसयगेहीए महामोहं पकुव्वइ ।।१४।।१२।।
जं निस्सिए उव्वहइ जससाहिगमेण वा।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि महामोहं पकुव्वइ ।।१५।।१३।।
ईसरेण अदुवा गामेणं अणिसरे ईसरीकए।
तस्स संपयहीणस्स सिरी अतुलमागया ।।१६।।
ईसादोसेण आविट्ठे कलुसाविलचेयसे।
जे अंतराय चेएइ महामोहं पकुव्वइ ।।१७।।१४।।
सप्पी जहा अडउड भत्तारं जो विहिंसइ।
सेणावइ पसत्थार महामोहं पकुव्वइ ।।१८।।१५।।
जे नायग च रट्ठस्स नेयार निगमस्स वा।
सेट्ठि बहुरव हता महामोह पकुव्वइ ।।१९।।१६।।
बहुजणस्स णेयार दीवं ताण च पाणिण।
एयारिसं नरं हता महामोह पकुव्वइ ।।२०।।१७।।
उवट्ठियं पडिविरयं सजयं सुतवस्सियं।
वुक्कम्म धम्माओ भसेइ महामोह पकुव्वइ ।।२१।।१८।।
तहेवाणतणाणीणं जिणाण वरदसिण।
तेसिं अवण्णव बाले महामोहं पकुव्वई ।।२२।।१९।।
नेयाउअस्स मग्गस्स दुट्ठे अवयरई बहु।
तं तिप्पयतो भावेइ महामोहं पकुव्वइ ।।२३।।२०।।
आयारिय-उवज्झाएहिं सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिसई बाले महामोहं पकुव्वइ ।।२४।।२१।।
आयरिय-उवज्झायाण सम्म नो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे महामोह पकुव्वइ ।।२५।।२२।।
अबहुस्सुए य जे केई सुएण पविकत्थई।
सज्झायवाय वयइ महामोह पकुव्वइ ।।२६।।२३।।
अतवस्सीए य जे केई तवेण पविकत्थइ।
सव्वलोयपरे तेणे महामोह पकुव्वइ ।। २७।।२४।।
साहारणट्ठा जे केई गिलाणम्मि उवट्ठिए।
पभू ण कुणई किच्च मज्झं पि से न कुव्वइ ।।२८।।
सढे नियडीपण्णाणे कलुसाउलचेयसे।
अप्पणो य अबोही य महामोहं पकुव्वइ ।।२९।।२५।।
जे कहाहिगरणाइ संपउंजे पुणो पुणो।
सव्वतित्थाण भेयाणं महामोह पकुव्वइ ।।३०।।२६।।

जे य आहम्मिए जोए संपउंजे पुणो पुणो।
सहाहेउ सहीहेउ महामोहं पकुव्वइ ॥३१॥२७॥
जे अ माणुस्सए भोए अदुवा पारलोइए।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ महामोहं पकुव्वइ ॥३२॥२८॥
इड्ढी जुई जसो वण्णो देवाण बल-वीरियं।
तेसिं अवण्णव बाले महामोहं पकुव्वइ ॥३३॥२९॥
अपस्समाणो पस्सामि देवे जक्खे य गुज्झगे।
अण्णाणी जिणपूयट्ठी महामोहं पकुव्वइ ॥३४॥३०॥

मोहनीय कर्म बधने के कारणभूत तीस स्थान कहे गये है। जैसे—

(१) जो कोई व्यक्ति स्त्री-पशु आदि त्रस-प्राणियो को जल के भीतर प्रविष्ट कर और पैरो को नीचे दबा कर जलके द्वारा उन्हे मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बध करता है। यह पहला मोहनीय स्थान है।

(२) जो व्यक्ति किसी मनुष्य आदि के शिर को गीले चर्म से वेष्टित करता है, तथा निरन्तर तीव्र अशुभ पापमय कार्यों को करता रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बध करता है। यह दूसरा मोहनीय स्थान है।

(३) जो कोई किसी प्राणी के मुख को हाथ से बन्द कर उसका गला दबाकर घुरघुराते हुए उसे मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। वह तीसरा मोहनीय स्थान है।

(४) जो कोई अग्नि को जला कर, या अग्नि का महान् आरम्भ कर किसी मनुष्य-पशु आदि को उसमे जलाता है या अत्यन्त धूमयुक्त अग्निस्थान मे प्रविष्ट कर धुएं से उसका दम घोटता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह चौथा मोहनीय स्थान है।

(५) जो किसी प्राणी के उत्तमाङ्ग—शिर पर मुद्गर आदि से प्रहार करता है अथवा अति सक्लेश युक्त चित्त से उसके माथे को फरसा आदि से काटकर मार डालता है, वह महामहोनीय कर्म का बन्ध करता है। वह पाँचवा मोहनीय स्थान है।

(६) जो कपट करके किसी मनुष्य का घात करता है और आनन्द से हसता है, किसी मन्त्रित फल को खिला कर अथवा डडे से मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बध करता है। यह छठा मोहनीय स्थान है।

(७) जो गूढ (गुप्त) पापाचरण करने वाला मायाचार से अपनी माया को छिपाता है, असत्य बोलता है और सूत्रार्थ का अपलाप करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह सातवाँ मोहनीय स्थान है।

(८) जो अपने किये ऋषिघात आदि घोर दुष्कर्म को दूसरे पर लादता है, अथवा अन्य व्यक्ति के द्वारा किये गये दुष्कर्म को किसी दूसरे पर आरोपित करता है कि तुमने यह दुष्कर्म किया है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह आठवाँ मोहनीय स्थान है।

(९) 'यह बात असत्य है' ऐसा जानता हुआ भी जो सभा मे सत्यामृषा (जिसमे सत्यांश कम

है और असत्यांश अधिक है ऐसी) भाषा बोलता है और लोगो से सदा कलह करता रहता है, वह महा मोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह नवा मोहनीय स्थान है।

(१०) राजा का जो मंत्री—अमात्य-अपने ही राजा की दाराओ (स्त्रियो) को, अथवा धन आने के द्वारो को विध्वस करके और अनेक सामन्त आदि को विक्षुब्ध करके राजा को अनधिकारी करके राज्य पर, रानियो पर या राज्य के धन-आगमन के द्वारो पर स्वय अधिकार जमा लेता है, वह महा-मोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह दशवाँ मोहनीय स्थान है।

(११) जिसका सर्वस्व हरण कर लिया है, वह व्यक्ति भेट आदि लेकर और दीन वचन बोलकर अनुकूल बनाने के लिय यदि किसी के समीप आता है, ऐसे पुरुष के लिए जो प्रतिकूल वचन बोलकर उसके भोग-उपभोग के साधनो को विनष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह ग्यारहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१२) जो पुरुष स्वय अकुमार (विवाहित) होते हुए भी 'मैं कुमार-अविवाहित हूँ,' ऐसा कहता है और स्त्रियो मे गृद्ध (आसक्त) और उनके अधीन रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। जो कोई पुरुष स्वय अब्रह्मचारी होते हुए भी 'मै ब्रह्मचारी हूँ' ऐसा बोलता है, वह बैलो के मध्य मे गधे के समान विस्वर (बेसुरा) नाद (शब्द) करता--रेकता—हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। तथा उक्त प्रकार से जो अज्ञानी पुरुष अपना ही अहित करनेवाले मायाचार-युक्त बहुत अधिक असत्य वचन बोलता है और स्त्रियो के विषयो मे आसक्त रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है। यह बारहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१३) जो राजा आदि की ख्याति से अर्थात् 'यह उस राजा का या मंत्री आदि का सगा-सम्बन्धी है' ऐसी प्रसिद्धि से अपना निर्वाह करता हो अथवा आजीविका के लिए जिस राजा के आश्रय मे अपने को समर्पित करता है, अर्थात् उसकी सेवा करता है और फिर उसी के धन मे लुब्ध होता है, वह पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥१५॥ यह तेरहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१४) किसी ऐश्वर्यशाली पुरुष के द्वारा, अथवा जन-समूह के द्वारा कोई अनीश्वर (ऐश्वर्य-रहित निर्धन) पुरुष ऐश्वर्यशाली बना दिया गया, तब उस सम्पत्ति-विहीन पुरुष के अतुल (अपार) लक्ष्मी हो गई। यदि वह ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित होकर, कलुषता-युक्त चित्त से उस उपकारी पुरुष के या जन-समूह के भोग-उपभोगादि मे अन्तराय या व्यवच्छेद डालने का विचार करता है, तो वह महा-मोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १६-१७ ॥ यह चौदहवाँ महामोहनीय स्थान है।

(१५) जैसे सर्पिणी (नागिन) अपने ही अडो को खा जाती है, उसी प्रकार जो पुरुष अपना ही भला करने वाले स्वामी का, सेनापति का अथवा धर्मपाठक का विनाश करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १८ ॥ वह पन्द्रहवा मोहनीय स्थान है।

(१६) जो राष्ट्र के नायक का या निगम (विशाल नगर) के नेता का अथवा, महायशस्वी सेठ का घात करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥१९॥ यह सोलहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१७) जो बहुत जनो के नेता का, दीपक से समान उनके मार्ग-दर्शक का और इसी प्रकार के अनेक जनो के उपकारी पुरुष का घात करता है, वह महामहोनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ २० ॥ यह सत्तरहवाँ मोहनीय स्थान है।

(१८) जो जो दीक्षा लेने के लिए उपस्थित या उद्यत पुरुष को, भोगो से विरक्त जन को, सयमी मनुष्य को या परम तपस्वी व्यक्ति को अनेक प्रकारो से भडका कर धर्म से भ्रष्ट करता है, वह महा-मोहनीयकर्म का बन्ध करता है ।। २१ ।। यह अठारहवाँ मोहनीय स्थान है ।

(१९) जो अज्ञानी पुरुष अनन्तज्ञानी अनन्तदर्शी जिनेन्द्रों का अवर्णवाद करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २२ ।। यह उन्नीसवाँ मोहनीयस्थान है ।

(२०) जो दुष्ट पुरुष न्याय-युक्त मोक्षमार्ग का अपकार करता है और बहुत जनो को उससे च्युत करता है, तथा मोक्षमार्ग की निन्दा करता हुआ अपने आपको उससे भावित करता है, अर्थात् उन दुष्ट विचारो से लिप्त करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २२ ।। यह बीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२१) जो अज्ञानी पुरुष, जिन-जिन आचार्यों और उपाध्यायो से श्रुत और विनय धर्म को प्राप्त करता है, उन्ही की यदि निन्दा करता है, अर्थात् ये कुछ नही जानते ये स्वय चारित्र से भ्रष्ट है, इत्यादि रूप से उनकी बदनामी करता है, तो वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २४ ।। यह इक्कीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२२) जो आचार्य, उपाध्याय एव अपने उपकारक जनो को सम्यक् प्रकार से सन्तृप्त नही करता है अर्थात् सम्यक् प्रकार से उनकी सेवा नही करता है, पूजा और सन्मान नही करता है, प्रत्युत अभिमान करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २५ ।। यह बाईसवाँ मोहनीयस्थान है ।

(२३) अबहुश्रुत (अल्प श्रुत का धारक) जो पुरुष अपने को बडा शास्त्रज्ञानी कहता है, स्वाध्यायवादी और शास्त्र-पाठक बतलाता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २६ ।। यह तेईसवा मोहनीय स्थान है ।

(२४) जो अतपस्वी (तपस्या-रहित) होकर के भी अपने को महातपस्वी कहता है, वह सब से महा चोर (भाव-चोर होने के कारण) महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २७ ।। यह चौबीसवा मोहनीय स्थान है ।

(२५) उपकार (सेवा-शुश्रूषा) के लिए किसी रोगी, आचार्य या साधु के आने पर स्वय समर्थ होते हुए भी जो 'यह मेरा कुछ भी कार्य नही करता है,' इस अभिप्राय से उसकी सेवा आदि कर अपने कर्तव्य का पालन नही करता है, इस मायाचार मे पटु, वह शठ (धूर्त्त) कलुषितचित्त होकर (भवान्तर मे) अपनी अबोधि (रत्नत्रयधर्म की अप्राप्ति) का कारण बनता हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। २८-२९ ।। यह पच्चीसवाँ महामोहनीय स्थान है ।

(२६) जो पुनः पुन (वार-वार) स्त्री-कथा, भोजन-कथा आदि विकथाए करके मत्र-यत्रादि प्रयोग करता है या कलह करता है, और ससार से पार उतारनेवाले सम्यग्दर्शनादि सभी तीर्थों के भेदन करने के लिए प्रवृत्ति करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। ३० ।। यह छब्बीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२७) जो अपनी प्रशसा के लिए मित्रो के निमित्त अधार्मिक योगो का अर्थात् वशीकरणादि प्रयोगो का वार-वार उपयोग करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।। ३१ ।। यह सत्ताईवाँ मोहनीय स्थान है ।

(२८) जो मनुष्य-सम्बन्धी अथवा पारलौकिक देवभव सम्बन्धी भोगो मे तृप्त नही होता हुआ वार-वार उनकी अभिलाषा करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।।३२।। यह अट्ठाईसवा मोहनीय स्थान है ।

(२९) जो अज्ञानी देवो की ऋद्धि (विमानादि सम्पत्ति), द्युति (शरीर और आभूषणो की कान्ति), यश और वर्ण (शोभा) का, तथा उनके बल-वीर्य का अवर्णवाद करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।।३३।। यह उनतीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

(३०) जो देवो, यक्षो और गुह्यको (व्यन्तरो) को नही देखता हुआ भी 'मैं उनको देखता हूं' ऐसा कहता है, वह जिनदेव के समान अपनी पूजा का अभिलाषी अज्ञानी पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।।३४।। यह तीसवाँ मोहनीय स्थान है ।

१९७—थेरे ण मडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियाय पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

स्थविर मडितपुत्र तीस वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध हुए, यावत् सर्व दु खो से रहित हुए ।

१९८—एगमेगे णं अहोरत्ते तीसमुहुत्ते मुहुत्तग्गेण पण्णत्ते । एएसि णं तीसाए मुहुत्ताण तीस नामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा—रोद्दे सत्ते मित्ते वाऊ सुपीए ५, अभिचदे माहिदे पलबे बभे सच्चे १०, आणदे विजए विस्ससेणे पायावच्चे उवसमे १५, ईसाणे तट्ठे भाविअप्पा वेसमणे वरुणे २०, सतरिसभे गधव्वे अग्गिवेसायणे आतवे आवत्ते २५, तट्ठवे भूमहे रिसभे सव्वट्ठसिद्धे रक्खसे ३० ।

एक-एक अहोरात्र (दिन-रात) मुहूर्त्त-गणना की अपेक्षा तीस मुहूर्त्त का कहा गया है । इन तीस मुहूर्त्तों के तीस नाम हैं । जैसे- १ रौद्र, २ शक्त, ३ मित्र, ४ वायु, ५ सुपीत, ६ अभिचन्द्र, ७ माहेन्द्र, ८ प्रलम्ब, ९ ब्रह्म, १० सत्य, ११ आनन्द, १२ विजय, १३ विश्वसेन, १४ प्राजापत्य, १५ उपशम, १६ ईशान, १७ तष्ट, १८ भावितात्मा, १९ वैश्रवण, २० वरुण, २१ शतऋषभ, २२ गन्धर्व, २३ अग्नि वैशायन, २४ आतप, २५ आवर्त, २६ तष्टवान, २७ भूमह (महान), २८ ऋषभ २९ सर्वार्थसिद्ध और ३० राक्षस ।

विवेचन—इन मुहूर्तों की गणना सूर्योदय काल से लेकर क्रम से की जाती है । इनके मध्यवर्ती छह मुहूर्त कभी दिन मे अन्तर्भूत होते है और कभी रात्रि मे होते है । इसका कारण यह है कि जब ग्रीष्म ऋतु मे अठारह मुहूर्त का दिन होता है, तब वे दिन मे गिने जाते है और जब शीत काल मे रात्रि अठारह मुहूर्त की होती है, तब वे रात्रि मे गिने जाते है ।

१९९—अरे णं अरहा तीस धणूइ उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

अठारहवे अर अर्हन् तीस धनुष ऊचे थे ।

२००—सहस्सारस्स णं देविदस्स देवरण्णो तीसं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

सहस्रार देवेन्द्र देवराज के तीस हजार सामानिक देव कहे गये है ।

२०१—पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। समणे णं भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

पार्श्व अर्हन् तीस वर्ष तक गृह-वास मे रहकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक गृह-वास मे रहकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

२०२—रयणप्पभाए णं पुढवीए तीस निरयावासयसहस्सा पण्णत्ता।

इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाण तीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

रत्नप्रभा पृथिवी मे तीस लाख नारकावास है।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति तीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति तीस सागरोपम कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति तीस पल्योपम कही गई है।

२०३—उवरिमउवरिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिममज्झिमगेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा। तेसि ण देवाण तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम कही गई है। जो देव उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक विमानो मे देव रूप मे उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति तीस सागरोपम कही गई है। वे देव तीस अर्धमासो (पन्द्रह मासो) के बाद आन-प्राण और उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के तीस हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकत्रिंशत्स्थानक-समवाय

२०५—एकत्तीसं सिद्धाइगुणा पण्णत्ता। तं जहा—खीणे आभिनिबोहियणाणावरणे १, खीणे सुयणाणावरणे २, खीणे ओहिणाणावरणे ३, खीणे मणपज्जवणाणावरणे ४, खीणे केवलणाणावरणे ५,

खीणे चक्खुदंसणावरणे ६, खीणे अचक्खुदंसणावरणे ७, खीणे ओहिदंसणावरणे ८, खीणे केवलदंसणावरणे ९, खीणे निद्दा १०, खीणे निद्दानिद्दा ११, खीणे पयला १२, खीणे पयलापयला १३, खीणे थीणद्धी १४, खीणे सायावेयणिज्जे १५, खीणे असायावेयणिज्जे १६, खीणे दसणमोहणिज्जे १७, खीणे चरित्तमोहणिज्जे १८, खीणे नेरइआउए १९, खीणे तिरिआउए २०, खीणे मणुस्साउए २१, खीणे देवाउए २२, खीणे उच्चागोए २३, खीणे नीयागोए २४, खीणे सुभणामे २५, खीणे असुभणामे २६, खीणे दाणतराए २७, खीणे लाभतराए २८, खीणे भोगंतराए २९, खीणे उवभोगतराए ३०, खीणे वीरिअंतराए ३१।

सिद्धो के आदि गुण अर्थात् सिद्धत्व पर्याय प्राप्त करने के प्रथम समय मे होने वाले गुण इकत्तीस कहे गये हैं। जैसे—१ क्षीण आभिनिबोधिकज्ञानावरण, २ क्षीणश्रुतज्ञानावरण, ३ क्षीण-अवधिज्ञानावरण, ४ क्षीणमन पर्यवज्ञानावरण, ५ क्षीणकेवलज्ञानावरण, ६ क्षीणचक्षुदर्शनावरण, ७ क्षीण अचक्षुदर्शनावरण, ८ क्षीण अवधिदर्शनावरण, ९ क्षीण केवलदर्शनावरण, १० क्षीण निद्रा, ११ क्षीण निद्रानिद्रा, १२ क्षीण प्रचला, १३ क्षीण प्रचलाप्रचला, १४ क्षीणस्त्यानर्द्धि, १५ क्षीण साता-वेदनीय. १६ क्षीण असातावेदनीय, १७ क्षीण दर्शनमोहनीय, १८ क्षीण चारित्रमोहनीय, १९ क्षीण नरकायु, २० क्षीण तिर्यगायु, २१ क्षीण मनुष्यायु, २२ क्षीण देवायु, २३ क्षीण उच्चगोत्र, २४ क्षीण नीचगोत्र, २५ क्षीण शुभनाम, २६ क्षीण अशुभनाम, २७ क्षीण दानान्तराय, २८ क्षीण लाभान्तराय, २९ क्षीणभोगान्तराय, ३० क्षीण उपभोगान्तराय, और ३१ क्षीण वीर्यान्तराय।

२०६—**मंदरे णं पव्वए धरणितले एक्कत्तीस जोयणसहस्साइं छच्चेव तेवीसे जोयणसए किंचि वसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते। जया णं सूरिए सव्वबाहिरियं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स एक्कत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एकत्तीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए सट्ठिभागे जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ। अभिवड्ढिए णं मासे एक्कत्तीस सातिरेगाइं राइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। आइच्चे णं मासे एक्कत्तीस राइंदियाइं किंचि विसेसूणाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।**

मन्दर पर्वत धरती-तल पर परिक्षेप (परिधि) की अपेक्षा कुछ कम इकत्तीस हजार छह सौ तेईस योजन कहा गया है। जब सूर्य सब से बाहरी मडल मे जाकर सचार करता है, तब इस भरत-क्षेत्र-गत मनुष्य को इकत्तीस हजार आठ सौ इकत्तीस और एक योजन के साठ भागो मे से तीस भाग ($३१८३१\frac{३०}{६०}$) की दूरी से वह सूर्य दृष्टिगोचर होता है। अभिवर्धित मास मे रात्रि-दिवस की गणना से कुछ अधिक इकत्तीस रात-दिन कहे गये है। सूर्यमास रात्रि-दिवस की गणना से कुछ विशेष हीन इकत्तीस रात-दिन का कहा गया है।

२०७—**इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं एकत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाण नेरइयाणं एक्कत्तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर-कुमाराणं देवाण अत्थेगइयाण एक्कत्तीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाण देवाण एक्कत्तीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।**

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति इकत्तीस पल्योपम है। अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति इकत्तीस सागरोपम की है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति

इकत्तीस पल्योपम की है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति इकत्तीस पल्योपम कही गई है।

२०८—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिआणं देवाणं जहण्णेणं एक्कतीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिम-उवरिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एकत्तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, निस्ससंति वा। तेसि णं देवाणं एक्कत्तीस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कत्तीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवो की जघन्य स्थिति इकत्तीस सागरोपम कही गई है। जो देव उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमानो मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की उत्कृष्ट स्थिति इकत्तीस सागरोपम कही गई है। वे देव इकत्तीस अर्धमासो (साढे पन्द्रह मासो) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास नि श्वास लेते है। उन देवो के इकत्तीस हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे है जो इकत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु खो का अन्त करेगे।

॥ एकत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्वात्रिंशत्स्थानक-समवाय

२०९—बत्तीसं जोगसंगहा पण्णत्ता। त जहा—

आलोयण १, निरवलावे २, आवईसु दढधम्मया ३।
अणिस्सिओवहाणे ४, य, सिक्खा ५, निप्पडिकम्मया ६ ॥१॥
अण्णायया अलोभे ८, य, तितिक्खा ९, अज्जवे १०, सुई ११।
सम्मदिट्ठी १२, समाही १३, य, आयारे १४, विणओवए १५ ॥२॥
धिइमई १६, य, संवेगे १७, पणिही १८, सुविहि १९, संवरे २०।
अत्तदोसोवसंहारे २१, सव्वकामविरत्तया २२ ॥३॥
पच्चक्खाणे २३-२४, विउस्सग्गे २५, अप्पमादे २६, लवालवे २७।
झाणसंवरजोगे २८, य, उदए मारणंतिए २९ ॥४॥
संगाणं च परिण्णाया ३०, पायच्छित्तकरणे वि य ३१।
आराहणा य मरणंते ३२, बत्तीसं जोगसंगहा ॥५॥

बत्तीस योग-संग्रह (मोक्ष-साधक मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापार) कहे गये हैं। इनके द्वारा मोक्ष की साधना सुचारु रूप से सम्पन्न होती है। वे योग इस प्रकार हैं—

१ आलोचना—व्रत-शुद्धि के लिए शिष्य अपने दोषों की गुरु के आगे आलोचना करे।

२ निरपलाप—शिष्य-कथित दोषो को आचार्य किसी के आगे न कहे।
३ आपत्सु दृढधर्मता—आपत्तियो के आने पर साधक अपने धर्म मे दृढ रहे।
४ अनिश्रितोपधान—दूसरे के आश्रय की अपेक्षा न करके तपश्चरण करे।
५ शिक्षा—सूत्र और अर्थ का पठन-पाठन एव अभ्यास करे।
६ निष्प्रतिकर्मता—शरीर की सजावट-शृ गारादि न करे।
७ अज्ञातता—यश, ख्याति, पूजादि के लिए अपने तप को प्रकट न करे, अज्ञात रखे।
८ अलोभता—भक्त-पान एव वस्त्र, पात्र आदि मे निर्लोभ प्रवृत्ति रखे।
९ तितिक्षा—भूख, प्यास आदि परीषहो को सहन करे।
१० आर्जव—अपने व्यवहार को निश्छल और सरल रखे।
११ शुचि—सत्य बोलने और सयम-पालने मे शुद्धि रखे।
१२ सम्यग्दृष्टि—सम्यग्दर्शन को शका-काक्षादि दोषो को दूर करते हुए शुद्ध रखे।
१३ समाधि—चित्त को सकल्प-विकल्पो से रहित शान्त रखे।
१४ आचारोपगत—अपने आचरण को मायाचार रहित रखे।
१५ विनयोपगत—विनय-युक्त रहे, अभिमान न करे।
१६ धृतिमति—अपनी बुद्धि मे धैर्य रखे, दीनता न करे।
१७ सवेग—ससार से भयभीत रहे और निरन्तर मोक्ष की अभिलाषा रखे।
१८ प्रणिधि—हृदय मे माया शल्य न रखे।
१९ सुविधि—अपने चारित्र का विधि-पूर्वक सत्-अनुष्ठान अर्थात् सम्यक् परिपालन करे।
२० सवर—कर्मो के आने के द्वारो (कारणो) का सवरण अर्थात् निरोध करे।
२१ आत्मदोषोपसहार—अपने दोषो का निरोध करे—दोष न लगने दे।
२२ सर्वकामविरक्तता—सर्व विषयो से विरक्त रहे।
२३ मूलगुण-प्रत्याख्यान—अहिंसादि मूल गुण-विषयक प्रत्याख्यान करे।
२४ उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान—इन्द्रिय-निरोध आदि उत्तर गुण-विषयक प्रत्याख्यान करे।
२५ व्युत्सर्ग—वस्त्र-पात्र आदि बाहरी उपधि और मूर्च्छा आदि आध्यन्तर उपधि का परित्याग करे।
२६ अप्रमाद—अपने दैवसिक और रात्रिक आवश्यको के पालन आदि मे प्रमाद न करे।
२७ लवालव—प्रतिक्षण अपनी सामाचारी के परिपालन मे सावधान रहे।
२८ ध्यान-सवरयोग—धर्म और शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए आस्रव-द्वारो का सवर करे।
२९ मारणान्तिक कर्मोदय के होने पर भी क्षोभ न करे, मनमे शान्ति रखे।
३० सग-परिज्ञा—सग (परिग्रह) की परिज्ञा करे अर्थात् उसके स्वरूप को जान कर त्याग करे।
३१ प्रायश्चित्तकरण—अपने दोषो की शुद्धि के लिए नित्य प्रायश्चित्त करे।
३२ मारणान्तिक-आराधना—मरने के समय सलेखना-पूर्वक ज्ञान-दर्शन, चारित्र और तप की विशिष्ट आराधना करे।

२१०—बत्तीसं देविंदा पण्णत्ता। तं जहा—चमरे बली धरणे भूयाणंदे जाव घोसे महाघोसे, चंदे सूरे सक्के ईसाणे सणंकुमारे जाव पाणए अच्चुए।

बत्तीस देवेन्द्र कहे गये हैं । जैसे—१ चमर, २ बली, ३. धरण, ४. भूतानन्द, यावत् (५. वेणुदेव, ६ वेणुदाली, ७. हरिकान्त, ८ हरिस्सह, ९ अग्निशिख, १० अग्निमाणव, ११ पूर्ण, १२. वशिष्ठ, १३. जलकान्त, १४. जलप्रभ, १५. अमितगति, १६ अमितवाहन, १७. वेलम्ब, १८. प्रभजन) १९. घोष, २०. महाघोष, २१. चन्द्र, २२ सूर्य, २३, शक्र २४ ईशान, २५ सनत्कुमार, यावत् (२६ माहेन्द्र, २७ ब्रह्म, २८. लान्तक, २९. शुक्र, ३० सहस्रार) ३१ प्राणत, ३२ अच्युत ।

विवेचन—भवनवासी देवो के दश निकाय हैं और प्रत्येक निकाय के दो दो इन्द्र होते हैं, अत चमर और बली से लेकर घोष और महाघोष तक के बीस इन्द्र भवनवासी देवो के हैं । ज्योतिष्क देवो के चन्द्र और सूर्य ये दो इन्द्र है । शेष शक्र आदि दश इन्द्र वैमानिक-देवो के है । व्यन्तर देवो के आठो निकायो के सोलह इन्द्रो की अल्प ऋद्धिवाले होने से यहाँ विवक्षा नही की गई है ।

२११—कुंथुस्स णं अरहाओ बत्तीसहिआ बत्तीस जिणसया होत्था ।

कुन्थु अर्हत् के बत्तीस अधिक बत्तीस सौ (३२३२) केवलि जिन थे ।

२१२—सोहम्मे कप्पे बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।
रेवइणक्खत्ते बत्तीसइतारे पण्णत्ते ।
बत्तीसतिविहे णट्टे पण्णत्ते ।

सौधर्म कल्प मे बत्तीस लाख विमानावास कहे गये है ।
रेवती नक्षत्र बत्तीस तारावाला कहा गया है ।
बत्तीस प्रकार के नृत्य कहे गये है ।

२१३—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाण बत्तीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता ।

अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता । असुर-कुमाराण देवाणं अत्थेगइयाण बत्तीसं पलिओवमाण ठिई पण्णत्ता । सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाण बत्तीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितनेक नारको की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी पृथिवी मे कितनेक नारकियो की स्थिति बत्तीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई है । सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई है ।

२१४—जे देवा विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाण अत्थेगइयाणं बत्तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । ते णं देवा बत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा । तेसि णं देवाण बत्तीसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

जो देव विजय, वैयजन्त, जयन्त और अपराजित विमानो मे देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उनमे से कितनेक देवो की स्थिति बत्तीस सागरोपम कही गई है । वे देव बत्तीस अर्धमासों (सोलह मासो)

के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-नि:श्वास लेते हैं। उन देवो के बत्तीस हजार वर्षो के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मो से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व कर्मों का अन्त करेंगे।

॥ द्वात्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रयस्त्रिंशत्स्थानक-समवाय

२१५—तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ। त जहा—

१ सेहे राइणियस्स आसन्नं गंता भवइ आसायणा सेहस्स।

२. सेहे राइणियस्स परओ गंता भवइ आसायणा सेहस्स।

३. सेहे राइणियस्स सपक्खं गंता भवइ आसायणा सेहस्स।

४ सेहे राइणियस्स आसन्नं ठिच्चा भवइ आसायणा सेहस्स जाव।

५. [सेहे रायणियस्स पुरओ ठिच्चा भवइ, आसायणा सेहस्स।

६ सेहे रायणियस्स सपक्ख ठिच्चा भवइ, आसायणा सेहस्स।

७ सेहे रायणियस्स आसन्न निसीइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

८ सेहे रायणियस्स पुरओ निसीइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

९. सेहे रायणियस्स सद्धि सपक्ख निसीइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

१० सेहे रायणियस्स सद्धि बहिया वियारभूमिं निक्खंते समाणे पुव्वामेव सेहतराए आयामेइ पच्छा रायणिए, आसायणा सेहस्स।

११. सेहे रायणिए सद्धि बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खंते समाणे तत्थ पुव्वामेव सेहतराए आलोएति पच्छा रायणिए, आसायणा सेहस्स।

१२. सेहे रायणियस्स रातो वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो! के सुत्ते? के जागरे? तत्थ सेहे जागरमाणे रायणियस्स अपडिसुणेत्ता भवति, आसायणा सेहस्स।

१३ केइ रायणियस्स पुव्वं सलवित्तए सिया, तं सेहे पुव्वतरागं आलवेति पच्छा रायणिए, आयायणा सेहस्स।

१४. सेहे असणं वा पाण वा खाइम वा साइम वा पडिगाहेत्ता त पुव्वमेव सेहतरागस्स आलोएइ, पच्छा रायणियस्स, आसायणा सेहस्स।

१५. सेहे असण वा पाणं वा खाइमं वा साइम वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स उवदंसेति, पच्छा रायणियस्स, आसायणा सेहस्स।

१६ सेहे असणं पाण वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वामेव सेहतराग उवणि-मंतेइ, पच्छा रायणियं, आसायणा सेहस्स।

१७ सेहे रायणिएण सद्धि असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं रायणियं अणापुच्छित्ता जस्स-जस्स इच्छइ तस्स-तस्स खद्धं-खद्धं दलयइ, आसायणा सेहस्स।

१८. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता रायणिएण सद्धिं आहरेमाणे तत्थ सेहे खद्धं-खद्धं डायं-डायं ऊसढं-ऊसढं रसितं-रसितं मणुण्णं-मणुण्णं मणामं-मणामं निद्धं-निद्धं लुक्खं-लुक्खं आहरेत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

१९. सेहे रायणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणेत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

२० सेहे रायणियस्स खद्धं-खद्ध वत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

२१ सेहे रायणियस्स 'किं' ति वइत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

२२ सेहे रायणियं 'तुमं' ति वत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

२३. सेहे रायणियं तज्जाएण-तज्जाएण पडिभणित्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

२४. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स 'इति एवं' ति वत्ता न भवति, आसायणा सेहस्स।

२५. सेहे रायणियस्स कह कहेमाणस्स 'नो सुमरसी' ति वत्ता त भवति, आसायणा सेहस्स।

२६. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं अच्छिदित्ता भवति, आसायणा सेहस्स।

२७ सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता भवइ, आसायणा सेहस्स।

२८ सेहे रायणियस्स कह कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुट्ठिताए अभिन्नाए अवुच्छिन्नाए अव्वोगडाए दोच्चं पि तमेव कहं कहित्ता भवति, आसायणा सेहस्स।

२९. सेहे रायणियस्स सेज्जा-संथारगं पाएण संघट्टित्ता, हत्थेणं अणणुण्णवित्ता गच्छति, आसायणा सेहस्स।

३० सेहे रायणियस्स सेज्जा-संथारए चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ, आसायणा सेहस्स।

३१. सेहे रायणियस्स उच्चासणे चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवति, आसायणा सेहस्स।

३२ सेहे रायणियस्स समासणे चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवति, आसायणा सेहस्स।

३३. सेहे रायणियस्स आलवमाणस्स तत्थगए चेव पडिसुणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स।

सम्यग्दर्शनादि धर्म की विराधनारूप आशातनाए तेतीस कही गई है। जैसे—

१ शैक्ष (नवदीक्षित या अल्प दीक्षा-पर्यायवाला) साधु रात्निक (अधिक दीक्षा पर्याय वाले) साधु के अति निकट होकर गमन करे। यह शैक्ष की पहली आशातना है।

२ शैक्ष साधु रात्निक साधु से आगे गमन करे। यह शैक्ष की दूसरी आशातना है।

३ शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से चले। यह शैक्ष की तीसरी आशातना है।

४. शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे खडा हो, यह शैक्ष की चौथी आशातना है।

५ शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से खडा हो। यह शैक्ष की पाँचवी आशातना है।

६ शैक्ष साधु रात्निक साधु के अतिनिकट खडा हो। यह शैक्ष की छठी आशातना है।

७. शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे बैठे। यह शैक्ष की सातवी आशातना है।

८ शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से बैठे। यह शैक्ष की आठवी आशातना है।

९. शैक्ष साधु रात्निक साधु के अति समीप बैठे। यह शैक्ष की नवी आशातना है।

१०. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बाहर विचारभूमि को निकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहले आचमन (शौच-शुद्धि) करे तो यह शैक्ष की दसवी आशातना है।
११. शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बाहर विचारभूमि को या विहारभूमि को निकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहले आलोचना करे और रात्निक पीछे करे तो यह शैक्ष की ग्यारहवी आशातना है।
१२. कोई साधु रात्निक साधु के साथ पहले से बात कर रहा हो, तब शैक्ष साधु रात्निक साधु से पहिले ही बोले और रात्निक साधु पीछे बोल पावे। यह शैक्ष की बारहवी आशातना है।
१३ रात्निक साधु रात्रि मे या विकाल मे शैक्ष से पूछे कि आर्य ! कौन सो रहे हैं और कौन जाग रहे हैं ? यह सुनकर भी यदि शैक्ष अनसुनी करके कोई उत्तर न दे, तो यह शैक्ष की तेरहवी आशातना है।
१४. शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम लाकर पहिले किसी अन्य शैक्ष के सामने आलोचना करे पीछे रात्निक साधु के सामने, तो यह शैक्ष की चौदहवी आशातना है।
१५ शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम को लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को दिखलावे, पीछे रात्निक साधु को दिखावे, तो यह शैक्ष की पन्द्रहवी आशातना है।
१६ शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम-आहार लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को भोजन के लिए निमन्त्रण दे और पीछे रात्निक साधु को निमन्त्रण दे, तो यह शैक्ष की सोलहवी आशातना है।
१७ शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु से बिना पूछे जिस किसी को दे, तो यह शैक्ष की सत्तरहवी आशातना है।
१८ शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार लाकर रात्निक साधु के साथ भोजन करता हुआ यदि उत्तम भोज्य पदार्थों को जल्दी-जल्दी बडे-बडे कवलो से खाता है, तो यह शैक्ष की अठारहवी आशातना है।
१९. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष उसे अनसुनी करता है, तो यह शैक्ष की उन्नीसवी आशातना है।
२० रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष अपने स्थान पर ही बैठे हुए सुनता है तो यह शैक्ष की बीसवी आशातना है।
२१. रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर 'क्या कहा ?' इस प्रकार से यदि शैक्ष कहे तो यह शैक्ष की इक्कीसवी आशातना है।
२२ शैक्ष रात्निक साधु को 'तुम' कह कर (तुच्छ शब्द से) बोले तो यह शैक्ष की बाईसवी आशातना है।
२३ शैक्ष रात्निक साधु से यदि चप-चप करता हुआ उद्दडता से बोले तो यह शैक्ष की तेईसवी आशातना है।
२४. शैक्ष. रात्निक साधु के कथा करते हुए की 'जी हाँ' आदि शब्दो से अनुमोदना न करे तो यह शैक्ष की चौबीसवी आशातना है।

२५. शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'तुम्हें स्मरण नही' इस प्रकार से बोले तो यह शैक्ष की पच्चीसवी आशातना है।
२६. शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'बस करो' इत्यादि कहे तो यह शैक्ष की छब्बीसवी आशातना है।
२७ शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय यदि परिषद् को भेदन करे तो यह शैक्ष की सत्ताईसवी आशातना है।
२८ शैक्ष, रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए उस सभा के नही उठने पर दूसरी या तीसरी बार भी उसी कथा को कहे तो यह शैक्ष की अट्ठाईसवी आशातना है।
२९. शैक्ष, रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए यदि कथा की काट करे तो यह शैक्ष की उनतीसवी आशातना है।
२९ शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या-सस्तारक को पैर से ठुकरावे तो यह शैक्ष की उनतीसवी आशातना है।
३०. शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या या आसन पर खड़ा होता, बैठता-सोता है, तो यह शैक्ष की तीसवी आशातना है।
३१-३२ शैक्ष यदि रात्निक साधु से ऊंचे या समान आसन पर बैठता है तो यह शैक्ष की आशातना है।
३३ रात्निक के कुछ कहने पर शैक्ष अपने आसन पर बैठा-बैठा उत्तर दे, यह शैक्ष की तेतीसवी आशातना है।

विवेचन—नवीन दीक्षित साधु का कर्तव्य है कि वह अपने आचार्य, उपाध्याय और दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ साधु का चलते, उठते, बैठते समय उनके द्वारा कुछ पूछने पर, गोचरी करते समय सदा ही उनके विनय-सम्मान का ध्यान रखे। यदि वह अपने इस कर्तव्य मे चूकता है, तो उनकी आशातना करता है और अपने मोक्ष के साधनो को खडित करता है। इसी बात को ध्यान मे रख कर ये तेतीस आशातनाए कही गई है। प्रकृत सूत्र मे चार आशातनाओ का निर्देश कर शेष की यावत् पद से सूचना की गई है। उनका दशाश्रुत के अनुसार स्वरूप-निरूपण किया गया है।

२१६—चमरस्स ण असुरिंदस्स ण असुररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए एक्कमेक्कवाराए तेत्तीसं-तेत्तीसं भोमा पण्णत्ता। महाविदेहे णं वासे तेत्तीसं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं विक्खभेण पण्णत्ते। जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडल उवसंकमित्ता णं चार चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचि विसेसूणेहिं चक्खुप्फास हव्वमागच्छइ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की राजधानी चमरचचा नगरी मे प्रत्येक द्वार के बाहर तेतीस-तेतीस भौम (नगर के आकार वाले विशिष्ट स्थान) कहे गये है। महाविदेह वर्ष (क्षेत्र) कुछ अधिक तेतीस हजार योजन विस्तार वाला है। जब सूर्य सर्वबाह्य मडल से भीतर की ओर तीसरे मडल पर आकर सचार करता है, तब वह इस भरतक्षेत्र-गत मनुष्य के कुछ विशेष कम तेतीस हजार योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है।

२१७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए काल-महाकाल-रोरुय-महारोरुएसु नेरइयाणं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरो-

वमाइं ठिई पण्णत्ता। अप्पइट्ठाणनरए नेरइयाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं अत्थेगइयाण देवाण तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के कितनेक नारको की स्थिति तेतीस पल्योपम कही गई है। अधस्तन सातवी पृथिवी के काल, महाकाल, रौरुक और महारौरुक नारकावासो के नारको की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम कही गई है। उसी सातवी पृथिवी के अप्रतिष्ठान नरक मे नारको की अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित पूरी) तेतीस सागरोपम स्थिति कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवो की स्थिति तेतीस पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पो मे कितनेक देवो की स्थिति तेतीस पल्योपम कही गई है।

२१८—विजय-वेजयत-जयत-अपराजिएसु विमाणेसु उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता। जे देवा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णा, तेसि ण देवाण अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते ण देवा तेत्तीसाए अद्धमासेहि आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ససंति वा, निस्ससंति वा। तेसि णं देवाणं तेत्तीसाए वाससहस्सेहि आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेत्तीस भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

विजय-वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानो मे देवो की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम कही गई है। जो देव सर्वार्थसिद्ध नामक पाँचवे अनुत्तर महाविमान मे देवरूप से उत्पन्न होते है, उन देवो की अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति पूरे तेतीस सागरोपम कही गई है। वे देव तेतीस अर्धमासो (साढे सोलह मासो) के बाद आन-प्राण अथवा उच्छ्वास-नि श्वास लेते है। उन देवो के तेतीस हजार वर्षों के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव तेतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होगे, बुद्ध होगे, कर्मों से मुक्त होगे, परम निर्वाण को प्राप्त होगे और सर्व दु.खो का अन्त करेगे।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देव तो नियम से एक भव ग्रहण करके मुक्त होते है और विजयादि शेष चार विमानो के देवो मे से कोई एक भव ग्रहण करके मुक्त होता है और कोई दो मनुष्यभव ग्रहण करके मुक्त होता है।

॥ त्रयस्त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुस्त्रिंशत्स्थानक-समवाय

२१९—चोत्तीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता। त जहा—अवट्ठिए केस-मंसु-रोम-नहे १, निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी, गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए ३, पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे ४, पच्छन्ने आहार-नीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा ५, आगासगयं चक्क ६, आगासगयं छत्तं ७, आगासगयाओ सेयवरचामराओ ७, आगासफालियामयं सपायपीढं सीहासणं ९, आगासगओ कुडभीसहस्सपरिमंडि-

आभिराओ इंदज्झओ पुरओ गच्छइ १०, जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं जक्खा देवा संछन्नपत्त-पुप्फ-पल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसजायइ ११, ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजाइ, अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ १२, बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे १३, अहोसिरा कटया भवंति १४, उउविवरीया सुहफासा भवंति १५, सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता-सपमज्जिजज्जइ १६, जुत्तफुसिएण मेहेण य निहयरयरेणूयं किज्जइ १७, जल-थलभासुरपभूतेणं बिंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ १८, अमणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं अवकरिसो भवइ १९, मणुण्णाण सद्द-फरिस-रस-रूव-गधाणं पाउब्भावो भवइ २०, पच्चाहरओ वि य ण हिययगमणीओ जोयणनीहारी सरो २१, भगव च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ २२, सा वि य ण अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पय-चउप्पअ-मिय-पसु-पक्खि-सरीसिवाण अप्पणो हिय-सिव-सुहय-भासत्ताए परिणमइ २३,पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किंनर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगा अरहओ पायमूले पसतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति २४, अण्णउत्थियपावयणिया वि य ण आगया वंदति २५, आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पलिवयणा हवति २६, जओ जओ वि य ण अरहतो भगवंतो विहरंति तओ तओ वि य ण जोयणपणवीसाएण ईती न भवइ २७, मारी न भवइ २८, सचक्कं न भवइ २९, परचक्क न भवइ ३०, अइवुट्ठी न भवइ ३१, अणावुट्ठी न भवइ ३२, दुब्भिक्ख न भवइ ३३, पुव्वुप्पण्णा वि य ण उप्पाइया वाहीओ खिप्पमेव उवसमति ३४।

बुद्धो के अर्थात् तीर्थंकर भगवन्तो के चौतीस अतिशय कहे गये है। जैसे—

१ अवस्थित केश, श्मश्रु, रोम, नख होना, अर्थात् नख और केश आदि का नही बढना।

२ निरामय—रोगादि से रहित, निरुपलेप-मल रहित निर्मल देह-लता होना।

३ रक्त और मास का गाय के दूध के समान श्वेत वर्ण होना।

४ पद्म-कमल के समान सुगन्धित उच्छ्वास नि श्वास होना।

५ मास-चक्षु से अदृश्य प्रच्छन्न आहार और नीहार होना।

६ आकाश मे धर्मचक्र का चलना।

७ आकाश मे तीन छत्रो का घूमते हुए रहना।

८ आकाश मे उत्तम श्वेत चामरो का ढोला जाना।

९ आकाश के समान निर्मल स्फटिकमय पादपीठयुक्त सिहासन का होना।

१०. आकाश मे हजार लघु पताकाओ से युक्त इन्द्रध्वज का आगे-आगे चलना।

११. जहाँ-जहाँ भी अरहन्त भगवन्त ठहरते या बैठते है, वहाँ-वहाँ यक्ष देवो के द्वारा पत्र, पुष्प, पल्लवो से व्याप्त, छत्र, ध्वजा, घटा और पताका से युक्त श्रेष्ठ अशोक वृक्ष का निर्मित होना।

१२ मस्तक के कुछ पीछे तेजमडल (भामडल) का होना, जो अन्धकार मे भी (रात्रि के समय भी) दशो दिशाओ को प्रकाशित करता है।

१३ जहाँ भी तीर्थंकरो का विहार हो, उस भूमिभाग का बहुसम (एकदम समतल) और रमणीय होना।
१४. विहार-स्थल के काटो का अधोमुख हो जाना।
१५ सभी ऋतुओं का शरीर के अनुकूल सुखद स्पर्श वाली होना।
१६ जहाँ तीर्थंकर विराजते हैं, वहाँ की एक योजन भूमि का शीतल, सुखस्पर्शयुक्त सुगन्धित पावन से सर्व ओर सप्रमार्जन होना।
१७ मन्द, सुगन्धित जल-बिन्दुओ से मेघ के द्वारा भूमि का धूलि-रहित होना।
१८ जल और स्थल मे खिलने वाले पाच वर्ण के पुष्पो से घुटने प्रमाण भूमिभाग का पुष्पोपचार होना, अर्थात् आच्छादित किया जाना।
१९ अमनोज्ञ (अप्रिय) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अभाव होना।
२० मनोज्ञ (प्रिय) शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का प्रादुर्भाव होना।
२१ धर्मोपदेश के समय हृदय को प्रिय लगनेवाला और एक योजन तक फैलनेवाला स्वर होना।
२२ अर्धमागधी भाषा मे भगवान् का धर्मोपदेश देना।
२३ वह अर्धमगधी भाषा बोली जाती हुई सभी आर्य अनार्य पुरुषो के लिए तथा द्विपद पक्षी और चतुष्पद मृग, पशु आदि जानवरो के लिए और पेट के बल रेगने वाले सर्पादि के लिए अपनी-अपनी हितकर, शिवकर सुखद भाषारूप से परिणत हो जाती है।
२४ पूर्वबद्ध वैर वाले भो [मनुष्य] देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड, गन्धर्व और महोरग भी अरहन्तो के पादमूल मे (परस्पर वैर भूलकर) प्रशान्त चित्त होकर हर्षित मन से धर्म श्रवण करते है।
२५ अन्य तीर्थिक (परमतावलम्बी) प्रावचनिक (व्याख्यानदाता) पुरुष भी आकर भगवान् की वन्दना करते हैं।
२६ वे वादी लोग भी अरहन्त के पादमूल मे वचन-रहित (निरुत्तर) हो जाते है।
२७ जहाँ-जहाँ से भी अरहन्त भगवन्त विहार करते हैं, वहाँ-वहाँ पच्चीस योजन तक ईति-भीति नही होती है।
२८ मनुष्यों को मारने वाली मारी (हैजा-प्लेग आदि भयकर बीमारी) नही होती है।
२९ स्वचक्र (अपने राज्य की सेना) का भय नही होता।
३० परचक्र (शत्रु की सेना) का भय नही होता।
३१ अतिवृष्टि (भारी जलवर्षा) नही होती।
३२ अनावृष्टि नही होती, अर्थात् सूखा नही पडता।
३३ दुर्भिक्ष (दुष्काल) नही होता।
३४ भगवान् के विहार से पूर्व उत्पन्न हुई व्याधियाँ भी शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं और रक्त-वर्षा आदि उत्पात नही होते है।

विवेचन—उपर्युक्त चौतीस अतिशयो में से द्वितीय आदि चार अतिशय तीर्थंकरो के जन्म से ही होते हैं। छठे आकाश-गत चक्र से लेकर बीस तक के अतिशय घातिकर्म चतुष्क के क्षय होने पर

होते हैं और शेष देवकृत अतिशय जानना चाहिए। दिगम्बर परम्परा मे प्राय: ये ही अतिशय कुछ पाठ-भेद से मिलते हैं, वहाँ जन्म-जात दश अतिशय, केवलज्ञान-जनित दश अतिशय और देवकृत चौदह अतिशय कहे गये हैं।

२२०—जम्बुद्दीवे णं दीवे चउत्तीसं चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता। तं जहा—बत्तीसं महाविदेहे, दो भरहे एरवए। जम्बुद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा पण्णत्ता। जंबुद्दीवे णं दीवे उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थंकरा समुप्पज्जंति।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे चक्रवर्ती के विजयक्षेत्र चौतीस कहे गये हैं। जैसे—महाविदेह मे बत्तीस, भारत क्षेत्र एक और ऐरवत क्षेत्र एक। [इसी प्रकार] जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे चौतीस दीर्घ वैताढ्य कहे गये है। जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे उत्कृष्ट रूप से चौतीस तीर्थंकर [एक साथ] उत्पन्न होते है।

२२१—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चोत्तीस भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। पढम-पचम-छट्ठी-सत्तमासु चउसु पुढवीसु चोत्तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

असुरेन्द्र असुरराज चमर के चौतीस लाख भवनावास कहे गये हैं। पहिली, पाँचवी, छठी और सातवी, इन चार पृथिवियो मे चौतीस लाख (३०+३+पाँच कम एक लाख और ५=३४) नारकावास कहे गये है।

।। चतुस्त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चत्रिंशत्स्थानक-समवाय

२२२—पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता।

पेंतीस सत्यवचन के अतिशय कहे गये हैं।

विवेचन—मूल सूत्र मे इन पैंतीस वचनातिशयो के नामो का उल्लेख नही है और सस्कृत टीकाकार लिखते है कि ये आगम मे भी कही दृष्टिगोचर नही हुए हैं। उन्होने ग्रन्थान्तरो मे प्रतिपादित वचन के पैंतीस गुणो का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं—

१ सस्कारवत्त्व—वचनो का व्याकरण-सस्कार से युक्त होना।
२ उदात्तत्व—उच्च स्वर से परिपूर्ण होना।
३ उपचारोपेतत्व—ग्रामीणता से रहित होना।
४ गम्भीरशब्दत्व—मेघ के समान गम्भीर शब्दों से युक्त होना।
५ अनुनादित्व—प्रत्येक शब्द के यथार्थ उच्चारण से युक्त होना।
६ दक्षिणत्व—वचनो का सरलता-युक्त होना।
७ उपनीतरागत्व—यथोचित राग-रागिणी से युक्त होना।

ये सात अतिशय शब्द-सौन्दर्य की अपेक्षा से जानना चाहिए। आगे कहे जाने वाले अतिशय अर्थ-गौरव की अपेक्षा रखते है।

८ महार्थत्व—वचनो का महान् अर्थवाला होना।
९ अव्याहतपौर्वापर्यत्व—पूर्वापर अविरोधी वाक्य वाला होना।
१० शिष्टत्व—वक्ता की शिष्टता के सूचक होना।
११ असन्दिग्धत्व—सन्देह-रहित निश्चित अर्थ के प्रतिपादक होना।
१२ अपहृतान्योत्तरत्व—अन्य पुरुष के दूषणो को दूर करने वाला होना।
१३ हृदयग्राहित्व—श्रोता के हृदय-ग्राही—मनोहर वचन होना।
१४. देश-कालाव्ययीतत्व—देश-काल के अनुकूल अवसरोचित वचन होना।
१५ तत्त्वानुरूपत्व—विवक्षित वस्तुस्वरूप के अनुरूप वचन होना।
१६. अप्रकीर्ण प्रसृतत्व—निरर्थक विस्तार से रहित सुसम्बद्ध वचन होना।
१७ अन्योन्य प्रगृहीत—परस्पर अपेक्षा रखने वाले पदो और वाक्यो से युक्त होना।
१८ अभिजातत्व—वक्ता की कुलीनता और शालीनता के सूचक होना।
१९ अतिस्निग्ध मधुरत्व—अत्यन्त स्नेह से भरे हुए मधुरता-मिष्टता युक्त होना।
२० अपरमर्मवेधित्व—दूसरे के मर्म-वेधी न होना।
११ अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व—अर्थ और धर्म के अनुकूल होना।
२२ उदारत्व—तुच्छता-रहित और उदारता-युक्त होना।
२३ परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्व— पराई-निन्दा और अपनी प्रशसा से रहित होना।
२४. उपगतश्लाघत्व—जिन्हे सुन कर लोग प्रशसा करे, ऐसे वचन होना।
२५ अनपनीतत्व—काल, कारक, लिग-व्यत्यय आदि व्याकरण के दोषो से रहित होना।
२६. उत्पादिताच्छिन्न कौतूहलत्व—अपने विषय मे श्रोताजनो को लगातार कौतूहल उत्पन्न करने वाले होना।
२७ अद्भुतत्व—आश्चर्यकारक अद्भुत नवीनता-प्रदर्शक वचन होना।
२८ अनतिविलम्बित्व—अतिविलम्ब से रहित धाराप्रवाही बोलना।
२९. विभ्रम, विक्षेप—किलिकिञ्चितादि विमुक्तत्व-मन की भ्रान्ति, विक्षेप और रोष, भयादि से रहित होना।
३० अनेक जातिसश्रयाद्विचित्रत्व—अनेक प्रकार से वर्णनीय वस्तु-स्वरूप के वर्णन करने वाले वचन होना।
३१ आहितविशेषत्व—सामान्य वचनो से कुछ विशेषता-युक्त वचन होना।
३२ साकारत्व—पृथक्-पृथक् वर्ण, पद, वाक्य के आकार से युक्त वचन होना।
३३ सत्वपरिगृहीतत्व—साहस से परिपूर्ण वचन होना।
३४ अपरिखेदित्व—खेद—खिन्नता से रहित वचन होना।
३५ अव्युच्छेदित्व—विवक्षित अर्थ की सम्यक् सिद्धि करने वाले वचन होना।

बोले जाने वाले वचन उक्त पैतीस गुणो से युक्त होने चाहिए।

२२३—कुंथू णं अरहा पणतीसं धणूइ उड्ढं उच्चत्तेण होत्था। दत्ते ण वासुदेवे पणतीस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था। नंदणे ण बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

कुन्थु अर्हन् पेंतीस धनुष ऊंचे थे। दस वासुदेव पेंतीस धनुष ऊंचे थे। नन्दन बलदेव पेंतीस धनुष ऊंचे थे।

२२४—सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए माणवए चेइयक्खंभे हेट्ठा उवरिं च अद्धतेरस जोयणाणि वज्जेत्ता मज्झे पणतीसं जोयणेसु वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पण्णत्ताओ।

सौधर्म कल्प में सुधर्मा सभा के माणवक चैत्यस्तम्भ मे नीचे और ऊपर साढ़े बारह-साढे बारह योजन छोड कर मध्यवर्ती पेंतीस योजनो मे, वज्रमय, गोल वर्तुलाकार पेटियो मे जिनो की मनुष्य-लोक मे मुक्त हुए तीर्थंकरो की अस्थिया रखी हुई हैं।

२२५—बितिय-चउत्थीसु दोसु पुढवीए पणतीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

दूसरी और चौथी पृथिवियो मे (दोनो के मिला कर) पेंतीस (२५+१०=३५) लाख नारकावास कहे गये हैं।

॥ पञ्चत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्त्रिंशत्स्थानक-समवाय

२२६—छत्तीस उत्तरज्झयणा पण्णत्ता। त जहा—विणयसुयं १, परीसहो २, चाउरंगिज्जं ३, असंखय ४, अकाममरणिज्ज ५, पुरिसविज्जा ६, उरब्भिज्ज ७, काविलियं ८, नमिपव्वज्जा ९, दुमपत्तयं १०, बहुसुयपूजा ११, हरिएसिज्जं १२, चित्तसंभूयं १३, उसुयारिज्जं १४, सभिक्खुगं १५, सामाहिठाणाइ १६, पावसमणिज्ज १७, सजइज्जं १८, मियचारिया १९, अणाहपव्वज्जा २०, समुद्दपालिज्ज २१, रहनेमिज्ज २२, गोयम-केसिज्ज २३, समितीओ २४, जन्नतिज्जं २५, सामायारी २६, खलु किज्जं २७, मोक्खमग्गगई २८, अप्पमाओ २९, तवोमग्गो ३०, चरणविही ३१, पमायठाणाइं ३२, कम्मपयडी ३३, लेसज्झयणं ३४, अणगारमग्गे ३५, जीवाजीवविभत्ती य ३६।

उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन है। जैसे—१ विनयश्रुत अध्ययन २. परीषह अध्ययन, ३. चातुरङ्गीय अध्ययन, ४ असंस्कृत अध्ययन, ५. अकाममरणीय अध्ययन, ६ पुरुष विद्या अध्ययन (क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय अध्ययन) ७ औरभ्रीय अध्ययन ८ कापिलीय अध्ययन, ९. नमिप्रव्रज्या अध्ययन, १० द्रुमपत्रक अध्ययन, ११ बहुश्रुतपूजा अध्ययन, १२. हरिकेशीय अध्ययन, १३ चित्तसभूतीय अध्ययन, १४ इषुकारीय अध्ययन, १५ सभिक्षु अध्ययन, १६ समाधिस्थान अध्ययन, १७ पापश्रमणीय अध्ययन, १८. सयतीय अध्ययन, १९ मृगापुत्रीय अध्ययन, २०. अनाथ प्रव्रज्या अध्ययन, २१. समुद्रपालीय अध्ययन, २२ रथनेमीय अध्ययन, २३ गौतमकेशीय अध्ययन, २४ समिति अध्ययन, २५ यज्ञीय अध्ययन, २६. सामाचारी अध्ययन, २७. खलुकीय अध्ययन, २८ मोक्षमार्गगति अध्ययन, २९. अप्रमाद अध्ययन, (सम्यक्त्व पराक्रम) ३० तपोमार्ग अध्ययन, ३१. चरणविधि अध्ययन, ३२ प्रमादस्थान अध्ययन, ३३. कर्मप्रकृति अध्ययन, ३४ लेश्या अध्ययन, ३५ अनगारमार्ग अध्ययन और ३६. जीवाजीवविभक्ति अध्ययन।

२२७—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊंची है।

२२८—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था।

श्रमण भगवान् महावीर के संघ में छत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं।

२२९—चेत्तासोएसु णं मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसीछायं निव्वत्तइ।

चैत्र और आसोज मास में सूर्य एक बार छत्तीस अंगुल की पौरुषी छाया करता है।

॥ षट्त्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

सप्तत्रिंशत्स्थानक-समवाय

२३०—कुंथुस्स णं अरहओ सत्ततीसं गणा, सत्ततीसं गणहरा होत्था।

कुन्थु अर्हन् के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे।

२३१—हेमवय-हेरण्णवइयाओ णं जीवाओ सत्ततीसं जोयणसहस्साइं छच्च चउसत्तरे जोयणसए सोलसयएगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणाओ आयामेणं पण्णत्ताओ। सव्वासु णं विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियासु रायहाणीसु पागारा सत्ततीसं सत्ततीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र की जीवाएं सैंतीस हजार छह सौ चौहत्तर योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से कुछ कम सोलह भाग (३७६७४$\frac{16}{19}$) लम्बी कही गई हैं।

२३२—खुड्डियाए विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे सत्ततीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्तिनामक कालिक श्रुत के प्रथम वर्ग में सैंतीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

२३३—कत्तियबहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसीछायं निव्वत्तइत्ता णं चारं चरइ।

कार्त्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैंतीस अंगुल की पौरुषी छाया करता हुआ संचार करता है।

॥ सप्तत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टत्रिंशत्स्थानक-समवाय

२३४—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठत्तीसं अज्जिआसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् के संघ मे अडतीस हजार आर्यिकाओ की उत्कृष्ट आर्यिका-सम्पदा थी ।

२३५—हेमवय-एरण्णवइयाणं जीवाण धणुपिट्ठे अट्ठत्तीसं जोयणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोयणसए दसएगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचि विसेसूणा परिक्खेवेणं पण्णत्ते । अत्थस्स णं पव्वय-रण्णो बितिए कंडे अट्ठत्तीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था ।

हैमवत और ऐरण्यवत क्षेत्रो की जीवाओ का धनु:पृष्ठ अडतीस हजार सात सौ चालीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से दश भाग से कुछ कम (३८७४०$\frac{10}{19}$) परिक्षेप वाला कहा गया है । जहाँ सूर्य अस्त होता है, उस पर्वतराज मेरु का दूसरा काड अडतीस हजार योजन ऊचा है ।

२३६—खुड्डियाए ण विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे अट्ठत्तीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता ।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति नामक कालिक श्रुत के द्वितीय वर्ग मे अडतीस उद्देशन काल कहे गये हैं ।

।। अष्टत्रिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२३७—नमिस्स णं अरहओ एगूणचत्तालीसं आहोहियसया होत्था ।

समयखेत्ते एगूणचत्तालीसं कुलपव्वया पण्णत्ता । तं जहा—तीसं वासहरा, पंच मंदरा, चत्तारि उसुकारा । बीच्च-चउत्थ-पंचम-छट्ठ-सत्तमासु णं पंचसु पुढवीसु एगूणचत्तालीस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

नमि अर्हत् के उनतालीस सौ (३९००) नियत (परिमित) क्षेत्र को जानने वाले अवधिज्ञानी मुनि थे । समय क्षेत्र (अढाई द्वीप) मे उनतालीस कुलपर्वत कहे गये है । जैसे—तीस वर्षधर पर्वत, पाच मन्दर (मेरु) और चार इषुकार पर्वत । दूसरी, चौथी, पाचवी, छठी और सातवी, इन पाच पृथिवियो मे उनतालीस (२५+१०+३+पाच कम एक लाख और ५=३९) लाख नारकावास कहे गये हैं ।

२३८—नाणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स गोत्तस्स आउयस्स एयासि णं चउण्हं कम्मपगडीणं एगूणचत्तालीसं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ ।

ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयुकर्म, इन चारो कर्मों की उनतालीस (५+२८+२+४=३९) उत्तर प्रकृतिया कही गई हैं।

॥ एकोनचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२३९—अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तालीसं अज्जिया साहस्सीओ होत्था।

अरिष्टनेमि अर्हन् के सघ मे चालीस हजार आर्यिकाए थी।

२४०—मदरचूलिया णं चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।
सती अरहा चत्तालीसं धणूइ उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था।

मन्दर चूलिकाए चालीस योजन ऊची कही गई हैं।
शान्ति अर्हन् चालीस धनुष ऊचे थे।

२४१—भूयाणंदस्स णं नागकुमारस्स नागरण्णो चत्तालीस भवणावासयसहस्सा पण्णत्ता। खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे चत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

नागकुमार, नागराज भूतानन्द के चालीस लाख भवनावास कहे गये है। क्षुद्रिका विमान-प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग मे चालीस उद्देशन काल कहे गये है।

२४२—फग्गुणपुण्णिमासिणीए ण सूरिए चत्तालीसंगुलियं पोरिसीछाय निव्वट्टइत्ता ण चारं चरइ। एव कत्तियाए वि पुण्णिमाए।

फाल्गुण पूर्णमासी के दिन सूर्य चालीस अगुल की पौरुषी छाया करके सचार करता है। इसी प्रकार कार्त्तिकी पूर्णिमा को भी चालीस अगुल की पौरुषी छाया करके सचार करता है।

२४३—महासुक्के कप्पे चत्तालीस विमाणावाससहस्सा पण्णत्ता।

महाशुक्र कल्प मे चालीस हजार विमानावास कहे गये है।

॥ चत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२४४—नमिस्स णं अरहओ एकचत्तालीस अज्जियासाहस्सीओ होत्था।

नमि अर्हत् के सघ मे इकतालीस हजार आर्यिकाए थी।

२४५—चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। तं जहा—रयणप्पाभाए पंकप्पभाए तमाए तमतमाए।

चार पृथिवियो मे इकतालीस लाख नारकवास कहे गये हैं। जैसे—रत्नप्रभा मे ३० लाख, पकप्रभा मे १० लाख, तम प्रभा में ५ कम एक लाख और महातम प्रभा मे ५।

२४६—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे एक्कचत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका (महती) विमानप्रविभक्ति के प्रथम वर्ग मे इकतालीस उद्देशनकाल कहे गये हैं।

॥ एकचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२४७—समणे भगवं महावीरे बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर कुछ अधिक बयालीस वर्ष श्रमण पर्याय पालकर सिद्ध, बुद्ध, यावत् (कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और) सर्व दु:खो से रहित हुए।

२४८—जबुद्दीवस्स ण दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमते एस ण बायालीस जोयणसहस्साइ अबाहातो अतरं पण्णत्त। एवं चउद्दिसिं पि दओभासे, सखे दयसीमे य।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की जगती की बाहरी परिधि के पूर्वी चरमान्त भाग से लेकर वेलन्धर नागराज के गोस्तूभनामक आवास पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग तक मध्यवर्ती क्षेत्र का विना किसी बाधा या व्यवधान के अन्तर बयालीस हजार योजन कहा गया है। इसी प्रकार चारो दिशाओ मे भी उदकभास शख और उदकसीम का अन्तर जानना चाहिए।

२४९—कालोए ण समुद्दे बायालीस चंदा जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति वा। बायालीसं सूरिया पभासिसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा।

कालोद समुद्र मे बयालीस चन्द्र उद्योत करते थे उद्योत करते है और उद्योत करेगे। इसी प्रकार बयालीस सूर्य प्रकाश करते थे, प्रकाश करते है और प्रकाश करेंगे।

२५०—सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पाणं उक्कोसेणं बायालीस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष कही गई है।

२५१—नामकम्मे बायालीसविहे पण्णत्ते। तं जहा—गइनामे १, जाइनामे २, सरीरनामे ३, सरीरंगोवंगनामे ४, सरीरबंधणनामे ५, सरीरसंघायणनामे ६, संघयणनामे ७, संठाणनामे ८, वण्णनामे ९, गंधनामे १०, रसनामे ११, फासनामे १२, अगुरुलहुयनामे १३, उवघायनामे १४, पराघायनामे १५, आणुपुव्वीनामे १६, उस्सासनामे १७, आयवनामे १८, उज्जोयनामे १९, विहगगइ-नामे २०, तसनामे २१, थावरनामे २२, सुहुमनामे २३, बायरनामे २४, पज्जत्तनामे २५, अपज्जत्त-

नामे २६, साहारणसरीरनामे २७, पत्तेयसरीरनामे २८, थिरनामे २९, अथिरनामे ३०, सुभनामे ३१, असुभनामे ३२, सुभगनामे ३३, दुब्भगनामे ३४, सुस्सरनामे ३५, दुस्सरनामे ३६, आएज्जनामे ३७, अणाएज्जनामे ३८, जसोकित्तिनामे ३९, अजसोकित्तिनामे ४०, निम्माणनामे ४१, तित्थकरनामे ४२।

नामकर्म बयालीस प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ गतिनाम, २ जातिनाम, ३ शरीरनाम, ४. शरीराङ्गोपाङ्गनाम, ५. शरीरबन्धननाम, ६. शरीरसघातननाम, ७ सहनननाम, ८. सस्थाननाम, ९. वर्णनाम, १०. गन्धनाम, ११. रसनाम, १२ स्पर्शनाम, १३ अगुरुलघुनाम, १४ उपघातनाम, १५ पराघातनाम, १६. आनुपूर्वीनाम, १७ उच्छ्वासनाम, १८ आतपनाम, १९ उद्योतनाम, २० विहायोगतिनाम, २१, त्रसनाम, २२ स्थावरनाम, २३ सूक्ष्मनाम, २४ बादरनाम, २५ पर्याप्तनाम, २६ अपर्याप्तनाम, २७ साधारणशरीरनाम, २८. प्रत्येकशरीरनाम, २९ स्थिरनाम, ३० अस्थिरनाम, ३१. शुभनाम, ३२ अशुभनाम, ३३ सुभगनाम, ३४ दुर्भगनाम, ३५ सुस्वरनाम, ३६. दुस्वरनाम, ३७. आदेयनाम, ३८. अनादेयनाम, ३९. यशस्कीर्त्तिनाम, ४०. अयशस्कीर्त्तिनाम, ४१. निर्माणनाम और ४२ तीर्थंकरनाम।

२५२—**लवणे णं समुद्दे बायालीसं नागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारंति।**

लवण समुद्र की भीतरी वेला को बयालीस हजार नाग धारण करते हैं।

२५३—**महालियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे बायालीस उद्देसणकाला पण्णत्ता।**

महालिका विमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग मे बयालीस उद्देशन काल कहे गये है।

२५४—**एगमेगाए ओसप्पिणीए पंचम-छट्ठीओ समाओ बायालीस वाससहस्साइ कालेणं पण्णत्ताओ। एगमेगाए उस्सप्पिणीए पढम-बीयाओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइ कालेण पण्णत्ताओ।**

प्रत्येक अवसर्पिणी काल का पाँचवा छठा आरा (दोनो मिल कर) बयालीस हजार वर्ष का कहा गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी काल का पहिला-दूसरा आरा बयालीस हजार वर्ष का कहा गया है।

॥ द्विचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२५५—**तेयालीसं कम्मविवागज्झयणा पण्णत्ता।**

कर्मविपाक सूत्र (कर्मों का शुभाशुभ फल बतलानेवाले अध्ययन) के तेयालीस अध्ययन कहे गये हैं।

२५६—**पढम-चउत्थ-पंचमासु पुढवीसु तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। जबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउद्दिसिं पि दगभासे संखे दयसीमे।**

पहिली, चौथी और पांचवी पृथिवी मे तेयालीस (३०+१०+३=४३) लाख नारकावास कहे गये हैं। जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप के पूर्वी जगती के चरमान्त से गोस्तूभ आवास पर्वत का पश्चिमी चरमान्त का विना किसी बाधा या व्यवधान के तेयालीस हजार योजन अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार चारो ही दिशाओ मे जानना चाहिए। विशेषता यह है कि दक्षिण मे दकभास, पश्चिम दिशा मे शख आवास पर्वत है और उत्तर दिशा मे दकसीम आवास पर्वत है।

२५७—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे तेयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमान प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग मे तेयालीस उद्देशन काल कहे गये हैं।

॥ त्रिचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

चतुश्चत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२५८—चोयालीसं अज्झयणा इसिभासिया दियलोगचुया भासिया पण्णत्ता।

चवालीस ऋषिभासित अध्ययन कहे गये है, जिन्हे देवलोक से च्युत हुए ऋषियो ने कहा है।

२५९—विमलस्स ण अरहओ णं चउआलीसं पुरिसजुगाइं अणुपिट्ठि सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं।

विमल अर्हत् के बाद चवालीस पुरुषयुग (पीढी) अनुक्रम से एक के पीछे एक सिद्ध, बुद्ध, कर्मो से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए।

२६०—धरणस्स ण नागिंदस्स नागरण्णो चोयालीसं भवणावाससयहस्सा पण्णत्ता।

नागेन्द्र, नागराज, धरण के चवालीस लाख भवनावास कहे गये हैं।

२६१—महालियाए णं विमाणपविभत्तीए चउत्थे वग्गे चोयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमानप्रविभक्ति के चतुर्थ वर्ग मे चवालीस उद्देशन काल कहे गये है।

॥ चतुश्चत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२६२—समयक्खेत्ते णं पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। सीमंतए णं नरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। एवं उडुविमाणे वि। ईसिपब्भारा णं पुढवी एवं चेव।

समय क्षेत्र (अढाई द्वीप) पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा कहा गया है। इसी प्रकार ऋतु (उडु) (सौधर्म-ईशान देव लोक में प्रथम पाथडे मे चार विमानावलिकाओं के मध्यभाग में रहा हुआ

गोल विमान) और ईषत्प्राग्भारा पृथिवी (सिद्धिस्थान) भी पैंतालीस-पैंतालीस लाख योजन विस्तृत जानना चाहिए।

२६३—धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

धर्म अर्हत् पैंतालीस धनुष ऊंचे थे।

२६४—मंदरस्स णं पव्वयस्स चउद्दिसिं पि पणयालीसं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत की चारों ही दिशाओं में लवणसमुद्र की भीतरी परिधि की अपेक्षा पैंतालीस हजार योजन अन्तर विना किसी बाधा के कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है। तथा मन्दर पर्वत धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तृत है। एक लाख में से दश हजार योजन घटाने पर नब्वे हजार योजन शेष रहते हैं। उसके आधे पैंतालीस हजार होते हैं। अतः मन्दर पर्वत से चारों ही दिशाओं में लवण समुद्र की वेदिका पैंतालीस हजार योजन के अन्तराल पर पाई जाती है।

२६५—सव्वे वि णं दिवड्ढखेत्तिया नक्खत्ता पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा, जोइंति वा, जोइस्संति वा।

तिन्नेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य।
एए छ नक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा॥१॥

सभी द्व्यर्ध क्षेत्रीय नक्षत्रों ने पैंतालीस मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग किया है, योग करते हैं और योग करेंगे।

तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा ये छह नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त तक चन्द्र के साथ संयोग वाले कहे गये हैं।

विवरण—चन्द्रमा का तीस मुहूर्त भोग्य क्षेत्र समक्षेत्र कहलाता है। उसके ड्योढ़ पैंतालीस मुहूर्त भोग्य क्षेत्र को द्व्यर्धक्षेत्रीय कहते हैं।

२६६—महालियाए विमाणपविभत्तीए पंचमे वग्गे पणयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

महालिका विमानप्रविभक्ति सूत्र के पाँचवें वर्ग में पैंतालीस उद्देशन कहे गये हैं।

॥ पंचचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्चत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२६७—दिट्ठिवायस्स णं छायालीसं माउयापया पण्णत्ता। बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता।

बारहवे दृष्टिवाद अग के छियालीस मातृकापद कहे गये है। ब्राह्मी लिपि के छियालीस मातृ-अक्षर कहे गये है।

विवेचन—सोलह स्वरो मे से ऋ ॠ ऌ ॡ इन चार को छोड कर शेष बारह स्वर, कवर्गादि पच्चीस व्यजन, य र ल व ये चार अन्त स्थ, श, ष, स, ह ये चार ऊष्म वर्ण और ह्‌ ये छियालीस ही अक्षर ब्राह्मी लिपि मे होते हैं।

२६८—पभंजणस्स णं वाउकुमारिंदस्स छायालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

वायुकुमारेन्द्र प्रभजन के छियालीस लाख भवनावास कहे गये है।

।। षट्चत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्तचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२६९—जया णं सूरिए सव्वब्भितरमडल उवसंकमित्ता ण चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स सत्तचत्तालीस जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफास हव्वमागच्छइ।

जब सूर्य सबसे भीतरी मण्डल मे आकर सचार करता है, तब इस भरतक्षेत्रगत मनुष्य को सैतालीस हजार दो सौ तिरेसठ योजन और एक योजन के साठ भागो मे इक्कीस भाग की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है।

२७०—थेरे ण अग्गभूई सत्तचत्तालीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए।

अग्निभूति स्थविर सैतालीस वर्ष गृहवास मे रह कर मु डित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

।। सप्तचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

अष्टचत्वारिंशत्स्थानक-समवाय

२७१—एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अडयालीसं पट्टणसहस्सा पण्णत्ता ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के अडतालीस हजार पट्टण कहे गये है ।

२७२—धम्मस्स णं अरहम्रो अडयालीस गणा, अडयालीसं गणहरा होत्था ।

धर्म अर्हत् के अडतालीस गण और अडतालीस गणधर थे ।

२७३—सूरमडले ण अडयालीस एकसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभेण पण्णत्ते ।

सूर्यमण्डल एक योजन के इकसठ भागो मे से अडतालीस भाग-प्रमाण विस्तार वाला कहा गया है ।

।। अष्टचत्वारिंशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२७४—सत्त-सत्तमियाए ण भिक्खुपडिमाए एगूणपन्नाए राइदिएहिं छन्नउइभिक्खासएण अहासुत्त जाव [अहाकप्पं अहातच्चं सम्म काएण फासित्ता पालित्ता सोहित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आणाए अणुपालित्ता] आराहिया भवइ ।

सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा उनचास रात्रि-दिवसो से और एक सौ छियानवे भिक्षाओ से यथासूत्र यथामार्ग से [यथाकल्प से, यथातत्त्व से, सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर पालकर, शोधन कर, पार कर, कीर्तन कर आज्ञा से अनुपालन कर] आराधित होती है ।

विवेचन—सात-सात दिन के सात सप्ताह जिस अभिग्रह- विशेष की आराधना मे लगते है, उसे सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा कहते है । उसकी विधि सस्कृतटीकाकार ने दो प्रकार से कही है । प्रथम प्रकार के अनुसार प्रथम सप्ताह मे प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति की वृद्धि से अट्ठाईस भिक्षाए होती है । इसी प्रकार द्वितीयादि सप्ताह मे भी प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति की वृद्धि से सब एक सौ छियानवे भिक्षाए होती है । अथवा प्रथम सप्ताह के सातो दिनो मे एक-एक भिक्षा दत्ति ग्रहण करते हैं । दूसरे सप्ताह के सातो दिनो मे दो-दो भिक्षा दत्ति ग्रहण करते है । इस प्रकार प्रतिसप्ताह एक-एक भिक्षा दत्ति के बढने से सातो सप्ताहो की समस्त भिक्षाए एक सौ छियानवे (७+१४+२१+२८+३५+४२+४९=१९६) हो जाती है ।

२७५—देवकुरु-उत्तरकुरुएसु ण मणुया एगूणपण्णास-राइंदिएहिं संपन्नजोव्वणा भवंति ।

देवकुरु और उत्तरकुरु मे मनुष्य उनचास रात-दिनो मे पूर्ण यौवन से सम्पन्न हो जाते है ।

२७६—तेइंदियाण उक्कोसेण एगूणपण्ण राइंदिया ठिई ।

त्रीन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट स्थिति उनचास रात-दिन की कही गई है ।

।। एकोनपचाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२७७—**मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पंचासं अज्जियासाहस्सीओ होत्था। अणंते णं अरहा पन्नास धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। पुरिसुत्तमे ण वासुदेवे पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।**

मुनिसुव्रत अर्हत् के सघ मे पचास हजार आर्यिकाए थी। अनन्तनाथ अर्हत् पचास धनुष ऊचे थे। पुरुषोत्तम वासुदेव पचास धनुष ऊचे थे।

२७८—**सव्वे वि णं दोहवेयड्ढा मूले पन्नास पन्नास जोयणाणि विक्खंभेणं पण्णत्ता।**

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत मूल मे पचास योजन विस्तार वाले कहे गये हैं।

२७९—**लंतए कप्पे पन्नासं विमाणावाससहस्सा पण्णत्ता। सव्वाओ णं तिमिस्सगुहा-खंडगप्प-वायगुहाओ पन्नासं पन्नासं जोयणाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं कचणगपव्वया सिहरतले पन्नासं पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।**

लान्तक कल्प मे पचास हजार विमानावास कहे गये हैं। सभी तिमिस्र गुफाए और खण्ड-प्रपात गुफाए पचास-पचास योजन लम्बी कही गई हैं। सभी काचन पर्वत शिखरतल पर पचास-पचास योजन विस्तार वाले कहे गये हैं।

॥ पञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

एकपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२८०—**नवण्ह बंभचेराण एकावन्नं उद्देसणकाला पण्णत्ता।**

नवो ब्रह्मचर्यों के इक्यावन उद्देशन काल कहे गये है।

विवेचन—आचाराङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के शस्त्रपरिज्ञा आदि अध्ययन ब्रह्मचर्य के नाम से प्रख्यात है, उनके अध्ययन उनचास है, अत उनके उद्देशनकाल भी उनचास ही कहे गये है।

२८१—**चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो सभा सुधम्मा एकावन्नखम्भसयसंनिविट्ठा पण्णत्ता। एवं चेव बलिस्स वि।**

असुरेन्द्र असुरराज चमर को सुधर्मा सभा इक्यावन सौ (५१००) खम्भो से रचित है। इसी प्रकार बलि की सभा भी जानना चाहिए।

२८२—**सुप्पभे णं बलदेवे एकावन्नं वाससयसहस्साइं परमाउ पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।**

सुप्रभ बलदेव इक्यावन हजार वर्ष की परमायु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु:खो से रहित हुए।

२८३—दंसणावरण-नामाणं दोण्हं कम्माण एकावन्नं उत्तरकम्मपगडीओ पण्णत्ताओ।

दर्शनावरण और नाम कर्म इन दोनो कर्मों की (९+४२=५१) इक्यावन उत्तर कर्म-प्रकृतिया कही गई हैं।

॥ एकपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

द्विपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२८४—मोहणिज्जस्स ण कम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा पण्णत्ता। त जहा—कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चडिक्के भडणे विवाए १०, माणे मदे दप्पे थभे अत्तक्कोसे गव्वे परपरिवाए अवक्कोसे [परिभवे] उन्नए २०, उन्नामे माया उवही नियडी वलए गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे ३०, कूडे जिम्हे किब्बिसे अणायरणया गूहणया वंचणया पलिकुंचणया सातिजोगे लोभे इच्छा ४०; मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा ५०, नन्दी रागे ५२।

मोहनीय कर्म के बावन नाम कहे गये है। जैसे—१. क्रोध, २ कोप, ३. रोष, ४ द्वेष, ५ अक्षमा, ६ सज्वलन, ७ कलह, ८. चडिक्य, ९ भडन, १० विवाद, ये दश क्रोध-कषाय के नाम हैं। ११ मान, १२ मद, १३ दर्प, १४ स्तम्भ, १५ आत्मोकर्ष, १६ गर्व, १७ परपरिवाद, १८ अपकर्ष, [१९ परिभव] २० उन्नत, २१ उन्नाम, ये ग्यारह नाम मान कषाय के है। २२ माया, २३ उपधि, २४ निकृति, २५ वलय, २६ गहन, २७ न्यवम, २८ कल्क, २९ कुरुक, ३०. दभ, ३१ कूट, ३२ जिम्ह ३३ किल्विष, ३४ अनाचरणता, ३५ गूहनता, ३६ वचनता, ३७ पलिकुचनता, ३८ सातियोग, ये सत्तरह नाम माया-कषाय के है। ३९ लोभ, ४० इच्छा, ४१ मूर्च्छा, ४२ काक्षा, ४३ गृद्धि, ४४ तृष्णा, ४५ भिध्या, ४६ अभिध्या, ४७ कामाशा, ४८ भोगाशा, ४९ जीविताशा, ५० मरणाशा, ५१ नन्दी, ५२ राग, ये चौदह नाम लोभ-कषाय के है। इसी प्रकार चारो कषायो के नाम मिल कर [१०+११+१७+१४=५२] बावन मोहनीय कर्म के नाम हो जाते है।

२८५ -गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स पच्चच्छिल्ले चरमंते, एस णं बावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं दगभागस्स णं केउगस्स सखस्स जूयगस्स दगसीमस्स ईसरस्स।

गोस्तूभ आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से वडवामुख महापाताल का पश्चिमी चरमान्त बाधा के विना बावन हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार लवण समुद्र के भीतर अवस्थित दकभास केतुक का, शख नामक जूपक का और दकसीम नामक ईश्वर का, इन चारो महापाताल कलशो का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—लवण समुद्र दो लाख योजन विस्तृत है। उसमे पचानवे हजार योजन आगे जाकर पूर्वादि चारो दिशाओ मे चार महापाताल कलश है, उनके नाम क्रम से वडवामुख, केतुक, जूपक और ईश्वर हैं। जम्बूद्वीप की वेदिका के अन्त से बयालीस हजार योजन भीतर जाकर एक हजार योजन के विस्तार वाले गोस्तूभ आदि वेलन्धर नागराजो के चार आवास पर्वत हैं। इसलिए पंचानवे हजार

मे से बयालीस हजार योजन कम कर देने पर उनके बीच मे बावन हजार योजनो का अन्तर रह जाता है। यही बात इस सूत्र मे कही गई है।

२८६—नाणावरणिज्जस्स नामस्स अतरायस्स एतेसि णं तिण्ह कम्मपगडीणं बावन्नं उत्तर-पयडीओ पण्णत्ताओ।

ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय इन तीनो कर्मप्रकृतियो की उत्तरप्रकृतिया बावन (५+४२+५=५२) कही गई हैं।

२८७—सोहम्म-सणंकुमार-माहिंदेसु तिसु कप्पेसु बावन्नं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

सौधर्म, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन कल्पो मे (३२+१२+८=५२) बावन लाख विमानावास कहे गये है।

।। द्विपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रिपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२८८—देवकुरु-उत्तरकुरुयाओ णं जीवाओ तेवन्नं तेवन्न जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। महाहिमवंत-रुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ तेवन्नं तेवन्नं जोयणसहस्साइं नव य एगत्तीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसईभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

देवकुरु और उत्तरकुरु की जीवाए तिरेपन-तिरेपन हजार योजन से कुछ अधिक लम्बी कही गई है। महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की जीवाए तिरेपन-तिरेपन हजार नौ सौ इकत्तीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से छह भाग प्रमाण (५३९३१$\frac{६}{१९}$) लम्बी कही गई है।

२८९—समणस्स ण भगवओ महावीरस्स तेवन्न अणगारा सवच्छरपरियाया पचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना।

श्रमण भगवान् महावीर के तिरेपन अनगार एक वर्ष श्रमणपर्याय पालकर महान्-विस्तीर्ण एव अत्यन्त सुखमय पाँच अनुत्तर महाविमानो मे देवरूप मे उत्पन्न हुए।

२९०—संमुच्छिमउरपरिसप्पाणं उक्कोसेण तेवन्न वाससहस्सा ठिई पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तिरेपन हजार वर्ष कही गई है।

।। त्रिपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुःपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२९१—भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवन्नं चउवन्नं उत्तमपुरिसा उप्पंजिसु वा, उप्पज्जति वा, उप्पज्जिससति वा। तं जहा—चउवीसं तित्थकरा, बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।

भरत और ऐरवत क्षेत्रो मे एक एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे चौपन चौपन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होगे। जैसे—चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव। (२४+१२+९+९=५४)।

२९२—अरहा णं अरिट्ठनेमी चउवन्न राइंदियाइ छउमत्थपरियायं पाउणित्ता जिणे जाए केवली सवन्नू सव्वभावदरिसी।

समणे ण भगवं महावीरे एगदिवसेण एगनिसिज्जाए चाउप्पन्नाइ वागरणाइ वागरित्था।

अणतस्स णं अरहओ चउपन्न [गणा चउपन्न] गणहरा होत्था।

अरिष्टनेमि अर्हन् चौपन रात-दिन छद्मस्थ श्रमणपर्याय पाल कर केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी जिन हुए।

श्रमण भगवान् महावीर को एक दिन मे एक आसन से बैठे हुए चौपन प्रश्नो के उत्तररूप व्याख्यान दिये थे।

अनन्त अर्हन् के चौपन गण और चौपन गणधर थे।

॥ चतु·पञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२९३—मल्लिस्स णं अरहओ [मल्ली ण अरहा] पणवण्णं वाससहस्साइं परमाउ पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खपहीणे।

मल्ली अर्हन् पचपन हजार वर्ष की परमायु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए।

२९४—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ विजयदारस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं पणवण्ण जोयणसहस्साइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एव चाउद्दिसिं पि विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियं ति।

मन्दर पर्वत के पश्चिम चरमान्त भाग से पूर्वी विजयद्वार के पश्चिमी चरमान्त भाग का अन्तर पचपन हजार योजन का कहा गया है। इसी प्रकार चारो ही दिशाओ मे विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित द्वारो का अन्तर जानना चाहिए।

२९५ समणे ण भगव महावीरे अंतिमराइयसि पणवण्णं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणवण्णं अज्झयणाइं पावफलविवागाइ वागरित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

श्रमण भगवान् महावीर अन्तिम रात्रि मे पुण्य-फल विपाकवाले पचपन और पाप-फल विपाकवाले पचपन अध्ययनो का प्रतिपादन करके सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए ।

२९६. पढम-बिइयासु दोसु पुढवीसु पणवण्णं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

पहिली और दूसरी इन दो पृथिवियो मे पचपन (३०+२५=५५) लाख नारकावास कहे गये हैं ।

२९७. दंसणावरणिज्ज-नामाउयाणं तिण्हं कम्मपगडीणं पणवण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ ।

दर्शनावरणीय, नाम और आयु इन तीन कर्मप्रकृतियो की मिलाकर पचपन उत्तर प्रकृतिया (९+४२+४=५५) कही गई हैं ।

।। पञ्चपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

षट्पञ्चाशत्स्थानक-समवाय

२९८. जबुद्दीवे ण दीवे छप्पन्न नक्खत्ता चदेण सद्धि जोग जोइसु वा, जोइति वा, जोइस्संति वा ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे दो चन्द्रमाओ के परिवारवाले (२८+२८=५६) छप्पन नक्षत्र चन्द्र के साथ योग करते थे, योग करते है और योग करेगे ।

२९९ विमलस्स ण अरहओ छप्पन्न गणा छप्पन्न गणहरा होत्था ।

विमल अर्हत् के छप्पन गण और छप्पन गणधर थे ।

।। षट्पञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्तपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

३०० तिण्ह गणिपिडगाण आयारचूलियावज्जाण सत्तावन्नं अज्झयणा पण्णत्ता । त जहा— आयारे सूयगडे ठाणे ।

आचारचूलिका को छोड कर तीन गणिपिटको के सत्तावन अध्ययन कहे गये हैं । जैसे आचाराङ्ग के अन्तिम निशीथ अध्ययन को छोड कर प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ, द्वितीय श्रुतस्कन्ध के आचारचूलिका को छोडकर पन्द्रह, दूसरे सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह, द्वितीय श्रुतस्कन्ध

के सात और स्थानाङ्ग के दश, इस प्रकार सर्व ('९+१५'+'१६+७'+१०=५७) सत्तावन अध्ययन कहे गये हैं।

३०१. गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं सत्तावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं दगभासस्स केउयस्स य संखस्स य जूयस्स य दयसीमस्स ईसरस्स य।

गोस्तुभ आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त से बडवामुख महापाताल के बहु मध्य देशभाग का विना किसी बाधा के सत्तावन हजार योजन अन्तर कहा है। इसी प्रकार दकभास और केतुक का, सख और यूपक का और दकसीम तथा ईश्वर नामक महापाताल का अन्तर जानना चाहिये।

विवेचन—पहले बतला आये हैं कि जम्बूद्वीप की वेदिका से गोस्तुभ पर्वत का अन्तर अडतालीस हजार योजन है। गोस्तुभ का विस्तार एक हजार योजन है। तथा गोस्तुभ और बडवामुख का अन्तर बावन हजार योजन है और बडवामुख का विस्तार दश हजार योजन है, उसके आधे पाँच हजार योजन को बावन हजार योजन में मिला देने पर सत्तावन हजार योजन का अन्तर गोस्तुभ के पूर्वी चरमान्त से बडवामुख के मध्यभाग तक का सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार से शेष तीनो महापाताल कलशो का भी अन्तर निकल आता है।

३०२. मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावन्नं मणपज्जवनाणिसया होत्था।

महाहिमवत-रुप्पीणं वासहरपव्वयाण जीवाणं धणुपिट्ठं सत्तावन्न सत्तावन्न जोयणसहस्साइ दोन्नि य तेणउए जोयणसए दस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्त।

मल्लि अर्हत् के सघ मे सत्तावन सौ (५७००) मन पर्यवज्ञानी मुनि थे।

महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत की जीवाओ का धनु पृष्ठ सत्तावन हजार दो सौ तेरानवे योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से दशभाग प्रमाण परिक्षेप (परिधि) रूप से कहा गया है।

।। सप्तपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

अष्टपञ्चाशत्स्थानक-समवाय

३०३. पढम-दोच्च-पंचमासु तिसु पुढवीसु अट्ठावन्नं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

पहली, दूसरी और पाँचवी इन तीन पृथिवियों मे अट्ठावन (३०+२५+३=५८) लाख नारकावास कहे गये हैं।

३०४. नाणावरणिज्जस्स वेयणिय-आउय-नाम-अंतराइयस्स एएसि णं पंचण्हं कम्मपगडीणं अट्ठावन्नं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम और अन्तराय इन पाँच कर्मप्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियाँ अट्ठावन (५+२+४+४२+५=५८) कही गई हैं।

३०५—गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं अट्ठावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउद्दिसं पि नेयव्वं।

गोस्तूभ आवासपर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से बडवामुख महापाताल के बहुमध्य देश-भाग का अन्तर अट्ठावन हजार विना किसी बाधा के कहा गया है। इसी प्रकार चारो ही दिशाओ मे जानना चाहिए।

विवेचन—ऊपर गोस्तूभ आवासपर्वत से बडवामुख महापाताल के मध्य भाग का सत्तावन हजार योजन अन्तर जिस प्रकार से बतलाया गया है उसमे एक हजार योजन और आगे तक का माप मिलाने पर अट्ठावन हजार योजन का सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शेष तीन महापातालो का भी अन्तर जानना चाहिए।

।। अष्टपञ्चाशत्स्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनषष्टिस्थानक-समवाय

३०६—चंदस्स णं संवच्छरस्स एगमेगे उऊ एगूणसट्ठिं राइंदियाइं राइंदियग्गेण पण्णत्ते।

चन्द्रसंवत्सर (चन्द्रमा की गति की अपेक्षा से माने जाने वाले संवत्सर) की एक-एक ऋतु रात-दिन की गणना से उनसठ रात्रि-दिन की कही गई है।

३०७—संभवे णं अरहा एगूणसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

संभव अर्हन् उनसठ लाख पूर्व वर्ष अगार के मध्य (गृहस्थावस्था) मे रहकर मुंडित हो अगार त्याग कर अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

३०८—मल्लिस्स णं अरहओ एगूणसट्ठिं ओहिनाणिसया होत्था।

मल्लि अर्हन् के संघ मे उनसठ सौ (५९००) अवधिज्ञानी थे।

।। एकोनषष्टिस्थानक सूत्र समाप्त ।।

षष्टिस्थानक-समवाय

३०९—एगमेगे णं मंडले सूरिए सट्ठिए सट्ठिए मुहुत्तेहिं संघाएइ।

सूर्य एक एक मण्डल को साठ-साठ मुहूर्तो से पूर्ण करता है।

विवेचन—सूर्य को सुमेरु की एक बार प्रदक्षिणा करने मे साठ मुहूर्त या दो दिन-रात लगते हैं। यतः सूर्य के घूमने के मंडल एक सौ चौरासी है, अतः उसको दो से गुणित करने पर (१८४×२= ३६८) तीन सौ अडसठ दिन-रात आते हैं। सूर्य संवत्सर में इतने ही दिन-रात होते हैं।

३१०—लवणस्स णं समुद्दस्स सट्ठि नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारंति ।

लवण समुद्र के अग्रोदक (सोलह हजार ऊची वेला के ऊपर वाले जल) को साठ हजार नागराज धारण करते हैं ।

३११—विमले णं अरहा सट्ठि धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

विमल अर्हन् साठ धनुष ऊचे थे ।

३१२—बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स सट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । बभस्स ण देविंदस्स देवरन्नो सट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

बलि वैरोचनेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव कहे गये है । ब्रह्म देवेन्द्र देवराज के साठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं ।

३१३—सोहम्मीसाणेसु दोसु कप्पेसु सट्ठि विमाणा वाससयहस्सा पण्णत्ता ।

सौधर्म और ईशान इन दो कल्पो मे साठ (३२+२८=६०) लाख विमानावास कहे गये है ।

।। षष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

एकषष्टिस्थानक-समवाय

३१४—पचसवच्छरियस्स ण जुगस्स रिउमासेण मिज्जमाणस्स इगसट्ठि उउमासा पण्णत्ता ।

पचसवत्सर वाले युग के ऋतु-मासो से गिनने पर इकसठ ऋतु मास होते है ।

३१५—मदरस्स ण पव्वयस्स पढमे कडे एगसट्ठिजोयणसहस्साइं उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ते ।

मन्दर पर्वत का प्रथम काण्ड इकसठ हजार योजन ऊचा कहा गया है ।

३१६—चदमडले ण एगसट्ठिविभागविभाइए समसे पण्णत्ते । एवं सूरस्स वि ।

चन्द्रमडल विमान एक योजन के इकसठ भागो से विभाजित करने पर पूरे छप्पन भाग प्रमाण सम-अश कहा गया है । इसी प्रकार सूर्य भी एक योजन के इकसठ भागो से विभाजित करने पर पूरे अडतालीस भाग प्रमाण सम-अश कहा गया है । अर्थात् इन दोनो के विस्तार का प्रमाण ५६ और ४८ इस सम सख्या रूप ही है, विषम सख्या रूप नही है और न एक भाग के भी अन्य कुछ अश अधिक या हीन भाग प्रमाण ही उनका विस्तार है ।

।। एकषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्विषष्टिस्थानक-समवाय

३१७—पंच संवच्छरिए णं जुगे बासट्ठि पुण्णिमाओ बावट्ठि अमावसाओ पण्णत्ताओ ।

पचसावत्सरिक युग मे बासठ पूर्णिमाए और बासठ अमावस्याए कही गई हैं ।

विवेचन—चन्द्रमास के अनुसार पाँच वर्ष के काल को युग कहते है । इस एक युग मे दो मास अधिक होते है । इसलिए दो पूर्णिमा और अमावस्या भी अधिक होती है । इसे ही ध्यान मे रखकर एक युग मे वासठ पूर्णिमाए और वासठ अमावस्याए कही गई है ।

३१८—वासुपुज्जस्स णं अरहओ वासट्ठि गणा, वासट्ठि गणहरा होत्था ।

वासुपूज्य अर्हन् के वासठ गण और वासठ गणधर कहे गये है ।

३१९—सुक्कपक्खस्स ण चदे वासट्ठि भागे दिवसे दिवसे परिवड्ढइ । ते चेव बहुलपक्खे दिवसे-दिवसे परिहायइ ।

शुक्लपक्ष मे चन्द्रमा दिवस-दिवस (प्रतिदिन) वासठवे भाग प्रमाण एक-एक कला से बढता और कृष्ण पक्ष मे प्रतिदिन इतना ही घटता है ।

३२० —सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु पढमे पत्थडे पढमावलियाए एगमेगाए दिसाए वासट्ठि विमाणा पण्णत्ता । सव्वे वेमाणियाण वासट्ठि विमाणपत्थडा पत्थडग्गेण पण्णत्ता ।

सौधर्म और ईशान इन दो कल्पो मे पहले प्रस्तट मे पहली आवलिका (श्रेणी) मे एक-एक दिशा मे वासठ-वासठ विमानावास कहे गये है । सभी वैमानिक विमान-प्रस्तट प्रस्तटो की गणना से वासठ कहे गये है ।

।। द्विषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रिषष्टिस्थानक-समवाय

३२१—उसभे ण अरहा कोसलिए तेसट्ठि पुव्वसयसहस्साइ महारायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

कौशलिक ऋषभ अर्हन् तिरेसठ लाख पूर्व वर्ष तक महाराज के मध्य मे रहकर अर्थात् राजा के पद पर आसीन रहकर फिर मुडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए ।

३२२—हरिवास-रम्मयवासेसु मणुस्सा तेवट्ठिए राइंदिएहिं संपत्तजोव्वणा भवंति ।

हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष मे मनुष्य तिरेसठ रात-दिनो मे पूर्ण यौवन को प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् उन्हे माता-पिता द्वारा पालन की अपेक्षा नही रहती ।

३२३—निसढे णं पव्वए तेवट्ठिं सूरोदया पण्णत्ता। एवं नीलवंते वि।

निषध पर्वत पर तिरेसठ सूर्योदय कहे गये हैं। इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत पर भी तिरेसठ सूर्योदय कहे गये है।

विवेचन—सूर्य जब उत्तरायण होता है, तब उसका उदय तिरेसठ वार निषधपर्वत के ऊपर से होता है और भरत क्षेत्र मे दिन होता है। पुन दक्षिणायन होते हुए जम्बूद्वीप की वेदिका के ऊपर से उदय होता है। तत्पश्चात् उसका उदय लवण समुद्र के ऊपर से होता है। इसी प्रकार परिभ्रमण करते हुए जब वह नीलवन्त पर्वत पर से उदित होता है, तब ऐरवत क्षेत्र मे दिन होता है। वहाँ भी तिरेसठ वार नीलवन्त पर्वत के ऊपर से उदय होता है, पुन. जम्बूद्वीप की वेदिका के ऊपर से उदय होता है और अन्त मे लवण समुद्र के ऊपर से उदय होता है। यत· एक सूर्य दो दिन मे मेरु की एक प्रदक्षिणा करता है, अत तिरेसठ वार निषधपर्वत से उदय होकर भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है। और इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत से तिरेसठ वार उदय होकर ऐरवत क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

।। त्रिषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुःषष्टिस्थानक-समवाय

३२४–अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहि भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव [अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोहित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालित्ता] भवइ।

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चौसठ रात-दिनो मे, दो सौ अठासी भिक्षाओ से सूत्रानुसार, यथातथ्य, सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर, पाल कर, शोधन कर, पार कर, कीर्तन कर, आज्ञा के अनुसार अनुपालन कर आराधित होती है।

विवेचन—जिस अभिग्रह-विशेष की आराधना मे आठ आठ दिन के आठ दिनाष्टक लगते है, उसे अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा कहते है। इसकी आराधना करते हुए प्रथम के आठ दिनो मे एक-एक भिक्षा ग्रहण की जाती है। पुन दूसरे आठ दिनो मे दो-दो भिक्षाए ग्रहण की जाती है। इसी प्रकार तीसरे आदि आठ-आठ दिनो मे एक-एक भिक्षा बढाते हुए अन्तिम आठ दिनो मे प्रतिदिन आठ-आठ भिक्षाए ग्रहण की जाती है। इस प्रकार चौसठ दिनो मे सर्व भिक्षाए दो सौ अठासी (८+१६+२४+३२+४०+४८+५६+६४=२८८) हो जाती है।

३२५—चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। चमरस्स ण रन्नो चउसट्ठिं सामाणिय-साहस्सीओ पण्णत्ताओ।

असुरकुमार देवो के चौसठ लाख आवास (भवन) कहे गये हैं। चमरराज के चौसठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं।

३२६—सव्वे वि दधिमुहा पव्वया पल्लासंठाणसंठिया सव्वत्थ समा विक्खंभमुस्सेहेणं चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं पण्णत्ता।

सभी दधिमुख पर्वत पल्य (ढोल) के आकार से अवस्थित है, नीचे ऊपर सर्वत्र समान विस्तार वाले है और चौसठ हजार योजन ऊंचे है।

३२७—सोहम्मीसाणेसु बंभलोए य तिसु कप्पेसु चउसट्ठिं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

सौधर्म, ईशान और ब्रह्मकल्प इन तीनो कल्पो मे चौसठ (३२+२८+४=६४) लाख विमानावास है।

३२८—सव्वस्स वि य णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउसट्ठिलट्ठीए महग्घे मुत्तामणिहारे पण्णत्ते।

सभी चातुरन्त चक्रवर्ती राजाओ के चौसठ लडी वाला बहुमूल्य मुक्ता-मणियो का हार कहा गया है

।। चतु:षष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चषष्टिस्थानक-समवाय

३२९—जंबुद्दीवे ण दीवे पणसट्ठिं सूरमंडला पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप मे पैसठ सूर्यमण्डल (सूर्य के परिभ्रमण के मार्ग) कहे गये हैं।

३३०—थेरे ण मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

स्थविर मौर्यपुत्र पैसठ वर्ष अगारवास मे रहकर मुंडित हो अगार त्याग कर अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

३३१—सोहम्मवडिंसियस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए पणसट्ठिं पणसट्ठिं भोमा पण्णत्ता।

सौधर्मावतसक विमान की एक-एक दिशा मे पैसठ-पैसठ भवन कहे गये है।

।। पञ्चषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

षट्षष्टिस्थानक-समवाय

३३२—दाहिणड्ढमाणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा। छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा, तवंति वा, तविस्संति वा। उत्तरड्ढमाणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा, छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा, तवंति वा, तविस्संति वा।

दक्षिणार्ध मानुष क्षेत्र को छियासठ चन्द्र प्रकाशित करते थे, प्रकाशित करते हैं और प्रकाशित करेंगे। इसी प्रकार छियासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। उत्तरार्ध मानुष क्षेत्र को छियासठ

चन्द्र प्रकाशित करते थे, प्रकाशित करते हैं और प्रकाशित करेंगे। इसी प्रकार छियासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे।

विवेचन—जम्बूद्वीप में दो चन्द्र, दो सूर्य हैं, लवण समुद्र मे चार-चार चन्द्र और चार सूर्य हैं, धातकीखण्ड मे बारह चन्द्र और बारह सूर्य है। कालोदधि समुद्र मे बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य है। पुष्करार्ध मे बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं। उक्त दो समुद्रो तथा आधे पुष्करद्वीप को अढाई द्वीप कहा जाता है। क्योकि पुष्करवर द्वीप के ठीक मध्य भाग मे गोलाकार मानुषोत्तर पर्वत है, जिससे उस द्वीप के दो भाग हो जाते हैं। इस द्वीप के भीतरी भाग तक का क्षेत्र मानुष क्षेत्र कहलाता है, क्योकि मनुष्यो की उत्पत्ति यही तक होती है। इस पुष्कर द्वीपार्ध मे भी पूर्व तथा पश्चिम दिशा मे एक एक इषुकार पर्वत के होने से दो भाग हो जाते है। उनमे से दक्षिणी भाग दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र कहलाता है और उत्तरी भाग उत्तरार्ध मनुष्य क्षेत्र कहा जाता है। यत मनुष्य क्षेत्र के भीतर ऊपर बताई गई गणना के अनुसार (२+४+१२+४२+७२=१३२) सर्व चन्द्र और सूर्य एक सौ बत्तीस होते हैं। उनके आधे छियासठ चन्द्र और सूर्य दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र मे प्रकाश करते है और छियासठ चन्द्र-सूर्य उत्तरार्धमनुष्य क्षेत्र मे प्रकाश करते है। जब उत्तर दिशा की पक्ति के चन्द्र-सूर्य परिभ्रमण करते हुए पूर्व दिशा मे जाते है, तब दक्षिण दिशा की पक्ति के चन्द्र-सूर्य पश्चिम दिशा मे परिभ्रमण करने लगते है। इस प्रकार छियासठ चन्द्र-सूर्य दक्षिणी पुष्करार्ध मे तथा छियासठ चन्द्र-सूर्य उत्तरी पुष्करार्ध मे परिभ्रमण करते हुए अपने-अपने क्षेत्र को प्रकाशित करते रहते है। यह व्यवस्था सनातन है, अत भूतकाल मे ये प्रकाश करते रहे हैं, वर्तमानकाल मे प्रकाश कर रहे है और भविष्यकाल मे भी प्रकाश करते रहेगे।

३३३—सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठि गणा छावट्ठि गणहरा होत्था।

श्रेयास अर्हत् के छयासठ गण और छयासठ गणधर थे।

३३४—आभिणिबोहियणाणस्स णं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ ठिई पण्णत्ता।

आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागरोपम कही गई है। (जो तीन वार अच्युत स्वर्ग मे या दो वार विजयादि अनुत्तर विमानो मे जाने पर प्राप्त होती है।)

।। षट्षष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्तषष्टिस्थानक-समवाय

३३५—पंचसंवच्छरियस्स णं जुगस्स नक्खत्तमासेणं मिज्जमाणस्स सत्तसट्ठि नक्खत्तमासा पण्णत्ता।

पचसावत्सरिक युग मे नक्षत्र मास से गिनने पर सडसठ नक्षत्रमास कहे गये है।

३३६—हेमवय-एरन्नवयाओ णं बाहाओ सत्तसट्ठि सत्तसट्ठि जोयणसयाइं पणपन्नाइं तिण्णि य भागा जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

हैमवत और एरवत क्षेत्र की भुजाएं सड़सठ-सड़सठ सौ पचपन योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से तीन भाग प्रमाण कही गई हैं।

३३७—मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तसट्ठिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्तभाग से गौतम द्वीप के पूर्वी चरमान्तभाग का सड़सठ हजार योजन विना किसी व्यवधान के अन्तर कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप-सम्बन्धी मेरुपर्वत के पूर्वी भाग से जम्बूद्वीप का पश्चिमी भाग पचपन हजार योजन दूर है। तथा वहाँ से बारह हजार योजन पश्चिम में लवणसमुद्र के भीतर जाकर गौतम द्वीप अवस्थित है। अतः मेरु के पूर्वीभाग से गौतम द्वीप का पूर्वी भाग (५५+१२=६७) सड़सठ हजार योजन पर अवस्थित होने से उक्त अन्तर सिद्ध होता है।

३३८—सव्वेसिं पि णं णक्खत्ताणं सीमाविक्खंभेणं सत्तट्ठिं भागं भइए समंसे पण्णत्ते।

सभी नक्षत्रों का सीमा-विष्कम्भ [दिन-रात में चन्द्र-द्वारा भोगने योग्य क्षेत्र] सड़सठ भागों से विभाजित करने पर सम अंशवाला कहा गया है।

॥ सप्तषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टषष्टिस्थानक-समवाय

३३९—धायइसंडे णं दीवे अडसट्ठिं चक्कवट्टिविजया, अडसट्ठिं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। उक्कोसपए अडसट्ठिं अरहंता समुप्पज्जिंसु वा, समुप्पज्जंति वा, समुप्पज्जिस्संति वा। एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

धातकीखण्ड द्वीप में अड़सठ चक्रवर्त्तियों के अड़सठ विजय (प्रदेश) और अड़सठ राजधानियां कही गई हैं। उत्कृष्ट पद की अपेक्षा धातकीखण्ड में सड़सठ अरहंत उत्पन्न होते रहे हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी जानना चाहिए।

३४०—पुक्खरवरदीवड्ढे णं अडसट्ठिं विजया, अडसट्ठिं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। उक्कोसपए अडसट्ठिं अरहंतासमुप्पज्जिंसु वा, समुप्पज्जंति वा, समुप्पज्जिस्संति वा। एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।

पुष्करवर द्वीपार्ध में अड़सठ विजय और अड़सठ राजधानियां कही गई हैं। वहाँ उत्कृष्ट रूप से अड़सठ अरहन्त उत्पन्न होते रहे है, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी जानना चाहिए।

विवेचन—मेरुपर्वत मध्य में अवस्थित होने से जम्बूद्वीप का महाविदेह क्षेत्र दो भागों में बँट जाता है—पूर्वी महाविदेह और पश्चिमी महाविदेह। फिर पूर्व में सीता नदी के बहने से तथा पश्चिम में सीतोदा नदी के बहने से उनके भी दो-दो भाग हो जाते हैं। साधारण रूप से उक्त चारों क्षेत्रों में

एक-एक तीर्थंकर चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव उत्पन्न होते है। अतः एक समय मे चार ही तीर्थंकर, चार ही चक्रवर्ती, चार ही बलदेव और चार ही वासुदेव उत्पन्न होते हैं। उक्त चारो खण्डो के तीन तीन अन्तर्नदियो और चार चार पर्वतो से विभाजित होने पर बत्तीस खण्ड हो जाते है। इनको चक्रवर्ती विजय करता है, अत वे विजयदेश कहलाते है और उनमे चक्रवर्ती रहता है, अत. उन्हे राजधानी कहते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप के महाविदेह मे सर्व मिला कर बत्तीस विजयक्षेत्र और राजधानियाँ होती हैं। भरत और ऐरवत क्षेत्र ये दो विजय और दो राजधानियो के मिलाने से उनकी सख्या चौतीस हो जाती है। जम्बूद्वीप से दूनी रचना धातकीखडद्वीप मे और पुष्करवरद्वीपार्ध मे है, अत· (३४ × २ = ६८) उनकी सख्या अडसठ हो जाती है। इसी बात को ध्यान मे रखकर उक्त सूत्र मे अडसठ विजय, अडसठ राजधानी, अडसठ तीर्थकर, अडसठ चक्रवर्ती, अडसठ बलदेव और अडसठ वासुदेवो के होने का निरूपण किया गया है। पाँचो महाविदेह क्षेत्रो में कम से कम बीस तीर्थकर उत्पन्न होते हैं और अधिक से अधिक एक सौ साठ तक तीर्थंकर उत्पन्न हो जाते हैं। वे अपने अपने क्षेत्र मे ही विहार करते है। यही बात चक्रवर्ती आदि के विषय मे भी जानना चाहिए। उक्त सख्या मे पाचो मेरु सम्बन्धी दो-दो भरत और दो दो ऐरवत क्षेत्रो के मिलाने से (१६०+१० = १७०) एक सौ सत्तर तीर्थंकरादि एक साथ उत्पन्न हो सकते है। यह विशेष जानना चाहिए।

३४१—विमलस्स णं अरहओ अडसट्ठि समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समयसपया होत्था।

विमलनाथ अर्हन् के संघ मे श्रमणो की उत्कृष्ट श्रमणसम्पदा अडसठ हजार थी।

।। अष्टषष्टिस्थानक समवाय समाप्त ।।

एकोनसप्ततिस्थानक-समवाय

३४२—समयखित्ते ण मदरवज्जा एगूणसत्तरि वासा वासधरपव्वया पण्णत्ता। तं जहा— पणतीसं वासा, तीस, वासहरा, चत्तारि उसुयारा।

समयक्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र या अढाई द्वीप) मे मन्दर पर्वत को छोडकर उनहत्तर वर्ष और वर्षधर पर्वत कहे गये है। जैसे पैतीस वर्ष (क्षेत्र), तीस वर्षधर (पर्वत) और चार इषुकार पर्वत।

विवेचन—एक मेरुसम्बन्धी भरत आदि सात क्षेत्र होते है। अत. अढाई द्वीपो के पाँचो मेरु सम्बन्धी पैतीस क्षेत्र हो जाते है। इसी प्रकार एक मेरुसम्बन्धी हिमवन्त आदि छह-छह वर्षधर या कुलाचल पर्वत होते हैं, अत पाँचो मेरुसम्बन्धी तीस वर्षधर पर्वत हो जाते है। तथा धातकीखण्ड के दो और पुष्करवर द्वीपार्ध के दो इस प्रकार चार इषुकार पर्वत है। इन सबको मिलाने पर (३५+३०+४ = ६९) उनहत्तर वर्ष और वर्षधर हो जाते है।

३४३—मदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं एगूणसत्तरिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गौतम द्वीप का पश्चिम चरमान्त भाग उनहत्तर हजार योजन अन्तरवाला विना किसी व्यवधान के कहा गया है।

३४४—मोहणिज्जवज्जाणं सत्तण्हं कम्मपगडीणं एगूणसत्तरि उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

मोहनीय कर्म को छोड कर शेष सातो कर्मप्रकृतियो की उत्तर प्रकृतियां उनहत्तर (५+९+२+४+४२+२+५=६९) कही गई है।

।। एकोनसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्ततिस्थानक-समवाय

३४५—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसराईए मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।

श्रमण भगवान् महावीर चतुर्मास प्रमाण वर्षाकाल के बीस दिन अधिक एक मास (पचास दिन) व्यतीत हो जाने पर और सत्तर दिनो के शेष रहने पर वर्षावास करते थे।

विवेचन—श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से लेकर पचास दिन बीतने पर भाद्रपद शुक्ला पचमी को वर्षावास नियम से एक स्थान पर स्थापित करते थे। उसके पूर्व वसति आदि योग्य आवास के अभाव मे दूसरे स्थान का भी आश्रय ले लेते थे।

३४६—पासे ण अरहा पुरिसादाणीए सत्तरिं वासाइं बहुपडिपुण्णाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् परिपूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्वदु खो से रहित हुए।

३४७—वासुपुज्जे ण अरहा सत्तरिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

वासुपूज्य अर्हत् सत्तर धनुष ऊचे थे।

३४८—मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेगे पण्णत्ते।

मोहनीय कर्म की अबाधाकाल से रहित सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम-प्रमाण कर्मस्थिति और कर्म-निषेक कहे गये है।

विवेचन—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध सत्तर कोडा-कोडी सागरोपमो का होता है। जब तक बधा हुआ कर्म उदय मे आकर बाधा न देवे, उसे अबाधाकाल कहते है। अबाधाकाल का सामान्य नियम यह है कि एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम स्थिति के बधनेवाले कर्म का अबाधाकाल एक सौ वर्ष का होता है। इस नियम के अनुसार सत्तर कोडा-कोड़ी सागरोपम स्थिति का बन्ध होने पर उसका अबाधाकाल सत्तर सौ अर्थात् सात हजार वर्ष का होता है। इतने अबाधाकाल को छोड़ कर शेष रही स्थिति में कर्मपरमाणुओ की फल देने के योग्य निषेक-रचना होती है। उसका क्रम यह है कि अबाधाकाल पूर्ण होने के अनन्तर प्रथम समय में बहुत कर्म-दलिक निषिक्त होते हैं, दूसरे समय में उससे कम, तीसरे समय में उससे कम निषिक्त होते हैं। इस प्रकार से उत्तरोत्तर कम-कम होते हुए

स्थिति के अन्तिम समय मे सबसे कम कर्म-दलिक निषिक्त होते हैं। ये निषिक्त कर्म-दलिक अपना-अपना समय आने पर फल देते हुए झड जाते हैं। यह व्यवस्था कर्मशास्त्रो के अनुसार है। किन्तु कुछ आचार्यों का मत है कि जिस कर्म की जितनी स्थिति बधती है, उसका अबाधाकाल उससे अतिरिक्त होता है, अत बधी हुई पूरी स्थिति के समयो मे कर्म-दलिको का निषेक होता है।

३४९—माहिंदस्स ण देविंदस्स देवरन्नो सत्तरि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र के सामानिक देव सत्तर हजार कहे गये है।

।। सप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

एकसप्ततिस्थानक-समवाय

३५०—चउत्थस्स णं चदसंवच्छरस्स हेमताण एक्कसत्तरीए राइदिएहिं वीइक्कतेहिं सव्वबाहिराओ मडलाओ सूरिए आउट्टि करेइ।

[पच सावत्सरिक युग के] चतुर्थ चन्द्र सवत्सर की हेमन्त ऋतु के इकहत्तर रात्रि-दिन व्यतीत होने पर सूर्य सबसे बाहरी मण्डल (चार क्षेत्र) से आवृत्ति करता है। अर्थात् दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर गमन करना प्रारम्भ करता है।

३५१ वीरियप्पवायस्स णं पुव्वस्स एक्कसत्तरि पाहुडा पण्णत्ता।

वीर्यप्रवाद पूर्व के इकहत्तर प्राभृत (अधिकार) कहे गये हैं।

३५२—अजिते ण अरहा एक्कसत्तरि पुव्वसयसहस्साइ अगारमज्झे वसित्ता मु डे भवित्ता जाव पव्वइए। एव सगरो वि राया चाउरतचक्कवट्टी एक्कसत्तरि पुव्व [सयसहस्साइ] जाव [अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता] पव्वइए।

अजित अर्हन् इकहत्तर लाख पूर्व वर्ष अगार-वास मे रहकर मु डित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए। इसी प्रकार चातुरन्त चक्रवर्ती सगर राजा भी इकहत्तर लाख पूर्व वर्ष अगार-वास मे रह कर मु डित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

।। एकसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्विसप्ततिस्थानक-समवाय

३५३—बावत्तरि सुवण्णकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
लवणस्स समुद्दस्स बावत्तरि नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारंति।

सुपर्णकुमार देवो के बहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गये है।
लवण समुद्र की बाहरी वेला को बहत्तर हजार नाग धारण करते हैं।

३५४—समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे । थेरे णं अयलभाया बावत्तरि वासाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो कर सर्व दु खो से रहित हुए । स्थविर अचलभ्राता ७२ वर्ष की आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, यावत् सर्व दु खो से रहित हुए ।

३५५—अब्भिंतरपुक्खरद्धे ण बावत्तरिं चंदा पभासिंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा । [एवं] बावत्तरिं सूरिया तविंसु वा, तवंति वा, तविस्संति वा । एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स बावत्तरिपुरवरसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

आभ्यन्तर पुष्करार्ध द्वीप मे बहत्तर चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और आगे प्रकाश करेगे । इसी प्रकार बहत्तर सूर्य तपते थे, तपते है और आगे तपेगे । प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के बहत्तर हजार उत्तम पुर (नगर) कहे गये है ।

३५६—बावत्तरि कलाओ पण्णत्ताओ । त जहा—लेहं १, गणियं २, रूवं ३, नट्ट ४, गीयं ५, वाइय ६, सरगय ७, पुक्खरगय ८, समताल ९, जूयं १०, जणवायं ११, पोरेकच्चं १२, अट्ठावय १३, दगमट्टियं १४, अन्नविही १५, पाणविही १६, वत्थविही १७, सयणविही १८, अज्जं १९, पहेलियं २०, मागहियं २१, गाहं २२, सिलोग २३, गधजुत्ति २४, मधुसित्थं २५, आभरणविही २६, तरुणीपडिकम्मं २७, इत्थीलक्खणं २८, पुरिसलक्खण २९, हयलक्खणं ३०, गयलक्खण ३१, गोणलक्खणं ३२, कुक्कुडलक्खणं ३३, मिढयलक्खण ३४, चक्कलक्खणं ३५, छत्तलक्खणं ३६, दंडलक्खणं ३७, असिलक्खणं ३८, मणिलक्खण ३९, कागणिलक्खण ४०, चम्मलक्खण ४१, चदचरिय ४२, सूरचरिय ४३, राहुचरिय ४४, गहचरिय ४५, सोभागकर ४६, दोभागकर ४७, विज्जागय ४८, मंतगय ४९, रहस्सगय ५०, सभासं ५१, चारं ५२, पडिचार ५३, वूहं ५४, पडिवूहं ५५, खधावारमाणं ५६, नगरमाण ५७, वत्थुमाणं ५८, खधावारनिवेसं ५९, वत्थुनिवेस ६०, नगरनिवेसं ६१, ईसत्थं ६२, छरुप्पवाय ६३, आससिक्खं ६४, हत्थिसिक्खं ६५, धणुव्वेय ६६, हिरण्णपागं सुवण्णपाग मणिपागं धातुपाग ६७, बाहुजुद्ध दडजुद्ध मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्ध निजुद्धं जुद्धाइजुद्ध ६८, सुत्तखेडं नालियाखेड वट्टखेड धम्मखेडं चम्मखेड ६९, पत्तछेज्जं कडगच्छेज्ज ७०, सजीव निज्जीव ७१, सउणिरुय ७२ ।

बहत्तर कलाए कही गई है । जैसे—

१ लेखकला—लिखने की कला, ब्राह्मी आदि अट्ठारह प्रकार की लिपियो के लिखने का विज्ञान ।

२ गणितकला—गणना, सख्या जोड बाकी आदि का ज्ञान ।

३ रूपकला—वस्त्र, भित्ति, रजत, सुवर्णपट्टादि पर रूप (चित्र) निर्माण का ज्ञान ।

४ नाट्यकला—नाचने और अभिनय करने का ज्ञान ।

५. गीतकला—गाने का चातुर्य ।

६. वाद्यकला—अनेक प्रकार के बाजे बजाने की कला ।

७. स्वरगतकला—अनेक प्रकार के राग-रागिनियो मे स्वर निकालने की कला ।

८. पुष्करगतकला—पुष्कर नामक वाद्य-विशेष का ज्ञान ।

९. समतालकला—समान ताल से बजाने की कला ।

१० द्यूतकला—जुआ खेलने की कला ।
११ जनवादकला—जनश्रुति और किंवदन्तियो को जानना ।
१२ पुष्करगतकला—वाद्य-विशेष का ज्ञान ।
१३ अष्टापदकला—शतरज, चौसर आदि खेलने की कला ।
१४. दकमृत्तिकाकला—जल के सयोग से मिट्टी के खिलौने आदि बनाने की कला ।
१५. अन्नविधिकला—अनेक प्रकार के भोजन बनाने की कला ।
१६ पानविधिकला—अनेक प्रकार के पेय पदार्थ बनाने की कला ।
१७. वस्त्रविधिकला—अनेक प्रकार के वस्त्र-निर्माण की कला ।
१८. शयनविधि—सोने की कला ।
अथवा सदनविधि—गृह-निर्माण की कला ।
१९ आर्याविधि—आर्या छन्द बनाने की कला ।
२० प्रहेलिका—पहेलियो को जानने की कला । गूढ अर्थ वाली कविता करना ।
२१ मागधिका—स्तुति-पाठ करने वाले चारण-भाटो की कला ।
२२ गाथाकला—प्राकृत आदि भाषाओ मे गाथाए रचने की कला ।
२३ श्लोककला—सस्कृतभाषा मे श्लोक रचने की कला ।
२४ गन्धयुति—अनेक प्रकार के गन्धो और द्रव्यो को मिलाकर सुगन्धित पदार्थ बनाने की कला ।
२५ मधुसिक्थ—स्त्रियो के पैरो मे लगाया जाने वाला माहुर बनाने की कला ।
२६ आभरणविधि—आभूषण बनाने की कला ।
२७ तरुणीप्रतिकर्म—युवती स्त्रियो के अनुरजन की कला ।
२८ स्त्रीलक्षण—स्त्रियो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानने की कला ।
२९ पुरुषलक्षण—पुरुषो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानने की कला ।
३० हयलक्षण—घोडो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानने की कला ।
३१. गजलक्षण—हाथियो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३२ गोणलक्षण—बैलो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३३ कुक्कुटलक्षण—मुर्गो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३४ मेढलक्षण—मेषो—मेढो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३५ चक्रलक्षण—चक्र आयुध के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३६ छत्रलक्षण—छत्र के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३७ दडलक्षण—हाथ मे लेने के दड, लकडी आदि के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३८ असिलक्षण—खड्ग, तलवार, वर्छी आदि के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
३९ मणिलक्षण—मणियो के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
४० काकणीलक्षण—काकणी नामक रत्न के शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
४१ चर्मलक्षण—चमडे की परीक्षा करने की कला ।
अथवा चर्मरत्न मे शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।

४२. चन्द्रचर्या—चन्द्र के सचार और समकोण, वक्रकोण आदि से उदय हुए चन्द्र के निमित्त से शुभ-अशुभ लक्षणो को जानना ।
४३. सूर्यचर्या—सूर्य सचार-जनित उपरागो के शुभ-अशुभ फल को जानना ।
४४. राहुचर्या—राहु की गति और उसके द्वारा चन्द्र आदि ग्रहण का फल जानना ।
४५ ग्रहचर्या—ग्रहो के सचार के शुभ-अशुभ फलो को जानना ।
४६. सौभाग्यकर—सौभाग्य बढाने वाले उपायो को जानना ।
४७ दौर्भाग्यकर—दौर्भाग्य बढ़ाने वाले उपायो को जानना ।
४८. विद्यागत—अनेक प्रकार की मत्र-विद्याओ को जानना
४९ मन्त्रगत—अनेक प्रकार के मन्त्रों को जानना ।
५०. रहस्यगत—अनेक प्रकार के गुप्त रहस्यो को जानना ।
५१ सभास—प्रत्येक वस्तु के वृत का ज्ञान ।
५२. चारकला—गुप्तचर, जासूसी की कला ।
५३. प्रतिचारकला—ग्रह आदि के सचार का ज्ञान । रोगी आदि की सेवा शुश्रूषा का ज्ञान ।
५४ व्यूहकला—युद्ध मे सेना की गरुड आदि आकार की रचना करने का ज्ञान ।
५५ प्रतिव्यूहकला—शत्रु की सेना के प्रतिपक्ष रूप मे सेना की रचना करने का ज्ञान ।
५६ स्कन्धावारमान—सेना के शिविर, पडाव आदि के प्रमाण का जानना ।
५७. नगरमान—नगर की रचना का जानना ।
५८ वास्तुमान—मकानो के मान-प्रमाण का जानना ।
५९. स्कन्धावारनिवेश—सेना को युद्ध के योग्य खडे करने या पडाव का ज्ञान ।
६० वस्तुनिवेश—वस्तुओ को यथोचित स्थान पर रखने की कला ।
६१ नगरनिवेश—नगर को यथोचित स्थान पर बसाने की कला ।
६२. इष्वस्त्रकला—बाण चलाने की कला ।
६३ छरुप्रवाद कला—तलवार की मूठ आदि बनाना ।
६४ अश्वशिक्षा—घोडो के वाहनो मे जोतने और युद्ध मे लडने की शिक्षा देने का ज्ञान ।
६५ हस्तिशिक्षा—हाथियो के सचालन करने की शिक्षा देने का ज्ञान ।
६६ धनुर्वेद—शब्दवेधी आदि धनुर्विद्या का विशिष्ट ज्ञान होना ।
६७. हिरण्यपाक—सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक—चादी, सोना, मणि और लोह आदि धातुओ को गलाने, पकाने और उनकी भस्म आदि बनाने की विधि जानना ।
६८ बाहुयुद्ध, दंडयुद्ध, मुष्टि युद्ध, यष्टियुद्ध, सामान्य युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध आदि नाना प्रकार के युद्धो को जानना ।
६९. सूत्रखेड, नालिकाखेड, वर्त्तखेड, धर्मखेड चर्मखेड, आदि अनेक प्रकार के खेलो का जानना ।
७०. पत्रच्छेद्य, कटकछेद्य—पत्रो और काष्ठो के छेदन-भेदन की कला जानना ।
७१ सजीव-निर्जीव—सजीव को निर्जीव और निर्जीव को सजीव जैसा दिखाना ।
७२ शकुनिरुत- पक्षियो की बोली जानना ।

७२ कलाओं के नामों और अर्थों में भिन्नता पाई जाती है। टीकाकार के समक्ष भी यह भिन्नता थी। अतएव उन्होंने लौकिक शास्त्रों से जान लेने का निर्देश किया है। किसी कला में किसी का अन्तर्भाव भी हो जाता है। सर्वत्र एकरूपता नहीं है।

३५७—सम्मुच्छिम-खहयरपंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं उक्कोसेण बावत्तरिं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्ष की कही गई है।

।। द्विसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रिसप्ततिस्थानक-समवाय

३५८—हरिवास-रम्मयवासयाओ णं जीवाओ तेवत्तरिं तेवत्तरिं जोयणसहस्साइं नव य एगुत्तरे जोयणसए सत्तरसय-एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ताओ।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवाएं तेहत्तर-तेहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से साढ़े सत्तरह भाग प्रमाण $\left(७३९०\frac{१७\frac{१}{२}}{१९}\right)$ लम्बी कही गई है।

३५९—विजए णं बलदेवे तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

विजय बलदेव तेहत्तर लाख वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु:खों से रहित हुए।

।। त्रिसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुःसप्ततिस्थानक-समवाय

३६०—थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

स्थविर अग्निभूति गणधर चौहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परि-निर्वाण को प्राप्त और सर्व दु:खों से रहित हुए।

३६१—निसहाओ णं वासहरपव्वयाओ तिगिञ्छिद्दहाओ सीतोया महानदी चोवत्तरिं जोयणसयाइं साहियाइं उत्तराहिमुही पवहित्ता वइरामयाए जिब्भियाए चउजोयणायामाए पन्नास-जोयणविक्खंभाए वइरतले कुंडे महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठाणसंठिएणं पवाहेणं महया सद्देणं पवडइ। एवं सीता वि दक्खिणाहिमुही भाणियव्वा।

निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछ द्रह से सीतोदा महानदी कुछ अधिक चौहत्तर सौ (७४००) योजन उत्तराभिमुखी बह कर महान् घटमुख से प्रवेश कर वज्रमयी, चार योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी जिह्विका से निकल कर मुक्तावलिहार के आकारवाले प्रवाह से भारी शब्द के साथ वज्रतल वाले कुण्ड में गिरती है।

इसी प्रकार सीता नदी भी नीलवन्त वर्षधर पर्वत के केशरी द्रह से कुछ अधिक चौहत्तर सौ (७४००) योजन दक्षिणाभिमुखी बह कर महान् घटमुख से प्रवेश कर वज्रमयी चार योजन लम्बी पचास योजन चौडी जिह्विका से निकल कर मुक्तावलिहार के आकारवाले प्रवाह से भारी शब्द के साथ वज्रतल वाले कुण्ड मे गिरती है।

३६२— चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरिं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

चौथी को छोडकर शेष छह पृथिवियो मे चौहत्तर (३०+२५+१५+३+१=७४) लाख नारकावास कहे गये हैं।

॥ चतुःसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

पञ्चसप्ततिस्थानक-समवाय

३६३ – सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पन्नत्तरि जिणसया होत्था।

सीतले ण अरहा पन्नत्तरि पुव्वसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

संती णं अरहा पन्नत्तरिवाससहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हन् के सघ मे पचहत्तर सौ (७५००) केवलिजिन थे।

शीतल अर्हन् पहचत्तर हजार पूर्व वर्ष अगारवास मे रह कर मुडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

शान्ति अर्हन् पचहत्तर हजार वर्ष अगारवास मे रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

॥ पञ्चसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

षट्सप्ततिस्थानक-समवाय

३६४—छावत्तरिं विज्जुकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता । एवं दीव-दिसा-उदहीणं विज्जु-कुमारिंद-थणियमग्गीणं, छण्हं पि जुगलयाणं छावत्तरिं सयसहस्साइं ।

विद्युत्कुमार देवों के छिहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गये हैं। इसी प्रकार द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, और अग्निकुमार, इन दक्षिण-उत्तर दोनो युगलवाले छहो देवों के भी छिहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गये है।

।। षट्सप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्तसप्ततिस्थानक-समवाय

३६५--भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्तहत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारावासमज्झे वसित्ता महारायाभिसेयं सपत्ते ।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा सतहत्तर लाख पूर्व कोटि वर्ष कुमार अवस्था मे रह कर महाराजपद को प्राप्त हुए—राजा हुए।

३६६—अंगवंसाओ णं सत्तहत्तरि रायाणो मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया ।

अगवश की परम्परा मे उत्पन्न हुए मतहत्तर राजा मुडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

३६७—गद्दतोय-तुसियाण देवाण सत्तहत्तरिं देवसहस्सपरिवारा पण्णत्ता ।

गर्दतोय और तुषित लोकान्तिक देवो का परिवार सतहत्तर हजार (७७०००) देवोवाला कहा गया है।

३६८—एगमेगे ण मुहुत्ते सत्तहत्तरिं लवे लवग्गेण पण्णत्ते ।

प्रत्येक मुहूर्त मे लवो की गणना से सतहत्तर लव कहे गये है।

विवेचन—काल के मान-विशेष को लव कहते है। एक हृष्ट-पुष्ट नीरोग और सक्लेश-रहित मनुष्य के एक वार श्वास-उच्छ्वास लेने को एक प्राण कहते हैं। सात प्राणो का एक स्तोक होता है। सात स्तोको का एक लव होता है और मतहत्तर लवो का एक मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक मुहूर्त मे तीन हजार सात सौ तेहत्तर (७ × ७ × ७७ = ३७७३) श्वासोच्छ्वास या प्राण होते हैं।

।। सप्तसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ।।

अष्टसप्ततिस्थानक-समवाय

३६९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वेसमणे महाराया अट्ठहत्तरीए सुवन्नकुमार-दीवकुमारा-वाससयसहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महारायत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।

देवेन्द्र देवराज शक्र का वैश्रमण नामक चौथा लोकपाल सुपर्णकुमारो और द्वीपकुमारो के (३८+४०=७८) अठहत्तर लाख आवासो (भवनो) का आधिपत्य, अग्रस्वामित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व (पोषकत्व) महाराजत्व, सेनानायकत्व करता और उनका शासन एव प्रतिपालन करता है। (भवनो से अभिप्राय उनमे रहने वाले देव-देवियो से भी है। वैश्रमण उन सब का लोकपाल है।)

३७०—थेरे ण अकंपिए अट्ठहत्तरिं वासाइं सव्वाउय पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

स्थविर अकम्पित अठहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दु खो से रहित हुए।

३७१—उत्तरायणनियट्टे णं सूरिए पढमाओ मंडलाओ एगूणचत्तालीसइमे मंडले अट्ठहत्तरिं एगसट्ठिभाए दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता ण चारं चरइ । एव दक्खिणायण-नियट्टे वि ।

उत्तरायण से लौटता हुआ सूर्य प्रथम मडल से उनचालीसवे मण्डल तक एक मुहूर्त के इकसठिए अठहत्तर भाग प्रमाण दिन को कम करके और रजनी क्षेत्र (रात्रि) को बढा कर सचार करता है। इसी प्रकार दक्षिणायन से लौटता हुआ भी रात्रि और दिन के प्रमाण को घटाता और बढाता हुआ सचार करता है।

॥ अष्टसप्ततिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोनाशीतिस्थानक-समवाय

३७२—वलयामुहस्स ण पायालस्स हिट्ठिल्लाओ चरमंताओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमते एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइ अबाहाए अतरे पण्णत्ते । एव केउस्स वि, जूयस्स वि, ईसरस्स वि ।

बडवामुख नामक महापातालकलश के अधस्तन चरमान्त भाग से इस रत्नप्रभा पृथिवी का निचला चरमान्त भाग उन्यासी हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार केतुक, यूपक और ईश्वर नामक महापातलो का अन्तर भी जानना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। उसमे लवण समुद्र एक हजार योजन गहरा है। उस गहराई से एक लाख योजन गहरा बडवामुख पाताल कलश है। उसके

अन्तिम भाग से रत्नप्रभा पृथिवी का अन्तिम भाग उन्यासी हजार योजन है। क्योंकि रत्नप्रभा पृथिव की एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई मे से एक लाख एक हजार योजन घटाने पर (१८००००—१०१००० = ७९०००) उन्यासी हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शेष तीनो पाताल कलशो का भी अन्तर उनके अधस्तन अन्तिम भाग से रत्नप्रभा पृथिवी के अधस्तन अन्तिम भाग का उन्यासी-उन्यासी हजार योजन जानना चाहिए।

३७३—छट्टीए पुढवीए बहुमज्झदेसभायाओ छट्टस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीति जोयणसहस्साइं अबाहाए अतरे पण्णत्ते।

छठी पृथिवी के बहुमध्यदेशभाग से छठे घनोदधिवात का अधस्तल चरमान्त भाग उन्यासी हजार योजन के अन्तर-व्यवधान वाला कहा गया है।

विवेचन—छठी तम प्रभा पृथिवी की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन है। उसके नीचे घनोदधिवात को यदि इस ग्रन्थ के मत से इक्कीस हजार योजन मोटा माना जावे तो उक्त पृथिवी की मध्यभाग रूप आधी मोटाई अठावन हजार और घनोदधिवात की मोटाई इक्कीस हजार इन दोनो को जोडने पर (५८००० + २१००० = ७९०००) उन्यासी हजार योजन का अन्तर सिद्ध होता है। परन्तु अन्य ग्रन्थो के मत से सभी पृथिवियो के नीचे के घनोदधिवात की मोटाई बीस-बीस हजार योजन ही कही गई है, अत उनके अनुसार उक्त अन्तर पाँचवी पृथिवी के मध्यभाग से वहाँ के घनोदधिवात के अन्त तक का जानना चाहिए। क्योंकि पाँचवी पृथिवी एक लाख अठारह हजार योजन मोटी है। उसका मध्यभाग उनसठ हजार और घनोदधि की मोटाई बीस हजार ये दोनो मिल कर उन्यासी हजार योजन हो जाते हैं। सस्कृतटीकाकार ने यह भी सभावना व्यक्त की है कि 'बहु' शब्द से एक हजार अधिक अर्थात् उनसठ हजार योजन प्रमाण मध्यभाग लेना चाहिए।

३७४—जबुद्दीवस्स णं दीवस्स बारस्स य बारस्स य एस ण एगूणासीइं जोयणसहस्साइ साइरेगाइ अबाहाए अतरे पण्णत्ते।

जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कुछ अधिक उन्यासी हजार योजन कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप की पूर्व आदि चारो दिशाओ मे विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के चार द्वार है। जम्बूद्वीप की परिधि ३१६२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष और १३½ अगुल प्रमाण है। प्रत्येक द्वार की चौडाई चार-चार योजन है। चारो की चौडाई सोलह योजनो को उक्त परिधि के प्रमाण मे से घटा देने और शेष मे चार का भाग देने पर एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कुछ अधिक उन्यासी हजार योजन सिद्ध हो जाता है।

॥ एकोनाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अशीतिस्थानक-समवाय

३७५—सेज्जंसे णं अरहा असीइ धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिविट्ठू णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइ वाससयसहस्साइं महाराया होत्था।

श्रेयान्स अर्हन् अस्सी धनुष ऊचे थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी धनुष ऊचे थे। अचल बलदेव अस्सी धनुष ऊचे थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी लाख वर्ष महाराज पद पर आसीन रहे।

३७६—आउबहुले णं कंडे असीइ जोयणसहस्साइ बाहल्लेण पण्णत्ते।

रत्नप्रभा पृथिवी का तीसरा अब्बहुल काड (भाग) अस्सी हजार योजन मोटा कहा गया है।

३७७—ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो असीई सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज ईशान के अस्सी हजार सामानिक देव कहे गये है।

३७८—जबुद्दीवे ण दीवे असीउत्तरं जोयणसयं ओगाहेत्ता सूरिए उत्तरकट्ठोवगए पढमं उदयं करेइ।

जम्बूद्वीप के भीतर एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश कर सूर्य उत्तर दिशा को प्राप्त हो प्रथम बार (प्रथम मडल मे) उदित होता है।

विवेचन—सूर्य का सर्व सचारक्षेत्र पाच सौ दश योजन है। इसमे से तीन सौ तीस योजन लवण समुद्र के ऊपर है और शेष एक सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीप के भीतर है, जह वहाँ उत्तर दिशा की ओर से उदित होता है।

॥ अशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकाशीतिस्थानक-समवाय

३७९—नवनवमिया भिक्खुपडिमा एक्कासीइ राइदिएहिं चउहि य पचुत्तरेहि [भिक्खासएहिं] अहासुत्तं जाव आराहिया [भवइ]।

नवनवमिका नामक भिक्षुप्रतिमा इक्यासी रात दिनो मे चार सौ पाँच भिक्षादत्तियो द्वारा यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्त्व स्पृष्ट, पालित, शोभित, तीरित, कीर्त्तित और आराधित होती है।

विवेचन—इस भिक्षुप्रतिमा के पालन करने मे नौ-नौ दिन के नव-नवक अर्थात् इक्यासी दिन लगते हैं। प्रथम नौ दिनो मे प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति ग्रहण की जाती है। दूसरे नौ दिनो मे प्रतिदिन दो-दो भिक्षादत्तिया ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक नौ-नौ दिनो मे एक-एक भिक्षादत्ति को बढाते हुए नवें नौ दिनो मे प्रतिदिन नौ-नौ भिक्षादत्तियाँ ग्रहण की जाती है। उन सब का

योग (९+१८+२७+३६+४५+५४+६३+७२+८१=४०५) चार सौ पाँच होता है। गोचरी-काल के सिवाय शेष समय मौनपूर्वक आगम की आज्ञानुसार आत्माराधन मे व्यतीत किया जाता है।

३८०—कुथुस्स णं अरहओ एक्कासीतिं मणपज्जवनाणिसया होत्था। विवाह-पन्नत्तीए एकासीति महाजुम्मसया पण्णत्ता।

कुन्थु अर्हत् के सघ मे इक्यासी सौ (८१००) मन पर्यय ज्ञानी थे। व्याख्या-प्रज्ञप्ति मे इक्यासी महायुग्मशत कहे गये हैं।

विवेचन—यहाँ 'शत' शब्द से अध्ययन का ग्रहण करना चाहिए। वे कृत युग्म, द्वापरयुग्म आदि अनेक राशि के विचार रूप अन्तराध्ययनरूप आगम से जानना चाहिए।

।। एकाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्वि-अशीतिस्थानक-समवाय

३८१—जंबुद्दीवे [ण] दीवे वासीयं मडलसयं ज सूरिए दुक्खुत्तो संकमित्ता ण चारं चरइ। त जहा—निक्खममाणे य पविसमाणे य।

इस जम्बूद्वीप मे सूर्य एक सौ व्यासीवे मडल को दो बार सक्रमण कर सचार करता है। जैसे—एक बार निकलते समय और दूसरी बार प्रवेश करते समय।

विवेचन—सूर्य के सचार करने के मडल (१८४) एक सौ चौरासी है। इनमे से सबसे भीतर जम्बूद्वीप वाले मडल पर और सबसे बाहरी लवणसमुद्र के मडल पर तो वह एक एक बार ही सचार करता है। शेष सभी मडलो पर दो-दो बार सचार करता है—एक बार उत्तरायण के समय प्रवेश करते हुए और दूसरी बार दक्षिणायन के समय निष्क्रमण करते हुए। इस सूत्र मे व्यासीवे स्थानक की अपेक्षा इसका निरूपण किया गया है। दूसरी बात यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि जम्बूद्वीप के ऊपर सूर्य के केवल पैसठ ही मडल होते है, फिर भी यहाँ धातकीखड आदि के निराकरण करने के लिए तथा इसी द्वीप-सम्बन्धी सूर्य के सचार-क्षेत्र की विवक्षा से उन सभी मडलो को 'जम्बूद्वीप' पद से उपलक्षित किया गया है।

३८२—समणे ण भगव महावीरे वासीए राइंदिएहिं वीइक्कतेहिं गब्भाओ गब्भ साहरिए।

श्रमण भगवान् महावीर व्यासी रात-दिन बीतने के पश्चात् देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ मे सहृत किये गये।

३८३—महाहिमवंतस्स ण वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमते एस ण वासीइ जोयणसयाइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एव रुप्पिस्स वि।

महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत के ऊपरी चरमान्त भाग से सौगन्धिक काड का अधस्तन चरमान्त भाग व्यासी सौ (८२००) योजन के अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार रुक्मी का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के तीन काण्ड या विभाग है—खरकाड, पककाड और अब्बहुल काण्ड। इनमे से खरकाड के सोलह भाग हैं—१ रत्नकाड, २ वज्रकाड, ३ वैडूर्यकाड, ४ लोहिताक्ष काड, ५ मसारगल्ल, ६ हसगर्भ, ७ पुलक, ८ सौगन्धिक, ९ ज्योतीरस, १० अजन, ११ अजनपुलक, १२ रजत, १३ जातरूप, १४ अक, १५ स्फटिक और १६ रिष्टकाड। ये प्रत्येक काड एक एक हजार योजन मोटे है। प्रकृत मे आठवे सौगन्धिक काड का अधस्तन तलभाग विवक्षित है, जो रत्नप्रभा पृथिवी के उपरिम तल से आठ हजार योजन है। तथा रत्नप्रभापृथिवी के उपरिमतल से महा-हिमवन्त वर्षधर पर्वत का उपरिमतल भाग दो सौ योजन है। इस प्रकार दोनो को मिलाकर (८००० + २०० = ८२००) ब्यासी सौ या आठ हजार दो सौ योजन का अन्तर महाहिमवन्त के ऊपरी भाग से सौगन्धिक काड के अधस्तन तल भाग का सिद्ध हो जाता है।

रुक्मी वर्षधर पर्वत भी दो सौ योजन ऊचा है, उसके ऊपरी भाग से उक्त सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन तल भी ब्यासी सौ (८२००) योजन के अन्तरवाला है।

।। द्व्यशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

त्रि-अशीतिस्थानक समवाय

३८४—**समणे [णं] भगवं महावीर बासीइ राइंदिएहिं वीइक्कतेहिं तेयासीइमे राइंदिए वट्टमाणे गब्भाओ गब्भं साहरिए।**

श्रमण भगवान् महावीर ब्यासी रात-दिनो के बीत जाने पर तियासीवे रात-दिन के वर्तमान होने पर देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ मे सहृत हुए।

३८५—**सीयलस्स णं अरहओ तेसीई गणा, तेसीई गणहरा होत्था। थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइ सव्वाउय पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।**

शीतल अर्हत् के सघ मे तियासी गण और तियासी गणधर थे। स्थविर मडितपुत्र तियासी वर्ष की सर्व आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुखो से रहित हुए।

३८६—**उसभे ण अरहा कोसलिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइए।**

भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी तेसीइं पुव्वसयसहस्साइ अगारमज्झे वसित्ता जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् तियासी लाख पूर्व वर्ष अगारवास मे रह कर मुडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा तियासी लाख पूर्व वर्ष अगारवास मे रह कर सर्वज्ञ, सर्व-भावदर्शी केवली जिन हुए।

।। त्र्यशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुरशीतिस्थानक-समवाय

३८७—चउरासीइ निरयावाससयसहस्सा।

चौरासी लाख नारकावास कहे गये है।

३८८—उसभे ण अरहा कोसलिए चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। एवं भरहो बाहुबली बंभी सुंदरी।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् चौरासी लाख पूर्व वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त होकर सर्व दु खो से रहित हुए। इसी प्रकार भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी भी चौरासी-चौरासी लाख पूर्व वर्ष की पूरी आयु पाल कर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु.खो से रहित हुए।

३८९—सिज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वाससयसहस्साइ सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रेयान्स अर्हत् चौरासी लाख वर्ष की आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए।

३९०—तिविट्ठे णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउय पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववन्ने।

त्रिपृष्ट वासुदेव चौरासी लाख वर्ष की सर्व आयु भोग कर सातवी पृथिवी के अप्रतिष्ठान नामक नरक मे नारक रूप से उत्पन्न हुए।

३९१—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो चउरासीई सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र, देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव हैं।

३९२—सव्वे वि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं चउरासीइ जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं अंजणगपव्वया चउरासीइं चउरासीइ जोयणसहस्साइं उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप से बाहर के सभी (चारो) मन्दराचल चौरासी चौरासी हजार योजन ऊचे कहे गये है। नन्दीश्वर द्वीप के सभी (चारो) अजनक पर्वत चौरासी-चौरासी हजार योजन ऊचे कहे गये हैं।

३९३ हरिवास-रम्मयवासियाणं जीवाणं धणुपिट्ठा चउरासीइं जोयणसहस्साइं सोलस जोयणाइ चत्तारि य भागा जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवाओ के धनु पृष्ठ का परिक्षेप (परिधि) चौरासी हजार सोलह योजन और एक योजन के उन्नीस भागो में से चार भाग प्रमाण (८४०१६$\frac{४}{१९}$) हैं।

३९४—पंकबहुलस्स णं कण्डस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं चोरासीइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

पकबहुल भाग के ऊपरी चरमान्त भाग से उसी का अधस्तन—नीचे का चरमान्त भाग चौरासी लाख योजन के अन्तर वाला कहा गया है ।

भावार्थ—रत्नप्रभा पृथिवी का दूसरा पकबहुल काड चौरासी लाख योजन मोटा है ।

३९५—विवाहपन्नत्तीए णं भगवतीए चउरासीइ पयसहस्सा पदग्गेणं पण्णत्ता ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक भगवतीसूत्र के पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद (अवान्तर अध्ययन) कहे गये है ।

विवेचन—आचाराग के १८ हजार पद है और अगले-अगले अगो के इससे दुगुने पद होने से भगवती के दो लाख अठासी हजार पद मतान्तर से सिद्ध होते हैं ।

३९६—चोरासीइं नागकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

चोरासीइ पन्नगसहस्साइं पण्णत्ता ।

चोरासीइ जोणिप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ।

नागकुमार देवो के चौरासी लाख आवास (भवन) हैं ।

चौरासी हजार प्रकीर्णक कहे गये है ।

चौरासी लाख जीव-योनिया कही गई है ।

विवेचन—जीवो के उत्पत्ति-स्थान को योनि कहते है । इसी को जन्म का आधार कहा जाता हैं । वे चौरासी लाख होती हैं । उनका विवरण इस प्रकार है—

(१)	पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चारो की सात-सात लाख योनियाँ	(२८०००००)
(२)	प्रत्येक और साधारण वनस्पतिकाय की क्रमश दश और चौदह लाख योनिया	(२४०००००)
(३)	द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियो मे प्रत्येक की दो-दो लाख योनियाँ	(६०००००)
(४)	देवो की चार लाख योनियाँ	(४०००००)
(५)	नारको की चार लाख योनियाँ	(४०००००)
(६)	तिर्यच पचेन्द्रियो की चार लाख योनियाँ	(४०००००)
(७)	मनुष्यो की चौदह लाख योनियाँ	(१४०००००)
	सर्वयोग	८४०००००

यद्यपि जीवो के उत्पत्ति स्थान असख्यात प्रकार के होते हैं, तथापि जिन योनियो के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श समान गुणवाले होते है, उनको समानता की विवक्षा से यहाँ एक योनि कहा गया है ।

३९७—पुव्वाइयाणं सीसपहेलियापज्जवसाणाणं सट्ठाणट्ठाणंतराणं चोरासीए गुणकारे पण्णत्ते ।

पूर्व की सख्या से लेकर शीर्षप्रहेलिका नाम की अन्तिम महासख्या तक स्वस्थान और स्थानान्तर चौरासी (लाख) के गुणकार वाले कहे गये हैं ।

विवेचन—जैनशास्त्रो के अनुसार सख्या के शत (सौ) सहस्र (हजार) शतसहस्र (लाख) आदि से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक जो सख्या-स्थान होते हैं, उनमे जहाँ से प्रथम बार चौरासी से गुणाकार प्रारम्भ होता है, उसे स्वस्थान और उससे आगे के स्थान को स्थानान्तर कहा गया है। जैसे—चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है। यह स्वस्थान है और इसे चौरासी लाख से गुणाकार करने पर जो पूर्व नाम का दूसरा स्थान होता है, वह स्थानान्तर है। इसी प्रकार आगे पूर्व की सख्या को चौरासी लाख से गुणा करने पर त्रुटिताङ्ग नाम का जो स्थान प्राप्त होता है, वह स्वस्थान है और उसे चौरासी लाख से गुणा करने पर त्रुटित नाम का जो स्थान आता है, वह स्थानान्तर है। इस प्रकार पूर्व से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक चौदह स्वस्थान और चौदह ही स्थानान्तर चौरासी-चौरासी लाख के गुणाकारवाले जानना चाहिए।

३९८—उसभस्स ण अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं गणा चउरासीइं गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं समणसाहस्सीओ होत्था।

ऋषभ अर्हत् के सघ मे चौरासी गण, चौरासी गणधर और चौरासी हजार श्रमण (साधु) थे।

३९९—सव्वे वि चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खायं।

सभी वैमानिक देवो के विमानावास चौरासी लाख, सत्तानवे हजार और तेईस विमान होते हैं, ऐसा भगवान् ने कहा है।

।। चतुरशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चाशीतिस्थानक समवाय

४००—आयारस्स ण भगवओ सचूलियागस्स पंचासीइं उद्देसणकाला पण्णत्ता।

चूलिका सहित भगवद् आचाराङ्ग सूत्र के पचासी उद्देशन काल कहे गये है।

विवेचन—आचाराङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। उनमे से प्रथम श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन मे सात, दूसरे मे छह, तीसरे मे चार, चौथे मे चार, पाँचवे मे छह, छठे मे पाँच, सातवे मे आठ, आठवें मे चार और नवे अध्ययन मे सात उद्देश है। दूसरे श्रुतस्कन्ध मे चूलिका नामक पाँच अधिकार है, उनमे पाँचवी निशीथ नाम की चूलिका प्रायश्चित्त रूप है, अत उसका यहाँ ग्रहण नही किया गया है। सात अध्ययनो मे से प्रथम मे शेष चार चूलिकाओ मे से प्रथम चूलिका मे सात अध्ययन है, उनमे क्रम से ग्यारह, तीन, तीन, दो, दो, दो, और दो उद्देश है। दूसरी चूलिका मे सात उद्देश है। तीसरी और चौथी चूलिका में एक-एक उद्देश है। इन सब का योग (७+६+४+४+६+५+८+४+७+११+३+३+२+२+२+२+७+१+१=८५) पचासी होता है। एक उद्देश का पठन-पाठन-काल एक ही माना गया है और एक पठन-पाठन-काल को एक उद्देशन-काल कहा जाता है। इस प्रकार चूलिका सहित आचाराङ्गसूत्र के पचासी उद्देशन-काल कहे गये हैं।

४०१—धायइसण्डस्स णं मंदरा पंचासीइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता। रुयए णं मंडलियपव्वए पंचासीइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

धातकीखड के [दोनों] मन्दराचल भूमिगत अवगाढ तल से लेकर सर्वाग्र भाग (अंतिम ऊचाई) तक पचासी हजार योजन कहे गये है। [इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के दोनों मन्दराचल भी जानना चाहिए।] रुचक नामक तेरहवें द्वीप का अन्तर्वर्ती गोलाकार मडलिक पर्वत भूमिगत अवगाढ तल से लेकर सर्वाग्र भाग तक पचासी हजार योजन कहा गया है। अर्थात् इन सब पर्वतो की ऊचाई पचासी हजार योजन की है।

४०२—नंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं पचासीइ जोयणसयाइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

नन्दनवन के अधस्तन चरमान्त भाग से लेकर सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन चरमान्त भाग पचासी सौ (८५००) योजन अन्तरवाला कहा गया है।

विवेचन—मेरु पर्वत के भूमितल से नीचे सौगन्धिक काण्ड का तलभाग आठ हजार योजन है और नन्दनवन मेरु के भूमितल से पाँच सौ योजन की ऊचाई पर अवस्थित है। अत उसके अधस्तन तल से सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन तल भाग (८०००+५००=८५००) पचासी सौ योजन के अन्तरवाला सिद्ध हो जाता है।

।। पञ्चाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

षडशीतिस्थानक-समवाय

४०३ सुविहिस्स ण पुप्फदतस्स अरहओ छलसीई गणा छलसीई गणहरा होत्था। सुपासस्स ण अरहओ छलसीई वाइसया होत्था।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हत् के छयासी गण और छयासी गणधर थे।

सुपार्श्व अर्हत् के छयासी सौ (८६००) वादी मुनि थे।

४०४—दोच्चाए ण पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस ण छलसीई जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

दूसरी पृथिवी के मध्य भाग से दूसरे घनोदधिवात का अधस्तन चरमान्त भाग छयासी हजार योजन के अन्तरवाला कहा गया है।

विवेचन—दूसरी शर्करा पृथिवी एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है, उसका आधा भाग छयासठ हजार योजन-प्रमाण है तथा उसी पृथिवी के नीचे का घनोदधिवात बीस हजार योजन मोटा है। इसलिए दूसरी पृथिवी के ठीक मध्य भाग से दूसरे घनोदधिवात का अन्तिम भाग (६६+२०=८६) छयासी हजार योजन के अन्तरवाला सिद्ध हो जाता है।

।। षडशीतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

सत्ताशीतिस्थानक-समवाय

४०५—**मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ दगभासस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयण-सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं मंदरस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ संखस्सावासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते। एव चेव मंदरस्स उत्तरिल्लाओ चरमताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरमते एस ण सत्तासीइ जोयणसहस्साहिं आबाहाए अंतरे पण्णत्ते।**

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गोस्तूप आवास पर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है। मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त भाग से दकभास आवास पर्वत का उत्तरी चरमान्त सतासी हजार योजन के अन्तरवाला है। इसी प्रकार मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से शख आवास पर्वत का दक्षिणी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है। और इसी प्रकार मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास पर्वत का दक्षिणी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तरवाला है।

विवेचन—मन्दर पर्वत जम्बूद्वीप के ठीक मध्य भाग मे अवस्थित है और वह भूमितल पर दश हजार योजन विस्तार वाला है। मेरु या मन्दर पर्वत के इस विस्तार को जम्बूद्वीप के एक लाख योजन मे से घटा देने पर नव्वै हजार योजन शेष रहते है। उसके आधे पैंतालीस हजार योजन पर जम्बूद्वीप का पूर्वी भाग, दक्षिणी भाग, पश्चिमी भाग और उत्तरी भाग प्राप्त होता है। इस से आगे लवण समुद्र के भीतर बियालीस हजार योजन की दूरी पर वेलन्धर नागराज का पूर्व मे गोस्तूप आवास पर्वत अवस्थित है। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिणी भाग से उतनी ही दूरी पर दकभास आवास पर्वत है, पश्चिमी भाग से उतनी ही दूरी पर शख आवास पर्वत है और उत्तरी भाग से उतनी ही दूरी पर दकसीम नाम का आवास पर्वत अवस्थित है। अत मन्दर पर्वत के पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और उत्तरी अन्तिम भाग से उपर्युक्त दोनो दूरियो को जोडने पर (४५+४२=८७) सतासी हजार योजन के सूत्रोक्त चारो अन्तर सिद्ध हो जाते है।

४०६—**छण्हं कम्मपगडीणं आइम-उवरिल्लवज्जाणं सत्तासीई उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।**

आद्य ज्ञानावरण और अन्तिम (अन्तराय) कर्म को छोड कर शेष छहो कर्म प्रकृतियो को उत्तर प्रकृतियाँ (९+२+२८+४+४२+२=८७) सतासी कही गई हैं।

४०७—महाहिमवंत कूडस्स णं उवरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं रुप्पिकूडस्स वि।

महाहिमवन्त कूट के उपरिम अन्त भाग से सौगन्धिक काड का अधस्तन चरमान्त भाग सतासी सौ (८७००) योजन अन्तरवाला है। इसी प्रकार रुक्मी कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक काड के अधोभाग का अन्तर भी सतासी सौ योजन है।

विवेचन—पहले बताया जा चुका है कि रत्नप्रभा के समतल भाग से सौगन्धिक काड आठ हजार योजन नीचे है। तथा रत्नप्रभा के समतल से दो सौ योजन ऊचा महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत हैं, उसके ऊपर महाहिमवन्त कूट है, उसकी ऊचाई पाँच सौ योजन है। इन तीनो को जोड़ने पर (८०००+२००+५०० = ८७००) सूत्रोक्त सतासी सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत दो सौ योजन और उसके ऊपर का रुक्मी कूट पाँच सौ योजन ऊचे है। अतः रुक्मी कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक काड के नीचे तक का सतासी सौ योजन का अन्तर भी सिद्ध है।

॥ सप्ताशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टाशीतिस्थानक-समवाय

४०८—एगमेगस्स णं चंदिम-सूरियस्स अट्ठासीइं अट्ठासीइं महग्गहा परिवारो पण्णत्तो।

प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के परिवार मे अठासी-अठासी महाग्रह कहे गये हैं।

४०९—दिट्ठिवायस्स णं अट्ठासीइं सुत्ताइं पण्णत्ताइं। तं जहा—उज्जुसुयं परिणयापरिणयं एवं अट्ठासीइं सुत्ताणि भाणियव्वाणि जहा नंदीए।

दृष्टिवाद नामक बारहवे अग के सूत्रनामक दूसरे भेद मे अठासी सूत्र कहे गये हैं। जैसे ऋजुसूत्र, परिणता-परिणता सूत्र, इस प्रकार नन्दीसूत्र के अनुसार अठासी सूत्र कहना चाहिए। (इनका विशेष वर्णन आगे १४७ वे स्थानक मे किया गया है)।

४१०—मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउसु वि दिसासु नेयव्वं।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गोस्तूप आवास पर्वत का पूर्वी चरमान्त भाग अठासी सौ (८८००) योजन अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार चारो दिशाओ मे आवास पर्वतो का अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन— सतासीवे स्थानक मे आवास पर्वतो का मेरु पर्वत से सतासी हजार योजन का अन्तर बताया गया है, उसमे गोस्तूप आदि चारो आवास पर्वतो के एक-एक हजार योजन विस्तार को जोड़ देने पर अठासी हजार योजन का सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४११—बाहिराओ उत्तराओ ण कट्ठाओ सूरिए पढम छम्मासं अयमाणे चोयालीसइमे मंडलगते अट्ठासीति इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ। दक्खिणकट्ठाओ ण सूरिए दोच्च छम्मासं अयमाणे चोयालीसतिमे मंडलगते अट्ठासीई इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स रयणीखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ।

बाहरी उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा को जाता हुआ सूर्य प्रथम छह मास मे चवालीसवे मण्डल मे पहुचने पर मुहूर्त के इकसठिये अठासी भाग दिवस क्षेत्र (दिन) को घटाकर और रजनीक्षेत्र (रात) को बढा कर सचार करता है। [इसी प्रकार] दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा को जाता हुआ सूर्य दूसरे छह मास पूरे करके चवालीसवे मण्डल मे पहुचने पर मुहूर्त के इकसठिये अठासी भाग रजनी क्षेत्र (रात) के घटाकर और दिवस क्षेत्र (दिन) के बढा कर सचार करता है।

विवेचन—सूर्य छह मास दक्षिणायन और छह मास उत्तरायण रहता है। जब वह उत्तर दिशा के सबसे बाहरी मडल से लौटता हुआ दक्षिणायन होता है उस समय वह प्रतिमडल पर एक मुहूर्त के इकसठ भागो मे से दो भाग प्रमाण ($\frac{२}{६१}$) दिन का प्रमाण घटाता हुआ और इतना ही ($\frac{२}{६१}$) रात का प्रमाण बढाता हुआ परिभ्रमण करता है। इस प्रकार जब वह चवालीसवे मडल पर परिभ्रमण करता है, तब वह ($\frac{२}{६१} \times ४४ = \frac{८८}{६१}$) मुहूर्त के अठासी इकसठ भाग प्रमाण दिन को घटा देता है और रात को उतना ही बढा देता है। इसी प्रकार दक्षिणायन से उत्तरायण जाने पर चवालीसवे मडल मे अठासी इकसठ भाग रात को घटा कर और उतना ही दिन को बढाकर परिभ्रमण करता है। इस प्रकार वर्तमान मिनिट सेकिण्ड के अनुसार सूर्य अपने दक्षिणायन काल मे प्रतिदिन १ मिनिट ५$\frac{१२०}{१८४}$ सेकिण्ड दिन की हानि और रात की वृद्धि करता है। तथा उत्तरायण काल के प्रतिदिन १ मी० ५$\frac{१२}{१८४}$ से० दिन की वृद्धि और रात की हानि करता हुआ परिभ्रमण करता है। उक्त व्यवस्था के अनुसार दक्षिणायन के अन्तिम मडल मे परिभ्रमण करने पर दिन १२ मुहूर्त का होता है और रात १८ मुहूर्त की होती है। तथा उत्तरायण के अन्तिम मडल मे परिभ्रमण करने पर दिन १८ मुहूर्त का होता है और रात १२ मुहूर्त की होती है॥

॥ अष्टाशीतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकोननवतिस्थानक-समवाय

४१२—उसभे णं अरहा कोसलिए इमीसे ओसप्पिणीए तवियाए सुसमदूसमाए पच्छिमे भागे एगूणणउइए अद्धमासेहिं [सेसेहिं] कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। समणे णं भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउत्थाए दूसमसुसमाए समाए पच्छिमे भागे एगूणनउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् इसी अवसर्पिणी के तीसरे सुषमदुषमा आरे के पश्चिम भाग मे नवासी अर्धमासो (३ वर्ष ८ मास १५ दिन) के शेष रहने पर कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए।

श्रमण भगवान् महावीर इसी अवसर्पिणी के चौथे दु षमसुषमा काल के अन्तिम भाग मे नवासी अर्धमासो (३ वर्ष ८ मास १५ दिन) के शेष रहने पर कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्वदु खो से रहित हुए।

४१३—हरिसेणे ण राया चाउरंतचक्कवट्टी एगूणनउइं वाससयाइं महाराया होत्था।

चातुरन्त चक्रवर्ती हरिषेणराजा नवासी सौ (८९००) वर्ष महासाम्राज्य पद पर आसीन रहे।

४१४—सतिस्स ण अरहओ एगूणनउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासपया होत्था।

शान्तिनाथ अर्हत् के सघ मे नवासी हजार आर्यिकाओ की उत्कृष्ट आर्यिकासम्पदा थी।

।। एकोननवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

नवतिस्थानक-समवाय

४१५—सीयले णं अरहा नउइ धणूइ उड्ढं उच्चत्तेण होत्था।
अजियस्स ण अरहओ नउई गणा नउई गणहरा होत्था। एव सतिस्स वि।

शीतल अर्हत् नव्वै धनुष ऊचे थे।

अजित अर्हत् के नव्वै गण और नव्वै गणधर थे। इसी प्रकार शान्ति जिन के नव्वै गण और नव्वै गणधर थे।

४१६—सयंभुस्स ण वासुदेवस्स णउइवासाइं विजए होत्था।

स्वयम्भू वासुदेव ने नव्वै वर्ष मे पृथिवी को विजय किया था।

४१७—सव्वेसि णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ सोगंधियकण्डस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं नउइजोयणसयाइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वतो के ऊपरी शिखर से सौगन्धिककाण्ड का नीचे का चरमान्त भाग नव्वै सौ (९०००) योजन अन्तरवाला है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के समतल से सौगन्धिककाण्ड आठ हजार योजन है और सभी वृत्त-वैताढ्य पर्वत एक हजार योजन ऊचे है। अत दोनो का अन्तर नव्वै सौ (८००००+१०००=९०००) योजन सिद्ध है।

॥ नवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

एकनवतिस्थानक-समवाय

४१८—एकाणउई परवेयावच्चकम्मपडिमाओ पण्णत्ताओ।

पर-वैयावृत्यकर्म प्रतिमाए इक्यानवें कही गई है।

विवेचन—दूसरे रोगी साधु और आचार्य आदि का भक्त-पान, सेवा-शुश्रूषा एव विनयादि करने के अभिग्रह विशेष को यहाँ प्रतिमा पद से कहा गया है।

वैयावृत्य के उन इक्कानवै प्रकारो का विवरण इस प्रकार है—

१ दर्शन, ज्ञान चारित्रादि से गुणाधिक पुरुषो का सत्कार करना, २ उनके आने पर खडा होना, ३ वस्त्रादि देकर सन्मान करना, ४ उनके बैठते हुए आसन लाकर बैठने के लिए प्रार्थना करना ५ आसनानुप्रदान करना—उन के आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, ६ कृतिकर्म करना, ७ अजली करना, ८ गुरुजनो के आने पर आगे जाकर उनका स्वागत करना, ९ गुरुजनो के गमन करने पर उनके पीछे चलना, १० उन के बैठने पर बैठना। यह दश प्रकार का शुश्रुषा-विनय है।

तथा १ तीर्थंकर, २ केवलिप्रज्ञप्त धर्म, ३ आचार्य, ४ वाचक (उपाध्याय) ५ स्थविर, ६ कुल, ७ गण, ८ सघ ९ साम्भोगिक, १० क्रिया (आचार) विशिष्ट, ११ विशिष्ट मतिज्ञानी, १२ श्रुतज्ञानी, १३ अवधिज्ञानी, १४ मन पर्यवज्ञानी और १५ केवलज्ञानी इन पन्द्रह विशिष्ट पुरुषो की १ आशातना नही करना, २ भक्ति करना, ३ बहुमान करना, और ४ वर्णवाद (गुण-गान) करना, ये चार कर्तव्य उक्त पन्द्रह पदवालो के करने पर (१५×४=६०) साठ भेद हो जाते हैं।

सात प्रकार का औपचारिक विनय कहा गया है—१ अभ्यासन—वैयावृत्य के योग्य व्यक्ति के पास बैठना, २ छन्दोऽनुवर्तन—उसके अभिप्राय के अनुकूल कार्य करना, ३ कृतिप्रतिकृति—'प्रसन्न हुए आचार्य हमे सूत्रादि देगें' इस भाव से उनको आहारादि देना, ४ कारितनिमित्तकरण—पढे हुए शास्त्र-पदो का विशेष रूप से विनय करना और उनके अर्थ का अनुष्ठान करना, ५ दु.ख से पीड़ित की गवेषणा करना, ६ देश-काल को जान कर तदनुकूल वैयावृत्य करना, ७ रोगी के स्वास्थ्य के अनुकूल अनुमति देना।

पांच प्रकार के आचारो के आचरण कराने वाले आचार्य पाँच प्रकार के होते हैं। उनके सिवाय उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, सघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य करने से वैयावृत्त के १४ भेद होते है।

इस प्रकार शुश्रूषा विनय के १० भेद, तीर्थंकरादि के अनाशातनादि ६० भेद, औपचारिक विनय के ७ भेद और आचार्य आदि के वैयावृत्य के १४ भेद मिलाने पर (१०+६०+७+१४= ९१) इक्यानवें भेद हो जाते हैं।

४१९—कालोए णं समुद्दे एकाणउई जोयणसयसहस्साइं साहियाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

कालोद समुद्र परिक्षेप (परिधि) की अपेक्षा कुछ अधिक इक्यानवे लाख योजन कहा गया है।

विवेचन—जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है, लवण समुद्र दो लाख योजन विस्तृत है, धातकीखण्ड चार लाख योजन विस्तृत है और उसे सर्व ओर से घेरने वाला कालोद समुद्र आठ योजन विस्तृत है। इन सबकी विष्कम्भ सूची २९ लाख योजन होती है। इतनी विष्कम्भ सूची वाले कालोद समुद्र की सूक्ष्म परिधि करणसूत्र के अनुसार ९१७७६०५ योजन, ७१५ धनुष और कुछ अधिक ८७ अगुल सिद्ध होती है। उसे स्थूल रूप से सूत्र मे कुछ अधिक इक्यानवें लाख योजन कहा गया है।

४२०—कुंथुस्स ण अरहओ एकाणउई आहोहियसया होत्था।

कुन्थु अर्हत् के सघ मे इक्कानवै सौ (९१००) नियत क्षेत्र को विषय करने वाले अवधिज्ञानी थे।

४२१—आउय-गोयवज्जाणं छण्ह कम्मपगडीणं एकाणउई उत्तरपडीओ पण्णत्ताओ।

आयु और गोत्र कर्म को छोड कर शेष छह कर्मप्रकृतियो की उत्तर प्रकृतियाँ (५+९+२+२८+४२+५=९१) इक्यानवै कही गई हैं।

।। एकनवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

द्विनवतिस्थानक-समवाय

४२२—बाणउई पडिमाओ पण्णत्ताओ।

प्रतिमाए बानवै कही गई हैं।

विवेचन—मूलसूत्र मे इन प्रतिमाओ के नाम-निर्देश नही है, अत दशाश्रुतस्कन्ध-निर्युक्ति के अनुसार उनका कुछ विवरण किया जाता है—मूल मे प्रतिमाए पाँच कही गई है—समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेकप्रतिमा, प्रतिसंलीनताप्रतिमा और एकाकीविहारप्रतिमा। इनमे समाधिप्रतिमा दो प्रकार की है—श्रुतसमाधिप्रतिमा और चारित्रसमाधिप्रतिमा। दर्शनप्रतिमा को भिन्न नही कहा, क्योंकि उसका ज्ञान में अन्तर्भाव हो जाता है। श्रुतसमाधिप्रतिमा के बासठ भेद हैं—आचाराङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध-गत पाँच, द्वितीय श्रुतस्कन्धगत सैतीस, स्थानाङ्गसूत्र-गत सोलह और व्यवहारसूत्र-गत चार। ये सब मिलकर (५+३७+१६+४=६२) बासठ है। यद्यपि ये सभी प्रतिमाए चारित्र-स्वरूपात्मक हैं, तथापि ये विशिष्ट श्रुतशालियो के ही होती हैं, अत· श्रुत की प्रधानता से इन्हे श्रुत समाधिप्रतिमा के रूप मे कहा गया है।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र की अपेक्षा चारित्रसमाधिप्रतिमा के पाँच भेद हैं।

उपधानप्रतिमा के दो भेद है—भिक्षुप्रतिमा और उपासकप्रतिमा। इनमे भिक्षुप्रतिमा के मासिकी भिक्षुप्रतिमा आदि बारह भेद है और उपासकप्रतिमा के दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा आदि ग्यारह भेद हैं। इस प्रकार उपधान प्रतिमा के (१२+११=२३) तेईस भेद होते है।

विवेकप्रतिमा के क्रोधादि भीतरी विकारो और उपधि, भक्त-पानादि बाहरी वस्तुओ के त्याग की अपेक्षा अनेक भेद सभव होने पर भी त्याग सामान्य की अपेक्षा विवेकप्रतिमा एक ही कही गई है।

प्रतिसलीनताप्रतिमा भी एक ही कही गई है, क्योकि इन्द्रियसलीनता आदि तीनो प्रकार की सलीनताओ का एक ही मे समावेश हो जाता है।

पाँचवी एकाकीविहारप्रतिमा है, किन्तु उसका भिक्षुप्रतिमाओ मे अन्तर्भाव हो जाने से उसे पृथक् नही गिना है।

इस प्रकार श्रुतसमाधिप्रतिमा बासठ, चारित्रसमाधिप्रतिमा पाँच, उपधान-प्रतिमा तेईस, विवेकप्रतिमा एक और प्रतिसलीनताप्रतिमा एक, ये सब मिलाकर प्रतिमा के (६२+५+२३+१+१=९२) बानवै भेद हो जाते हैं।

४२३—थेरे णं इंदभूती बाणउइ वासाइ सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे [जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे]।

स्थविर इन्द्रभूति बानवै वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, [कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित] हुए।

४२४—मन्दरस्स ण पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थि-मिल्ले चरमते एस णं बाणउइ जोयणसहस्साइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एव चउण्हं पि आवास-पव्वयाणं।

मन्दर पर्वत के बहुमध्य देश भाग से गोस्तूप आवासपर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग बानवै हजार योजन के अन्तरवाला है। इसी प्रकार चारो ही आवासपर्वतो का अन्तर जानना चाहिये।

विवेचन—मेरु पर्वत के मध्य भाग से चारो ही दिशाओं मे जम्बूद्वीप की सीमा पचास हजार योजन है और वहाँ से चारो ही दिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर बियालीस हजार योजन की दूरी पर गोस्तूप आदि चारो आवासपर्वत अवस्थित है, अत मेरुमध्य से प्रत्येक आवासपर्वत का अन्तर बानवै हजार योजन सिद्ध हो जाता है।

॥ द्विनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

त्रिनवतिस्थानक-समवाय

४२५—चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइं गणा तेणउइं गणहरा होत्था ।
संतिस्स णं अरहओ तेणउई चउद्दस पुव्वसया होत्था ।

चन्द्रप्रभ अर्हत् के तेरानवे गण और तेरानवे गणधर थे ।
शान्ति अर्हत् के सघ मे तेरानवे सौ (९३००) चतुर्दशपूर्वी थे ।

४२६—तेणउई मंडलगते णं सूरिए अतिवट्टमाणे निवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ ।

दक्षिणायन से उत्तरायण को जाते हुए, अथवा उत्तरायण से दक्षिणायन को लौटते हुए तेरानवे मण्डल पर परिभ्रमण करता हुआ सूर्य सम अहोरात्र को विषम करता है ।

विवेचन—सूर्य के परिभ्रमण के सचारमण्डल १८४ है । उनमे से जब सूर्य जम्बूद्वीप के ऊपर सबसे भीतरी मण्डल पर सचार करता है, तब दिन अठारह मुहूर्त का होता है और रात बारह मुहूर्त की होती है । इसी प्रकार जब सूर्य लवणसमुद्र के ऊपर सबसे बाहरी मण्डल पर परिभ्रमण करता है, तब दिन बारह मुहूर्त का होता है और रात अठारह मुहूर्त की होती है । इसी प्रकार सूर्य के उत्तरायण को जाते या दक्षिणायन को लौटते हुए तेरानवेंवे मण्डल पर परिभ्रमण करते समय दिन और रात दोनो ही समान अर्थात् पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त के होते हैं । इससे आगे यदि वह उत्तर की ओर सचार करता है तो दिन बढने लगता है और रात घटने लगती है । और यदि वह दक्षिण की ओर सचार करता है तो रात बढने लगती है और दिन घटने लगता है । इसी व्यवस्था को ध्यान मे रख कर कहा गया है कि तेरानवेंवे मण्डलगत सूर्य आगे जाता या लौटता हुआ सम अहोरात्र को विषम करता है ।

।। त्रिनवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

चतुर्नवतिस्थानक-समवाय

४२७—निसह-नीलवंतियाओ ण जीवाओ चउणउइं चउणउइं जोयणसहस्साइं एक्कं छप्पन्नं जोयणसयं दोन्नि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ ।

निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वतो की जीवाएं चौरानवै हजार एक सौ छप्पन योजन तथा एक योजन के उन्नीस भागो मे से दो भाग प्रमाण (९४१५६ $\frac{2}{19}$) लम्बी कही गई है ।

४२८—अजियस्स णं अरहओ चउणउई ओहिनाणिसया होत्था ।

अजित अर्हत् के संघ मे चौरानवै सौ (९४००) अवधिज्ञानी थे ।

।। चतुर्नवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

पञ्चनवतिस्थानक-समवाय

४२९—सुपासस्स ण अरहओ पंचाणउइगणा पंचाणउइं गणहरा होत्था ।

सुपार्श्व अर्हत् के पचानवे गण और पंचानवै गणधर थे ।

४३०—जबुद्दीवस्स णं दीवस्स चरमताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पचाणउइ पंचाणउइं जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता चत्तारि महापायालकलसा पण्णत्ता । त जहा—वलयामुहे केऊए जूयए ईसरे ।

लवणसमुद्दस्स उभओ पास पि पंचाणउय पंचाणउय पदेसाओ उव्वेहुस्सेहपरिहाणीए पण्णत्ता ।

इस जम्बूद्वीप के चरमान्त भाग से चारो दिशाओ मे लवण समुद्र के भीतरी पचानवै-पचानवै हजार योजन अवगाहन करने पर चार महापाताल है । जैसे—१ वडवामुख, २. केतुक, ३ यूपक और ४. ईश्वर ।

लवण समुद्र के उभय पार्श्व पचानवै-पचानवै प्रदेश पर उद्वेध (गहराई) और उत्सेध (उचाई) वाले कहे गये है ।

विवेचन—लवण समुद्र के मध्य मे दश हजार योजन-प्रमाण क्षेत्र समधरणीतल की अपेक्षा एक हजार योजन गहरा है । तदनन्तर जम्बूद्वीप की वेदिका की ओर पचानवै प्रदेश आगे आने पर गहराई एक प्रदेश कम हो जाती है । उससे भी आगे पचानवै प्रदेश आने पर गहराई और भी एक प्रदेश कम हो जाती है । इस गणितक्रम के अनुसार पचानवै हाथ जाने पर एक हाथ, पचानवै योजन जाने पर एक योजन और पचानवै हजार योजन जाने पर एक हजार योजन गहराई कम हो जाती है । अर्थात् जम्बूद्वीप की वेदिका के समीप लवणसमुद्र का तलभाग भूमि के समानतल वाला हो जाता है । इस प्रकार लवण समुद्र के मध्य भाग के एक हजार योजन की गहराई की अपेक्षा लवण समुद्र का तट भाग एक हजार योजन ऊचा है । जब इसी बात को समुद्रतट की ओर से देखते है, तब यह अर्थ निकलता है कि तट भाग से लवण समुद्र के भीतर पचानवै प्रदेश जाने पर तट के जल की ऊचाई एक प्रदेश कम हो जाती है, आगे पचानवै प्रदेश जाने पर तट के जल की ऊचाई एक प्रदेश और कम हो जाती है । इसी गणित के अनुसार पचानवै हाथ जाने पर एक हाथ, पचानवै योजन जाने पर एक योजन और पचानवै हजार योजन आगे जाने पर एक हजार योजन समुद्र तटवर्ती जल की ऊचाई कम हो जाती है । दोनो प्रकार के कथन का अर्थ एक ही है—समुद्र के मध्य भाग की अपेक्षा जिसे उद्वेध या गहराई कहा गया है उसे ही समुद्र के तट भाग की अपेक्षा उत्सेध या ऊचाई कहा गया है । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि लवण समुद्र के तट से पचानवै हजार योजन आगे जाने पर दश हजार योजन के विस्तार वाला मध्यवर्ती भाग सर्वत्र एक हजार योजन गहरा है । और उसके पहिले सर्व ओर का जलभाग समुद्रतट तक उत्तरोत्तर हीन है ।

४३१ -कुंथू ण अरहा पंचाणउइ वाससहस्साइं परमाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व-दुक्खप्पहीणे । थेरे णं मोरियपुत्ते पचाणउइवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

कुन्थु अर्हत् पचानवै हजार वर्ष की परमायु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखो से रहित हुए । स्थविर मौर्यपुत्र पचानवै वर्ष की सर्व आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखो से रहित हुए ।

।। पञ्चनवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

षण्णवतिस्थानक-समवाय

४३२—एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स छण्णउइं छण्णउइं गामकोडीओ होत्था ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के (राज्य मे) छयानवै-छयानवै करोड ग्राम थे ।

४३३—वायुकुमाराणं छण्णउइं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

वायुकुमार देवो के छयानवै लाख आवास (भवन) कहे गये हैं ।

४३४—ववहारिए णं दंडे छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलमाणेणं । एवं धणू नालिया जुगे अक्खे मुसले वि हु ।

व्यावहारिक दण्ड अगुल के माप से छयानवै अगुल-प्रमाण होता है । इसी प्रकार धनुष, नालिका, युग, अक्ष और मूशल भी जानना चाहिए ।

विवेचन—अगुल दो प्रकार का है—व्यावहारिक और अव्यावहारिक । जिससे हस्त, धनुष, गव्यूति आदि के नापने का व्यवहार किया जाता है, वह व्यावहारिक अगुल कहा जाता है । अव्यावहारिक अगुल प्रत्येक मनुष्य के अगुल-मान की अपेक्षा छोटा-बडा भी होता है । उसको यहाँ विवक्षा नही की गई है । चौबीस अगुल का एक हाथ होता है और चार हाथ का एक दण्ड होता है । इस प्रकार (२४×४=९६) एक दण्ड छयानवै अगुल प्रमाण होता है । इसी प्रकार धनुष आदि भी छयानवै-छयानवै अगुल प्रमाण होते है ।

४३५—अब्भितरओ आइमुहुत्ते छण्णउइ अंगुलच्छाए पण्णत्ते ।

आभ्यन्तर मण्डल पर सूर्य के सचार करते समय आदि (प्रथम) मुहूर्त छयानवै अगुल की छाया वाला कहा गया है ।

।। षण्णवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

सप्तनवतिस्थानक-समवाय

४३६—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्ताणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउदिसिं पि।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से गोस्तुभ आवास-पर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग सत्तानवै हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार चारो ही दिशाओ मे जानना चाहिए।

विवेचन—मेरु पर्वत के पश्चिमी भाग से जम्बूद्वीप का पूर्वी भाग पचपन हजार योजन है और उससे गोस्तुभ पर्वत का पश्चिमी भाग बियालीस हजार योजन दूर है। अतः चारो आवास पर्वतो का सूत्रोक्त सत्तानवै हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४३७—अट्ठण्हं कम्मपगडीणं सत्ताणउइं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।

आठो कर्मों की उत्तर प्रकृतिया सत्तानवै (५+९+२+२८+४+४२+२+५=९७) कही गई हैं।

४३८—हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइं वाससयाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

चातुरन्तचक्रवर्ती हरिषेण राजा कुछ कम सत्तानवै सौ (९७००) वर्ष अगार-वास मे रहकर मुंडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

॥ सप्तनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

अष्टानवतिस्थानक-समवाय

४३९—नंदणवणस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ, पंडुयवणस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइजोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

नन्दनवन के ऊपरी चरमान्त भाग से पाडुक वन के निचले चरमान्त भाग का अन्तर अट्ठानवे हजार योजन है।

विवेचन—नन्दन वन समभूमि तल से पाच सौ योजन ऊचाई पर अवस्थित है और उसकी आठो दिशाओ मे अवस्थित कूट भी पाँच पाँच सौ योजन ऊचे है, अत दोनो मिलकर एक हजार योजन ऊचाई नन्दनवन की हो जाती है। मेरु की ऊचाई समभूमि भाग से निन्यानवै हजार योजन है, उसमे से उक्त एक हजार के घटा देने पर सूत्रोक्त अट्ठानवै हजार का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४४०—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउदिसिं पि।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्तभाग से गोस्तुभ आवास पर्वत का पूर्वी चरमान्त भाग अट्ठानवै हजार योजन अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार चारो ही दिशाओ मे अवस्थित आवास पर्वतो का अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—सत्तानवै वे स्थान के सूत्र मे प्रतिपादित अन्तर मे गोस्तुभ आवास-पर्वत के एक हजार योजन विष्कम्भ को मिला देने पर अट्ठानवै हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४४१—दाहिणभरहस्स णं धणुपिट्ठे अट्ठाणउइ जोयणसयाइं किचूणाइं आयामेण पण्णत्ते।

दक्षिण भरतक्षेत्र का धनु पृष्ठ कुछ कम अट्ठानवै सौ (९८००) योजन आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा कहा गया है।

४४२—उत्तराओ कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासतिमे मंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता ण सूरिए चार चरइ। दक्खिणाओ णं कट्ठाओ सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासइमे मंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभाए मुहुत्तस्स रयणिखित्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं सूरिए चारं चरइ।

उत्तर दिशा से सूर्य प्रथम छह मास दक्षिण की ओर आता हुआ उनपचासवे मडल के ऊपर आकर मुहूर्त के इकसठिये अट्ठानवै भाग ($\frac{98}{61}$) दिवस क्षेत्र (दिन) के घटाकर और रजनी क्षेत्र (रात) के बढाकर सचार करता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा से सूर्य दूसरे छह मास उत्तर की ओर जाता हुआ उनपचासवे मडल के ऊपर आकर मुहूर्त के अट्ठानवै इकसठ भाग ($\frac{98}{61}$) रजनी क्षेत्र (रात) के घटाकर और दिवस क्षेत्र (दिन) के बढाकर सचार करता है।

विवेचन—सूर्य के एक एक मडल मे सचार करने पर मुहूर्त के इकसठ भागो मे से दो भाग प्रमाण दिन की वृद्धि या रात की हानि होती है। अत उनपचासवे मडल मे सूर्य के सचार करने पर मुहूर्त के ($४९ \times २ = \frac{98}{61}$) अट्ठानवै इकसठ भाग की वृद्धि और हानि सिद्ध हो जाती है। सूर्य चाहे उत्तर से दक्षिण की ओर सचार करे और चाहे दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर सचार करे, परन्तु उनपचासवे मडल पर परिभ्रमण के समय दिन या रात की उक्त वृद्धि या हानि ही रहेगी।

४४३—रेवई-पढमजेट्ठापज्जवसाणाणं एगूणवीसाए नक्खत्ताण अट्ठाणउइ ताराओ तारग्गेणं पण्णत्ताओ।

रेवती से लेकर ज्येष्ठा तक के उन्नीस नक्षत्रो के तारे अट्ठानवै है।

विवेचन—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रेवती नक्षत्र बत्तीस तारावाला है, अश्विनी तीन तारा वाला है, भरणी तीन तारा वाला है, कृत्तिका छह तारा वाला है, रोहिणी पाँच तारावाला है, मृगशिर तीन तारावाला है, आर्द्रा एक तारावाला है, पुनर्वसु पाँच तारावाला है, पुष्य तीन तारा वाला है, अश्लेषा छह तारावाला है, मघा सात तारावाला है, पूर्वाफाल्गुनी दो तारावाला है, उत्तराफाल्गुनी दो तारा वाला है, हस्त पाँच तारावाला है, चित्रा एक तारा वाला है, स्वाति एक तारावाला है, विशाखा एक तारावाला है, अनुराधा चार तारा वाला है, और ज्येष्ठा नक्षत्र

तीन तारावाला है। इन उन्नीसों नक्षत्रों के ताराओं को जोड़ने पर (३२+३+३+६+५+३+१+५+३+६+७+२+२+५+१+१+५+४+३=९७) अन्य ग्रन्थों के अनुसार सत्तानवै संख्या ही होती है। किन्तु प्रस्तुत सूत्र में उन्नीस नक्षत्रों के ताराओं की संख्या अट्ठानवै (९८) बताई गई है, अत. उक्त नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र के ताराओं की संख्या एक अधिक होनी चाहिए। तभी सूत्रोक्त अट्ठानवै संख्या सिद्ध होगी, ऐसा टीकाकार का अभिप्राय है।

।। अष्टानवतिस्थानक समवाय समाप्त ।।

नवनवतिस्थानक-समवाय

४४४—मंदरे ण पव्वए णवणउइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। नंदणवणस्स णं पुरच्छिमिल्लाओ चरमताओ पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस ण नवनउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं दक्खिणिल्लाओ चरमताओ उत्तरिल्ले चरमंते एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दर पर्वत निन्यानवै हजार योजन ऊंचा कहा गया है। नन्दनवन के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त निन्यानवै सौ (९९००) योजन अन्तरवाला कहा गया है। इसी प्रकार नन्दन वन के दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त निन्यानवै सौ (९९००) योजन अन्तर वाला है।

विवेचन—मेरु पर्वत भूतल पर दश हजार योजन विस्तारवाला है और पाँच सौ योजन की ऊंचाई पर अवस्थित नन्दवन के स्थान पर नौ हजार नौ सौ चौपन योजन, तथा एक योजन के ग्यारह भागों में से छह भाग-प्रमाण ($९९५४\frac{६}{११}$) मेरु का बाह्य विस्तार है। और भीतरी विस्तार उन्यासी सौ चौपन योजन और एक योजन के ग्यारह भागों में से छह भाग-प्रमाण है ($७९५४\frac{६}{११}$)। पाँच सौ योजन नन्दनवन की चौड़ाई है। इस प्रकार मेरु का आभ्यन्तर विस्तार और दोनों ओर के नन्दनवन का पाँच पाँच सौ योजन का विस्तार ये सब मिलकर ($७९५४\frac{६}{११}+५००+५००=८९५४\frac{६}{११}$) प्राय सूत्रोक्त अन्तर हो जाता है।

४४५—उत्तरे पढमे सूरियमडले नवनउइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामविक्खभेणं पण्णत्ते। दोच्चे सूरियमंडले नवनउइं जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेण पण्णत्ते। तइय-सूरियमंडले नवनउइं जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खभेणं पण्णत्ते।

उत्तर दिशा में सूर्य का प्रथम मडल आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवै हजार योजन कहा गया है। दूसरा सूर्य-मडल भी आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवै हजार योजन कहा गया है। तीसरा सूर्यमडल भी आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवै हजार योजन कहा गया है।

विवेचन—सूर्य जिस आकाश-मार्ग से मेरु के चारों ओर परिभ्रमण करता है उसे सूर्य-मडल कहते हैं। जब वह उत्तर दिशा के सबसे पहिले मडल पर परिभ्रमण करता है, तब उस मडल की गोलाकार रूप में लम्बाई निन्यानवै हजार छह सौ चालीस योजन (९९६४०) होती है। जब सूर्य

दूसरे मडल पर परिभ्रमण करता है, तब उसकी लम्बाई निन्यानवै हजार छह सौ पेंतालीस योजन और एक योजन इकसठ भागो मे से पैंतीस भाग-प्रमाण (९९६४५$\frac{३५}{६१}$) होती है। प्रथम मडल से इस दूसरे मडल की पाँच योजन और पैंतीस भाग इकसठ वृद्धि का कारण यह है कि एक मडल से दूसरे मडल का अन्तर दो-दो योजन का है। तथा सूर्य के विमान का विष्कम्भ एक योजन के इकसठ भागो मे से अडतालीस भाग-प्रमाण है। इसे (२$\frac{४८}{६१}$) दुगुना कर देने पर (२$\frac{४८}{६१}$ × २ = ५$\frac{३५}{६१}$) पाँच योजन और एक योजन के इकसठ भागो मे से पैंतीस भाग-प्रमाण वृद्धि प्रथम मडल से दूसरे मडल की सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार दूसरे मडल के विष्कम्भ मे ५$\frac{३५}{६१}$ के मिला देने पर (९९६४५$\frac{३५}{६१}$ + ५$\frac{३५}{६१}$ = ९९६५१$\frac{९}{६१}$) निन्यानवै हजार छह सौ इकावन योजन और एक योजन के इकसठ भागो मे से नौ भाग-प्रमाण विष्कम्भ तीसरे मडल का निकल आता है। निन्यानवै हजार मे ऊपर जो प्रथम मडल मे ६४० योजन की, दूसरे मडल मे ६४५$\frac{३५}{६१}$ योजन की और तीसरे मडल मे ६५१$\frac{९}{६१}$ योजन की वृद्धि होती है, उसे सूत्र मे 'सातिरेक' और 'साधिक' पद से सूचित किया गया है, जिसका अर्थ निन्यानवै हजार योजन से कुछ अधिक होता है।

४४६—इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए अजणस्स कंडस्स हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ वाणमंतर-भोमेज्जविहाराण उवरिमंते एस णं नवनउइ जोयणसयाइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के अजन काड के अधस्तन चरमान्त भाग से वान-व्यन्तर भौमेयक देवो के विहारो (आवासो) का उपरिम अन्तभाग निन्यानवै सौ (९९००) योजन अन्तरवाला कहा गया है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम खरकाण्ड के सोलह कांडो मे अजनकाड दशवा है। उसका अधस्तन भाग यहा से दश हजार योजन दूर है। प्रथम रत्न-काड के प्रथम सौ योजनो के (बाद) व्यन्तर देवो के नगर है। इन सौ को दश हजार मे से (१०,०००—१०० = ९९००) घटा देने पर सूत्रोक्त निन्यानवै सौ (९९००) योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

॥ नवनवतिस्थानक समवाय समाप्त ॥

शतस्थानक-समवाय

४४७—दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेण राइदियसतेणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया यावि भवइ।

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एक सौ रात-दिनो मे और साढे पॉच सौ भिक्षा-दत्तियो से यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्व से स्पृष्ट, पालित, शोभित, तीरित, कीर्तित और आराधित होती है।

विवेचन—इस भिक्षुप्रतिमा की आराधना दश दश दिन के दिनदशक अर्थात् सौ दिनो के द्वारा की जाती है। पूर्व वर्णित भिक्षुप्रतिमाओ के समान इसमे भी प्रथम दश दिनो से लेकर दशवें दिनदशक तक प्रतिदिन एक-एक भिक्षादत्ति अधिक ग्रहण की जाती है। तदनुसार सर्वभिक्षा-दत्तियो की संख्या (१० + २० + ३० + ४० + ५० + ६० + ७० + ८० + ९० + १०० = ५५०) पांचसौ पचास हो जाती है। शेष आराधना-विधि पूर्व प्रतिमाओं के समान ही जानना चाहिए।

४४८—सयभिसया नक्खत्ते एक्कसयतारे पण्णत्ते।

शतभिषक् नक्षत्र के एक सौ तारे होते हैं।

४४९—सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

पासे ण अरहा पुरिसादाणीए एक्कं वाससयं सव्वाउय पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे। एव थेरे वि अज्जसुहम्मे।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हत् सौ धनुष ऊंचे थे।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दु खो से रहित हुए।

इसी प्रकार स्थविर आर्य सुधर्मा भी सौ वर्ष की सर्व आयु भोग कर [सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दु खो से रहित हुए।

४५०—सव्वे वि ण दीहवेयड्ढपव्वया एगमेगं गाउयसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वेवि णं चुल्लहिमवंत-सिहरीवासहरपव्वया एगमेगं जोयणसय उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। एगमेगं गाउयसय उव्वेहेण पण्णत्ता। सव्वे वि ण कचणगपव्वया एगमेग जोयणसय उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णता। एगमेग गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता। एगमेगं जोयणसयं मूले विक्खभेणं पण्णत्ता।

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत एक-एक सौ गव्यूति (कोश) ऊंचे कहे गये है। सभी क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वत एक-एक सौ योजन ऊंचे हैं। तथा ये सभी वर्षधर पर्वत सौ-सौ गव्यूति उद्वेध (भूमि मे अवगाह) वाले हैं। सभी काचनक पर्वत एक-एक सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं। तथा वे सौ-सौ गव्यूति उद्वेध वाले और मूल मे एक-एक सौ योजन विष्कम्भवाले हैं।

।। शतस्थानक समवाय समाप्त ।।

अनेकोत्तरिका-वृद्धि-समवाय

[सार्धशत से कोटाकोटि पर्यन्त]

४५१—चंदप्पभे णं अरहा दिवड्ढं धणुस्सयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। आरणकप्पे दिवड्ढं विमाणावाससयं पण्णत्तं। एव अच्चुए वि १५०।

चन्द्रप्रभ अर्हत् डेढ सौ धनुष ऊंचे थे। आरण कल्प मे डेढ सौ विमानावास कहे गये हैं। अच्युत कल्प भी डेढ सौ (१५०) विमानावास वाला कहा गया है।

४५२—सुपासे णं अरहा दो धणुसया उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सुपार्श्व अर्हत् दो सौ धनुष ऊंचे थे।

४५३—सव्वे वि णं महाहिमवंत-रुप्पीवासहरपव्वया दो दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। दो दो गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो-दो सौ योजन ऊंचे हैं और वे सभी दो-दो गव्यूति उद्वेध वाले (गहरे) हैं।

४५४—जंबुद्दीवे णं दीवे दो कंचणपव्वयसया पण्णत्ता २००।

इस जम्बूद्वीप मे दो सौ काचनक पर्वत कहे गये है २००।

४५५—पउमप्पभे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।
पद्मप्रभ अर्हत् अढाई सौ धनुष ऊंचे थे।

४५६—असुरकुमाराणं देवाणं पासायवडिंसगा अड्ढाइज्जाइ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता २५०।

असुरकुमार देवो के प्रासादावतसक अढाई सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं २५०।

४५७—सुमई णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अरिट्ठनेमी ण अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

सुमति अर्हत् तीन सौ धनुष ऊंचे थे। अरिष्टनेमि अर्हन् तीन सौ वर्ष कुमारवास मे रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

४५८—वेमाणियाणं देवाण विमाणपागारा तिण्णि तिण्णि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

वैमानिक देवो के विमान-प्राकार (परकोटा) तीन-तीन सौ योजन ऊंचे हैं।

४५९—समणस्स [ण] भगवओ महावीरस्स तिन्नि सयाणि चोद्दसपुव्वीणं होत्था।
पंचधणुसइयस्स णं अतिमसारीरियस्स सिद्धिगयस्स सातिरेगाणि तिण्णि-धणुसयाणि जीवप्पदेसोगाहणा पण्णत्ता ३००।

श्रमण भगवान् महावीर के सघ मे तीन सौ चतुर्दशपूर्वी मुनि थे।

पाँच सौ धनुष की अवगाहनावाले चरमशरीरी सिद्धि को प्राप्त पुरुषो (सिद्धो) के जीव-प्रदेशो की अवगाहना कुछ अधिक तीन सौ धनुष की होती है।

४६०—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धट्ठुसयाइं चोद्दसपुव्वीणं सपया होत्था। अभिनंदणे ण अरहा अद्धुट्ठाइं धणुसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ३५०।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हन् के साढे तीन सौ चतुर्दशपूर्वियो की सम्पदा थी। अभिनन्दन अर्हन् साढे तीन सौ धनुष ऊचे थे।

४६१—संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सभव अर्हत् चार सौ धनुष ऊचे थे।

४६२—सव्वे वि णं निसढनीलवंता वासहरपव्वया चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं [पण्णत्ता]। चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वक्खारपव्वया 'णिसढनीलवंतवासहरपव्वयंतेणं' चत्तारि चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चार-चार सौ योजन ऊचे तथा चार-चार सौ गव्यूति उद्वेध (गहराई) वाले है। सभी वक्षार पर्वत निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वतो के समीप चार-चार सौ योजन ऊचे और चार-चार सौ गव्यूति उद्वेध वाले कहे गये है।

४६३—आणय-पाणएसु दोसु कप्पेसु चत्तारि विमाणसया पण्णत्ता।

आनत और प्राणत इन दो कल्पो मे दोनो के मिलाकर चार सौ विमान कहे गये है।

४६४—समणस्स ण भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेव-मणुयासुरंमि लोगंमि वाए अपराजियाण उक्कोसिया वाइसपया होत्था ४००।

श्रमण भगवान् महावीर के चार सौ अपराजित वादियो की उत्कृष्ट वादिसम्पदा थी। वे वादी देव, मनुष्य और असुरो मे से भी वाद मे पराजित होने वाले नही थे।

४६५—अजिते णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था ४५०।

अजित अर्हत् साढे चार सौ धनुष ऊचे थे।

चातुरन्त चक्रवर्ती सगर राजा भी साढे चार सौ धनुष ऊचे थे।

४६६—सव्वे वि ण वक्खारपव्वया सीआ-सीओआओ महानईओ मंदरपव्वयंते णं पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं वासहरकूडा पंच पच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। मूले पंच पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सभी वक्षार पर्वत सीता-सीतोदा महानदियो के और मन्दर पर्वत के समीप पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे और पाँच-पाँच सौ गव्भूति उद्वेध वाले कहे गये हैं। सभी वर्षधर कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे और मूल मे पाँच-पाँच सौ योजन विष्कम्भ वाले कहे गये हैं।

४६७—उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् पाँच सौ धनुष ऊचे थे। चातुरन्तचक्रवर्ती राजा भरत पाँच सौ धनुष ऊचे थे।

४६८—सोमणस-गंधमादण-विज्जुप्पभ-मालवताणं वक्खारपव्वयाणं मंदरपव्वयंतेण पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वक्खारपव्वयकूडा हरि-हरिस्सहकूडवज्जा पच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं णंदणकूडा बलकूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण, मूले पच पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेण पण्णत्ता।

सौमनस, गन्धमादन, विद्युत्प्रभ और मालवन्त ये चारो वक्षार पर्वत मन्दर पर्वत के समीप पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे और पाँच-पाँच सौ गव्यूति उद्वेधवाले हैं। हरि और हरिस्सह कूट को छोड कर शेष सभी वक्षार पर्वतकूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे और मूल मे पाँच-पाँच सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गये है। बलकूट को छोड कर सभी नन्दनवन के कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे और मूल मे पाँच-पाँच सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गये है।

४६९—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा पच पंच जोयणसयाइं उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ता। ५००।

सौधर्म और ईशान इन दोनो कल्पो मे सभी विमान पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे कहे गये है।

४७०—सणकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु विमाणा छज्जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। चुल्लहिमवतकूडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस ण छज्जोयणसयाइ अबाहाए अतरे पण्णत्ते। एव सिहरीकूडस्स वि।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पो मे विमान छह सौ योजन ऊचे कहे गये है। क्षुल्लक हिमवन्त कूट के उपरिम चरमान्त से क्षुल्लक हिमवन्त वर्षधर पर्वत का समधरणीतल छह सौ योजन अन्तर वाला है। इसी प्रकार शिखरी कूट का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—समभूमि तल से क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरो वर्षधर पर्वत सौ-सौ योजन ऊचे है और उनके हिमकूट और शिखरी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे हैं, अत उक्त कूटो के ऊपरी भाग से उक्त दोनो ही वर्षधर पर्वतो के समभूमि का सूत्रोक्त छह-छह सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

४७१—पासस्स णं अरहओ छसया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजिआणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था। अभिचंदे णं कुलगरे छधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। वासुपुज्जे णं अरिहा छहिं पुरिससएहिं सद्धि मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। ६००।

पार्श्व अर्हत् के छह सौ अपराजित वादियो की उत्कृष्ट वादिसम्पदा थी जो देव, मनुष्य और असुरो में से किसी से भी वाद मे पराजित होने वाले नही थे। अभिचन्द्र कुलकर छह सौ धनुष ऊंचे थे। वासुपूज्य अर्हत् छह सौ पुरुषो के साथ मु डित होकर अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए थे। ६००।

४७२—बंभ-लतएसु [दोसु] कप्पेसु विमाणा सत्त सत्त जोयणसयाइं उड्ढ उच्चतेणं पण्णत्ता।

ब्रह्म और लान्तक इन दो कल्पो मे विमान सात-सात सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं।

४७३—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्था। समणस्स ण भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था। अरिट्ठणेमी णं अरहा सत्त वाससयाइं वेसूणाइ केवलपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहोणे।

श्रमण भगवान् महावीर के सघ मे सात सौ केवली थे। श्रमण भगवान् महावीर के सघ मे सात सौ वैक्रियलब्धिधारी साधु थे। अरिष्टनेमि अर्हत् कुछ (५४ दिन) कम सात सौ वर्ष केवलिपर्याय मे रह कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए।

४७४—महाहिमवतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं सत्त जोयणसयाइ अबाहाए अतरे पण्णत्ते। एवं रुप्पिकूडस्स वि ७००।

महाहिमवन्त कूट के ऊपरी चरमान्त भाग से महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत का समधरणी तल सात सौ योजन अन्तर वाला कहा गया है। इसी प्रकार रुक्मी कूट का भी अन्तर जानना चाहिए।

विवेचन—समभूमि तल से महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो-दो सौ योजन ऊंचे है और उनके महाहिमवन्तकूट और रुक्मीकूट पॉच-पॉच सौ योजन ऊंचे हैं। अत उक्त कूटो के ऊपरी भाग से उक्त दोनो ही वर्षधर पर्वतो के समभूमि का अन्तर सात-सात सौ योजन का सिद्ध हो जाता है।

४७५—महासुक्क-सहस्सारेसु दोसु कप्पेसु विमाणा अट्ठजोयणसयाइं उड्ढं उच्चतेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र और सहस्रार इन दो कल्पो मे विमान आठ सौ योजन ऊंचे कहे गये है।

४७६—इमीसे ण रयणप्पमाए [पुढवीए] पढमे कंडे अट्ठसु जोयणसएसु वाणमंतरभोमेज्ज-विहारा पण्णत्ता।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम काड के मध्यवर्ती आठ सौ योजनो में वानव्यन्तर भौमेयक देवों के विहार कहे गये है।

विवेचन—वनो मे वृक्षादि पर उत्पन्न होने से व्यन्तरो को 'वान' कहा जाता है। तथा उनके विहार, नगर या आवासस्थान भूमिनिर्मित है इसलिए उनको 'भौमेयक' कहा जाता है। दशवे अजनकाड का उपरिम भाग समभूमि भाग से नौ सौ योजन नीचे है। उसमे से प्रथम रत्न काड के सौ योजन कम कर देने पर वानव्यन्तरो के आवास अजनकांड के उपरिम भाग तक मध्यवर्ती आठ सौ योजनो मे पाये जाते हैं।

४७७—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिआ अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर के कल्याणमय गति और स्थिति वाले तथा भविष्य मे मुक्ति प्राप्त करने वाले अनुत्तरौपपातिक मुनियो की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी ।

४७८—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठहिं जोयणसएहिं सूरिए चारं चरति ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से आठ सौ योजन की ऊचाई पर सूर्य परिभ्रमण करता है ।

४७९—अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठसयाइं वाईण सदेवमणुयासुरंमि लोगंमि वाए अपराजिआणं उक्कोसिया वाईसंपया होत्था । ८०० ।

अरिष्टनेमि अर्हत् के अपराजित वादियो की उत्कृष्ट वादिसम्पदा आठ सौ थी, जो देव, मनुष्य और असुरो मे से किसी से भी वाद मे पराजित होने वाले नही थे ।

४८०—आणय-पाणय-आरण-अच्चुएसु कप्पेसु विमाणा नव-नव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

निसढकूडस्स णं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ णिसढस्स वासहरपव्वयस्स समे धरणितले एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं णीलवंतकूडस्स वि ।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार कल्पो मे विमान नौ-नौ सौ योजन ऊचे है ।

निषध कूट के उपरिम शिखरतल से निषध वर्षधर पर्वत का सम धरणीतल नौ सौ योजन अन्तरवाला है । इसी प्रकार नीलवन्त कूट का भी अन्तर जानना चाहिए ।

विवेचन—समभूमि तल से निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चार-चार सौ योजन ऊचे हैं । और उनके निषध कूट और नीलवन्त कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊचे है । अत उक्त कूटो के ऊपरी भाग से दोनो ही वर्षधर पर्वतो के समभूमि का सूत्रोक्त नौ-नौ सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है ।

४८१—विमलवाहणे णं कुलगरे णं नव धणुसयाइ उड्ढं उच्चत्तेण होत्था ।

इमीसे ण रयणप्पभाए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नवहिं जोयणसएहिं सव्वुवरिमे ताराख्वे चारं चरइ ।

विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसमरमणीय भूमि भाग से नौ सौ योजन की सबसे ऊपरी ऊचाई पर तारा-मडल सचार करता है ।

४८२—निसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं नीलवंतस्स वि । ९०० ।

निषध वर्षधर पर्वत के उपरिम शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम काड के बहुमध्य देश भाग का अन्तर नौ सौ योजन है।

इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत का भी अन्तर नौ सौ योजन का समझना चाहिए। वर्षधर पर्वतो मे निषध पर्वत तीसरा और नीलवन्त पर्वत चौथा है। दोनो का अन्तर समान है।

४८३—सव्वे वि णं गेवेज्जविमाणे दस-दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

सव्वे वि ण जमगपव्वया दस-दस जोयणसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। दस-दस गाउय-सयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। मूले दस-दस जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता। एवं चित्त-विचित्त-कडा वि भाणियव्वा।

सभी ग्रैवेयक विमान दश-दश सौ (१०००) योजन ऊचे कहे गये है।

सभी यमक पर्वत दश-दश सौ योजन ऊचे कहे गये हैं। तथा वे दश-दश सौ गव्यूति (१००० कोश) उद्वेध वाले कहे गये हैं। वे मूल मे दश-दश सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले हैं। इसी प्रकार चित्र-विचित्र कूट भी कहना चाहिए।

विवेचन—नीलवन्त वर्षधर पर्वत के उत्तर मे सीता महानदी के दोनो किनारो पर उत्तर-कुरु मे यमक नाम के दो पर्वत हैं। इसी प्रकार देवकुरु मे सीतोदा नदी के दोनो किनारो पर निषध पर्वत के दक्षिण मे चित्र-विचित्र नाम के दो पर्वत है। यत अढाई दीप मे पाँच-पाँच सीता और सीतोदा नदिया है, अत उनके दश-दश यमक कूटो का निर्देश प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है। वे सभी एक-एक हजार योजन ऊचे, एक-एक हजार कोश भूमि मे गहरे और गोलाकार होने से सर्वत्र एक-एक हजार योजन आयाम-विष्कम्भ वाले अर्थात् चौडे हैं।

४८४—सव्वे वि णं वट्टवेयड्ढपव्वया दस-दस जोयणसयाइं उड्ढ उच्चत्तेणं पण्णत्ता। दस-दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। मूले दस-दस जोयणसयाइं विक्खभेणं पण्णत्ता। सव्वत्थ समा पल्लग-सठाणसठिया पण्णत्ता।

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वत दश-दश सौ योजन ऊचे है। उनका उद्वेध दश-दश सौ गव्यूति है। वे मूल मे दश-दश सौ योजन विष्कम्भ वाले है। उनका आकार ऊपर-नीचे सर्वत्र पल्यक (ढोल) के समान गोल है।

४८५—सव्वे वि णं हरि-हरिस्सहकूडा वक्खारकूडवज्जा दस-दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं [पण्णत्ता]। एवं बलकूडा वि नंदणकूडवज्जा।

वक्षार कूट को छोड कर सभी हरि और हरिस्सह कूट दश-दश सौ योजन ऊचे हैं और मूल मे दश सौ योजन विष्कम्भ वाले हैं। इसी प्रकार नन्दन-कूट को छोड कर सभी बलकूट भी दश सौ योजन विस्तार वाले जानना चाहिए।

४८६—अरहा णं अरिट्ठनेमी दस वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व-दुक्खप्पहीणे। पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्था। पासस्स णं अरहओ दस अंतेवासीसयाइं कालगयाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं।

अरिष्टनेमि अर्हत् दश सौ वर्ष (१०००) की समग्र आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु.खो से रहित हुए। पार्श्व अर्हत् के दश सौ अन्तेवासी (शिष्य) काल-गत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दु खो से रहित हुए।

४८७—पउमद्दह-पुंडरीयद्दहा य दस दस जोयणसयाइं आयामेणं पण्णत्ता। १०००।

पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह दश-दश सौ (१०००) योजन लम्बे कहे गये है।

४८८—अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं विमाणा एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

अनुत्तरौपपातिक देवो के विमान ग्यारह सौ (११००) योजन ऊचे कहे गये हैं।

४८९—पासस्स णं अरहओ इक्कारस सयाइं वेउव्वियाणं होत्था। ११००।

पार्श्व अर्हत् के सघ मे ग्यारह सौ (११००) वैक्रिय लब्धि से सम्पन्न साधु थे।

४९०—महापउम-महापुंडरीयद्दहाणं दो-दो जोयणसहस्साइं आयामेण पण्णत्ता। २०००।

महापद्म और महापु डरीकद्रह दो-दो हजार योजन लम्बे हैं।

४९१—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ लोहियक्खकंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं तिन्नि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। ३०००।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के वज्रकाड के ऊपरी चरमान्त भाग से लोहिताक्ष काड का निचला चरमान्त भाग तीन हजार योजन के अन्तरवाला है।

विवेचन—क्योकि वज्रकांड दूसरा और लोहिताक्ष कांड चौथा है, और प्रत्येक कांड एक-एक हजार योजन मोटा है, अत दूसरे काड के उपरिम भाग से चौथे काड का अधस्तन भाग तीन हजार योजन के अन्तरवाला स्वयं सिद्ध है।

४९२—तिगिंछ-केसरिदहा णं चत्तारि-चत्तारि जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता। ४०००।

तिगिंछ और केशरी द्रह चार-चार हजार योजन लम्बे है।

४९३—धरणितले मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए रुयगनाभीओ चउदिसि पंच-पंच जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे मंदरपव्वए पण्णत्ते। ५०००।

धरणीतल पर मन्दर पर्वत के ठीक बीचो बीच रुचकनाभि से चारो ही दिशाओ मे मन्दर पर्वत पाँच-पाँच हजार योजन के अन्तरवाला है। ५०००।

विवेचन—समभूमि भाग पर दश हजार योजन के विस्तार वाले मन्दर पर्वत के ठीक मध्य

भाग में आठ रुचक प्रदेश अवस्थित हैं। उनसे चारो ओर पाँच-पाँच हजार योजन तक मन्दर पर्वत की सीमा है। उसी का प्रस्तुत सूत्र में उल्लेख किया गया है।

४९४—सहस्सारे णं कप्पे छविमाणावाससहस्सा पण्णत्ता। ६०००।

सहस्रार कल्प मे छह हजार विमानावास कहे गये है।

४९५—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणस्स कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ पुलगस्स कंडस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं सत्त जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। ७०००।

रत्नप्रभा पृथिवी के रत्नकाड के ऊपरी चरमान्त भाग से पुलककाड का निचला चरमान्त भाग सात हजार योजन के अन्तरवाला है।

विवेचन—रत्नप्रभा पृथिवी का रत्नकाड पहला है और पुलककाड सातवाँ है। प्रत्येक काड एक-एक हजार योजन मोटा है। अत. प्रथम काड के ऊपरी भाग से सातवे काड का अधोभाग सात हजार योजन के अन्तर पर सिद्ध हो जाता है।

४९६—हरिवास-रम्मया णं वासा अट्ठ जोयणसहस्साइं साइरेगाइं वित्थरेण पण्णत्ता। ८०००।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष कुछ अधिक आठ हजार योजन विस्तारवाले हैं।

४९७—दाहिणड्ढ भरहस्स ण जीवा पाईण-पडीणायया दुहओ समुद्दं पुट्ठा नव जोयणसहस्साइं आयामेण पण्णत्ता। ९०००।

[अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं नव ओहिनाणसहस्साइं होत्था।]

पूर्व और पश्चिम मे समुद्र को स्पर्श करने वाली दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की जीवा नौ हजार योजन लम्बी है।

[अजित अर्हत् के सघ मे कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी थे]

४९८—मंदरे णं पव्वए धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेण पण्णत्ते। १००००।

मन्दर पर्वत धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तारवाला कहा गया है।

४९९ जम्बूदीवे णं दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेण पण्णत्ते। १०००००।

जम्बूद्वीप एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है।

५००—लवणे ण समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेण पण्णत्ते। २०००००।

लवण समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ से दो लाख योजन चौड़ा कहा गया है।

विवेचन—जैसे रथ के चक्र के मध्य भाग को छोडकर उसके आरो की चौडाई चारो ओर एक सी होती है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप लवणसमुद्र के मध्य भाग मे अवस्थित होने से चक्र के मध्य-भाग जैसा है लवण समुद्र की चौडाई सभी ओर दो-दो लाख योजन है अतः उसे चक्रवालविष्कम्भ कहा गया है।

५०१—पासस्स अरहओ णं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया साविया संपया होत्था। ३२७०००।

पार्श्व अर्हत् के संघ तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओ की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

५०२—धायइखंडे णं दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।४०००००।

धातकीखण्ड द्वीप चक्रवालविष्कम्भ की अपेक्षा चार लाख योजन चौडा कहा गया है।

५०३—लवणस्स णं समुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं पंच जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। ५०००००।

लवणसमुद्र के पूर्वी चरमान्त भाग से पश्चिमी चरमान्त भाग का अन्तर पाँच लाख योजन है।

विवेचन—जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है। उसके सभी ओर लवणसमुद्र दो-दो लाख योजन विस्तृत है। अत जम्बूद्वीप का एक लाख तथा पूर्वी और पश्चिमी लवण समुद्र का विस्तार दो-दो लाख ये सब मिलाकर (१+२+२=५) पाँच लाख योजन का सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है।

५०४—भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छपुव्वसयसहस्साइं रायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। ६०००००।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा छह लाख पूर्व वर्ष राजपद पर आसीन रह कर मुंडित हो अगार से अनगारिता मे प्रव्रजित हुए।

५०५—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेइयंताओ धायइखंडचक्कवालस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते सत्त जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। ७०००००।

इस जम्बूद्वीप की पूर्वी वेदिका के अन्त से धातकीखण्ड के चक्रवाल विष्कम्भ का पश्चिमी चरमान्त भाग सात लाख योजन के अन्तर वाला है।

विवेचन—जम्बूद्वीप का एक लाख योजन, लवण समुद्र के पश्चिमी चक्रवाल का दो लाख योजन और धातकीखण्ड के पश्चिमी भाग का चक्रवाल विष्कम्भ चार लाख योजन ये सब मिलाकर (१+२+४=७) सात लाख योजन का सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है।

५०६—माहिंदे णं कप्पे अट्ठ विमाणावाससयसहस्साइं पण्णत्ताइं। ८०००००।

माहेन्द्र कल्प मे आठ लाख विमानावास कहे गये है।

५०७—अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं नव ओहिनाणिसहस्साइं होत्था। ९०००।

अजित अर्हन् के सघ में कुछ अधिक नौ हजार अवधि ज्ञानी थे।[1]

---

१. सस्कृत टीकाकार ने इस सूत्र पर आश्चर्य प्रकट किया है कि लाखो की सख्या-वर्णन के मध्य मे यह सहस्र सख्या वाला सूत्र कैसे आ गया! उन्होने यह भी लिखा है कि यह प्रतिलेखक का भी दोष हो सकता है। अथवा 'सहस्र' शब्द की समानता से यह सूत्र 'शतसहस्र' सख्याओ के मध्य मे दे दिया गया हो। वस्तुत इसका स्थान नौ हजार की संख्या मे होना चाहिए। अतएव वहाँ मूल पाठ और उसके अनुवाद को [ ] खडे कोष्टक के भीतर दे दिया है।

५०८—पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता पंचमाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने। १०००००।

पुरुषसिंह वासुदेव दश लाख वर्ष की कुल आयु को भोग कर पाँचवी नारकपृथिवी मे नारक रूप से उत्पन्न हुए।

५०९—समणेण भगव महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडिं सामन्नपरियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे देवत्ताए उववन्ने। १००००००००।

श्रमण भगवान् महावीर तीर्थंकर भव ग्रहण करने से पूर्व छठे पोट्टिल के भव मे एक कोटि वर्ष श्रमण-पर्याय पाल कर सहस्रार कल्प के सर्वार्थ विमान मे देवरूप से उत्पन्न हुए थे।

५१०—उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवमकोडाकोडी अबाहाए अतरे पण्णत्ते। १००००००००००००००० सा०।

भगवान् श्री ऋषभदेव का और अन्तिम भगवान् महावीर वर्धमान का अन्तर एक कोडा-कोडी सागरोपम कहा गया है। १००००००००००००००० सा०।

द्वादशांग गणि-पिटक

५११—दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्त । त जहा—आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विवाहपन्नत्ती णायाधम्मकहाओ उवासगदसाम्रो अंतगडदसाम्रो अणुत्तरोववाइयदसाम्रो पण्हावागरणाइ विवागसुए दिट्ठिवाए ।

गणि-पिटक द्वादश अंगस्वरूप कहा गया है। वे अग इस प्रकार है— १ आचाराङ्ग, २. सूत्रकृताङ्ग, ३. स्थानाङ्ग, ४. समवायाङ्ग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञाताधमकथा, ७ उपासकदशा, ८. अन्तकृत्-दशा, ९ अनुत्तरोपपातिक दशा, १० प्रश्नव्याकरण, ११ विपाकसूत्र और १२. दृष्टिवाद अंग ।

विवेचन—गुणो के गण या समूह के धारक आचार्य को गणी कहते हैं। पिटक का अर्थ मजूषा, पेटी या पिटारी है। आचार्यों के सर्वस्वरूप श्रुतरत्नो की मजूषा को गणि-पिटक कहा है। जैसे मनुष्य के आठ अग होते है, उसी प्रकार श्रुतरूप परमपुरुष के बारह अग होते हैं, उन्हे ही द्वादशाङ्ग श्रुत कहा जाता है।

५१२--से किं तं आयारे ? आयारे णं समणाण णिग्गथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-ट्ठाण-गमण-चंकमण-पमाण-जोगजु जण-भासासमिति-गुत्ती--सेज्जो--वहि--भत्त-पाण--उग्गम--उप्पायण-एसणा-विसोहि-सुद्धासुद्धग्गहण-वय-णियम-तवोवहाण-सुप्पसत्थमाहिज्जइ ।

यह आचाराङ्ग क्या है—इसमे क्या वर्णन किया गया है ?

आचाराङ्ग मे श्रमण निर्ग्रन्थो के आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय-फल) स्थान, गमन, चक्रमण, प्रमाण, योग-योजन, भाषा, समिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त, पान, उद्गम, उत्पादन, एषणाविशुद्धि, शुद्ध-ग्रहण, अशुद्ध-ग्रहण, व्रत, नियम और तप उपधान, इन सबका सुप्रशस्त रूप से कथन किया गया है।

विवेचन—जो सर्व प्रकार के आरम्भ और परिग्रह से रहित होकर निरन्तर श्रुत-अभ्यास और सयम-परिपालन करने मे श्रम करते है, ऐसे श्रमण-निर्ग्रन्थ साधुओ का आचरण कैसा हो, गोचरी कैसी करे, विनय किसका और किस प्रकार करे, कैसे खडे हो, कैसे गमन करे, कैसे उपाश्रय के भीतर शरीर-श्रम दूर करने के लिए इधर-उधर सचरण करे, उनकी उपधि का क्या प्रमाण हो, स्वाध्याय, प्रतिलेखन आदि मे किस प्रकार से अपने को तथा दूसरो को नियुक्त करे, किस प्रकार की भाषा बोले, पाँच समितियो और तीन गुप्तियो का किस प्रकार से पालन करे, शय्या, उपधि, भोजन, पान आदि की उद्गम और उत्पादन आदि दोषो का परिहार करते हुए किस प्रकार से गवेषणा करे, उसमें लगे दोषो की किस प्रकार से शुद्धि करे, कौन-कौन से व्रतो (मूल गुण) नियमो (उत्तरगुण) और तप उपधान (बारह प्रकार के तप) का किस प्रकार से पालन करे, इन सब कर्तव्यो का आचाराङ्ग मे उत्तम प्रकार से वर्णन किया गया है।

५१३—से समासओ पंचविहे पण्णत्ते । त जहा—णाणायारे दसणायारे चरित्तायारे तवायारे विरियायारे । आयारस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ ।

आचार संक्षेप से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—ज्ञानाचार, दर्शनाचार चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। इस पाँच प्रकार के आचार का प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र भी आचार कहलाता है। आचाराग की परिमित सूत्रार्थप्रदान रूप वाचनाए है, सख्यात उपक्रम आदि अनुयोग-द्वार है, सख्यात प्रतिपत्तियाँ है, सख्यात वेष्टक हैं, सख्यात श्लोक हैं, और सख्यात निर्युक्तियाँ है।

विवेचन—ज्ञान का विनय करना, स्वाध्याय-काल मे पठन-पाठन करना, गुरु का नाम नही छिपाना, आदि आठ प्रकार के व्यवहार को ज्ञानाचार कहते हैं। जिन-भाषित तत्त्वो मे शका नही करना, सासारिक सुख-भोगो की आकाक्षा नही करना, विचिकित्सा नही करना आदि आठ प्रकार के सम्यक्त्वी व्यवहार के पालन करने को दर्शनाचार कहते हैं। पाँच महाव्रतो का, पाँच समितियो आदि रूप चारित्र का निर्दोष पालन करना चारित्राचार है। बहिरग और अन्तरग तपो का सेवन करना तपाचार है। अपने आवश्यक कर्त्तव्यो के पालन करने मे शक्ति को नही छिपा कर यथाशक्ति उनका भली-भाति से पालन करना वीर्याचार है।

उक्त पाँच प्रकार के आचार की वाचनाए परीत (सीमित) है। आचार्य-द्वारा आगमसूत्र और सूत्रो का अर्थ शिष्य को देना 'वाचना' कहलाती है। आचाराङ्ग की ऐसी वाचनाए असख्यात या अनन्त नही होती है, किन्तु परिगणित ही होती है, अत. उन्हे 'परीत' कहा गया है। ये वाचनाए उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के कर्मभूमि के समय मे ही दी जाती है, अकर्मभूमि या भोगभूमि के युग मे नही दी जाती हैं।

उपक्रम, नय, निक्षेप और अनुगम के द्वारा वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है, अत एव उन्हे अनुयोग-द्वार कहते हैं। आचाराङ्ग के ये अनुयोगद्वार भी सख्यात ही है। वस्तु-स्वरूप प्रज्ञापक वचनो को प्रतिपत्ति कहते है। विभिन्न मत वालो ने पदार्थों का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार से माना है, ऐसे मतान्तर भी सख्यात ही होते है। विशेष—एक विशेष प्रकार के छन्द को वेढ या वेष्टक कहते है। मतान्तर से एक विषय का प्रतिपादन करनेवाली शब्दसकलना को वेढ (वेष्टक) कहते है। आचाराङ्ग के ऐसे छन्दोविशेष भी सख्यात ही है। जिस छन्द के एक चरण या पाद मे आठ अक्षर निबद्ध हो, ऐसे चार चरणवाले अनुष्टुप् छन्द को श्लोक कहते है। आचाराङ्ग मे आचारधर्म के प्रतिपादन करनेवाले श्लोक भी सख्यात ही है। सूत्र-प्रतिपादित सक्षिप्त अर्थ को शब्द की व्युत्पत्ति-पूर्वक युक्ति के साथ प्रतिपादन करना निर्युक्ति कहलाती है। ऐसी निर्युक्तियाँ भी आचाराङ्ग की सख्यात ही है।

५१४—से णं अंगट्ठयाए पढमे अगे, दो सुयक्खधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीइ उद्देसणकाला, पचासीइं समुद्देसणकाला, अट्ठारस पदसहस्साइं, पदग्गेण, संखेज्जा अक्खरा, [अणंता गमा] अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा निबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दसिज्जंति निदसिज्जंति उवदसिज्जंति।

से एवं णाया, एवं विण्णाया, एव चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जति निदसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से त्तं आयारे। १।

गणि-पिटक के द्वादशाङ्ग मे अगकी (स्थापना की) अपेक्षा 'आचार' प्रथम अग है। इसमे दो श्रुतस्कन्ध है, पच्चीस अध्ययन है, पचासी उद्देशन-काल हैं, पचासी समुद्देशन-काल है। पद-गणना की

अपेक्षा इसमें अट्ठारह हजार पद है, सख्यात अक्षर है, अनन्त गम है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं, अत. उनके जानने रूप ज्ञान के द्वार भी अनन्त ही होते है पर्याय भी अनन्त है, क्योकि वस्तु के धर्म अनन्त है। त्रस जीव परीत (सीमित) हैं। स्थावर जीव अनन्त हैं। सभी पदार्थ द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत (नित्य) है, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कृत (अनित्य) हैं, सर्व पदार्थ सूत्रो मे निबद्ध (ग्रथित) हैं और निकाचित है अर्थात् निर्युक्ति, सग्रहणी, हेतु, उदाहरण आदि से प्रतिष्ठित है। इस आचाराङ्ग मे जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रज्ञप्त (उपदिष्ट) भाव सामान्य रूप से कहे जाते हैं, विशेष रूप से प्ररूपण किये जाते है, हेतु, दृष्टान्त आदि के द्वारा दर्शाये जाते है, विशेष रूप से निर्दिष्ट किये जाते है, और उपनय-निगमन के द्वारा उपदर्शित किये जाते है।

आचाराङ्ग के अध्ययन से आत्मा वस्तु-स्वरूप का एव आचार-धर्म का ज्ञाता होता है, गुण-पर्यायो का विशिष्ट ज्ञाता होता है तथा अन्य मतो का भी विज्ञाता होता है। इस प्रकार आचार-गोचरी आदि चरणधर्मो की, तथा पिण्डशुद्धि आदि करणधर्मों की प्ररूपणा-इसमे सक्षेप से की जाती है, विस्तार से की जाती है, हेतु-दृष्टान्त से उसे दिखाया जाता है, विशेष रूप से निर्दिष्ट किया जाता और उपनय-निगमन के द्वारा उपदर्शित किया जाता है ।। १ ।।

५१५—से कि तं सूअगडे ? सूयगडे ण ससमया सूइज्जति, परसमया सूइज्जंति, ससमय-परसमया सूइज्जंति, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगो सूइज्जति, अलोगो सूइज्जति लोगालोगो सूइज्जति।

सूत्रकृत क्या है—उसमे क्या वर्णन है ?

सूत्रकृत के द्वारा स्वसमय सूचित किये जाते है, पर-समय सूचित किये जाते है, स्वसमय और पर-समय सूचित किये जाते है, जीव सूचित किये जाते है, अजीव सूचित किये जाते है, जीव और अजीव सूचित किये जाते है, लोक सूचित किया जाता है, अलोक सूचित किया जाता है और लोक-अलोक सूचित किया जाता है।

५१६—सूयगडे णं जीवाजीव-पुण्ण-पावासव-संवर-निज्जरण-बंध-मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति। समणाणं अचिरकालपव्वइयाण कुसमयमोह-मोहमइ-मोहियाणं संदेहजायसहजबुद्धि परिणामससइयाणं पावकर-मलिनमइ-गुण-विसोहणत्थ असीअस्स किरियावाइयसयस्स, चउरासीए अकिरियवाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं, बत्तीसाए वेणइयवाईणं तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जति। णाणादिट्ठंत-वयण-णिस्सार सुट्ठु दरिसयंता विविहवित्थाराणुगम-परमसब्भावगुणविसिट्ठा मोहपहोयारगा उवारा अण्णाण-तमंधकारदुग्गेसु दीवभूआ सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभ-निप्पकंपा सुत्तत्था।

सूत्रकृत के द्वारा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तक के सभी पदार्थ सूचित किये जाते है। जो श्रमण अल्पकाल से ही प्रव्रजित है जिनकी बुद्धि खोटे समयो या सिद्धान्तो के सुनने से मोहित है, जिनके हृदय तत्त्व के विषय मे सन्देह के उत्पन्न होने से आन्दोलित हो रहे है और सहज बुद्धि का परिणमन सशय को प्राप्त हो रहा है, उनकी पाप उपार्जन करनेवाली मलिन मति के दुर्गुणो के शोधन करने के लिए क्रियावादियो के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियो के

चौरासी, अज्ञानवादियो के सडसठ और विनयवादियो के बत्तीस, इन सब (१८०+८४+६७+३२ =३६३) तीन सौ तिरेसठ अन्य वादियो का व्यूह अर्थात् निराकरण करके स्व-समय (जैन सिद्धान्त) स्थापित किया जाता है। नाना प्रकार के दृष्टान्तपूर्ण युक्ति-युक्त वचनो के द्वारा पर-मत के वचनो की भली भाँति से नि सारता दिखलाते हुए, तथा सत्पद-प्ररूपणा आदि अनेक अनुयोग द्वारो के द्वारा जीवादि तत्त्वो को विविध प्रकार से विस्तारानुगम कर परम सद्भावगुण-विशिष्ट, मोक्षमार्ग के अवतारक, सम्यग्दर्शनादि मे प्राणियो के प्रवर्तक, सकलसूत्र-अर्थसम्बन्धी दोषो से रहित, समस्त सद्-गुणो से सहित, उदार, प्रगाढ अन्धकारमयी दुर्गों मे दीपकस्वरूप, सिद्धि और सुगति रूपी उत्तम गृह के लिए सोपान के समान, प्रवादियो के विक्षोभ से रहित निष्प्रकम्प सूत्र और अर्थ सूचित किये जाते है।

५१७- सूयगडस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, सखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ।

सूत्रकृताग की वाचनाएँ परिमित है, अनुयोगद्वार सख्यात है, प्रतिपत्तिया सख्यात हैं, वेढ सख्यात हैं, श्लोक सख्यात हैं, और निर्युक्तिया सख्यात है।

५१८—से णं अंगट्ठायाए दोच्चे अगे, दो सुयक्खधा, तेवीसं अज्झयणा, तेत्तीस उद्देसणकाला, तेत्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पदसहस्साइं पयग्गेण पण्णत्ताइं। संखेज्जा अक्खरा, अणता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एव आया, एव विण्णाया, एव चरण-करण-परूवणया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से तं सुअगडे २।

अगो की अपेक्षा यह दूसरा अग है। इसके दो श्रुतस्कन्ध है, तेईस अध्ययन है, तेतीस उद्देशनकाल है, तेतीस समुद्देशनकाल है, पद-परिमाण से छत्तीस हजार पद है, सख्यात अक्षर, अनन्तगम और अनन्त पर्याय है। परिमित त्रस और अनन्त स्थावर जीवो का तथा नित्य, अनित्य सूत्र मे साक्षात् कथित एव निर्युक्ति आदि द्वारा सिद्ध जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित पदार्थों का सामान्य-विशेष रूप मे कथन किया गया है, नाम, स्थापना आदि भेद करके प्रज्ञापन किया है, नामादि के स्वरूप का कथन करके प्ररूपण किया गया है, उपमाओ द्वारा दर्शित किया गया है, हेतु दृष्टान्त आदि देकर निदर्शित किया गया है और उपनय-निगमन द्वारा उपदर्शित किए गए है।

इस अग का अध्ययन करके अध्येता ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है। इस अग मे चरण (मूल गुणो) तथा करण (उत्तर गुणो) का कथन किया गया है, प्रज्ञापना और प्ररूपणा की गई है। उनका निदर्शन और उपदर्शन कराया गया है। यह सूत्रकृताग का परिचय है ॥ २ ॥

विवेचन—जिन-भाषित सिद्धान्त को स्वसमय कहते है, कुतीर्थियों के द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त को परसमय कहते है। और दोनो के सिद्धान्तो को स्वसमय-परसमय कहा जाता है। दूसरे सूत्रकृताग अंग में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। तथा जीव-अजीव, लोक-अलोक, पुण्य-पाप आदि पदार्थों का विशद विवेचन किया है। यद्यपि अपनी-अपनी कल्पनाओ के अनुसार तत्त्वो का निरूपण करने वाले मत-मतान्तर अगणित है, फिर भी स्थूल रूप से उनको चार वर्गों मे विभाजित किया गया है।

वे हैं—१ क्रियावादी, २. अक्रियावादी, ३. अज्ञानिक और ४. वैनयिक। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. जो पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष को, तथा उनकी साधक-क्रियाओ को मानते हुए भी एकान्त पक्ष को पकडे हुए हैं, वे क्रियावादी कहलाते हैं। उनकी सख्या एक सौ अस्सी है। वह इस प्रकार है—क्रियावादी जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, पुण्य, पाप और मोक्ष इन नौ पदार्थों को मानते है। पुन· प्रत्येक पदार्थ को कोई स्वत भी मानते हैं और कोई परतः भी मानते है। अत. नौ पदार्थों के अट्ठारह भेद हो जाते है। पुन इन अट्ठारहो ही भेदो को कोई नित्यरूप मानते हैं और कोई अनित्य रूप मानते हैं, अत अट्ठारह को दो से गुणित करने पर छत्तीस भेद हो जाते हैं। पुन. वे इन छत्तीसो भेदो को कोई कालकृत मानता है, कोई ईश्वरकृत मानता है, कोई आत्मकृत मानता है, कोई नियति-कृत मानता है और कोई स्वभावकृत मानता है। इस प्रकार इन पाँच मान्यताओ से उक्त छत्तीस भेदो को गुणित करने पर (३६ × ५ = १८०) एक सौ अस्सी क्रियावादियो के भेद हो जाते हैं।

२ अक्रियावादी पुण्य और पाप को नही मानते है, केवल जीवादि सात पदार्थों को ही मानते है और उन्हे कोई स्वत मानता है और कोई परत· मानता है। अत सात को इन दो भेदो से गुणित करने पर चौदह भेद हो जाते है। पुन इन चौदह भेदो को कोई कालकृत मानता है, कोई ईश्वरकृत मानता है, कोई आत्मकृत मानता है, कोई नियतिकृत मानता है, कोई स्वभावकृत मानता है और कोई यदृच्छा-जनित मानता है। इस प्रकार उक्त चौदह-पदार्थों को इन छह मान्यताओ से गुणित करने पर (१४ × ६ = ८४) चौरासी भेद अक्रियावादियो के हो जाते है।

३. अज्ञानवादियो की मान्यता है कि कौन जानता है कि जीव है, या नही ? अजीव है, या नही ? इत्यादि प्रकार से ये जीवादि पदार्थों को अज्ञान के झमेले मे डालते हैं। तथा जिन देव ने इन नौ पदार्थों का '(१) स्यादस्ति, (२) स्यान्नास्ति, (३) स्यादस्तिनास्ति, (४) स्यादवक्तव्य, (५) स्यादस्ति-अवक्तव्य, (६) स्यान्नास्ति-अवक्तव्य और (७) स्यादस्ति-नास्तिअवक्तव्य' इन सात भगो के द्वारा निरूपण किया है, उनके विषय मे भी अज्ञान को प्रकट करते है। इस प्रकार जीवादि नौ पदार्थो के विषय मे उक्त सात भग रूप अज्ञानता के कारण (९ × ७ = ६३) तिरेसठ भेद हो जाते है। तथा नौ पदार्थों के अतिरिक्त दशवी उत्पत्ति के विषय मे भी उक्त सात भगो में से आदि के चार भगो के द्वारा अजानकारी प्रकट करते है। इस प्रकार उक्त ६३ मे इन चार भेदो को जोड देने पर ६७ भेद अज्ञानवादियो के हो जाते है।

४ विनयवादी सबका विनय करने को ही धर्म मानते है। उनके मतानुसार १ देव, २ नृपति, ३. ज्ञाति, ४ यति, ५. स्थविर (वृद्ध), ६ अधम, ७ माता और ८ पिता इन आठो की मन से, वचन से और काय से विनय करना और इनको दान देना धर्म है। इस प्रकार उक्त आठ को मन, वचन, काय और दान इन चार से गुणित करने पर बत्तीस (८ × ४ = ३२) भेद विनयवादियो के हो जाते हैं।

उक्त चारों प्रकार के एकान्तवादियों के तीन सौ तिरेसठ मतो का स्याद्वाद की दृष्टि से निराकरण कर यथार्थ वस्तु-स्वरूप का निर्णय इस दूसरे सूत्रकृत अग में किया गया है।

५१९—से किं तं ठाणे ? ठाणेणं ससमया ठाविज्जंति, परसमया ठाविज्जंति, ससमय-परसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवा-जीवा ठाविज्जंति, लोगे ठाविज्जति, अलोगे ठाविज्जति, लोगालोगे ठाविज्जति ।

ठाणेणं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पयत्थाणं—

सेला सलिला य समुद्दा सूर-भवण-विमाण-आगर-णदीओ ।
णिहिओ पुरिसज्जाया सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥१॥

—एक्कविहवत्तव्वयं दुविहवत्तव्वयं जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जति ।

स्थानाङ्ग क्या है—इसमें क्या वर्णन है ?

जिसमें जीवादि पदार्थ प्रतिपाद्य रूप से स्थान प्राप्त करते हैं, वह स्थानाङ्ग है । इसके द्वारा स्वसमय स्थापित-सिद्ध किये जाते हैं, पर-समय स्थापित किये जाते है, स्वसमय-परसमय स्थापित किये जाते हैं । जीव स्थापित किये जाते है, अजीव स्थापित किये जाते हैं, जीव-अजीव स्थापित किये जाते हैं । लोक स्थापित किया जाता है, अलोक स्थापित किया जाता है, और लोक-अलोक दोनो स्थापित किये जाते हैं ।

स्थानाङ्ग मे जीव आदि पदार्थों के द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायो का निरूपण किया गया है । तथा शैलो (पर्वतो) का, गंगा आदि महानदियो का, समुद्रो, सूर्यों, भवनो, विमानो, आकरो (स्वर्ण आदि की खानो) सामान्य नदियो, चक्रवर्ती की निधियो एव पुरुषो की अनेक जातियो का स्वरो के भेदों, गोत्रों और ज्योतिष्क देवो के सचार का वर्णन किया गया है । तथा एक-एक प्रकार के पदार्थों का दो-दो प्रकार के पदार्थों का यावत् दश-दश प्रकार के पदार्थों का कथन किया गया है । जीवों का, पुद्गलो का तथा लोक में अवस्थित धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि द्रव्यो का भी प्ररूपण किया गया है ॥ १ ॥

५२०—ठाणस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ संगहणीओ ।

स्थानाङ्ग की वाचनाएं परीत (सीमित) हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ सख्यात हैं, वेढ (छन्दोविशेष) संख्यात हैं, श्लोक सख्यात है, और संग्रहणियाँ सख्यात हैं ।

५२१—से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, [एक्कवीसं समुद्देसणकाला] बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं । संखेज्जा अक्खरा, अणंता [गमा, अणंता] पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । से एवं आया, एवं णाया एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति० । से त्तं ठाणे ३ ।

यह स्थानाङ्ग अंग की अपेक्षा तीसरा अंग है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, इक्कीस उद्देशन-काल है, [इक्कीस समुद्देशन काल हैं ।] पद-गणना की अपेक्षा इसमें बहत्तर हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम (ज्ञान-प्रकार) हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं । अनन्त स्थावर हैं ।

द्रव्य-दृष्टि से सर्व भाव शाश्वत है, पर्याय-दृष्टि से अनित्य हैं, निबद्ध हैं, निकाचित (दृढ किये गये) हैं, जिन-प्रज्ञप्त हैं। इन सब भावो का इस अग मे कथन किया जाता है, प्रज्ञापन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है, निदर्शन किया जाता है और उपदर्शन किया जाता है। इस अग का अध्येता आत्मा ज्ञाता हो जाता है, विज्ञाता हो जाता है। इस प्रकार चरण और करण प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह तीसरे स्थानाङ्ग का परिचय है ॥३॥

५२२—से किं तं समवाए ? समवाए णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमय-परसमया सूइज्जंति। जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगे सूइज्जति, अलोगे सुइज्जति, लोगालोगे सूइज्जति।

समवायाङ्ग क्या है ? इसमे क्या वर्णन है ?

समवायाङ्ग मे स्वसमय सूचित किये जाते हैं, पर-समय सूचित किये जाते है, और स्वसमय-पर-समय सूचित किये जाते हैं। जीव सूचित किये जाते हैं, अजीव सूचित किये जाते हैं, और जीव-अजीव सूचित किये जाते है। लोक सूचित किया जाता है, अलोक सूचित किया जाता है और लोक-अलोक सूचित किया जाता है।

५२३—समवाएण एकाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुड्ढीए दुवालसंगस्स वि गणिपडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे आहिज्जति। तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया, वित्थरेण अवरे वि य बहुविहा विसेसा नरग-तिरिय-मणुअ-सुरगणाण आहारुस्सास-लेसा-आवास-सख-आययप्पमाण-उववाय-चवण-उग्गहणोवहि-वेयणविहाण-उपओग-जोग-इंदिय-कसाया विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्से-हपरिरयप्पमाण विहिविसेसा य मदरादीण महीधराणं कुलगर-तित्थगर-गणहराणं सम्मत्त-भरहाहिवाण चक्कीणं चेव चक्कहर-हलहराण य वासाण य निगमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जति।

समवायाङ्ग के द्वारा एक, दो, तीन को आदि लेकर एक-एक स्थान की परिवृद्धि करते हुए शत, सहस्र और कोटाकोटी तक के कितने ही पदार्थों का और द्वादशाङ्ग गणिपिटक के पल्लवाग्रो (पर्यायो के प्रमाण) का कथन किया जाता है। सौ तक के स्थानो का, तथा बारह अगरूप मे विस्तार को प्राप्त, जगत् के जीवो के हितकारक भगवान् श्रुतज्ञान का सक्षेप से समवतार किया जाता है। इस समवायाङ्ग मे नाना प्रकार के भेद-प्रभेद वाले जीव और अजीव पदार्थ वर्णित है। तथा विस्तार से अन्य भी बहुत प्रकार के विशेष तत्वो का नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव गणो के आहार, उच्छ्वास, लेश्या, आवास-सख्या, उनके आयाम-विष्कम्भ का प्रमाण उपपात (जन्म) च्यवन (मरण) अवगाहना, उपधि, वेदना, विधान (भेद), उपयोग, योग, इन्द्रिय, कषाय, नाना प्रकार की जीव-योनियाँ, पर्वत-कूट आदि के विष्कम्भ (चौडाई) उत्सेध (ऊचाई) परिरय (परिधि) के प्रमाण, मन्दर आदि महीधरो (पर्वतो) के विधि-(भेद) विशेष, कुलकरों, तीर्थंकरो, गणधरो, समस्त भरतक्षेत्र के स्वामी चक्रवर्तियो का, चक्रधर-वासुदेवो और हलधरो (बलदेवो) का, क्षेत्रो का, निर्गमो का

अर्थात् पूर्व-पूर्व क्षेत्रों से उत्तर के (आगे के) क्षेत्रों के अधिक विस्तार का, तथा इसी प्रकार के अन्य भी पदार्थों का इस समवायाङ्ग मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

५२४—समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ।

समवायाङ्ग की वाचनाए परीत हैं, अनुयोगद्वार सख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ सख्यात हैं, वेढ सख्यात हैं, श्लोक सख्यात है, और निर्युक्तिया सख्यात हैं।

५२५—से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे अज्झयणे, एगे सुयक्खंधे, एगे उद्देसणकाले [एगे समुद्देसणकाले]। चउयाले पदसयसहस्से पदग्गेणं पण्णत्ते। संखेज्जाणि अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा निबद्धा निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण परूवणया आघविज्जति०। से त्तं समवाए ४।

अग की अपेक्षा यह चौथा अंग है, इसमे एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कन्ध है, एक उद्देशन काल है, [एक समुद्देशन-काल है,] पद-गणना की अपेक्षा इसके एक लाख चवालीस हजार पद है। इसमे सख्यात अक्षर है, अनन्त गम (ज्ञान-प्रकार) है, अनन्त पर्याय है, परीत त्रस, अनन्त स्थावर तथा शाश्वत, कृत (अनित्य), निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अग मे कहे जाते है, प्रज्ञापित किये जाते है, प्ररूपित किये जाते है, निदर्शित किये जाते है और उपदर्शित किये जाते है। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह चौथा समवायाङ्ग है ४।

५२६—से किं तं विवाहे? विवाहेणं ससमया विआहिज्जंति, परसमया विआहिज्जंति, ससमय-परसमया विआहिज्जंति, जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, लोगे विआहिज्जइ, अलोए विआहिज्जइ, लोगालोगे विआहिज्जइ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति क्या है—इसमें क्या वर्णन है?

व्याख्याप्रज्ञप्ति के द्वारा स्वसमय का व्याख्यान किया जाता है, पर-समय का व्याख्यान किया जाता है, तथा स्वसमय-परसमय का व्याख्यान किया जाता है। जीव व्याख्यात किये जाते है, अजीव व्याख्यात किये जाते है, तथा जीव और अजीव व्याख्यात किये जाते है। लोक व्याख्यात किया जाता है, अलोक व्याख्यात किया जाता है। तथा लोक और अलोक व्याख्यात किये जाते है।

५२७—विवाहे णं नाणाविहसुर-नरिंद-रायरिसि-विविहसंसइअ-पुच्छिआणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पदेस-परिणाम-जहत्थिभाव-अणुगम-निक्खेव-णयप्पमाण-सुनिउणोवक्कम-विविहप्पकार-पगडपयासियाणं लोगालोगपयासियाणं संसारसमुद्द-रुंद-उत्तरण-समत्थाणं सुरवइ-संपूजियाणं भवियजण-पय-हिययाभिनंदियाणं तमरय-विद्धंसणाणं सुदिट्ठदीवभूय-ईहामति-

बुद्धि-बद्धणाणं छत्तीससहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ सुयत्थबहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में नाना प्रकार के देवो, नरेन्द्रो, राजर्षियों और अनेक प्रकार के संशयों में पडे हुए जनो के द्वारा पूछे गये प्रश्नो का और जिनेन्द्र देव के द्वारा भाषित उत्तरो का वर्णन किया गया है। तथा द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश-परिमाण, यथास्थित भाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, सुनिपुण-उपक्रमो के विविध प्रकारो के द्वारा प्रकट रूप से प्रकाशित करने वाले, लोकालोक के प्रकाशक, विस्तृत ससार-समुद्र से पार उतारने में समर्थ, इन्द्रो द्वारा संपूजित, भव्य जन प्रजा के, अथवा भव्य जन-पदो के हृदयो को अभिनन्दित करने वाले, तमोरज का विध्वसन करने वाले, सुदृष्ट (सुनिर्णीत) दीपक स्वरूप, ईहा, मति और बुद्धि को बढाने वाले ऐसे अन्यून (पूरे) छत्तीस हजार व्याकरणो (प्रश्नो के उत्तरों) को दिखाने से यह व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्रार्थ के अनेक प्रकारों का प्रकाशक है, शिष्यो का हित-कारक है और गुणो से महान् अर्थ से परिपूर्ण है।

५२८—**वियाहस्स ण परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ ।**

व्याख्याप्रज्ञति की वाचनाए परीत हैं, अनुयोगद्वार सख्यात है, प्रतिपत्तिया सख्यात हैं, वेढ (छन्दोविशेष) सख्यात हैं, श्लोक सख्यात है और निर्युक्तियाँ सख्यात है।

५२९—**से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसते, दस उद्देसग-सहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइ, छत्तीसं वागरणसहस्साइं चउरासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जाइं अक्खराइं, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदं-सिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एव विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जति। से तं वियाहे ५।**

यह व्याख्याप्रज्ञप्ति अग रूप से पाँचवाँ अग है। इसमे एक श्रुतस्कन्ध है, सौ से कुछ अधिक अध्ययन है, दश हजार उद्देशक है, दश हजार समुद्देशक है, छत्तीस हजार प्रश्नों के उत्तर हैं। पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद हैं। सख्यात अक्षर है, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर है। ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त-भाव इस अग मे कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते है, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते है। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह पाँचवें व्याख्याप्रज्ञप्ति अग का परिचय है ५।

विवेचन—आचाराग से लेकर समवायाग तक पदों का परिमाण दुगुना-दुगुना है किन्तु व्याख्याप्रज्ञप्ति के पदो मे द्विगुणता का आश्रय नही लिया गया है। किन्तु यहाँ चौरासी हजार पदो का उल्लेख स्पष्ट है।

५३०—से किं तं णायाधम्मकहाओ ? णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणखंडा रायाणो ५, अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइअ-इड्ढिविसेसा १०, भोयपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा १५, सलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायायाइं २०, पुणबोहिलाभा अंत-किरियाओ २२ य आघविज्जंति पण्णविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

ज्ञाताधर्मकथा क्या है—इसमे क्या वर्णन है ?

ज्ञाताधर्मकथा मे ज्ञात अर्थात् उदाहरणरूप मेघकुमार आदि पुरुषो के १ नगर, २ उद्यान, ३ चैत्य, ४ वनखण्ड, ५ राजा, ६ माता-पिता, ७ समवसरण, ८ धर्माचार्य, ९ धर्मकथा, १० इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, ११ भोग-परित्याग, १२ प्रव्रज्या, १३ श्रुतपरिग्रह, १४ तप-उपधान, १५ दीक्षापर्याय, १६ सलेखना, १७ भक्तप्रत्याख्यान, १८ पादपोपगमन, १९ देवलोक-गमन, २० सुकुल मे पुनर्जन्म, २१ पुन बोधिलाभ और २२ अन्तक्रियाए कही जाती है। इनकी प्ररूपणा की गई है, दर्शायी गई है, निर्दशित की गई हैं और उपदर्शित की गई है।

५३१—नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणय-करण-जिणसामिसासणवरे संजमपइण्णपालण-धिइ-मइ-ववसायदुब्बलाणं १, तवनियम-तवोवहाण-रण-दुद्धर-भर-भग्गा-णिसहय-णिसिट्ठाणं २, घोर-परीसह-पराजियाणंऽसहपारद्ध-रुद्धसिद्धालय-महग्गा-निग्गयाणं ३, विसयसुह-तुच्छ-आसावस-दोसमुच्छि-याणं ४, विराहिय-चरित्त-नाण-दंसण-जइगुण-विविहप्पयार-निस्सारसुन्नयाणं ५, संसार-अपार-दुक्ख-दुग्गइ-भवविविह-परंपरापवंचा ६ धीराण य जियपरिसह-कसाय-सेण्ण-धिइ-धणिय-संजम-उच्छाह-निच्छियाणं ७, आराहियनाण-दंसण-चरित्तजोग-निस्सल्ल-सुद्धसिद्धालय-मग्गमभिमुहाणं सुरभवण-विमाणसुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि। ततो य कालक्कमचुयाणं जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया। चलियाण य सदेव-माणुस्सधीर-करण-कारणाणि बोधण-अणुसासणाणि गुण-दोस दरिसणाणि। दिट्ठंते पच्चये य सोऊण लोगमुणिणो जह य ठियासासणम्मि जर-मरण-नासणकरे आराहिअसंजमा य सुरलोगपडिनियत्ता ओवेन्ति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं, एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य।

ज्ञाताधर्मकथा मे प्रव्रजित पुरुषो के विनय-करण-प्रधान, प्रवर जिन-भगवान् के शासन की सयम-प्रतिज्ञा के पालन करने मे जिनकी धृति (धीरता), मति (बुद्धि) और व्यवसाय (पुरुषार्थ) दुर्बल है, तपश्चरण का नियम और तप का परिपालन करनेरूप रण (युद्ध) के दुर्धर भार को वहन करने से भग्न है—पराङ्मुख हो गये है, अत एव अत्यन्त अशक्त होकर सयम-पालन करने का सकल्प छोडकर बैठ गये है, घोर परीषहो से पराजित हो चुके है इसलिए सयम के साथ प्रारम्भ किये गये मोक्ष-मार्ग के अवरुद्ध हो जाने से जो सिद्धालय के कारणभूत महामूल्य ज्ञानादि से पतित है, जो इन्द्रियो के तुच्छ विषय-सुखो की आशा के वश होकर रागादि दोषो से मूर्च्छित हो रहे है, चारित्र, ज्ञान, दर्शन स्वरूप यति-गुणो से और उनके विविध प्रकारो के अभाव से जो सर्वथा नि सार और शून्य है, जो ससार के अपार दु खो की और नरक, तिर्यंचादि नाना दुर्गतियो की भव-परम्परा से प्रपच मे पडे हुए है, ऐसे पतित पुरुषो की कथाएं है। तथा जो धीर वीर है, परीषहों और कषायो की सेना को जीतने वाले है, धैर्य के धनी है, सयम मे उत्साह रखने और बल-वीर्य के प्रकट करने मे

दृढ निश्चय वाले हैं, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और समाधि-योग की जो आराधना करने वाले है, मिथ्यादर्शन, माया और निदानादि शल्यो से रहित होकर शुद्ध निर्दोष सिद्धालय के मार्ग की ओर अभिमुख है, ऐसे महापुरुषो की कथाए इस अग मे कही गई है। तथा जो सयम-परिपालन कर देवलोक मे उत्पन्न हो देव-भवनो और देव-विमानो के अनुपम सुखो को और दिव्य, महामूल्य, उत्तम, भोग-उपभोगो को चिर-काल तक भोग कर कालक्रम के अनुसार वहाँ से च्युत हो पुन. यथायोग्य मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर अन्तक्रिया से समाधिमरण के समय कर्म-वश विचलित हो गये है, उनको देवो और मनुष्यो के द्वारा धैर्य धारण कराने मे कारणभूत, सबोधनो और अनुशासनो को, सयम के गुण और सयम से पतित होने के दोष-दर्शक दृष्टान्तो को, तथा प्रत्ययो को, अर्थात् बोधि के कारण-भूत वाक्यो को सुनकर शुकपरिव्राजक आदि लौकिक मुनि जन भी जरा-मरण का नाश करने वाले जिन-शासन मे जिस प्रकार से स्थित हुए, उन्होने जिस प्रकार से सयम की आराधना की, पुन. देव-लोक मे उत्पन्न हुए, वहाँ से आकर मनुष्य हो जिस प्रकार शाश्वत सुख को और सर्वदु ख-विमोक्ष को प्राप्त किया उनकी, तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक महापुरुषों की कथाए इस अग मे विस्तार से कही गई है।

५३२—णायाधम्मकहासु ण परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, सखेज्जा वेढा, सखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

ज्ञाताधर्मकथा मे परीत वाचनाए है, सख्यात अनुयोगद्वार है, सख्यात प्रतिपत्तियाँ है, सख्यात वेढ है, सख्यात श्लोक है, सख्यात निर्युक्तियाँ है और सख्यात सग्रहणिया है।

५३३—से ण अंगट्ठयाए छट्ठे अगे, दो सुअक्खधा, एगूणवीस अज्झयणा। ते समासओ दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—चरिता य कप्पिया य। दस धम्मकहाण वग्गा। तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पच पंच अक्खाइयासयाइ, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइय-उवक्खाइयासयाइ, एवमेव सपुव्वावरेण अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खायाओ।

यह ज्ञाताधर्मकथा अगरूप से छठा अग है। इसमे दो श्रुतस्कन्ध है उनमे से प्रथम श्रुत-स्कन्ध (ज्ञात) के उन्नीस अध्ययन है। वे सक्षेप से दो प्रकार के कहे गये है—चरित और कल्पित। (इनमे से आदि के दस अध्ययनो मे आख्यायिका आदिरूप अवान्तर भेद नही है। शेष नौ अध्ययनो मे से प्रत्येक मे ५४० आख्यायिकाए प्रत्येक आख्यायिका मे ५०० उपाख्यायिकाए और प्रत्येक उपाख्यायिका ५०० आख्यायिका उपाख्यायिकाए हैं। इन का कुल जोड (५४० × ५०० × ५०० × ९ = १२१५०००००००) एक सौ इक्कीस करोड पचास लाख होता है।)

धर्मकथाओ के दश वर्ग है। उनमे से एक-एक धर्मकथा मे पाच-पाच सौ आख्यायिकाए है, एक-एक आख्यायिका मे पाच-पाच सौ उपाख्यायिकाए है, एक-एक उपाख्यायिका मे पाच-पाच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकाए है। इस प्रकार ये सब पूर्वापर से गुणित होकर [(५०० × ५०० × ५०० = १२५००००००) बारह करोड, पचास लाख होती है। धर्मकथा विभाग के दश वर्ग कहे गये हैं। अत· उक्त राशि को दश से गुणित करने पर (१२५०००००० × १० = १२५००००००००) एक सौ पच्चीस करोड सख्या होती है। उसमे समान लक्षणवाली ऊपर कही पुनरुक्त (१२१५०००००००) कथाओ को घटा देने पर (१२५००००००००—१२१५००००००० = ३५००००००) साढे तीन करोड़ अपुनरुक्त कथाएं हैं।

५३४–एगूणतीस उद्देसणकाला, एगूणतीस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा निबद्ध निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति०। से त्तं णायाधम्मकहाओ ६।

ज्ञाताधर्मकथा में उनतीस उद्देशन काल है, उनतीस समुद्देशन-काल हैं, पद-गणना की अपेक्षा सख्यात हजार पद हैं, सख्यात अक्षर हैं, अनत गम है, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त भाव इस ज्ञाताधर्मकथा मे कहे गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, निर्दशित किये गए हैं, और उपर्शित किये गए हैं। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा (कथाओ के माध्यम से) वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह छठे ज्ञाताधर्मकथा अग का परिचय है ६।

५३५—से किं तं उवासगदसाओ? उवासगदसासु उवासयाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइय-इड्ढि-विसेसा, उवासयाणं सीलव्वय-वेरमण-गुण-पच्चक्खाण-पोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुपरिग्गहा तवो-वहाणा पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुल-पच्चायाई पुणो बोहिलाभा अंतकिरियाओ आघविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

उपासकदशा क्या है—उसमे क्या वर्णन है?

उपासकदशा मे उपासको के १ नगर, २ उद्यान, ३ चैत्य, ४ वनखण्ड, ५ राजा, ६ माता-पिता, ७ समवसरण, ८ धर्माचार्य, ९ धर्मकथाएं, १० इहलौकिक-पारलौकिक ऋषि-विशेष, ११ उपासको के शीलव्रत, पाप-विरमण, गुण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास-प्रतिपत्ति, १२ श्रुत-परिग्रह, १३ तप-उपधान, १४ ग्यारह प्रतिमा, १५ उपसर्ग, १६ सलेखना, १७ भक्तप्रत्याख्यान, १८ पादपोपगमन, १९ देवलोक गमन, २० सुकुल-प्रत्यागमन, २१ पुनः बोधिलाभ और २२ अन्तक्रिया का कथन किया गया है, प्ररूपणा की गई है, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

५३६—उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभ-अभिगम-सम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुण-उत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहणपालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासा अपच्छिममारणंतियाऽऽय संलेहणा-झोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेअइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवंति सुरवर-विमाणवर-पोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भुत्तूण उत्तमाइं तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तमरयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं। एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य।

उपासकदशाग मे उपासको (श्रावको) की ऋद्धि-विशेष, परिषद् (परिवार), विस्तृत धर्म-श्रमण बोधिलाभ, धर्माचार्य के समीप अभिगमन, सम्यक्त्व की विशुद्धता, व्रत की स्थिरता, मूलगुण और उत्तर

गुणों का धारण, उनके अतिचार, स्थिति-विशेष (उपासक-पर्याय का काल-प्रमाण), प्रतिमाओं का ग्रहण, उनका पालन, उपसर्गों का सहन, या निरुपसर्ग-परिपालन, अनेक प्रकार के तप, शील, व्रत, गुण, वेरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास और अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना जोषमणा (सेवना) से आत्मा को यथाविधि भावित कर, बहुत से भक्तों (भोजनों) को अनशन तप से छेदन कर, उत्तम श्रेष्ठ देव-विमानों मे उत्पन्न होकर, जिस प्रकार वे उन उत्तम विमानों में अनुपम उत्तम सुखों का अनुभव करते हैं, उन्हे भोग कर फिर आयु का क्षय होने पर च्युत होकर (मनुष्यों मे उत्पन्न होकर) और जिनमत मे बोधि को प्राप्त कर तथा उत्तम सयम धारण कर तमोरज (अज्ञान-अन्धकार रूप पाप-धूलि) के समूह से विप्रमुक्त होकर जिस प्रकार अक्षय शिव-सुख को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित होते हैं, इन सबका और इसी प्रकार के अन्य भी अर्थों का इस उपासकदशा मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

५३७—उवासगदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

उपासकदशा अग मे परीत वाचनाए हैं, सख्यात अनुयोगद्वार हैं, सख्यात प्रतिपत्तियां हैं, सख्यात वेढ है, सख्यात श्लोक हैं, सख्यात निर्युक्तिया है और सख्यात सग्रहणिया है।

५३८—से णं अगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जाइं अक्खराइं, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करण परूवणया आघविज्जंति०। से त्तं उवासगदसाओ ७।

यह उपासकदशा अग की अपेक्षा सातवा अग है। इसमे एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, दश उद्देशन-काल हैं, दश समुद्देशन-काल है। पद-गणना की अपेक्षा सख्यात लाख पद है, सख्यात अक्षर है, अनन्त गम है, अनन्त पर्याय है, परीत त्रस है, अनन्त स्थावर हैं। ये सब शाश्वत, अशाश्वत, निबद्ध निकाचित जिनप्रज्ञप्त भाव इस अग में कहे गए है, प्रज्ञापित किये गए हैं, प्ररूपित किये गए हैं, निदर्शित और उपदर्शित किये गए हैं। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह सातवे उपासकदशा अग का विवरण है।

५३९—से किं तं अंतगडदसाओ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणाइं (वणखण्डा) राया अम्मा-पियरो समोसरणा धम्मायरिया धम्मकहा इहलोइअ-परलोइअ-इड्ढि-विसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ बहुविहाओ खमा अज्जवं मद्दवं च सोअं च सच्चसहियं सत्तरसविहो य संजमो उत्तमं च बंभं आकिंचणया तवो कियाओ समिइ-गुत्तीओ चेव। तह अप्पमायजोगो सज्झायज्झाणाण य उत्तमाणं दोण्हं पि लक्खणाइं। पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगयो य, जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुनिवरो तमरयोघ-

विप्पमुक्को मोक्खसुहमणुत्तरं पत्ता । एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेणं परूवेई ।

अन्तकृद्दशा क्या है—इसमे क्या वर्णन है ?

अन्तकृत्दशाओ मे कर्मों का अन्त करने वाले महापुरुषो के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, अनेक प्रकार की प्रतिमाए, क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच, सत्तरह प्रकार का सयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, आकिचन्य, तप, त्याग का तथा समितियों और गुप्तियो का वर्णन है। अप्रमाद-योग और स्वाध्याय-ध्यान योग, इन दोनो उत्तम मुक्ति-साधनो का स्वरूप, उत्तम सयम को प्राप्त करके परीषहो को सहन करने वालो को चार प्रकार के घातिकर्मों के क्षय होने पर जिस प्रकार केवलज्ञान का लाभ हुआ, जितने काल तक श्रमण-पर्याय और केवलि-पर्याय का पालन किया, जिन मुनियो ने जहाँ पादपोपगमसन्यास किया, जो जहाँ जितने भक्तो का छेदन कर अन्तकृत मुनिवर अज्ञानान्धकार रूप रज के पुज से विप्रमुक्त हो अनुत्तर मोक्ष-सुख को प्राप्त हुए, उनका और इसी प्रकार के अन्य अनेक अर्थों का इस अग मे विस्तार से प्ररूपण किया गया है ।

५४०—अतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, सखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ सगहणीओ ।

अन्तकृत्दशा मे परीत वाचनाए है, सख्यात अनुयोगद्वार हैं, सख्यात प्रतिपत्तिया है, सख्यात वेढ और श्लोक है, सख्यात निर्युक्तियाँ हैं और सख्यात सग्रहणियाँ है ।

५४१—से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, सत्त वग्गा, दस उद्देसण-काला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइ पयग्गेणं पण्णत्ताइ । संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जति, पण्णविज्जति, परूविज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदसिज्जति । से एव आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एव चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति । से त्तं अंतगडदसाओ ८ ।

अग की अपेक्षा यह आठवाँ अग है। इसमे एक श्रुतस्कन्ध है। दश अध्ययन है, सात वर्ग है, दश उद्देशन-काल है, दश समुद्देशन-काल हैं, पदगणना की अपेक्षा सख्यात हजार पद हैं। सख्यात अक्षर है, अनन्त गम है, अनन्त पर्याय है, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। ये सभी शाश्वत, अशाश्वत निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अग के द्वारा कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते है, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अग का अध्येता आत्मा ज्ञाता हो जाता है, विज्ञाता हो जाता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह आठवे अन्तकृत्दशा अग का परि-चय है।

५४२—से किं त अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइ उज्जाणाइ चेइयाइ वणखडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोग-परलोग-इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहणाइं परियागो

पडिमाओ सलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाई, पुणो बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति परूविज्जंति दसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

अनुत्तरोपपातिकदशा क्या है ? इसमे क्या वर्णन है ?

अनुत्तरोपपातिकदशा मे अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होने वाले महा अनगारों के नगर, उद्यान चैत्य, वनखड, राजगण, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाए, इहलौकिक पारलौकिक विशिष्ट ऋद्धिया, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत का परिग्रहण, तप-उपधान, पर्याय, प्रतिमा, सलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोपगमन, अनुत्तर विमानो मे उत्पाद, फिर सुकुल मे जन्म, पुन बोधि-लाभ और अन्तक्रियाए कही गई है, उनकी प्ररूपणा की गई है, उनका दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन कराया गया है।

५४३—अणुत्तरोववाइयदसासु णं तित्थकरसमोसरणाइं परममंगल्ल-जगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाण चेव समणगण-पवर-गधहत्थीण थिरजसाण परीसहसेण्ण-रिउबल-पमद्दणाणं तव दित्त-चरित्त-णाण-सम्मत्तसार-विविहप्पगार-वित्थर-पसत्थगुणसजुयाण अणगारमहरिणीणं अणगार-गुणाण वण्णओ, उत्तमवरतव-विसिट्ठणाण-जोगजुत्ताण, जह य जगहिय भगवओ जारिसा इड्ढिविसेसा देवासुर-माणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीव, जह य उवासति, जिणवर जह य परिकहति धम्म लोगगुरू अमर-नर-सुर-गणाण सोऊण य तस्स भासिय अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुराल सजमं तव चावि बहुविहप्पगार जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाण-दंसण-चरित्त-जोगा जिणवयणमणुगयमहियं भासिया जिणवराण हिययेणमणुण्णेत्ता जे य जहि जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं । तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अतकिरिय एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण ।

अनुत्तरोपपातिकदशा मे परम मगलकारी, जगत्-हितकारी तीर्थंकरो के समवसरण और बहुत प्रकार के जिन-अतिशयो का वर्णन है। तथा जो श्रमणजनो मे प्रवरगन्धहस्ती के समान श्रेष्ठ हैं, स्थिर यशवाले है, परीषह-सेना रूपी शत्रु-बल के मर्दन करने वाले है, तप से दीप्त है, जो चारित्र, ज्ञान, सम्यक्त्वरूप सारवाले अनेक प्रकार के विशाल प्रशस्त गुणो से सयुक्त है, ऐसे अनगार महर्षियो के अनगार-गुणो का अनुत्तरोपपातिकदशा मे वर्णन है। अतीव, श्रेष्ठ तपोविशेष से और विशिष्ट ज्ञान-योग से युक्त है, जिन्होने जगत् हितकारी भगवान् तीर्थंकरो की जैसी परम आश्चर्यकारिणी ऋद्धियो की विशेषताओ को और देव, असुर, मनुष्यो को सभाओ के प्रादुर्भाव को देखा है, वे महा-पुरुष जिस प्रकार जिनवर के समीप जाकर उनकी जिस प्रकार से उपासना करते है, तथा अमर, नर, सुरगणो के लोकगुरु वे जिनवर जिस प्रकार से उनको धर्म का उपदेश देते हैं वे क्षीणकर्मा महापुरुष उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनकर के अपने समस्त काम-भोगो से और इन्द्रियो के विषयो से विरक्त होकर जिम प्रकार से उदार धर्म को और विविध प्रकार से सयम और तप को स्वीकार करते है, तथा जिस प्रकार से बहुत वर्षों तक उनका आचरण करके, ज्ञान, दर्शन, चारित्र योग की आराधना कर जिन-वचन के अनुगत (अनुकूल) पूजित धर्म का दूसरे भव्य जीवो को उपदेश देकर और अपने शिष्यो को अध्ययन करवा तथा जिनवरो की हृदय से आराधना कर वे उत्तम मुनिवर जहा पर जितने भक्तो का अनशन के द्वारा छेदन कर, समाधि को प्राप्त कर और उत्तम ध्यान योग से युक्त होते

हुए जिस प्रकार से अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होते हैं और वहा जैसे अनुपम विषय-सौख्य को भोगते है, उस सब का अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् वहा से च्युत होकर वे जिस प्रकार से सयम को धारण कर अन्तक्रिया करेंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे, इन सब का, तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थों का विस्तार से इस अग में वर्णन किया गया है।

५४४—अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, सखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ निज्जुत्तीओ सखेज्जाओ संगहणीओ।

अनुत्तरोपपातिकदशा मे परीत वाचनाए है, सख्यात अनुयोगद्वार है, सख्यात प्रतिपत्तिया हैं, सख्यात वेढ हैं, सख्यात श्लोक हैं, सख्यात निर्युक्तिया है और सख्यात सग्रहणिया है।

५४५—से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, तिन्नि वग्गा, दस उद्देसण-काला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं, पयसयसहस्साइं पयग्गेण पण्णत्ताइं। सखेज्जाणि अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा निबद्धा णिकाइया जिण-पण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति०। से त्तं अणुत्तरोववाइय-दसाओ ९।

यह अनुत्तरोपपातिकदशा अगरूप से नौवा अग है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, तीन वर्ग हैं, दश उद्देशन-काल हैं, दश समुद्देशन-काल हैं, तथा पद-गणना की अपेक्षा सख्यात लाख पद कहे गये हैं।[1] इसमे सख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम है, अनन्त पर्याय है, परिमित त्रस है, अनन्त स्थावर है। ये सब शाश्वत कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अग मे कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं, और उपदर्शित किये जाते है। इस अ ग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह नवें अनुत्तरोपपातिकदशा अग का परिचय है।

५४६—से किं तं पण्हावागरणाणि? पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तर पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तर पसिणापसिणसयं विज्जाइसया नाग-सुवण्णेहिं सद्धि दिव्वा सवाया आघविज्जति।

प्रश्नव्याकरण अग क्या है—इसमे क्या वर्णन है?

प्रश्नव्याकरण अग मे एक सौ आठ प्रश्नो, एक सौ आठ अप्रश्नो और एक सौ आठ प्रश्ना-प्रश्नो को, विद्याओ के अतिशयो को तथा नागो-सुपर्णों के साथ दिव्य सवादो को कहा गया है।

विवेचन—अगुष्ठप्रश्न आदि मन्त्रविद्याए प्रश्न कहलाती है। जो विद्याए जिज्ञासु के द्वारा पूछे

---

१ टीकाकार का कथन है—वर्ग अध्ययनो का समूह कहलाता है। वर्ग मे अध्ययन दस हैं और एक वर्ग का उद्देशन एक साथ होता है। अतएव इसके उद्देशनकाल तीन ही होने चाहिए। नन्दीसूत्र मे भी तीन का ही उल्लेख है। किन्तु यहाँ दश उद्देशनकाल कहने का अभिप्राय क्या है, समझ मे नही आता। —सम्पादक

जाने पर शुभाशुभ फल बतलाती हैं, वे प्रश्न-विद्याएं कहलाती हैं। जो विद्याएं मन्त्र-विधि से जाप किये जाने पर बिना पूछे ही शुभाशुभ फल को कहती हैं, वे अप्रश्न-विद्याए कहलाती हैं। तथा जो विद्याएं कुछ प्रश्नो के पूछे जाने पर और कुछ के नही पूछे जाने पर भी शुभाशुभ फल को कहती हैं, वे प्रश्नाप्रश्न विद्याए कहलाती है। इन तीनो प्रकार की विद्याओ का प्रश्नव्याकरण अग मे वर्णन किया गया है। तथा स्तभन, वशीकरण, उच्चाटन आदि विद्याए विद्यातिशय कहलाती है। एव विद्याओ के साधनकाल मे नागकुमार, सुपर्णकुमार तथा यक्षादिको के साथ साधक का जो दिव्य तात्त्विक वार्तालाप होता है वह दिव्यसवाद कहा गया है। इन सबका इस अग मे निरूपण किया गया है।

५४७—पण्हावागरणदसासु णं ससमय-परसमय पण्णवय-पत्तेअबुद्ध-विविहत्थभासाभासियाणं अइसयगुण-उवसम-णाणप्पगार-आयरियभासियाणं वित्थरेणं विरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं अद्दागगुट्ठ-बाहु-असि-मणि-खोम-आइच्चभासियाणं विविहमहापसिणविज्जा-मणपसिण-विज्जा-देवयपयोग-पहाण-गुणप्पगासियाणं सब्भूयदुगुणप्पभाव-नरगणमइविम्हयकराणं अइसयमईयकाल-समय-दम-सम-तित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगम-दुरवगाहस्स सव्वसव्वन्नुसम्मअस्स अबुह-जण-विबोहणकरस्स पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति।

प्रश्नव्याकरणदशा मे स्वसमय-परसमय के प्रज्ञापक प्रत्येकबुद्धो के विविध अर्थों वाली भाषाओ द्वारा कथित वचनो का आमर्षौषधि आदि अतिशयो, ज्ञानादि गुणो और उपशम भाव के प्रतिपादक नाना प्रकार के आचार्यभाषितो का, विस्तार से कहे गये वीर महर्षियो के जगत् हितकारी अनेक प्रकार के विस्तृत सुभाषितो का, आदर्श (दर्पण) अगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, क्षौम (वस्त्र) और सूर्य आदि के आश्रय से दिये गये विद्या-देवताओ के उत्तरो का इस अग मे वर्णन है। अनेक महाप्रश्न-विद्याए वचन से ही प्रश्न करने पर उत्तर देती है, अनेक विद्याए मन से चिन्तित प्रश्नो का उत्तर देती हं, अनेक विद्याए अनेक अधिष्ठाता देवताओ के प्रयोग-विशेष की प्रधानता से अनेक अर्थों के सवादक गुणो को प्रकाशित करती हे, और अपने सद्भूत (वास्तविक) द्विगुण प्रभावक उत्तरो के द्वारा जन समुदाय को विस्मित करती हं। उन विद्याओ के चमत्कारो और सत्य वचनो से लोगो के हृदयो मे यह दृढ विश्वास उत्पन्न होता है कि अतीत काल के समय मे दम और शम के धारक, अन्य मतो के शास्ताओ से विशिष्ट जिन तीर्थंकर हुए हं और वे यथार्थवादी थे, अन्यथा इस प्रकार के सत्य विद्या-मन्त्र सभव नही थे, इस प्रकार सशयशील मनुष्यो के स्थिरीकरण के कारणभूत दुरभिगम (गम्भीर) और दुरवगाह (कठिनता से अवगाहन-करने के योग्य) सभी सर्वज्ञो के द्वारा सम्मत, अबुध (अज्ञ) जनो को प्रबोध करने वाले, प्रत्यक्ष प्रतीति-कारक प्रश्नो के विविध गुण और महान् अर्थ वाले जिन-वर-प्रणीत उत्तर इस अग मे कहे जाते हे, प्रज्ञापित किये जाते हे, प्ररूपित किये जाते है, निदर्शित किये जाते हे, और उपदर्शित किये जाते हे।

५४८—पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ सगहणीओ।

प्रश्नव्याकरण अग मे परीत वाचनाए हे, सख्यात अनुयोगद्वार हे, सख्यात प्रतिपत्तियां हे, सख्यात वेढ हं, सख्यात श्लोक हे, संख्यात निर्युक्तिया है और सख्यात संग्रहणियां हैं।

५४९—से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ताइं। सखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदसिज्जति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एव विण्णाया, एव चरण-करणपरूवणया आघविज्जति०। से त्त पण्हावागरणाइ १०।

प्रश्नव्याकरण अगरूप से दशवा अग है, इसमे एक श्रुतस्कन्ध है, पैतालीस उद्देशन-काल है, पैतालिस समुद्देशन-काल है। पद-गणना की अपेक्षा सख्यात लाख पद कहे गये है। इसमे सख्यात अक्षर है अनन्त गम है, अनन्त पर्याय है, परीत त्रस है, अनन्त स्थावर है, इसमे शाश्वत कृत, निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव कहे जाते है, प्रज्ञापित किये जाते है, प्ररूपित किये जाते है, निर्दशित किये जाते है, और उपदर्शित किये जाते है। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह दशवे प्रश्नव्याकरण अग का परिचय है १०।

५५०—से किं तं विवागसुय? विवागसुए णं सुक्कड-दुक्कडाण कम्माणं फलविवागे आघविज्जति। से समासओ दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—दुहविवागे चेव, सुहविवागे चेव, तत्थ णं दस दुहविवागाणि, दस सुहविवागाणि।

विपाकसूत्र क्या है—इसमे क्या वर्णन है?

विपाकसूत्र मे सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (पाप) कर्मों का फल-विपाक कहा गया है। यह विपाक सक्षेप से दो प्रकार का है—दु ख-विपाक और सुख-विपाक। इनमे दु ख-विपाक मे दश अध्ययन है और सुख-विपाक मे भी दश अध्ययन है।

५५१—से किं तं दुहविवागाणि? दुहविवागेसु णं दुहविवागाण नगराइ उज्जाणाइ चेइयाइ वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ नगरगमणाइं ससारपबधे दुहपरपराओ य आघविज्जति। से त्त दुहविवागाणि।

यह दु ख विपाक क्या है—इसमे क्या वर्णन है?

दु ख-विपाक मे दुष्कृतो के दु खरूप फलो को भोगनेवालो के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाए, (गौतम स्वामी का भिक्षा के लिए) नगर-गमन, (पाप के फल से) ससार-प्रबन्ध मे पड कर दु ख परम्पराओ को भोगने का वर्णन किया जाता है। यह दु ख-विपाक है।

५५२—से किं तं सुहविवागाणि? सुहविवागेसु सुहविवागाण णगराइं उज्जाणाइ चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइय-इड्ढि-विसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइ पाओवगमणाइ देवलोगगमणाइ सुकुलपच्चायाई पुणबोहिलाहा अतकिरियाओ य आघविज्जंति।

सुख-विपाक क्या है—इसमे क्या वर्णन है ?

सुख-विपाक मे सुकृतो के सुखरूप फलो को भोगनेवालो के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाए, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, दीक्षा पर्याय, प्रतिमाए, सलेखनाए, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, सुकुल-प्रत्यागमन, पुन बोधिलाभ और उनकी अन्तक्रियाए कही गई हैं ।

५५३—दुहविवागेसु णं पाणाइवाय-अलियवयण-चोरिक्करण-परदारमेहुण-ससगयाए महतिव्वकसाय-इंदियप्पमाय-पावप्पओय-असुहज्झवसाणसचियाण कम्माण पावगाण पाव अणुभागफल-विवागा णिरयगति-तिरिक्खजोणि-बहुविहवसण-सय-परपरापबद्धाणं मणुयत्ते वि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा वह-वसण-विणास-नासा-कन्नुट्ठगुट्ठ-कर-चरण-नहच्छेयण जिब्भ-च्छेअण-अजणकडग्गिदाह-गयचलण-मलण-फालण-उल्लवण-सूललया-लउड-लट्ठि-भजण-तउसीस-गतत्ततेल्ल-कलकल-अहिंसिचण-कु भिपाग-कपण-थिरबंधण-वेह-वज्झ-कत्तण-पतिभय-कर-करपलीवणावि-दारुणाणि दुक्खाणि अणोवमाणि बहुविविहपरंपराणुबद्धा ण मुच्चति पावकम्मवल्लीए । अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो तवेण धिइधणियबद्धकच्छेण सोहण तस्स वावि हुज्जा ।

दु ख-विपाक के प्राणातिपात, असत्य वचन, स्तेय, पर-दार-मैथुन, ससगता (परिग्रह-सचय) महातीव्र कषाय, इन्द्रिय-विषय-सेवन, प्रमाद, पाप-प्रयोग और अशुभ अध्यवसानो (परिणामो) से सचित पापकर्मों के उन पापरूप अनुभाग—फल-विपाको का वर्णन किया गया है जिन्हे नरकगति, और तिर्यग्-योनि मे बहुत प्रकार के सैकडो सकटों की परम्परा मे पडकर भोगना पडता है । वहाँ से निकल कर मनुष्य भव मे आने पर भी जीवो को पाप-कर्मों के शेष रहने से अनेक पापरूप अशुभफल-विपाक भोगने पडते है, जैसे—वध (दण्ड आदि से ताडन, वृषण-विनाश (नपु सकीकरण), नासा-कर्तन, कर्ण-कर्त्तन, ओष्ठ-छेदन, अगुष्ठ-छेदन, हस्त-कर्तन, चरण-छेदन, नख-छेदन, जिह्वा-छेदन-अजन-दाह (उष्ण लोहशलाका से आखो को आजना-फोडना), कटाग्निदाह (वास से बनी चटाई से शरीर को सर्व ओर से लपेट कर जलाना), हाथी के पैरो के नीचे डालकर शरीर को कुचलवाना, फरसे आदि से शरीर को फाडना, रस्सियो से बाँधकर वृक्षो पर लटकाना, त्रिशूल-लता, लकुट (मू ठ वाला डडा) और लकडी से शरीर को भग्न करना, तपे हुए कडकडाते रागा, सीसा एव तेल से शरीर का अभिसिचन करना, कुम्भी (लोह-भट्टी) मे पकाना, शीतकाल मे शरीर पर कपकंपी पैदा करने वाला अतिशीतल जल डालना, काष्ठ आदि मे पैर फसाकर स्थिर (दृढ) बाँधना, भाले आदि शस्त्रो से छेदन-भेदन करना, वर्द्धकर्तन (शरीर की खाल उधेडना) अति भय-कारक कर-प्रदीपन (वस्त्र लपेटकर और शरीर पर तेल डालकर दोनो हाथो मे अग्नि लगाना) आदि अति दारुण, अनुपम दु ख भोगने पडते है । अनेक भव-परम्परा मे बधे हुए पापी जीव पाप कर्मरूपी वल्ली के दु ख-रूप फलो को भोगे विना नही छूटते है । क्योकि कर्मों के फलो को भोगे विना उनसे छुटकारा नही मिलता । हाँ, चित्त-समाधिरूप धैर्य के साथ जिन्होने अपनी कमर कस ली है उनके तप-द्वारा उन पाप-कर्मों का भी शोधन हो जाता है ।

५५४—एत्तो य सुहविवागेसु ण सील-सजम-नियम-गुण-तवोवहाणेसु साहूसु सुविहिएसु अणुकंपासयप्पओग-तिकालमइविसुद्ध-भत्त-पाणाइं पययमणसा हिय-सुह-नीसेस-तिव्वपरिणाम-निच्छिय-

मई पयच्छिऊण पओगसुद्धाइं जह य निव्वत्तिति उ बोहिलाभं जह य परित्तीकरेंति नर-नरय-तिरिय-सुरगमण-विपुलपरियट्ट-अरति-भय-विसाय-सोग-मिच्छत्तसेलसकड अण्णाणतमंधकार-चिक्खिल्लसुदुत्तारं जर-मरण-जोणिसंखुभियचक्कवालं सोलसकसाय-सावय-पयडचड अणाइअ अणवदग्गं संसारसागरमिणं जह य णिबधति आउगं सुरगणेसु, जह ग अणुभवति सुरगणविमाणसोक्खाणि अणोवमाणि। ततो य कालतरे चुआणं इहेव नरलोगमागयाणं आउ-वपु-पुण्ण-रूव-जाति-कुल-जम्म-आरोग्ग-बुद्धि-मेहाविसेसा मित्त-जण-सयण-धण-धण्ण-विभव-समिद्धसार-समुदयविसेसा बहुविहकामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुह-विवागोत्तमेसु अणुवरय-परपराणुबद्धा।

असुभाणं सुभाण चेव कम्माणं भासिआ बहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकरणत्था, अन्ने वि य एवमाइया बहुविहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जंति।

अब सुख-विपाको का वर्णन किया जाता है—जो शील, (ब्रह्मचर्य या समाधि) सयम, नियम (*अभिग्रह-विशेष*), गुण (*मूल गुण और उत्तर गुण*) और तप (*अन्तरग-बहिरग*) के अनुष्ठान मे सलग्न हैं, जो अपने आचार का भली-भाति से पालन करते है, ऐसे साधुजनो मे अनेक प्रकार की अनुकम्पा का प्रयोग करते हैं, उनके प्रति तीनो ही कालो मे विशुद्ध बुद्धि रखते है अर्थात् यतिजनो को आहार दू गा, यह विचार करके जो हर्षानुभव करते है, देते समय और देने के पश्चात् भी हर्ष मानते हैं, उनको अति सावधान मन से हितकारक, सुखकारक, नि श्रेयसकारक उत्तम शुभ परिणामो से प्रयोग-शुद्ध (उद्‌गमादि दोषो से रहित) भक्त-पान देते हैं, वे मनुष्य जिस प्रकार पुण्य कर्म का उपार्जन करते है, बोधि-लाभ को प्राप्त होते हैं और नर, नारक, तिर्यच एव देवगति-गमन सम्बन्धी अनेक परावर्तनो को परीत (सीमित—अल्प) करते हैं, तथा जो अरति, भय, विस्मय, शोक और मिथ्यात्वरूप शैल (पर्वत) से सकट (सकीर्ण) है, गहन अज्ञान-अन्धकार रूप कीचड से परिपूर्ण होने से जिसका पार उतरना अति कठिन है, जिसका चक्रवाल (जल-परिमडल) जरा, मरण योनिरूप मगर-मच्छो से क्षोभित हो रहा है, जो अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायरूप श्वापदो (खू खार हिंसक प्राणियो) से अति प्रचण्ड अतएव भयकर है, ऐसे अनादि अनन्त इस ससार-सागर को वे जिस प्रकार पार करते हैं, और जिस प्रकार देव-गणो मे आयु बाधते—देवायु का बध करते है, तथा जिस प्रकार सुर-गणो के अनुपम विमानोत्पन्न सुखो का अनुभव करते हैं, तत्पश्चात् कालान्तर मे वहाँ से च्युत होकर इसी मनुष्यलोक मे आकर दीर्घ आयु, परिपूर्ण शरीर, उत्तम रूप, जाति कुल मे जन्म लेकर आरोग्य, बुद्धि, मेधा-विशेष से सम्पन्न होते है, मित्रजन, स्वजन, धन, धान्य और वैभव से समृद्ध, एव सारभूत सुख-सम्पदा के समूह से सयुक्त होकर बहुत प्रकार के काम-भोग-जनित, सुख-विपाक से प्राप्त उत्तम सुखो की अनुपरत (अविच्छिन्न) परम्परा से परिपूर्ण रहते हुए सुखो को भोगते है, ऐसे पुण्यशाली जीवो का इस सुख-विपाक मे वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों के बहुत प्रकार के विपाक (फल) इस विपाकसूत्र मे भगवान् जिनेन्द्र देव ने ससारी जनो को सवेग उत्पन्न करने के लिए कहे हैं। इसी प्रकार से अन्य भी बहुत प्रकार की अर्थ-प्ररूपणा विस्तार से इस अग मे की गई है।

५५५—विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

विपाकसूत्र की परीत वाचनाए है, सख्यात अनुयोग द्वार हैं, सख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ है, सख्यात श्लोक है। सख्यात निर्युक्तियाँ है और सख्यात सग्रहणियाँ हैं।

५५६—से णं अगट्ठयाए एक्कारसमे अगे, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसण-काला, सखेज्जाइ पयसयसहस्साइं पयग्गेण पण्णत्ताइ। सखेज्जाणि, अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-विज्जंति, पण्णविज्जति परूविज्जंति निदसिज्जति उवदंसिज्जति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जति०। से त्तं विवायसुए ११।

यह विपाकसूत्र अगरूप से ग्यारहवा अग है। बीस अध्ययन है, बीस उद्देशन-काल हैं, बीस समुद्देशन-काल है, पद-गणना की अपेक्षा सख्यात लाख पद है। सख्यात अक्षर है, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय है परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर है। इसमे शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित भाव कहे जाते है, प्रज्ञापित किये जाते है, प्ररूपित किए जाते है, निर्दशित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते है। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तुस्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह ग्यारहवें विपाक सूत्र अग का परिचय है ११।

५५७—से किं तं दिट्ठिवाए? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जति। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते। तं जहा—परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगो चूलिया।

यह दृष्टिवाद अग क्या है—इसमे क्या वर्णन है?

दृष्टिवाद अग मे सर्व भावो की प्ररूपणा की जाती है। वह सक्षेप से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ परिकर्म, २ सूत्र, ३ पूर्वगत, ४. अनुयोग और ५. चूलिका।

५५८—से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—सिद्धसेणियापरिकम्मे मणुस्ससेणियापरिकम्मे पुट्ठसेणियापरिकम्मे ओगाहणसेणियापरिकम्मे उवसंपज्जसेणियापरिकम्मे विप्पजहसेणियापरिकम्मे चुआचुअसेणियापरिकम्मे।

परिकर्म क्या है? परिकर्म सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ सिद्धश्रेणिका-परिकर्म, २ मनुष्यश्रेणिका परिकर्म, ३ पृष्टश्रेणिका परिकर्म, ४ अवगाहनश्रेणिका परिकर्म, ५ उपसपद्यश्रेणिका परिकर्म, ६ विप्रजहतश्रेणिका परिकर्म और ७ च्युताच्युतश्रेणिका-परिकर्म।

५५९—से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे? सिद्धसेणिआपरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते। तं जहा—माउयापयाणि एगट्ठियपयाणि पाढोट्ठपयाणि आगासपयाणि केउभूयं रासिबद्ध एगगुण दुगुण तिगुण केउभूयपडिग्गहो संसारपडिग्गहो नदावत्तं सिद्धबद्धं। से त्त सिद्धसेणियापरिकम्मे।

सिद्धश्रेणिका परिकर्म क्या है? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है। जैसे—१ मातृकापद, २ एकार्थकपद, ३ अर्थपद, ४ पाठ, ५ आकाशपद, ६ केतुभूत, ७ राशिबद्ध, ८ एकगुण, ९ द्विगुण, १० त्रिगुण, ११ केतुभूतप्रतिग्रह, १२ ससार-प्रतिग्रह, १३ नन्द्यावर्त, और सिद्धबद्ध। यह सब सिद्धश्रेणिका परिकर्म है।

५६०—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते । तं जहा -ताइं चेव माउआपयाणि जाव नंदावत्तं मणुस्सबद्धं । से त्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ।

मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म क्या है ? मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है। जैसे—मातृकापद से लेकर वे ही पूर्वोक्त नन्द्यावर्त तक और मनुष्यबद्ध। यह सब मनुष्य-श्रेणिका परिकर्म है।

५६१—अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पन्नत्ताइं । इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं ससमइयाइ, सत्त आजीवियाइ, छ चउक्कणइयाइ, सत्त तेरासियाइ । एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीति भवतीतिमक्खायाइं । से त्त परिकम्माइ ।

पृष्ठश्रेणिका परिकर्म से लेकर शेष परिकर्म ग्यारह-ग्यारह प्रकार के कहे गये हैं। पूर्वोक्त सातो परिकर्म स्वसामयिक (जैनमतानुसारी) है, सात आजीविकमतानुसारी है, छह परिकर्म चतुष्कनय वालो के मतानुसारी हैं और सात त्रैराशिक मतानुसारी हैं। इस प्रकार ये सातो परिकर्म पूर्वापर भेदो की अपेक्षा तिरासी होते है, यह सब परिकर्म है।

विवेचन—सस्कृत टीकाकार लिखते है कि परिकर्म सूत्र और अर्थ से विच्छिन्न हो गये है। इन सातो परिकर्मों मे से आदि के छह परिकर्म स्वसामयिक है। तथा गोशालक-द्वारा प्रवर्त्तित आजीविकापाखण्डिक मत के साथ परिकर्म मे सात भेद कहे जाते है।

दिगम्बर-परम्परा के शास्त्रो के अनुसार परिकर्म मे गणित के करणसूत्रो का वर्णन किया गया है। इसके वहा पाँच भेद बतलाये गये हैं—चन्द्र-प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। चन्द्र-प्रज्ञप्ति मे चन्द्रमा-सम्बन्धी मिवान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि-वृद्धि, पूर्ण ग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांश ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है। सूर्यप्रज्ञप्ति मे सूर्य-सम्बन्धी आयु, परिवार, ऋद्धि-गमन, ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है। जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति मे जम्बूद्वीप-सम्बन्धी मेरु, कुलाचल, महाह्रद, क्षेत्र, कु ड, वेदिका , वन आदि का वर्णन किया गया है। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति मे असख्यात द्वीप और समुद्रो का स्वरूप, नन्दीश्वर द्वीपादि का विशिष्ट वर्णन किया गया है। व्याख्या-प्रज्ञप्ति मे भव्य, अभव्य जीवो के भेद, प्रमाण, लक्षण, रूपी, अरूपी, जीव-अजीव द्रव्यादिको की विस्तृत व्याख्या की गई है।

५६२ —से किं त सुत्ताइ ? सुत्ताइं अट्ठासीति भवंतीति मक्खायाइ । त जहा—उजुगं परिणया-परिणय बहुभंगिय विप्पच्चइय [विन (ज) यचरिय] अणतरं परपर समाण संजूहं [मासाण] सभिन्नं आहच्चाय [अहव्वायं] सोवत्थि (वत्त) य णदावत्तं बहुल पुट्ठापुट्ठं वियावत्तं एवभूयं दुआवत्तं वत्तमाणप्पयं समभिरूढ सव्वओ भद्द पणास [पण्णासं] दुपडिग्गह इच्चेयाइं वावीसं सुत्ताइं छिण्णछेअणइआइं ससमय-सुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइ वावीस सुत्ताइं अछिन्नछेयनइयाइ आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइ वावीसं सुत्ताइ तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइ वावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइ ससमयसुत्तपरिवाडीए । एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठासीति सुत्ताइं भवंतीतिमक्खयाइं । से त्त सुत्ताइ ।

सूत्र का स्वरूप क्या है ? सूत्र अठासी होते हैं, ऐसा कहा गया है। जैसे—१ ऋजुक, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभगिक, ४ विजयचर्चा, ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ समान (समानस),

८ सजूह—सयूथ (जूह), ९ सभिन्न, १० अहाच्चय, ११ सौवस्तिक, १२ नन्द्यावर्त, १३ बहुल, १४ पृष्टापृष्ट, १५ व्यावृत्त, १६ एवभूत, १७ द्वयावर्त्त, १८ वर्तमानात्मक, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ पणाम (पण्णास) और २२ दुष्प्रतिग्रह। ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्र परिपाटी से छिन्नच्छेद-नयिक है। ये ही बाईस सूत्र आजीविकसूत्रपरिपाटी से अच्छिन्नच्छेदनयिक है। ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्रपरिपाटी से त्रिकनयिक हैं और ये ही बाईस सूत्र स्वसमय सूत्रपरिपाटी से चतुष्कनयिक है। इस प्रकार ये सब पूर्वापर भेद मिलकर अठासी सूत्र होते हैं, ऐसा कहा गया है। यह सूत्र नाम का दूसरा भेद है।

विवेचन—जो नय सूत्र को छिन्न अर्थात् भेद से स्वीकार करे, वह छिन्नच्छेदनय कहलाता है। जैसे—'धम्मो मगलमुक्किट्ठ' इत्यादि श्लोक सूत्र और अर्थ की अपेक्षा अपने अर्थ के प्रतिपादन करने मे किसी दूसरे श्लोक की अपेक्षा नही रखता है। किन्तु जो श्लोक अपने अर्थ के प्रतिपादन मे आगे या पीछे के श्लोक की अपेक्षा रखता है, वह अच्छिन्नच्छेदनयिक कहलाता है। गोशालक आदि द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और उभयार्थिक इन तीन नयो को मानते है, अत उन्हे त्रिकनयिक कहा गया है। किन्तु जो सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द नय इन चार नयो को मानते है, उन्हे चतुष्कनयिक कहते है। त्रिकनयिक वाले सभी पदार्थों का निरूपण सत्, असत् और उभयात्मक रूप से करते है। किन्तु चतुष्कनयिक वाले उक्त चार नयो से सर्व पदार्थों का निरूपण करते है।

५६३—से कि त पुव्वगय? पुव्वगय चउद्दसविह पन्नत्त। त जहा—उप्पायपुव्वं अग्गेणीयं वीरियं अत्थिनत्थिप्पवायं नाणप्पवाय सच्चप्पवाय आयप्पवायं कम्मप्पवायं पच्चक्खाणप्पवायं विज्जाणुप्पवायं अबझ पाणाऊ किरियाविसालं लोगबिन्दुसार १४।

यह पूर्वगत क्या है—इसमे क्या वर्णन है?

पूर्वगत चौदह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीयपूर्व, ३ वीर्यप्रवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ सत्यप्रवादपूर्व, ७ आत्मप्रवादपूर्व, ८ कर्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, १० विद्यानुप्रवादपूर्व, ११ अबन्ध्यपूर्व, १२ प्राणायुपूर्व, १३ क्रियाविशाल पूर्व और १४ लोकबिन्दुसारपूर्व।

५६४—उप्पायपुव्वस्स ण दस वत्थू पण्णत्ता। चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता। अग्गेणियस्स ण पुव्वस्स चोद्दस वत्थू, बारस चूलियावत्थू पण्णत्ता। वीरियप्पवायस्स ण पुव्वस्स अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता। अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू दस चूलियावत्थू पण्णत्ता। नाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता। सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दो वत्थू पण्णत्ता। आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता। कम्मप्पवायपुव्वस्स णं तीसं वत्थू पण्णत्ता। पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता। विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पन्नरस वत्थू पण्णत्ता। अवंझस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता। पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता। किरिया-विसालस्स णं पुव्वस्स तीस वत्थू पण्णत्ता। लोगबिन्दुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीस वत्थू पण्णत्ता।

उत्पादपूर्व की दश वस्तु (अधिकार) है और चार चूलिकावस्तु है। अग्रायणीय पूर्व की चौदह वस्तु और बारह चूलिकावस्तु है। वीर्यप्रवादपूर्व की आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु है।

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की अठारह वस्तु और दश चूलिकावस्तु हैं। ज्ञानप्रवाद पूर्व की बारह वस्तु हैं। सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तु है। आत्मप्रवाद पूर्व की सोलह वस्तु हैं। कर्मप्रवाद पूर्व की तीस वस्तु हैं। प्रत्याख्यान पूर्व की बीस वस्तु हैं। विद्यानुप्रवादपूर्व को पन्द्रह वस्तु है। अबन्ध्यपूर्व की बारह वस्तु है। प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तु है। क्रियाविशाल पूर्व की तीस वस्तु है। लोकबिन्दुसार पूर्व की पच्चीस वस्तु कही गई हैं।

५६५— **दस चोद्दस अट्ठट्ठारसे व बारस दुवे य वत्थूणि।**
सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायंमि ॥ १ ॥
बारस एक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे चउदसमे पन्नवीसाओ ॥ २ ॥
चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि।
आइल्लाण चउण्ह सेसाणं चूलिया णत्थि ॥ ३ ॥
से त्त पुव्वगय।

उपर्युक्त वस्तुओ की सख्या-प्रतिपादक सग्रहणी गाथाए इस प्रकार हैं—

प्रथम पूर्व मे दश, दूसरे मे चौदह, तीसरे मे आठ, चौथे मे अठारह, पाँचवे मे बारह, छठे मे दो, सातवे मे सोलह, आठवे मे तीस, नवे मे बीस, दशवें विद्यानुप्रवाद मे पन्द्रह, ग्यारहवे मे बारह, बारहवे मे तेरह, तेरहवे मे तीस और चौदहवे मे पच्चीस वस्तु नामक महाधिकार हैं। आदि के चार पूर्वों मे क्रम से चार, बारह, आठ और दश चूलिकावस्तु नामक अधिकार है। शेष दश पूर्वों मे चूलिका नामक अधिकार नही हैं। यह पूर्वगत है।

विवेचन—दिगम्बर ग्रन्थो मे पूर्वगत वस्तुओ की सख्या मे कुछ अन्तर है। जो इस प्रकार है—प्रथम पूर्व मे दश, दूसरे मे चौदह, तीसरे मे आठ, चौथे मे अठारह, पाचवें मे बारह, छठे मे बारह, सातवे मे सोलह, आठवे मे बीस, नवमे मे तीस, दशवे के पन्द्रह, ग्यारहवे मे दश, बारहवे मे दश, तेरहवे मे दश और चौदहवे पूर्व मे दश वस्तुनामक अधिकार बताये गये है। दि० शास्त्रो मे आदि के चार पूर्वों की चूलिकाओ का कोई उल्लेख नही है।

५६६—**से किं त अणुओगे? अणुओगे दुविहे पण्णत्ते। त जहा—मूलपढमाणुओगे य गडियाणुओगे य। से किं तं मूलपढमाणुओगे? एत्थ ण अरहंताण भगवंताण पुव्वभवा देवलोगगमणाणि आउ चवणाणि जम्मणाणि अ अभिसेया रायवरसिरीओ सीयाओ पव्वज्जाओ तवा य भत्ता केवलणाणुप्पाया अ तित्थपवत्तणाणि अ सघयण सठाण उच्चत्त आउ वन्नविभागो सीसा गणा गणहरा य अज्जा पवत्तणीओ सघस्स चउव्विहस्स ज वावि परिणाम जिण-मणपज्जव-ओहिनाण-सम्मत्त-सुयनाणिणो य वाई अणुत्तरगई य जत्तिया सिद्धा पाओवगआ य जे जहिं जत्तियाइ छेअइत्ता अतगडा मुणिवरुत्तमा तम-रओघविप्पमुक्का सिद्धिपहमणुत्तरं च पत्ता, एए अन्ने य एवमाइया भावा मूलपढमाणुओगे कहिआ आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जंति निदंसिज्जति उवदसिज्जंति। से त्त मूलपढमाणुओगे।**

वह अनुयोग क्या है—उसमे क्या वर्णन है?

अनुयोग दो प्रकार का कहा गया है। जैसे—मूलप्रथमानुयोग और गडिकानुयोग।

मूलप्रथमानुयोग मे क्या है ?

मूलप्रथमानुयोग मे अरहन्त भगवन्तो के पूर्वभव, देवलोक-गमन, देवभव सम्बन्धी आयु, च्यवन, जन्म, जन्माभिषेक, राज्यवरश्री, शिविका, प्रव्रज्या, तप, भक्त (आहार) केवलज्ञानोत्पत्ति, वर्ण, तीर्थ-प्रवर्तन, सहनन, सस्थान, शरीर-उच्चता, आयु, शिष्य, गण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध सघ का परिमाण, केवलि-जिन, मन पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी सम्यक् मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होने वाले साधु, सिद्ध, पादपोपगत, जो जहाँ जितने भक्तो का छेदन कर उत्तम मुनिवर अन्तकृत हुए, तमोरज-समूह से विप्रमुक्त हुए, अनुत्तर सिद्धिपथ को प्राप्त हुए, इन महापुरुषो का, तथा इसी प्रकार के अन्य भाव मूलप्रथमानुयोग मे कहे गये है, वर्णित किये गए हैं, प्रज्ञापित किये गए है, प्ररूपित किये गए हैं, निर्दशित किये गए है और उपदर्शित किये गए है। यह मूलप्रथमानुयोग है ।

५६७—से किं तं गडियाणुओगे ? [गंडियाणुओगे] अणेगविहे पण्णत्ते । त जहा—कुलगरगडियाओ तित्थगरगडियाओ गणहरगडियाओ चक्कहरगंडियाओ दसारगडियाओ बलदेवगंडियाओ वासुदेवगंडियाओ हरिवसगंडियाओ भद्दबाहुगंडियाओ तवोकम्मगडियाओ चित्तंतरगडियाओ उस्सप्पिणीगडियाओ ओसप्पिणीगडियाओ अमर-नर-तिरिय-निरयगइगमण-विविहपरियट्टणाणुओगे, एवमाइयाओ गडियाओ आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जंति निदंसिज्जति उवदंसिज्जंति। से त्त गंडियाणुओगे।

गडिकानुयोग मे क्या है ?

गडिकानुयोग अनेक प्रकार का है । जैसे—कुलकरगडिका, तीर्थकरगडिका, गणधरगडिका, चक्रवर्त्तीगडिका, दशारगडिका, बलदेवगडिका, वासुदेवगडिका, हरिवशगडिका, भद्रबाहुगडिका, तप कर्मगडिका, चित्रान्तरगडिका, उत्सर्पिणीगडिका, अवसर्पिणी गडिका, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियो मे गमन, तथा विविध योनियो मे परिवर्तनानुयोग, इत्यादि गडिकाएँ इस गडिकानुयोग मे कही जाती है, प्रज्ञापित की जाती है, प्ररूपित की जाती है, निर्दशित की जाती है और उपदर्शित की जाती हैं। यह गडिकानुयोग है।

५६८—से किं त चूलियाओ ? जण्णं आइल्लाणं चउण्ह पुव्वाण चूलियाओ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइ । से त्त चूलियाओ ।

यह चूलिका क्या है ?

आदि के चार पूर्वो मे चूलिका नामक अधिकार है। शेष दश पूर्वो मे चूलिकाएँ नही है । यह चूलिका है।

विवेचन—दि० शास्त्रो मे दृष्टिवाद का चूलिका नामक पाँचवा भेद कहा गया है और उसके पाँच भेद बतलाए गए हैं—जलगता चूलिका, स्थलगता चूलिका, मायागता चूलिका, आकाशगता चूलिका और रूपगता चूलिका। जलगता मे जल-गमन, अग्निस्तम्भन, अग्निभक्षण, अग्नि-प्रवेश और अग्निपर बैठने आदि के मन्त्र-तन्त्र और तपश्चरण आदि का वर्णन है। स्थलगता मे मेरु, कुलाचल,

भूमि आदि मे प्रवेश करने आदि के मन्त्र-तन्त्रादि का वर्णन है। मायागता मे इन्द्रजाल-सम्बन्धी मन्त्रादि का वर्णन है। आकाशगता मे आकाश-गमन के कारणभूत मन्त्रादि का वर्णन है। रूपगता मे सिह आदि के अनेक प्रकार रूपादि बनाने के कारणभूत मन्त्रादि का वर्णन है।

५६९—दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जा सिलोगा, सखेज्जाओ सगहणीओ।

दृष्टिवाद की परीत वाचनाएँ हैं, सख्यात अनुयोगद्वार हैं। सख्यात प्रतिपत्तिया हैं, सख्यात निर्युक्तिया हैं, सख्यात श्लोक हैं, और सख्यात सग्रहणिया हैं।

५७०—से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुअक्खंधे, चउद्दस पुव्वाइ संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुड-पाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडियाओ, सखेज्जाओ पाहुड-पाहुडियाओ, सखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेण पण्णत्ताइ। सखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदसिज्जंति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एव णाया, एव विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जति। से त्त दिट्ठिवाएं। से त्तं दुवालसंगे गणिपिडगे।

यह दृष्टिवाद अगरूप से बारहवाँ अग है। इसमे एक श्रुतस्कन्ध है, चौदह पूर्व है, सख्यात वस्तु है, सख्यात चूलिका वस्तु हैं, सख्यात प्राभृत है, सख्यात प्राभृत-प्राभृत है, सख्यात प्राभृतिकाए है, सख्यात प्राभृत-प्राभृतिकाए हैं। पद गणना की अपेक्षा सख्यात लाख पद कहे गये है। सख्यात अक्षर हैं। अनन्त गम है, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस है, अनन्त स्थावर है। ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस दृष्टिवाद मे कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते है, प्ररूपित किये जाते हे, दर्शित किये जाते हैं, निर्दशित किये जाते और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह बारहवाँ दृष्टिवाद अग है। यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक का वर्णन है १२।

५७१—इच्चेइय दुवालसग गणिपिडग अतीतकाले अणता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरत-ससारकतार अणुपरियट्टिसु। इच्चेइय दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरतससारकतार अणुपरियट्टंति। इच्चेइय दुवालसगं गणिपिडग अणागए काले अणता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरतससारकंतार अणुपरियट्टस्सति।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र रूप, अर्थरूप और उभय रूप आज्ञा का विराधन करके अर्थात् दुराग्रह के वशीभूत होकर अन्यथा सूत्रपाठ करके, अन्यथा अर्थकथन करके और अन्यथा सूत्रार्थ—उभय की प्ररूपणा करके अनन्त जीवो ने भूतकाल मे चतुर्गतिरूप ससार-कान्तार (गहन वन) मे परिभ्रमण किया है, इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभय रूप आज्ञा का विराधन करके वर्तमान काल मे परीत (परिमित) जीव चतुर्गतिरूप ससार-कान्तार मे परिभ्रमण कर रहे है और इसी द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का विराधन कर भविष्यकाल मे अनन्त जीव चतुर्गतिरूप ससार-कान्तार मे परिभ्रमण करेगे।

५७२—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंत-संसारकंतारं वीईवइंसु। एवं पडुप्पण्णेऽवि [परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं वीईवंति] एवं अणागए वि [अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं वीईवइस्संति]।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का आराधन करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गति रूप संसार-कान्तार को पार किया है (मुक्ति को प्राप्त किया है)। वर्तमान काल में भी (परिमित) जीव इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभय रूप आज्ञा का आराधन करके चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को पार कर रहे हैं और भविष्यकाल में भी अनन्त जीव इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की सूत्र, अर्थ और उभय रूप आज्ञा का आराधन करके चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को पार करेंगे।

५७३—दुवालसंगे णं गणिपिडगे ण कयाइ णासी, ण कयावि णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सति य। धुवे नितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। से जहा णामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सति। भुविं च, भवति य, भविस्संति य, धुवा णितिया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा। एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सइ य। धुवे जाव अवट्ठिए णिच्चे।

यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक भूतकाल में कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा, ऐसा, भी नहीं है। किन्तु भूतकाल में भी यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक था, वर्तमान काल में भी है और भविष्यकाल में भी रहेगा। क्योंकि यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना देने पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण अक्षय है, गंगा-सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है, जम्बूद्वीपादि के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है। जिस प्रकार पाँच अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में कभी नहीं थे ऐसा नहीं, वर्तमान काल में कभी नहीं हैं, ऐसा भी नहीं है और भविष्य काल में कभी नहीं रहेंगे, ऐसा भी नहीं है। किन्तु ये पाँचों अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में भी थे, वर्तमानकाल में भी हैं और भविष्यकाल में भी रहेंगे। अतएव ये ध्रुव हैं, नियत हैं, शाश्वत हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं, और नित्य हैं। इसी प्रकार यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक भूतकाल में कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा, ऐसा भी नहीं है। किन्तु भूतकाल में भी यह था, वर्तमान काल में भी यह है और भविष्य काल में भी रहेगा। अतएव यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

५७४—एत्थ णं दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा अघाविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

एवं दुवालसंगं गणिपिडगं ति।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक मे अनन्त भाव (जीवादि स्वरूप से सत् पदार्थ) और अनन्त अभाव (पररूप से असत् जीवादि वही पदार्थ) अनन्त हेतु, उनके प्रतिपक्षी अनन्त अहेतु, इसी प्रकार अनन्त कारण, अनन्त अकारण; अनन्त जीव, अनन्त अजीव, अनन्त भव्यसिद्धिक, अनन्त अभव्य-सिद्धिक, अनन्त सिद्ध तथा अनन्त असिद्ध कहे जाते है, प्रज्ञापित किये जाते है, प्ररूपति किये जाते हैं, दर्शित किये जाते है, निदर्शित किये जाते है और उपदर्शित किये जाते है ।

विवेचन—जैन सिद्धान्त मे प्रत्येक वस्तु मे जिस प्रकार अनन्त धर्म स्वरूप की अपेक्षा सत्तारूप मे पाये जाते है, उसी प्रकार पररूप की अपेक्षा अनन्त अभावात्मक धर्म भी पाये जाते है । इसी कारण सूत्र मे स्वरूप की अपेक्षा भावात्मक धर्मों का और पररूप की अपेक्षा अभावात्मक धर्मों का निरूपण किया गया है । पदार्थ के धर्म-विशेषो को सिद्ध करने वाली युक्तियो को हेतु कहते है । पदार्थों के उपादान और निमित्त कारणो को कारण कहते हैं । जिनमे चेतना पाई जाती है, वे जीव और जिनमे चेतना नही पाई जाती है, वे अजीव कहलाते हैं । जिनमे मुक्ति जाने की योग्यता है वे भव्यसिद्धिक और जिनमे वह योग्यता नही पाई जाती उन्हे भव्यसिद्धिक कहते है । कर्म-मुक्त जीवो को सिद्ध और कर्म-बद्ध ससारी जीवो को असिद्ध कहते है । इस प्रकार से यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक ससार मे विद्यमान सभी तत्त्वो, भावो और पदार्थों का वर्णन करता है ।

इस प्रकार द्वादशाङ्ग गणि-पिटक का वर्णन समाप्त हुआ ।

उपसहार—द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान का विषय बहुत विशाल है । श्रुतज्ञान की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्यों ने 'भेद साक्षादसाक्षाच्च श्रुत-केवलयोर्मत ' कह कर श्रुतज्ञान की महत्ता प्रकट की है, अर्थात् श्रुतज्ञान और केवलज्ञान मे प्रत्यक्ष एव परोक्ष का भेद कहा है । जहाँ केवलज्ञान त्रैलोक्य-त्रिकालवर्ती, द्रव्यो, उनके गुणो और पर्यायो को साक्षात् हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानता है, वहा श्रुतज्ञान उन सबको परोक्ष रूप से जानता है । अत ससार का कोई भी तत्त्व द्वादशाङ्ग श्रुत से बाहर नही है । सभी तत्त्व इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक मे समाहित हैं । आचाराङ्ग आदि ग्यारह अगो मे आचार आदि प्रधान रूप से एक-एक विषय का वर्णन किया गया है, किन्तु बारहवे दृष्टिवाद अग मे तो ससार के सभी तत्त्वो का वर्णन किया गया है । उसके पूर्वगत भेद मे से जहाँ प्रारम्भ के उत्पादपूर्व आदि अनेक पूर्व वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक स्वरूप का वर्णन करते हैं, वहाँ वीर्य प्रवादपूर्व द्रव्य की शक्तियो का, अस्तिनास्ति-प्रवाद पूर्व अनेक धर्मात्मकता का, ज्ञानप्रवाद और आत्मप्रवाद पूर्व आत्मस्वरूप का, कर्मप्रवाद पूर्व कर्मों की दशाओ का निरूपण करते हैं। प्रत्याख्यानपूर्व अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तो का, विद्यानुवाद पूर्व मत्र-तन्त्रो का, प्राणावाय पूर्व आयुर्वेद के अष्टाङ्गो का, अन्तरिक्ष, भौम, अग स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यजन और छिन्न इन आठ महानिमित्तो का एव ज्योतिषशास्त्र के रहस्यो का वर्णन करता है। अबन्ध्य पूर्व कभी निष्फल नही जाने वाली कल्याणकारिणी क्रियाओ का वर्णन करता है । क्रियाविशालपूर्व क्रियाओ का, स्त्रियो की चौसठ और पुरुषो की बहत्तर कलाओ का, तथा काव्य-रचना, छन्द, अलकार आदि का वर्णन करता है । लोकबिन्दुसार पूर्व अवशिष्ट सर्वश्रुत सम्पदा का वर्णन करता है । इस प्रकार ऐसा कोई भी जीवनोपयोगी एव आत्मोपयोगी विषय नही है, जिसका वर्णन इन चौदह पूर्वों मे न किया गया हो । कथानुयोग, गणित आदि विषयो का वर्णन दृष्टिवाद के शेष चार भेदो मे किया गया है । इस प्रकार द्वादशाङ्ग श्रुत का विषय बहुत विशाल है ।

विविधविषयनिरूपण

५७६—दुवे रासी पन्नत्ता । तं जहा—जीवरासी अजीवरासी य । अजीवरासी दुविहा पन्नत्ता । त जहा—रूवी अजीवरासी अरूवी अजीवरासी य ।

दो राशिया कही गई है—जीवराशि और अजीव राशि । अजीवराशि दो प्रकार की कही गई है । रूपी अजीवराशि और अरूपी अजीवराशि ।

५७७—से किं तं अरूवी अजीवरासी ? अरूवी अजीवरासी दसविहा पन्नत्ता । तं जहा—धम्मत्थिकाए जाव [धम्मत्थिकायदेसा, धम्मत्थिकायपदेसा, अधम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकायदेसा, अधम्मत्थिकायपदेसा, आगासत्थिकाए, आगासत्थिकायदेसा, आगासत्थिकायपदेसा] अद्धासमए ।

अरूपी अजीवराशि क्या है ?

अरूपी अजीवराशि दश प्रकार की कही गई है । जैसे—धर्मास्तिकाय यावत् (धर्मास्तिकाय देश, धर्मास्तिकायप्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय देश, अधर्मास्तिकाय प्रदेश, आकाशास्तिकाय, आकाशास्तिकाय देश, आकाशास्तिकाय प्रदेश) और अद्धासमय ।

५७८—रूवी अजीवरासी अणेगविहा पन्नत्ता जाव — ... .

[रूपी अजीवराशि क्या है ?]

रूपी अजीवराशि अनेक प्रकार की कही गई है यावत्

विवेचन—रूपी अजीवराशि का तथा जीवराशि का विवरण यहाँ नही दिया गया है, केवल जाव शब्द का प्रयोग करके यह सूचित कर दिया गया है कि प्रज्ञापनासूत्र के पहले प्रज्ञापना नामक पद के अनुसार इसका निरूपण समझ लेना चाहिए । दोनो स्थलो मे अन्तर, मात्र एक शब्द का है । प्रज्ञापनासूत्र मे जहाँ 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग है, वहा इस स्थान पर राशि शब्द का प्रयोग करना चाहिए । शेष कथन दोनो जगह समान है । टीका के अनुसार सक्षिप्त कथन इस प्रकार है—

रूपी अजीवरूप अर्थात् पुद्गल राशि चार प्रकार की है—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु । अनन्त परमाणुओ के सम्पूर्ण पिंड को स्कन्ध कहते है । स्कन्ध के उसमे मिले हुए भाग को देश कहते है और स्कन्ध के साथ जुडे अविभागी अश को प्रदेश कहते है । पुद्गल के सबमे छोटे अविभागी अश को, जो पृथक् है, परमाणु कहते है ।[1] पुन यह पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के भेद से पाँच प्रकार का है । पुन सस्थान भी पुद्गल-परमाणुओ के सयोग से अनेक प्रकार का होता है । यह पुद्गल शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, भेद, तम, (अन्धकार) छाया, उद्योत (चन्द्र-प्रकाश) और आतप (सूर्य-प्रकाश) आदि के भेद से भी अनेक प्रकार का है ।

---

१. पचास्तिकाय मे देश और प्रदेश का स्वरूप भिन्न प्रकार से बतलाया गया है—

खध सयलसमत्थ, तस्स य अद्ध भणति देसोत्ति ।
तस्स य अद्ध पदेश ज अविभागी वियाण परमाणु त्ति ॥ —पचास्तिकाय, गाथा ९५

५७९—[जीवरासी दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संसारसमावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य। तत्थ असंसारसमावन्नगा दुविहा पण्णत्ता··· जाव]

जीव-राशि क्या है ?

[जीव-राशि दो प्रकार की कही गई है—ससारसमापन्नक (ससारी जीव) और असंसार समापन्नक (मुक्त जीव)। इस प्रकार दोनो राशियो के भेद-प्रभेद प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार अनुत्तरोपपातिकसूत्र तक जानना चाहिए।

५८०—से किं त अणुत्तरोववाइया ? अणुत्तरोववाइआ पचविहा पन्नत्ता। त जहा—विजय-वेजयंत-जयत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धिआ। से त्त अणुत्तरोववाइया। से त्तं पचिंदियसंसारसमावण्ण-जीवरासी।

वे अनुत्तरोपपातिक देव क्या है ?

अनुत्तरोपपातिक देव पाँच प्रकार के कहे गये है। जैसे—विजय-अनुत्तरोपपातिक, वैजयन्त-अनुत्तरोपपातिक, जयन्त-अनुत्तरोपपातिक, अपराजित-अनुत्तरोपपातिक और सर्वार्थसिद्धिक अनुत्तरोपपातिक। ये सब अनुत्तरोपपातिक ससार-समापन्नक जीवराशि हैं।

यह सब पचेन्द्रियससार-समापन्न-जीवराशि हैं।

५८१—दुविहा णेरइया पण्णत्ता। त जहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। एव दडओ भाणियव्वो जाव वेमाणिय त्ति।

नारक जीव दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त। यहा पर भी [प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार] वैमानिक देवो तक अर्थात् नारक, असुरकुमार, स्थावरकाय, द्वीन्द्रिय आदि, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक का सूत्र-दडक कहना चाहिए, अर्थात् वर्णन समझ लेना चाहिए।

५८२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए केवइय खेत्तं ओगाहेत्ता केवइया णिरयावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्स-बाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्स ओगाहेत्ता हेट्ठा चेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसत्तरि जोयणसयसहस्से एत्थ ण रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाण तीस णिरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया। ते णं णिरयावासा अंतो वट्टा, बाहिं चउरसा जाव असुभा णिरया, असुभाओ णिरएसु वेयणाओ। एव सत्त वि भाणियव्वाओ जं जासु जुज्जइ—

[भगवन्] इस रत्नप्रभा पृथिवी मे कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नारकावास कहे गये हैं ?

गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथिवी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन कर, तथा सबसे नीचे के एक हजार योजन क्षेत्र को छोडकर मध्यवर्ती एक लाख अठहत्तर हजार योजन वाले रत्नप्रभा पृथिवी के भाग मे तीस लाख नारकावास हैं। वे नारकावास भीतर की ओर गोल और बाहर की ओर चौकोर है यावत् वे नरक अशुभ है और उन नरको मे अशुभ वेदनाए हैं। इसी प्रकार सातो ही पृथिवियो का वर्णन जिनमे जो युक्त हो, करना चाहिए।

विवेचन—आगे दी गई गाथा संख्या एक के अनुसार दूसरी पृथिवी एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है। उसके एक हजार योजन ऊपर का और एक हजार नीचे का भाग छोडकर मध्यवर्ती एक लाख तीस हजार योजन भू-भाग मे पच्चीस लाख नारकावास हैं। तीसरी पृथिवी एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। उसके एक हजार योजन ऊपर का और एक हजार योजन नीचे का भाग छोडकर मध्यवर्ती एक लाख छब्बीस हजार योजन भू-भाग मे पन्द्रह लाख नारकावास हैं। चौथी पृथिवी एक लाख बीस हजार योजन मोटी है। उसके ऊपर तथा नीचे की एक एक हजार योजन भूमि को छोडकर शेष एक लाख अठारह हजार योजन भू-भाग में दश लाख नारकावास है। पाचवी पृथिवी एक लाख अठारह हजार योजन मोटी है। उसके एक एक हजार योजन ऊपरी वा नीचे का भाग छोडकर शेष मध्यवर्ती एक लाख सोलह हजार योजन भू-भाग में तीन लाख नारकावास हैं। छठी पृथिवी एक लाख सोलह हजार योजन मोटी है, उसके एक-एक हजार योजन ऊपरी और नीचे का भाग छोडकर मध्यवर्ती एक लाख चौदह हजार योजन भू-भाग मे पाच कम एक लाख (९९९९५) नारकावास हैं। सातवी पृथिवी एक लाख आठ हजार योजन मोटी है। उसके ५२½, ५२½ हजार योजन ऊपरी तथा नीचे के भाग को छोडकर मध्य मे पाच नारकावास है। उसमे अप्रतिष्ठान नाम का नारकावास ठीक चारो नारकावासो के मध्य में है और शेष काल, महाकाल, रौरुक और महारौरुक नारकावास उसकी चारो दिशाओ में अवस्थित हैं।

सभी पृथिवियो मे नारकावास तीन प्रकार के हैं—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध (आवलिकाप्रविष्ट) और पुष्पप्रकीर्णक (आवलिकाबाह्य)। इन्द्रक नारकावास सबके बीच मे होता है और श्रेणीबद्ध नारकावास उसकी आठो दिशाओ में अवस्थित है। पुष्पप्रकीर्णक या आवलिकाबाह्य नारकावास श्रेणिबद्ध नारकावासो के मध्य मे अवस्थित हैं। इन्द्रक नारकावास गोल होते हैं और शेष नारकावास त्रिकोण चतुष्कोण आदि नाना आकार वाले कहे गये है। तथा नीचे की ओर सभी नारकावास क्षुरप्र (खुरपा) के आकार वाले हैं।

५८३—आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च।
अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव बाहल्लं ॥१॥
तीसा य पण्णवीसा पन्नरस दसेव सयसहस्साइं।
तिण्णेगं पचूण पंचेव अणुत्तरा नरगा ॥२॥
चउसट्ठी असुराणं चउरासीइं च होइ नागाणं।
बावत्तरि सुवन्नाण वाउकुमाराण छण्णउई ॥३॥
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणियमग्गीणं।
छण्हं पि जुवलयाणं छावत्तरिमो य सयसहस्सा ॥४॥
बत्तीसट्ठावीसा बारस अड चउरो य सयसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा छच्च सया सहस्सारे ॥५॥
आणय-पाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥६॥
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तर विमाणा ॥७॥

रत्नप्रभा पृथिवी का बाहल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन है। शर्करा पृथिवी का बाहल्य एक लाख बत्तीस हजार योजन है। वालुका पृथिवी का बाहल्य एक लाख अट्ठाईस हजार योजन है। पकप्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख बीस हजार योजन है। धूमप्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख अट्ठारह हजार योजन है। तम:प्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख सोलह हजार योजन है और महातम:प्रभा पृथिवी का बाहल्य एक लाख आठ हजार योजन है ।।१।।

रत्नप्रभा पृथिवी मे तीस लाख नारकावास है। शर्करा पृथिवी मे पच्चीस लाख नारकावास हैं। वालुका पृथिवी मे पन्द्रह लाख नारकावास हैं। पकप्रभा पृथिवी मे दश लाख नारकावास हैं। धूमप्रभा पृथिवी मे तीन लाख नारकावास हैं। तम प्रभा पृथिवी मे पाच कम एक लाख नारकावास हैं। महातम. पृथिवी मे (केवल) पाच अनुत्तर नारकावास हैं ।।२।।

असुरकुमारो के चौसठ लाख भवन है। नागकुमारों के चौरासी लाख भवन हैं। सुपर्णकुमारो के बहत्तर लाख भवन है। वायुकुमारो के छयानवै लाख भवन हैं ।।३।।

द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, अग्निकुमार इन छहो युगलो के छियत्तर (७६) लाख भवन हैं ।।४।।

सौधर्मकल्प मे बत्तीस लाख विमान है। ईशानकल्प मे अट्ठाईस लाख विमान है। सनत्कुमार-कल्प मे बारह लाख विमान हैं। माहेन्द्रकल्प मे आठ लाख विमान है। ब्रह्मकल्प मे चार लाख विमान है। लान्तककल्प मे पचास हजार विमान हैं। महाशुक्र विमान मे चालीस हजार विमान हैं। सहस्रारकल्प मे छह हजार विमान हैं ।।५।।

आनत, प्राणत कल्प मे चार सौ विमान हैं। आरण और अच्युत कल्प मे तीन सौ विमान है। इस प्रकार इन चारो ही कल्पो मे विमानो की सख्या सात सौ जानना चाहिए ।।६।।

अधस्तन—नीचे के तीनो ही ग्रैवेयको मे एक सौ ग्यारह विमान हैं। मध्यम तीनो ही ग्रैवेयको मे एक सौ सात विमान है। उपरिम तीनो ही ग्रैवेयको मे एक सौ विमान है। अनुत्तर विमान पाच ही हैं ।।७।।

५८४—दोच्चाए णं पुढवीए, तच्चाए णं पुढवीए, चउत्थीए पुढवीए, पंचमीए पुढवीए, छट्ठीए पुढवीए, सत्तमीए पुढवीए गाहाहिं भाणियव्वा। [ ]

इसी प्रकार ऊपर की गाथाओ के अनुसार दूसरी पृथिवी मे, तीसरी पृथिवी मे, चौथी पृथिवी मे, पाचवी पृथिवी मे, छठी पृथिवी मे और सातवी पृथिवी मे नरक बिलो—नारकावासो—की सख्या कहना चाहिए।

[इसी प्रकार उक्त गाथाओ के अनुसार दशो प्रकार के भवनवासी देवो के भवनो की, बारह कल्पवासी देवो के विमानों की, तथा ग्रैवेयक और अनुत्तर देवो के विमानो की भी सख्या जानना चाहिए।]

५८५—सत्तमाए पुढवीए पुच्छा। गोयमा ! सत्तमाए पुढवीए अट्ठुत्तरजोयणसयसहस्साइं बाहल्लाए उवरिं अद्धतेवन्नं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठा वि अद्धतेवन्नं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ ण सत्तमाए पुढवीए नेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया

पण्णत्ता। तं जहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अपइट्ठाणे नामं पंचमे। ते णं निरया वट्टे य तंसा य। अहे खुरप्पसंठाणसंठिया जाव असुभा, नरगा, असुभाओ नरएसु वेयणाओ।

सातवी पृथिवी मे पृच्छा---[भगवन् ! सातवी पृथिवी में कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नारकावास हैं ?]

गौतम ! एक लाख आठ हजार योजन बाहल्यवाली सातवी पृथिवी मे ऊपर से साढे बावन हजार योजन अवगाहन कर और नीचे भी साढे बावन हजार योजन छोडकर मध्यवर्ती तीन हजार योजनो मे सातवी पृथिवी के नारकियो के पाच अनुत्तर, बहुत विशाल महानरक कहे गये हैं। जैसे—काल, महाकाल, रोरुक, महारोरुक और पाचवा अप्रतिष्ठान नाम का नरक है। ये नरक वृत्त (गोल) और त्र्यस्र है, अर्थात् मध्यवर्ती अप्रतिष्ठान नरक गोल आकार वाला है और शेष चारो दिशावर्ती चारो नरक त्रिकोण आकार वाले है। नीचे तल भाग मे वे नरक क्षुरप्र (खुरपा) के आकार वाले है। यावत् ये नरक अशुभ है और इन नरको मे अशुभ वेदनाए हैं।

५८६—केवइया ण भंते ! असुरकुमारावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्स-बाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयण-सहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरि जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए चउसट्ठि असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरसा, अहे पोक्खरकण्णिआ-संठाणसंठिया उक्किण्णंतर विउल-गंभीर-खाय-फलिहा अट्टालय-चरिय-दार-गोउर-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा जंत-मुसल-भुसंढि-सयग्घि-परिवारिया अउज्झा अडयालकोट्ठरइया अडयालकय-वणमाला लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दर-दिण्णपंचंगुलितला कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क तुरुक्कडज्झंत-धूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। एवं जं जस्स कमती तं तस्स, जं जं गाहाहिं भणियं तह चेव वण्णओ।

भगवन् !- असुरकुमारो के आवास (भवन) कितने कहे गये है ?

गौतम ! इस एक लाख अस्सी हजार योजन बाहल्यवाली रत्नप्रभा पृथिवी मे ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन कर और नीचे एक हजार योजन छोडकर मध्यवर्ती एक लाख अठहत्तर हजार योजन मे रत्नप्रभा पृथिवी के भीतर असुरकुमारो के चौसठ लाख भवनावास कहे गये हैं। वे भवन बाहर गोल है, भीतर चौकोण है और नीचे कमल की कर्णिका के आकार से स्थित है। उनके चारो ओर खाई और परिखा[1] खुदी हुई हैं जो बहुत गहरी है। खाई और परिखा के मध्य मे पाल बधी हुई है। तथा वे भवन अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर, कपाट, तोरण, प्रतिद्वार, देश रूप भाग वाले है, यंत्र, मूसल, भुसुंढी, शतघ्नी, इन शस्त्रों से संयुक्त हैं। शत्रुओ की सेनाओ से अजेय हैं। अडतालीस कोठो से रचित, अडतालीस वन-मालाओ से शोभित है। उनके भूमिभाग और भित्तियाँ उत्तम लेपो से लिपी और चिकनी हैं, गोशीर्षचन्दन और लालचन्दन के सरस सुगन्धित लेप से उन भवनो की भित्तियो पर पाँचो अंगुलियों युक्त हस्ततल (हाथ) अकित है। इसी

---

१. जो ऊपर-नीचे समान विस्तार वाली हो वह खाई, जो ऊपर चौडी और नीचे संकडी हो वह परिखा।

प्रकार भवनो की सीढियो पर भी गोशीर्षचन्दन और लालचन्दन के रस से पाचो अगुलियो के हस्ततल अकित है। वे भवन कालागुरु, प्रधान कुन्दरु और तुरुष्क (लोभान) युक्त धूप के जलते रहने से मघमघायमान, सुगन्धित और सुन्दरता से अभिराम (मनोहर) है। वहा सुगन्धित अगर-बत्तिया जल रही है। वे भवन आकाश के समान स्वच्छ है, स्फटिक के समान कान्तियुक्त हैं, अत्यन्त चिकने हैं, घिसे हुए है, पालिश किये हुए हैं, नीरज (रज-धूलि से रहित) है निर्मल है, अन्धकार-रहित है, विशुद्ध (निष्कलक) हैं, प्रभा-युक्त है, मरीचियो (किरणो) से युक्त हैं, उद्योत (शीतल प्रकाश) से युक्त है, मन को प्रसन्न करने वाले हैं। दर्शनीय (देखने के योग्य) हैं, अभिरूप (कान्त, सुन्दर) हैं और प्रतिरूप (रमणीय) हैं।

जिस प्रकार से असुरकुमारो के भवनो का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार नागकुमार आदि शेष भवनवासी देवो के भवनो का भी वर्णन जहा जैसा घटित और उपयुक्त हो, वैसा करना चाहिए। तथा ऊपर कही गई गाथाओ से जिसके जितने भवन बताये गये हैं, उनका वैसा ही वर्णन करना चाहिए।

५८७—केवइया णं भंते ! पुढविकाइयावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! असंखेज्जा पुढविकाइयावासा पण्णत्ता। एवं जाव मणुस्स त्ति।

भगवन् ! पृथिवीकायिक जीवो के आवास कितने कहे गये है ?

गौतम ! पृथिवीकायिक जीवो के असख्यात आवास कहे गये है। इसी प्रकार जलकायिक जीवो से लेकर यावत् मनुष्यो तक के जानना चाहिए।

विवेचन—गर्भज मनुष्यो के आवास तो सख्यात ही होते हैं। तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के आवास नही होते हैं किन्तु प्रत्येक शरीर मे एक एक जीव होने से वे असख्यात है, इतना विशेष जानना चाहिए।

५८८—केवइया णं भंते वाणमंतरावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स-जोयणसहस्स-बाहल्लस्स उवरि एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेग जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जा नगरावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा अतो चउरंसा। एवं जहा भवणवासीणं तहेव णेयव्वा। णवरं पडागमालाउला सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

भगवन् ! वानव्यन्तरो के आवास कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथिवी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काड के एक सौ योजन ऊपर से अवगाहन कर और एक सौ योजन नीचे के भाग को छोड़ कर मध्यके आठ सौ योजनो मे वानव्यन्तर देवो के तिरछे फैले हुए असख्यात लाख भौमेयक नगरावास कहे गये हैं। वे भौमेयक नगर बाहर गोल और भीतर चौकोर हैं। इस प्रकार जैसा भवनवासी देवो के भवनो का वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन वानव्यन्तर देवो के भवनो का जानना चाहिए। केवल इतनी विशेषता है कि ये पताका-मालाओ से व्याप्त हैं। यावत् सुरम्य हैं, मन को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप है।

५८९—केवइया णं भंते ! जोइसियाण विमाणावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तनउयाइं जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले तिरियं जोइसविसए जोइसियाणं देवाणं असंखेज्जा जोइसियविमाणावासा पण्णत्ता। ते णं जोइसियविमाणावासा अब्भुग्गयमूसियपहसिया विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजय-वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतलमणुलिहतसिहरा जालंतर-रयणपंजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियागा वियसिय-सयपत्त-पुण्डरीय-तिलय-रयणद्धचंदचित्ता अंतो बाहिं च सण्हा तवणिज्ज-वालुआ पत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा।

भगवन् ! ज्योतिष्क देवो के विमानावास कितने कहे गये है ?

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से सात सौ नव्वै योजन ऊपर जाकर एक सौ दश योजन बाहल्य वाले तिरछे ज्योतिष्क-विषयक आकाशभाग मे ज्योतिष्क देवो के असख्यात विमानावास कहे गये हैं। वे अपने मे से निकलती हुई और सर्व दिशाओ मे फैलती हुई प्रभा से उज्ज्वल है, अनेक प्रकार के मणि और रत्नो की चित्रकारी से युक्त है, वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयन्ती पताकाओ से और छत्रातिछत्रो से युक्त हैं, गगनतल को स्पर्श करने वाले ऊचे शिखर वाले हैं, उनकी जालियो के भीतर रत्न लगे हुए हैं। जैसे पजर (प्रच्छादन) से तत्काल निकाली वस्तु सश्रीक—चमचमाती है वैसे ही वे सश्रीक हैं। मणि और सुवर्ण की स्तूपिकाओ से युक्त है, विकसित शतपत्रो एव पुण्डरीको (श्वेत कमलो) से, तिलको से, रत्नो के अर्धचन्द्राकार चित्रो से व्याप्त है, भीतर और बाहर अत्यन्त चिकने है, तपाये हुए सुवर्ण के समान वालुकामयी प्रस्तटो या प्रस्तारो वाले है। सुखद स्पर्श वाले हैं, शोभायुक्त है, मन को प्रसन्न करने वाले और दर्शनीय हैं।

५९०—केवइया णं भंते ! वेमाणियावासा पण्णत्ता ? गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं वीइवइत्ता बहूणि जोयणाणि बहूणि जोयणसयाणि बहूणि जोयणसहस्साणि [बहूणि जोयणसयसहस्साणि] बहुइओ जोयणकोडीओ बहुइओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुएसु गेवेज्जमणुत्तरेसु य चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खाया।

भगवन् ! वैमानिक देवो के कितने आवास कहे गये है ?

गौतम ! इसी रत्नप्रभा पृथिवी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारकाओ को उल्लघन कर, अनेक योजन, अनेक शत योजन, अनेक सहस्र योजन [अनेक शत-सहस्र योजन] अनेक कोटि योजन, अनेक कोटाकोटी योजन, और असख्यात कोटा-कोटी योजन ऊपर बहुत दूर तक आकाश का उल्लघन कर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत कल्पो मे, ग्रैवेयको मे और अनुत्तरो मे वैमानिक देवो के चौरासी लाख सत्तानवै हजार और तेईस विमान हैं, ऐसा कहा गया है।

५९१—ते णं विमाणा अच्चिमालिप्पभा भासरासिवण्णाभा अरया निरया णिम्मला

वितिमिरा विसुद्धा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा घट्टा मट्ठा णिप्पंका णिक्कंक-डच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

वे विमान सूर्य की प्रभा के समान प्रभावाले हैं, प्रकाशों की राशियों (पुंजों) के समान भासुर हैं, अरज (स्वाभाविक रज से रहित) है, नीरज (आगन्तुक रज से विहीन) हैं, निर्मल हैं, अन्धकाररहित हैं, विशुद्ध हैं, मरीचि-युक्त है, उद्योत-सहित है, मन को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप है ।

५९२—सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवइया विमाणावासा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता । एवं ईसाणाइसु अट्ठावीस बारस अट्ठ चत्तारि एयाइं सयसहस्साइं पण्णास चत्तालीस छ-एयाइं सहस्साइं आणए पाणए चत्तारि आरणच्चुए तिन्नि एयाणि सयाणि एवं गाहाहिं भाणियव्वं ।

भगवन् ! सौधर्म कल्प मे कितने विमानावास कहे गये है ?

गौतम ! सौधर्म कल्प मे बत्तीस लाख विमानावास कहे गये है । इसी प्रकार ईशानादि शेष कल्पो मे सहस्रार तक क्रमश पूर्वोक्त गाथाओ के अनुसार अट्ठाईस लाख, बारह लाख, आठ लाख चार लाख, पचास हजार, छह सौ, तथा आनत प्राणत कल्प मे चार सौ और आरण-अच्युत कल्प मे तीन सौ विमान कहना चाहिए । [ग्रैवेयक और अनुत्तर देवो के विमान भी पूर्वोक्त गाथाङ्क ७ पृष्ठ २०१ के अनुसार जानना चाहिए ।]

५९३—नेरइयाण भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता । अपज्जत्तगाणं नेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं । पज्जत्तगाणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए एवं जाव ।

भगवन् ! नारको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

गौतम ! जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

भगवन् ! अपर्याप्तक नरको की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[गौतम !] जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है ।

पर्याप्तक नारकियो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है । इसी प्रकार इस रत्नप्रभा पृथिवी से लेकर महातमः प्रभा पृथिवी तक अपर्याप्तक नारकियो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की, तथा पर्याप्तकों की स्थिति वहाँ की सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति से अन्तर्मुहूर्त्त अन्तर्मुहूर्त्त कम जानना चाहिए ।

[इसी प्रकार भवनवासियों, वानव्यन्तरों, ज्योतिष्कों, कल्पवासियों और ग्रैवेयकवासी देवों की पर्याप्तक-अपर्याप्तक काल-भावी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

५९४—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं बत्तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। सव्वट्ठे अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल कही गई है ?

गौतम ! जघन्य स्थिति बत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम कही गई है।

सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमानों में अजघन्य-अनुत्कृष्ट (उत्कृष्ट और जघन्य के भेद से रहित) सब देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

विवेचन—पाँचों अनुत्तर विमानों में भी वहाँ की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति में से अन्तर्मुहूर्त्त कम पर्याप्तक देवों की स्थिति जानना चाहिए। तथा सभी देवों की अपर्याप्त काल सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त जाननी चाहिए।

५९५—कति णं भंते ! सरीरा पन्नत्ता ? गोयमा ! पंच सरीरा पन्नत्ता। तं जहा—ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए।

भगवन् ! शरीर कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! शरीर पांच कहे गये हैं—औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर।

५९६—ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते। तं जहा—एगिंदिय-ओरालियसरीरे जाव गब्भवक्कंतिय मणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीरे य।

भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं।

गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—एकेन्द्रिय औदारिकशरीर, यावत् [द्वीन्द्रिय औदारिकशरीर, त्रीन्द्रिय औदारिकशरीर, चतुरिन्द्रिय औदारिकशरीर और पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर। इत्यादि प्रज्ञापनोक्त] गर्भजमनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर तक जानना चाहिए।

५९७—ओरालियसरीरस्स णं भंते ? केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलअसंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं एवं जहा ओगाहण-संठाणे ओरालियपमाणं तह निरवसेसं [भाणियव्वं]। एवं जाव मणुस्से त्ति उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

भगवन् ! औदारिकशरीर वाले जीव की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना कितनी कही गई है ?

गौतम ! [पृथिवीकायिक आदि की अपेक्षा] जघन्य शरीर-अवगाहना अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना [बादर वनस्पतिकायिक की अपेक्षा] कुछ अधिक एक हजार योजन कही गई है।

इस प्रकार जैसे अवगाहना सस्थान नामक प्रज्ञपना-पद मे औदारिकशरीर की अवगाहना का प्रमाण कहा गया है, वैसा ही यहाँ सम्पूर्ण रूप से कहना चाहिए। इस प्रकार यावत् मनुष्य की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना तीन गव्यूति (कोश) कही गई है।

५९८—कइविहे णं भंते ! वेउव्वियसरीरे पन्नत्ते ? गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते—एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे य पंचिदिय-वेउव्वियसरीरे अ। एवं जाव सणंकुमारे आढत्तं जाव अनुत्तराणं भवधारणिज्जा जाव तेसिं रयणी परिहायइ।

भगवन् ! वैक्रियिकशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! वैक्रियिकशरीर दो प्रकार का कहा गया है—एकेन्द्रिय वैक्रियिक शरीर और पचेन्द्रिय वैक्रियिकशरीर।

इस प्रकार यावत् सनत्कुमार-कल्प से लेकर अनुत्तर विमानो तक के देवो का वैक्रियिक भवधारणीय शरीर कहना। वह क्रमश एक-एक रत्नि कम होता है।

विवेचन—वैक्रियिकशरीर एकेन्द्रियो मे केवल वायुकायिक जीवो के ही होता है। विकलेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम तिर्यचो के वह नही होता है। नारकों मे, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देवो में, सौधर्म ईशान कल्पो के देवो मे और सनत्कुमारकल्प से लेकर अनुत्तर विमानवासी देवो तक वैक्रियिक शरीर होता है। नारको का भवधारणीय शरीर सातवे नरक मे पांच सौ धनुष से लेकर घटता हुआ प्रथम नरक मे सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल होता है। भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवों का भवधारणीय शरीर सात रत्नि या हाथ होना है। सनत्कुमार-माहेन्द्र देवो का भवधारणीय शरीर छह हाथ होता है। ब्रह्म-लान्तक देवो का पाँच हाथ, महाशुक्र-सहस्रार देवो का चार हाथ, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत देवो का तीन हाथ, ग्रैवेयक देवो का दो हाथ और अनुत्तर विमानवासी देवो का भवधारणीय शरीर एक हाथ होता है। जो तिर्यंच गर्भज हैं, और जो मनुष्य गर्भज हैं, उनके भवधारणीय वैक्रियिक शरीर नही होता है, किन्तु लब्धिप्रत्यय-जनित वैक्रियिक शरीर ही किसी-किसी के होता है। सबमे नही। उनमे भी वह कर्मभूमिज, सख्यातवर्षायुक्त और पर्याप्तक जीवो के ही होता है। उत्तर-वैक्रियिक शरीर मनुष्य के उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन की अवगाहनावाला होता है और देवो के एक लाख योजन अवगाहना वाला। तिर्यंचो के उत्कृष्ट सौ पृथक्त्व योजन अवगाहना वाला हो सकता है।

५९९—आहारयसरीरे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! एगाकारे पन्नत्ते।

जइ एगाकारे पन्नत्ते, किं मणुस्स-आहारयसरीरे अमणुस्स-आहारयसरीरे ?

गोयमा ! मणुस्स-आहारगसरीरे, णो अमणुस्स-आहारगसरीरे।

एवं जइ मणुस्स-आहारगसरीरे, किं गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारगसरीरे, संमुच्छिममणुस्स-आहारगसरीरे ?

गोयमा ! गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारयसरीरे नो संमुच्छिम-मणुस्स-आहारयसरीरे।
जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारयसरीरे, किं कम्मभूमिग० अकम्मभूमिग० ?
गोयमा ! कम्मभूमिग०, नो अकम्मभूमिग०।
जइ कम्मभूमिग०, किं संखेज्जवासाउय० असंखेज्जवासाउय० ?
गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, नो असखेज्जवासाउय० ?
जइ सखेज्जवासाउय०, किं पज्जत्तय० अपज्जत्तय० ?
गोयमा ! पज्जत्तय०, नो अपज्जत्तय०।
जइ पज्जत्तय० किं सम्मद्दिट्ठी० मिच्छदिट्ठी० सम्मामिच्छदिट्ठी० ?
गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी०। नो मिच्छदिट्ठी नो सम्मामिच्छदिट्ठी।
जइ सम्मदिट्ठी० किं सजय० असंजय० संजयासंजय० ?
गोयमा ! सजय०, नो असंजय० नो असजयासजय०।
जइ सजय० किं पमत्तसजय०, अप्पमत्तसजय० ?
गोयमा ! पमत्तसंजय०, नो अपमत्तसंजय०।
जइ पमत्तसजय०, किं इड्डिपत्त० अणिड्डिपत्त० ?
गोयमा ! इड्डिपत्त०, नो अणिड्डिपत्त०।
वयणा वि भाणियव्वा।

भगवन् ! आहारकशरीर कितने प्रकार का होता है ?

गौतम ! आहारक शरीर एक ही प्रकार का कहा गया है।

भगवन् ! यदि एक ही प्रकार का कहा गया है तो क्या वह मनुष्य आहारकशरीर है, अथवा अमनुष्य-आहारक शरीर है।

गौतम ! मनुष्य-आहारकशरीर है, अमनुष्य-आहारक शरीर नही है।

भगवन् ! यदि वह मनुष्य-आहारक शरीर है तो क्या वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, सम्मूर्च्छिम मनुष्य-आहारक शरीर नही है।

भगवन् ! यदि वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, तो क्या वह कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अकर्मभूमिज-गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अकर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नही है।

भगवन् ! यदि कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या वह सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा असख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ?

गौतम ! सख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, असख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नही है।

भगवन् ! यदि सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर है, तो क्या वह पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नही है ।

भगवन् ! यदि वह पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारक शरीर है, तो क्या वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, न मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है और न सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ।

भगवन् ! यदि वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या वह सयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा असयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा सयतासयत पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह सयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, न असयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है और न सयतासयत पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ।

भगवन् ! यदि वह सयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अप्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! वह प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अप्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारक-शरीर नही है ।

भगवन् ! यदि वह प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, तो क्या वह ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अथवा अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है ?

गौतम ! यह ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर नही है।

उपसहार—यह आहारकशरीर ऋद्धिप्राप्त छठे गुणस्थानवर्त्ती प्रमत्तसयत मुनि को होता है। इस स्थल पर मूलसूत्र मे 'वयणा वि भाणियव्वा' पाठ है, उसका अभिप्राय यह है कि मूल पाठ मे आहारकशरीर किसके होता है ? इससे सबद्ध गौतम स्वामी द्वारा किये गये प्रश्नो के भ० महावीर ने जो उत्तर दिये हैं उन्हे मूल मे 'कम्मभूमिग०' आदि पदो के आगे गोल बिन्दु (०) दिये गये है, उनसे सूचित वचनो को कहने के लिए सकेत किया गया है, जिसे ऊपर अनुवाद मे पूरा दिया ही गया है।

६००—आहारयसरीरे समचउरंससठाणसठिए।

यह आहारक शरीर समचतुरस्रसस्थान वाला होता है।

विवेचन—जब किसी चतुर्दश पूर्वधर अप्रमत्त सयत ऋद्धिप्राप्त मुनि को ध्यानावस्था मे किसी गहन सूक्ष्म तत्त्व के विषय मे कोई शका हो और उस समय उस क्षेत्र मे केवली भगवान् का अभाव हो तब वे आहारकशरीर नामकर्म का उपार्जन करते हैं और प्रमत्तसयत होते ही उनके मस्तक से रक्त-मास, हड्डी आदि से रहित एक हाथ का धवल वर्ण वाला मनुष्य के आकार का सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण पुतला निकलता है और जहा भी केवली भगवान् विराजते हो, वहा जाकर उनके चरण-कमलो का स्पर्श करता है। और स्पर्श करते ही वह वहा से वापिस आकर महामुनि के मस्तक मे प्रवेश करता है और उनकी शका का समाधान हो जाता है। इस आहारकशरीर के अर्जन, निर्गमन और प्रवेश की क्रिया एक अन्तर्मुहूर्त मे सम्पन्न हो जाती है। विशेषता यही है कि इसका बन्ध या उपार्जन तो सातवे गुणस्थान मे होता है और उदय या निर्गमन और प्रवेश आदि की क्रिया छठे गुणस्थान मे होती है।

६०१—आहारयसरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण देसूणा रयणी, उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी।

भगवन् ! आहारकशरीर की कितनी बडी शरीर-अवगाहना कही गई है ?

गौतम ! जघन्य अवगाहना कुछ कम एक रत्नि (हाथ) और उत्कृष्ट अवगाहना परिपूर्ण एक रत्नि कही गई है।

६०२—तेआसरीरे णं भंते कतिविहे पन्नत्ते ? गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते—
एगिदिय तेयसरीरे, बि-ति-चउ-पंच०। एवं जाव०।

भगवन् ! तैजसशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! पाच प्रकार का कहा गया है -एकेन्द्रियतैजस शरीर, द्वीन्द्रियतैजसशरीर, त्रीन्द्रिय तैजसशरीर, चतुरिन्द्रियतैजसशरीर और पचेन्द्रियतैजसशरीर। इस प्रकार आरण-अच्युत कल्प तक जानना चाहिए।

विवेचन—इस सूत्र मे एकेन्द्रियादि की अपेक्षा तैजसशरीर के पाच भेद कहकर शेष तैजस शरीर की वक्तव्यता को प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार जानने की सूचना की है, उसके अनुसार यहा दी जाती है—

[भगवन् ! एकेन्द्रियतैजस शरीर कितने प्रकार के कहे गये है ?

गौतम ! पाच प्रकार के कहे गये है। जैसे—पृथ्वीकाय एकेन्द्रियतैजसशरीर, अप्कायिक एकेन्द्रिक तैजसशरीर, तेजस्कायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर, वायुकायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर और वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तैजसशरीर। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक देवो के मारणान्तिक समुद्घातगत अवगाहना तक जानना चाहिए।]

यहां सूत्रकार ने शेष जीवो के तैजसशरीर का वर्णन न करके यावत् पद से प्रज्ञापनासूत्र मे प्ररूपित जीवराशि की प्ररूपणा के अनुसार सूत्रार्थ को जानने की सूचना की है। प्रकृत मे यह अभिप्राय है कि जिस जीव के शरीर की स्वाभाविक दशा मे या समुद्घात आदि विशिष्ट अवस्था मे जितनी अवगाहना होती है, उतनी ही तैजसशरीर की तथा कार्मणशरीर की अवगाहना जानना चाहिए। किस किस गति के जीव की शारीरिक अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट कितनी होती है, तथा कौन कौन से जीव समुद्घात दशा मे कितने आयाम-विस्तार को धारण करते हैं, यह प्रज्ञापना सूत्र से जानना चाहिए।

६०३—गेवेज्जस्स ण भंते ! देवस्स ण मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स समाणस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ? गोयमा ! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खभबाहल्लेण, आयामेण जहन्नेण अहे जाव विज्जाहरसेढीओ। उक्कोसेणं जाव अहोलोइयग्गामाओ। उड्ढं जाव सयाइ विमाणाइ, तिरियं जाव मणुस्सखेत्त। एवं जाव अणुत्तरोववाइया। एव कम्मयसरीर भाणियव्व।

भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए ग्रैवेयक देव की शरीर-अवगाहना कितनी बडी कही गई है ?

गौतम ! विष्कम्भ-बाहल्य की अपेक्षा शरीर-प्रमाणमात्र कही गई है और आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा नीचे जघन्य यावत् विद्याधर-श्रेणी तक उत्कृष्ट यावत् अधोलोक के ग्रामो तक, तथा ऊपर अपने विमानो तक और तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक कही गई है।

इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवो की जानना चाहिए। इसी प्रकार कार्मण शरीर का भी वर्णन कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे मारणान्तिक समुद्घातगत ग्रैवेयक देव की शारीरिक अवगाहना का वर्णन कर अनुत्तर विमानवासी देवो की शरीर-अवगाहना और कार्मणशरीर-अवगाहना को जानने की सूचना की गई है। यह सूत्र मध्यदीपक है, अत. एकेन्द्रियो से लेकर पचेन्द्रियों तक के तिर्यग्गति के तथा नारक, मनुष्य और देवगति के ग्रैवेयक देवो के पूर्ववर्ती सभी जीवो की स्वाभाविक शरीर-अवगाहना, तथा मारणान्तिक समुद्घातगत-अवगाहना का वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार जानना चाहिए। यहा सक्षेप से कुछ लिखा जाता है—

पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के शरीरो की जो जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना

बताई गई है, उतनी ही उनके तैजस और कार्मण शरीर की अवगाहना होती है। किन्तु मारणान्तिक समुद्घात या मरकर उत्पत्ति की अपेक्षा एकेन्द्रियो के प्रदेशो की लम्बाई जघन्य से अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण और उत्कर्ष से ऊपर और नीचे लोकान्त तक होती है, क्योंकि एकेन्द्रिय पृथिवीकायिक आदि जीव मर कर नीचे सातवी पृथिवी मे और ऊपर ईषत्प्राग्भार नामक पृथिवी मे उत्पन्न हो सकते है। द्वीन्द्रियादि जीव उत्कर्ष से तिर्यग्लोक के अन्त तक मर कर उत्पन्न हो सकते हैं, अत उनके तैजस-कार्मण शरीर की अवगाहना उतनी ही जाननी चाहिए। नारक की मरण की अपेक्षा जघन्य अवगाहना एक हजार योजन कही गई है, क्योकि प्रथम नरक का नारकी मरकर हजार योजन झाझेरी विस्तृत पाताल कलश की भित्ति को भेदकर उसमे मत्स्यरूप से उत्पन्न हो जाता है। उत्कर्ष से सातवे नरक का नारकी मरकर ऊपर लवण समुद्रादि मे मत्स्यरूप से उत्पन्न हो सकता है। तिर्यक् स्वयम्भूरमण समुद्र तक, तथा ऊपर पडक वन की पुष्करिणी मे भी मत्स्यरूप से उत्पन्न हो सकता है। मनुष्य मरकर सर्व ओर लोकान्त तक उत्पन्न हो सकता है, अत उसके तैजस और कार्मणशरीर की अवगाहना उतनी लम्बी जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ईशानकल्प के देवो के दोनो शरीरो की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण है, क्योकि ये देव मर कर अपने ही विमानो मे वही के वही एकेन्द्रिय पृथिवीकायिक जीवो मे उत्पन्न हो सकते हैं। उनकी उत्कृष्ट अवगाहना नीचे तीसरी पृथिवी तक, तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र की बाहिरी वेदिका के अन्त तक और ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी के अन्त तक लम्बी जानना चाहिए। सनत्कुमार कल्प से लेकर सहस्रार कल्प तक के देवों के तैजस-कार्मण शरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण कही गई है, क्योकि ये देव पडक वनादि की पुष्करिणियो मे स्नान करते समय मरण हो जाने से वही मत्स्यरूप से उत्पन्न हो जाते है। उत्कृष्ट अवगाहना नीचे महापाताल कलशो के द्वितीय त्रिभाग तक जानना चाहिए, क्योकि वहा जल का सद्भाव होने से वे मरकर मत्स्यरूप से उत्पन्न हो सकते है। तिरछे स्वयम्भूरमण समुद्र के अन्त तक अवगाहना जाननी चाहिए। ऊपर अच्युत स्वर्ग तक अवगाहना कही गई है, क्योकि सनत्कुमारादि स्वर्गों के देव किसी सागतिक देव के आश्रय से अच्युत स्वर्ग तक जा सकते है, और आयु पूर्ण हो जाने पर वहा से मरकर यहा मध्य लोक मे उत्पन्न हो सकते है। आनत आदि चार स्वर्गों के देवो की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग कही गई है, क्योकि वहा का देव यदि यहा मध्य लोक मे आया हो और यही मरण हो जाय तो वह यही किसी मनुष्यनी के गर्भ मे उत्पन्न हो सकता है। उक्त देवो की उत्कृष्ट अवगाहना नीचे मनुष्यलोक तक जानना चाहिए, क्योकि अन्तिम चार स्वर्गो के देव मरकर मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते है। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देवो की जघन्य अवगाहना विजयार्ध पर्वत की विद्याधर श्रेणी तक जानना चाहिए। उत्कृष्ट अवगाहना नीचे अधोलोक के ग्रामो तक, तिरछी मनुष्य लोक और ऊपर अपने-अपने विमानो तक कही गई है।

६०४—कइविहे णं भंते ! ओही पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता—भवपच्चइए य खओवसमिए य। एव सव्व ओहिपद भाणियव्वं।

भगवन् ! अवधिज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—भवप्रत्यय अवधिज्ञान और क्षायोपशमिक अवधिज्ञान। इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण अवधिज्ञान पद कह लेना चाहिए।

विवेचन—सूत्रकार ने जिस अवधिज्ञान-पद के जानने की सूचना की है, वह इस प्रकार है—अवधिज्ञान का भेद, विषय, सस्थान, आभ्यन्तर, बाह्य, देशावधि, वृद्धि, हानि, प्रतिपाति और अप्रतिपाति इन दश द्वारो से वर्णन किया गया है। सूत्रकार ने अवधिज्ञान के दो भेद कहे है, उनमे से भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवो और नारको को होता है, तथा क्षायोपशमिक—गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यंचों को होता है।

अवधिज्ञान का विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है। इनमे से द्रव्य की अपेक्षा अवधिज्ञान जघन्यरूप से तैजस वर्गणा और भाषा वर्गणा के अग्रहण-प्रायोग्य (दोनो के बीच के) द्रव्यो को जानता है, तथा उत्कृष्ट रूप से सर्व रूपी द्रव्यो को जानता है। क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्र को (क्षेत्र मे स्थित रूपी द्रव्यो को) जानता है और उत्कृष्ट लोकप्रमाण अलोक के असख्यात खडो को जानता है। काल की अपेक्षा आवलिका के असख्यातवे भाग प्रमाण अतीत और अनागत काल को (कालवर्त्ती रूपी द्रव्यो को) जानता है। तथा उत्कृष्ट रूप से असख्यात उत्सर्पिणी प्रमाण अतीत अनागत काल को जानता है। भाव की अपेक्षा जघन्यरूप से प्रत्येक पुद्‌गल द्रव्य के रूपादि चार गुणो को जानता है और उत्कृष्ट रूप से प्रत्येक रूपी द्रव्य के असख्यात गुणो को, तथा सर्वरूपी द्रव्यो की अपेक्षा अनन्त गुणो को जानता है।

सस्थान की अपेक्षा नारको के अवधिज्ञान का आकार तप्र (डोगी) के समान आकार वाला, भवनवासी देवो का पल्य के आकार का, व्यन्तर देवो का पटह के आकार का, ज्योतिष्क देवो का झालर के आकार, कल्पोपन्न देवो का मृदग के आकार, ग्रैवेयक देवो का पुष्पावली-रचित शिखर वाली चगेरी के समान, तथा अनुत्तर देवो का कन्याचोलक के समान होता है। तिर्यंचो और मनुष्यो के अवधिज्ञान का आकार अनेक प्रकार का होता है।

आभ्यन्तर द्वार की अपेक्षा कौन-कौन से जीव अपने अवधिज्ञान से प्रकाशित क्षेत्र के भीतर रहते है, इसका विचार किया जाता है।

बाह्य द्वार की अपेक्षा कौन-कौन से जीव अवधिज्ञान से प्रकाशित क्षेत्र के बाहर रहते है, इसका विचार किया जाता है। जैसे—नारक देव और तीर्थंकर अवधिज्ञान के द्वारा प्रकाशित क्षेत्र भीतर होते है। शेष जीव बाह्य अवधिज्ञानवाले भी होते है और आभ्यन्तर अवधिज्ञान वाले भी होते है।

देशावधि द्वार की अपेक्षा देवो, नारको और तिर्यंचो को देशावधिज्ञान ही होता है, क्योंकि वे अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्यो के एक देश को ही जानते है। किन्तु मनुष्यो को देशावधि भी होता और सर्वावधिज्ञान भी होता है। यहा इतना विशेष ज्ञातव्य है कि सर्वावधिज्ञान तद्‌भव मोक्षगामी परम सयत के ही होता है, अन्य के नही।

वृद्धि-हानि द्वार की अपेक्षा मनुष्यो और तिर्यंचो का अवधिज्ञान परिणामो की विशुद्धि के समय बढता है और सक्लेश के समय घटता भी है। वृद्धिरूप अवधिज्ञान अगुल के असख्यातवे भाग से बढकर लोकाकाशप्रमित क्षेत्र तक बढता जाता है। इसी प्रकार सक्लेश की वृद्धि होने पर उत्तरोत्तर घटता जाता है। किन्तु देवो और नारको का अवधिज्ञान जिस परिमाण में उत्पन्न होता है, उतने ही परिमाण मे अवस्थित रहता है, घटता-बढ़ता नही है।

प्रतिपाति-अप्रतिपाति द्वार की अपेक्षा देशावधिज्ञान प्रतिपाति है और सर्वावधिज्ञान अप्रतिपाति है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान भव-पर्यन्त अप्रतिपाति है और भव छूटने के साथ प्रतिपाति है। क्षायोपशमिक गुणप्रत्यय अवधिज्ञान प्रतिपाति भी होता है और अप्रतिपाति भी होता है।

६०५—सीया य दव्व सारीर साया तह वेयणा भवे दुक्खा।
अब्भुवगमुवक्कमिया णीयाए चेव अणियाए॥१॥

वेदना के विषय के शीत, द्रव्य, शारीर, साता, दुःखा, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, निदा और अनिदा इतने द्वार ज्ञातव्य है॥१॥

६०६—नेरइया णं भंते! किं सीत वेयणं वेयंति, उसिणं वेयणं वेयंति, सीतोसिण वेयणं वेयंति? गोयमा! नेरइया० एवं चेव वेयणापदं भाणियव्वं।

भगवन्! नारकी क्या शीत वेदना वेदन करते हैं, उष्णवेदना वेदन करते हैं, अथवा शीतोष्ण वेदना वेदन करते है?

गौतम! नारकी शीत वेदना वेदन करते है०, इस प्रकार से वेदना पद कहना चाहिए।

विवेचन—वेदना के विषय मे शीत आदि द्वार जानने के योग्य है। मूल मे शीत पद के आगे पठित 'च' शब्द से नही कही गई प्रतिपक्षी वेदनाओ की सूचना दी गई है। तदनुसार वेदना तीन प्रकार की है—शीत वेदना, उष्ण वेदना और शीतोष्ण वेदना। नीचे की पृथिवियो के नारकी केवल शीत वेदना का ही अनुभव करते है और ऊपर की पृथिवियो के नारकी केवल उष्ण वेदना का ही अनुभव करते है। शेष तीन गति के जीव शीत वेदना का भी, उष्ण वेदना का भी, और शीतोष्ण वेदना का भी वेदन करते है।

'द्रव्य' द्वार मे द्रव्य पद से साथ, क्षेत्र, काल और भाव भी सूचित किये गये है। अर्थात् वेदना चार प्रकार की है—द्रव्यवेदना—जो पुद्गल द्रव्य के सम्बन्ध से वेदन की जाती है, क्षेत्र-वेदना—जो नारक आदि उपपात क्षेत्र के सम्बन्ध से वेदन की जाती है, कालवेदना—जो नारक आदि के आयु-काल के सम्बन्ध से नियत काल तक भोगी जाती है। जो वेदनीय कर्म के उदय से वेदना भोगी जाती है, उसे भाव-वेदना कहते हैं। नारको से लेकर वैमानिक देवो तक सभी जीव चारो प्रकार की वेदनाओ को वेदन करते है।

'शारीर' द्वार की अपेक्षा वेदना तीन प्रकार की कही गई है—शारीरी, मानसी और शारीर-मानसी। कोई वेदना केवल शारीरिक होती है, कोई केवल मानसिक होती है और कोई दोनो से सम्बद्ध होती है। सभी सज्ञी पचेन्द्रिय चारो गति के जीव तीनो ही प्रकार की वेदनाओ को भोगते हैं। किन्तु एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय जीव केवल शारीरी वेदना को ही भोगते है।

'साता' द्वार की अपेक्षा वेदना तीन प्रकार की है—साता वेदना, असाता वेदना और साता-असाता वेदना। सभी ससारी जीव तीनो ही प्रकार की वेदनाओ को भोगते है।

'दुःख' पद से तीन प्रकार की वेदना सूचित की गई है—सुखवेदना, दुःखवेदना और सुख-दु.ख वेदना। सभी चतुर्गति के जीव इन तीनो ही प्रकार की वेदनाओ का अनुभव करते है।

प्रश्न—पूर्व द्वार मे कही सातासात वेदना और इस द्वार मे कही सुख-दु:ख वेदना मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—साता-असाता वेदनाए तो साता-आसाता वेदनीय कर्म के उदय होने पर होती हैं। किन्तु सुख-दु ख वेदनाए वेदनीय कर्म की दूसरे के द्वारा उदीरणा कराये जाने पर होती हैं। अत इन दोनो मे उदय और उदीरणा जनित होने के कारण अन्तर है।

जो वेदना स्वय स्वीकार की जाती है, उसे आभ्युपगमिकी वेदना कहते हैं। जैसे—स्वय केश-लु चन करना, आतापना लेना, उपवास करना आदि।

जो वेदना वेदनीय कर्म के स्वय उदय आने पर या उदीरणाकरण के द्वारा प्राप्त होने पर भोगी जाती है, उसे औपक्रमिकी वेदना कहते है। इन दोनो ही वेदनाओ को पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य भोगते है। किन्तु देव, नारक और एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक के जीव केवल औपक्रमिकी वेदना को ही भोगते हैं।

बुद्धिपूर्वक स्वेच्छा से भोगी जाने वाली वेदना को निदा वेदना कहते है और अबुद्धिपूर्वक या अनिच्छा से भोगी जाने वाली वेदना को अनिदा वेदना कहते है। सज्ञी जीव इन दोनो ही प्रकार की वेदनाओ को भोगते हैं। किन्तु असज्ञी जीव केवल अनिदा वेदना को ही भोगते है।

इस विषय मे प्रज्ञापनासूत्र के पेंतीसवे वेदना पद का अध्ययन करना चाहिए।

६०७—**कइ णं भंते ! लेसाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! छ लेसाओ पन्नत्ताओ। त जहा—किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा सुक्का। लेसापय भाणियव्वं।**

भगवन् ! लेश्याए कितनी कही गई है ?

गोतम ! लेश्याए छह कही गई है। जैसे—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, और शुक्ललेश्या। इस प्रकार लेश्यापद कहना चाहिए।

विवेचन—इस स्थल पर सस्कृतटीकाकार ने प्रज्ञापना सूत्र के सत्तरहवे लेश्या पद को जानने की सूचना की है। अतिविस्तृत होने से यहा उसका निरूपण नही किया गया है।

६०८—**अणतरा य आहारे आहाराभोगणा इ य।**
पोग्गला नेव जाणति अज्झवसाणे य सम्मत्ते ॥१॥

आहार के विषय मे अनन्तर-आहारी, आभोग-आहारी, अनाभोग-आहारी, आहार-पुद्गलो के नही जानने-देखने वाले और जानने-देखने वाले आदि चतुर्भगी, प्रशस्त-अप्रशस्त, अध्यवसान वाले और अप्रशस्त अध्यवसान वाले तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व को प्राप्त जीव ज्ञातव्य है ॥१॥

विवेचन—उपपात क्षेत्र मे उत्पन्न होने के साथ ही शरीर के योग्य पुद्गलो के ग्रहण करने को अनन्तराहार कहते हैं। सभी जीव उत्पन्न होते ही अपने शरीर के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करते है। बुद्धिपूर्वक आहार ग्रहण करने को आभोग निर्वर्तित और अबुद्धिपूर्वक आहार ग्रहण करने को अनाभोगनिर्वर्तित कहते है। नारकी दोनो प्रकार का आहार ग्रहण करते है। इसी प्रकार सभी जीवो का जानना चाहिए। केवल एकेन्द्रिय जीव अनाभोगनिर्वर्तित आहार करते हैं। नारकी जीव जिन

पुद्गलो को आहार रूप से ग्रहण करते हैं, उन्हे अपने अवधिज्ञान से भी नही जानते हैं और न देखते हैं, इसी प्रकार असुरों से लेकर त्रीन्द्रिय तक के जीव भी अपने ग्रहण किये गये आहारपुद्गलो को नही जानते-देखते हैं। चतुरिन्द्रिय जीव आख के होने पर भी मत्यज्ञानी होने से नही देखते और जानते हैं। पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य जो अवधिज्ञानी हैं, वे आहारपुद्गलो को जानते और देखते हैं। शेष जीव प्रक्षेपाहार को जानते हैं, लोमाहार को नही जानते देखते हैं। व्यन्तर और ज्योतिष्क देव अपने ग्रहण किये गये आहार-पुद्गलो को न जानते हैं और न देखते हैं। वैमानिक देवो में जो सम्यग्दृष्टि हैं वे अपने-अपने विशिष्टज्ञान से आहार-पुद्गलो को जानते और देखते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि वैमानिक देव नही जानते-देखते है।

अध्यवसान द्वार की अपेक्षा नारक आदि जीवो के प्रशस्त और अप्रशस्त अध्यवसायस्थान असख्यात होते हैं।

सम्यक्त्व-मिथ्यात्व द्वार की अपेक्षा एकेन्द्रियो से लगाकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक के सभी जीव मिथ्यात्वी ही होते है, शेष जीवो मे कितने ही सम्यक्त्वी होते है, कितने ही मिथ्यात्वी होते है और कितने ही सम्यग्मिथ्यात्वी भी होते हैं।

यह सब जानने की सूचना सूत्रकार ने गाथा सख्या एक से की है।

६०९—नेरइया ण भंते ! अणतराहारा तओ निव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विकुव्वणया ? हता गोयमा ! एवं । आहारपदं भाणियव्व ।

भगवन् ! नारक अनन्तराहारी है ? (उपपात क्षेत्र मे उत्पन्न होने के प्रथम समय मे ही क्या अपने शरीर के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करते है ?) तत्पश्चात् निर्वर्तनता (शरीर की रचना) करते है ? तत्पश्चात् पर्यादानता (अग-प्रत्यगो के योग्य पुद्गलो को ग्रहण) करते है ? तत्पश्चात् परिणामनता (गृहीत पुद्गलो का शब्दादि विषय के रूप मे उपभोग) करते है ? तत्पश्चात् परिचारणा (प्रवीचार) करते है ? और तत्पश्चात् विकुर्वणा (नाना प्रकार की विक्रिया) करते हैं ? (क्या यह सत्य है ?)

हा गौतम ! ऐसा ही है। (यह कथन सत्य है।)

यहा पर (प्रज्ञापना सूत्रोक्त) आहार पद कह लेना चाहिए।

६१०—कइविहे णं भते ! आउगबंधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे आउगबंधे पन्नत्ते । तं जहा—जाइनामनिहत्ताउए गतिनामनिहत्ताउए ठिइनामनिहत्ताउए पएसनामनिहत्ताउए अणुभागनामनिहत्ताउए ओगाहणानामनिहत्ताउए ।

भगवन् ! आयुकर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है।

गौतम ! आयुकर्म का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—जातिनामनिधत्तायुष्क, गति-नामनिधत्तायुष्क, स्थितिनामनिधत्तायुष्क, प्रदेशनामनिधत्तायुष्क, अनुभागनामनिधत्तायुष्क और अवगाहनानामनिधत्तायुष्क।

विवेचन—प्रत्येक प्राणी जिस समय आगामी भव की आयु का बन्ध करता है, उसी समय उस

गति के योग्य जातिनाम कर्म का बन्ध करता है, गतिनाम कर्म का भी बन्ध करता है, इसी प्रकार उसके योग्य स्थिति, प्रदेश, अनुभाग और अवगाहना (शरीर नामकर्म) का भी बन्ध करता है। जैसे—कोई जीव इस समय देवायु का बन्ध कर रहा है तो वह इसी समय उसके साथ पचेन्द्रिय जाति-नामकर्म का भी बन्ध कर रहा है, देवगति नामकर्म का भी बन्ध कर रहा है आयु की नियत काल-वाली स्थिति का भी बन्ध कर रहा है, उसके नियत परिमाण वाले कर्मप्रदेशो का भी बन्ध कर रहा है, नियत रस-विपाक या तीव्र-मन्द फल देने वाले अनुभाग का भी बन्ध कर रहा है और देवगति मे होने वाले वैक्रियिक अवगाहना अर्थात् शरीर का भी बन्ध कर रहा है। इन सब अपेक्षाओ से आयुकर्म का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है।

६११—नेरइयाणं भंते ! कइविहे आउगबंधे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे पन्नत्ते। त जहा— जातिनाम० गइनाम० ठिइनाम० पएसनाम० अणुभागनाम० ओगाहणानाम०। एवं जाव वेमाणियाण।

भगवन् ! नारको का आयुबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—जातिनामनिधत्तायुष्क, गतिनामनिधत्तायुष्क, स्थितिनामनिधत्तायुष्क, प्रदेशनामनिधत्तायुष्क, अनुभागनामनिधत्तायुष्क और अवगाहनानामधित्ता-युष्क।

इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर वैमानिक देवो तक सभी दडको मे छह-छह प्रकार का आयुबन्ध जानना चाहिए।

६१२—निरयगई णं भंते ! केवइय काल विरहिया उववाएण पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ते।

भगवन् ! नरकगति मे कितने विरह-(अन्तर-) काल के पश्चात् नारको का उपपात (जन्म) कहा गया है ?

गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से बारह मुहूर्त्त नारको का विरहकाल कहा गया है।

विवेचन—जितने समय तक विवक्षित गति मे किसी भी जीव का जन्म न हो, उतने समय को विरह या अन्तरकाल कहते है। यदि नरक मे कोई जीव उत्पन्न न हो, तो कम से कम एक समय तक नही उत्पन्न होगा। यह जघन्य विरहकाल है। अधिक से अधिक बारह मुहूर्त्त तक नरक मे कोई जीव उत्पन्न नही होगा, यह उत्कृष्टकाल है। (बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरक मे उत्पन्न होता ही है।)

६१३—एवं तिरियगई मणुस्सगई देवगई।

इसी प्रकार तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति का भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए।

विवेचन—ऊपर जो उत्कृष्ट अन्तर या विरहकाल बारह मुहूर्त्त प्रतिपादन किया गया है, वह

सामान्य कथन है। विशेष कथन की अपेक्षा आगम मे नरक की सातो ही पृथिवियो में नारको का विरहकाल भिन्न-भिन्न बताया गया है। जैसा कि टीका मे उद्धृत निम्न गाथा से स्पष्ट है—

चउवीसई मुहुत्ता सत्त अहोरत्त तह य पन्नरसा।
मासो य दो य चउरो छम्मासा विरहकालो त्ति ।।१।।

अर्थात्—उत्कृष्ट विरहकाल पहिली पृथिवी मे चौबीस मुहूर्त्त, दूसरी मे सात अहोरात्र, तीसरी मे पन्द्रह अहोरात्र, चौथी मे एक मास, पाचवी मे दो मास, छठी मे चार मास और सातवी पृथिवी मे छह मास का होता है।

इसी प्रकार सभी भवनवासियो का उत्कृष्ट विरहकाल चौबीस मुहूर्त्त का है। पृथिवीकायिक आदि पाचो स्थावरकायिक जीवो की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है, अत उनकी उत्पत्ति का विरहकाल नही है। द्वीन्द्रिय जीवो का विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूच्छिम पचेन्द्रिय तिर्यचो का भी विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। गर्भज तिर्यचो और मनुष्यो का विरहकाल बारह मुहूर्त्त है। सम्मूच्छिम मनुष्यो का विरहकाल चौबीस मुहूर्त्त है। व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान कल्प के देवो का विरहकाल भी चौबीस मुहूर्त्त है। सनत्कुमार कल्प मे देवो का विरहकाल नौ दिन और बीस मुहूर्त्त है। माहेन्द्रकल्प मे देवो का विरहकाल बारह दिन और दश मुहूर्त्त है। ब्रह्मलोक मे देवो का विरहकाल साढे बाईस रात-दिन है। लान्तक कल्प मे देवो का विरहकाल पैतालीस दिन-रात अर्थात् डेढ मास है। महाशुक्रकल्प मे देवो का विरहकाल अस्सी दिन (दो मास बीस दिन) है। सहस्रारकल्प मे देवो का विरहकाल सौ दिन (तीन माह दश दिन) है। आनत-प्राणत कल्प मे देवो का विरहकाल सख्यात मास है। आरण-अच्युत कल्प मे देवो का विरहकाल सख्यात वर्ष है। अधस्तन तीनो ग्रैवेयको मे विरहकाल सख्यात शत वर्ष है। मध्यम तीनो ग्रैवेयको मे विरहकाल सख्यात सहस्र वर्ष है। उपरिम तीनो ग्रैवेयको मे विरहकाल सख्यात शत-सहस्र (लाख) वर्ष है। विजयादि चार अनुत्तर विमानो मे विरहकाल असख्यात वर्ष है और सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान मे विरहकाल पल्योपम के असख्यातवे भाग-प्रमाण है।

६१४—**सिद्धगई णं भते ! केवइय काल विरहिया सिज्झणयाए पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेण छम्मासे। एवं सिद्धिवज्जा उव्वट्टणा।**

भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक विरहित रहती है ? अर्थात् कितने समय तक कोई भी जीव सिद्ध नही होता ?

गौतम ! जघन्य मे एक समय और उत्कर्ष से छह मास सिद्धि प्राप्त करने वालो से विरहित रहती है। अर्थात् सिद्धगति का विरहकाल छह मास है।

इसी प्रकार सिद्धगति को छोडकर शेष सब जीवो की उद्वर्तना (मरण) का विरह भी जानना चाहिए।

विवेचन—विवक्षित गति को छोडकर उससे बाहर निकलने को उद्वर्तना कहते है। सिद्धगति को प्राप्त जीव वहाँ से कभी भी नही निकलते हैं, अत उनकी उद्वर्तना का निषेध किया गया है। शेष चारो ही गतियो से जीव अपनी-अपनी आयु पूर्ण कर निकलते है और नवीन पर्याय को धारण करते हैं, अतः उन सबकी उद्वर्तना आगम में कही गई है। उसे आगम से जानना चाहिए।

६१५—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पन्नत्ता ? एवं उववायदंडओ भाणियव्वो उव्वट्टणादंडओ य ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथिवी के नारक कितने विरह-काल के बाद उपपात वाले कहे गये है ?

उक्त प्रश्न के उत्तर मे यहाँ पर (प्रज्ञापनासूत्रोक्त) उपपात-दडक कहना चाहिए। इसी प्रकार उद्वर्तना-दंडक भी कहना चाहिए।

विवेचन—सूत्र मे जिस उपपात-दण्डक के जानने की सूचना की है, वह इस प्रकार है— रत्नप्रभा पृथिवी के नारकी जीवो का उपपात-विरहकाल जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से चौबीस मुहूर्त्त है। शर्करा पृथिवी के नारको का उत्कृष्ट उपपात-विरहकाल सात रात-दिन है। वालुका पृथिवी में नारको का उत्कृष्ट विरहकाल अर्ध मास (१५ रात-दिन) है। पकप्रभा पृथिवी मे नारको का उत्कृष्ट विरहकाल एक मास है। धूमप्रभा पृथिवी मे नारको का उत्कृष्ट विरहकाल दो मास है। तम प्रभा पृथिवी मे नारको का उत्कृष्ट विरहकाल चार मास है। महातम प्रभा पृथिवी मे नारको का उत्कृष्ट विरहकाल छह मास है।

असुर कुमारो का उत्कृष्ट उपपात-विरहकाल चौबीस मुहूर्त है। इसी प्रकार शेष सभी भवनवासियो का जानना चाहिए। पृथिवीकायिक आदि पाचो एकेन्द्रिय जीवो का विरहकाल नही है, क्योकि वे सदा ही उत्पन्न होते रहते है। द्वीन्द्रिय जीवो का विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचो का विरहकाल जानना चाहिए। गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यो का विरहकाल बारह मुहूर्त्त है। सम्मूर्च्छिम मनुष्यो का विरहकाल चौबीस मुहूर्त्त है। व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशानकल्प के देवो का विरहकाल भी चौबीस-चौबीस मुहूर्त्त है। सनत्कुमार देवो का विरहकाल नौ दिन और बीस मुहूर्त्त है। माहेन्द्र देवो का विरहकाल बारह दिन और दश मुहूर्त्त है। ब्रह्मलोक के देवो का विरहकाल साढे बाईस दिन-रात है। लान्तक देवो का विरहकाल पैतालीस रात-दिन है। महाशुक्र देवो का विरहकाल अस्सी दिन है। सहस्रार देवो का विरहकाल एक सौ दिन है। आनत देवो का विरहकाल सख्यात मास है। इसी प्रकार प्राणत देवो का भी जानना चाहिए। आरण और अच्युत देवो का विरहकाल सख्यात वर्ष है। अधस्तन ग्रैवेयक त्रिक के देवो का विरहकाल सख्यात शत वर्ष है। मध्यम ग्रैवेयक त्रिक के देवो का विरहकाल सख्यात सहस्र वर्ष है। उपरितन ग्रैवेयक त्रिक के देवो का विरहकाल सख्यात शतसहस्र वर्ष है। विजयादि चार अनुत्तर विमानो के देवो का विरहकाल असख्यात वर्ष है और सर्वार्थसिद्ध देवो का विरहकाल पल्योपम का असख्यातवाँ भाग प्रमाण है। यह सब उपपात के विरह का काल है।

विवक्षित नरक, स्वर्ग आदि से निकलने को अर्थात् उस पर्याय को छोडकर अन्य पर्याय मे जन्म लेने को उद्वर्तना कहते है। जिस गति का जितना विरहकाल बताया गया है, उसका उतना ही उद्वर्तनाकाल जानना चाहिए।

६१६—नेरइया ण भंते ! जातिनामनिहत्ताउगं कति आगरिसेहिं पगरंति ? गोयमा ! सिय एक्केणं, सिय दोहिं, सिय तीहिं, सिय चउहिं, सिय पचहिं, सिय छहिं, सिय सत्तहिं, सिय अट्ठहिं [आगरिसेहिं पगरंति] नो चेव णं नवहिं ।

एवं सेसाण वि आउगाणि जाव वेमाणिय त्ति ।

भगवन् ! नारक जीव जातिनामनिधत्तायुष्क कर्म का कितने आकर्षों से बन्ध करते है ।

गौतम ! स्यात् (कदाचित्) एक आकर्ष से, स्यात् दो आकर्षों से, स्यात् तीन आकर्षों से, स्यात् चार आकर्षों से, स्यात् पाँच आकर्षों से, स्यात् छह आकर्षों से, स्यात् सात आकर्षों से और स्यात् आठ आकर्षों से जातिनामनिधत्तायुष्क कर्म का बन्ध करते हैं । किन्तु नौ आकर्षों से बन्ध नही करते हैं ।

इसी प्रकार शेष आयुष्क कर्मों का बन्ध जानना चाहिए । इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर वैमानिक कल्प तक सभी दडको मे आयुबन्ध के आकर्ष जानना चाहिए ।

विवेचन—सामान्यतया आकर्ष का अर्थ है—कर्मपुद्गलो का ग्रहण । किन्तु यहाँ जीव के आगामी भव की आयु के बधने के अवसरो को आकर्षकाल कहा है । यह आकर्ष-जीव के अध्यवसायो की तीव्रता और मन्दता पर निर्भर है । तीव्र अध्यवसाय हो तो एक ही वार मे जीव आयु के दलिको को ग्रहण कर लेता है । अध्यवसाय मद हो तो दो आकर्षों से, मन्दतर हो तो तीन से और मन्दतम अध्यवसाय हो तो चार-पाच-छह-सात या आठ आकर्षों से आयु का बन्ध होता है । इससे अधिक आकर्ष कदापि नही होते ।

६१७—**कइविहे णं भन्ते ! सघयणे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे संघयणे पन्नत्ते । त जहा—वइरोसभनारायसघयणे १, रिसभनारायसंघयणे २, नारायसघयणे ३, अद्धनारायसंघयणे ४, कीलिया-सघयणे ५, छेवट्टसघयणे ६ ।**

भगवन् ! सहनन कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! सहनन छह प्रकार का कहा गया है । जैसे—१ वज्रर्षभ नाराच सहनन, २ ऋषभ-नाराच सहनन, ३ नाराच सहनन, ४ अर्ध नाराच सहनन, ५. कीलिका सहनन और ६. सेवार्त सहनन ।

विवेचन—शरीर के भीतर हड्डियो के बन्धन विशेष को सहनन कहते है । उसके छह भेद प्रस्तुत सूत्र मे बताये गये हैं । वज्र का अर्थ कीलिका है, ऋषभ का अर्थ पट्ट है और मर्कट स्थानीय दोनो पार्श्वों की हड्डो को नाराच कहते हैं । जिस शरीर की दोनो पार्श्ववर्ती हड्डियाँ पट्ट से बधी हो और बीच मे कीली लगी हुई हो, उसे वज्रऋषभनाराच सहनन कहते है । जिस शरीर की हड्डियो मे कीली न लगी हो, किन्तु दोनो पार्श्वों की हड्डियाँ पट्टे से बन्धी हो, उसे ऋषभनाराच सहनन कहते है । जिस शरीर की हड्डियो पर पट्ट भी न हो उसे नाराच सहनन कहते है । जिस शरीर की हड्डियाँ एक ओर ही मर्कट बन्ध से युक्त हो, दूसरी ओर की नही हो, उसे अर्धनाराच सहनन कहते है । जिस शरीर की हड्डियो मे केवल कीली लगी हो उसे कीलिका सहनन कहते है । जिस शरीर की हड्डियाँ परस्पर मिली और चर्म से लिपटी हुई हो उसे सेवार्त सहनन कहते है । देवो और नारकी जीवो के शरीरो मे हड्डियाँ नही होती है, अत उनके सहनन का अभाव बताया गया है । मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय जीव छहो सहनन वाले होते हैं । एकेन्द्रियादि शेष तिर्यंचो के सहननो का वर्णन आगे के सूत्र में किया है ।

६१८ -नेरइया णं भंते ! किंसंघयणी [पन्नत्ता] ? गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी। णेव अट्ठी णेव सिरा णेव ण्हारू। जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया अणाएज्जा असुभा अमणुण्णा अमणामा अमणाभिरामा, ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।

भगवन् ! नारक किस संहनन वाले कहे गये है ?

गौतम ! नारको के छहो संहननो मे से कोई भी संहनन नही होता है। वे असंहननी होते हैं, क्योंकि उनके शरीर मे हड्डी नही है, नही शिराए (धमनिया) है और नही स्नायु (आते) हैं। वहाँ जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अनादेय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम और अमनोभिराम है, उनसे नारको का शरीर संहनन-रहित ही बनता है।

६१९- असुरकुमारा ण भंते ! किंसंघयणा पन्नत्ता ? गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी। णेवट्ठी नेव छिरा णेव ण्हारू। जे पोग्गला इट्ठा कंता पिया [आएज्जा] मणुण्णा [सुभा] मणामा मणाभिरामा, ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति। एव जाव थणियकुमाराण।

भगवन् ! असुरकुमार देव किस संहनन वाले कहे गये है ?

गौतम ! असुरकुमार देवो के छहो संहननो मे से कोई भी संहनन नही होता है। वे असंहननी होते है, क्योकि उनके शरीर मे हड्डी नही होती है, नही शिराए होती है, और नही स्नायु होती है। जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, [आदेय, शुभ] मनोज्ञ, मनाम और मनोभिराम होते है, उनसे उनका शरीर संहनन-रहित ही परिणत होता है।

इस प्रकार नागकुमारो से लेकर स्तनितकुमार देवो तक जानना चाहिए अर्थात् उनके कोई संहनन नही होता।

६२०—पुढवीकाइया ण भंते ! किंसंघयणी पन्नत्ता ? गोयमा ! छेवट्टसंघयणी पन्नत्ता। एव जाव संमुच्छिम-पंचिंदियतिरिक्खजोणिय त्ति। गब्भवक्कंतिया छव्विहसंघयणी। समुच्छिममणुस्सा छेवट्टसंघयणी। गब्भवक्कंतियमणुस्सा छव्विहसंघयणी। जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया य।

भगवन् ! पृथिवीकायिक जीव किस संहनन वाले कहे गये है ?

गौतम ! पृथिवीकायिक जीव सेवार्तसंहनन वाले कहे गये है।

इसी प्रकार अप्कायिक से लेकर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक तक के सब जीव सेवार्त संहननवाले होते है। गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच छहो प्रकार के संहननवाले होते है। सम्मूर्च्छिम मनुष्य सेवार्त संहनन वाले होते है। गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य छहो प्रकार के संहननवाले होते है।

जिस प्रकार असुरकुमार देव संहनन-रहित हैं, उसी प्रकार वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भी संहनन-रहित होते है।

६२१—कइविहे ण भंते ! संठाणे पन्नत्ते ? गोयमा ! छव्विहे संठाणे पन्नत्ते। तं जहा— समचउरंसे १, णिग्गोहपरिमंडले २, साइए ३, वामणे ४, खुज्जे ५, हुंडे ६।

भगवन् ! सस्थान कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! सस्थान छह प्रकार का है—१ समचतुरस्रसस्थान, २ न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, ३. सादि या स्वातिसस्थान, ४ वामनसस्थान, ५. कुब्जकसस्थान, ६ हु डकसस्थान ।

विवेचन—शरीर के आकार को सस्थान कहते है । जिस शरीर के अग और उपाग न्यूनता और अधिकता से रहित शास्त्रोक्त मान-उन्मान-प्रमाण वाले होते है, उसे समचतुरस्र सस्थान कहते है । जिस शरीर में नाभि से ऊपर के अवयव तो शरीर-शास्त्र के अनुसार ठीक ठीक प्रमाणवाले हो किन्तु नाभि से नीचे के अवयव हीन प्रमाण वाले हो, उसे न्यग्रोधसस्थान कहते है । जिस शरीर मे नाभि से नीचे के अवयव तो शरीर-शास्त्र के अनुरूप हो, किन्तु नाभि से ऊपर के अवयव उसके प्रतिकूल हो उसे सादिसस्थान करते हैं । जिस शरीर के अवयव लक्षणयुक्त होते हुए भी विकृत और छोटे हो, तथा मध्यभाग मे पीठ या छाती की ओर कूबड निकली हो, उसे कुब्जकसस्थान कहते है । जिस शरीर मे सभी अग लक्षणशास्त्र के अनुरूप हो, पर शरीर बौना हो, उसे वामनसस्थान कहते है । जिस शरीर मे हाथ पैर आदि सभी अवयव शरीर-शास्त्र के प्रमाण से विपरीत हो उसे हुण्डसस्थान कहते है । सभी नारकी जीव हुण्डसंस्थान वाले और सभी देव समचतुरस्र सस्थानवाले कहे गये हैं । शेष मनुष्य और तिर्यच छहो सस्थान वाले होते है ।

६२२—**णेरइया णं भते ! किंसंठाणी पन्नत्ता । गोयमा ! हुडसंठाणी पन्नत्ता । असुरकुमारा किसठाणी पन्नत्ता ? गोयमा ! समचउरससंठाणसंठिया पन्नत्ता । एवं जाव थणियकुमारा ।**

भगवन् ! नारकी जीव किस सस्थानवाले कहे गये हैं ?
गौतम ! नारक जीव हुडकसस्थान वाले कहे गये हैं ।
भगवन् ! असुरकुमार देव किस सस्थानवाले होते है ?
गौतम ! असुरकुमार देव समचतुरस्र सस्थान वाले होते हैं ।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देव समचतुरस्र सस्थान वाले होते हैं ।

६२३—**पुढवी मसूरसंठाणा पन्नत्ता । आऊ थिबुयसंठाणा पन्नत्ता । तेऊ सूईकलावसठाणा पण्णत्ता । वाऊ पडागासंठाणा पन्नत्ता । वणस्सई नाणासंठाणसंठिया पन्नत्ता ।**

पृथिवीकायिक जीव मसूरसस्थान वाले कहे गये है । अप्कायिक जीव स्तिबुक (बिन्दु) सस्थानवाले कहे गये है । तेजस्कायिक जीव सूचीकलाप सस्थानवाले (सुइयो के पु ज के समान आकार वाले) कहे गये है । वायुकायिक जीव पताका-(ध्वजा-) सस्थानवाले कहे गये है । वनस्पति कायिक जीव नाना प्रकार के सस्थानवाले कहे गये है ।

६२४—**बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-सम्मुच्छिम-पंचेंदियतिरिक्खा हुंडसंठाणा पन्नत्ता । गब्भ-वक्कंतिया छव्विहसठाणा [पन्नत्ता] । संमुच्छिममणुस्सा हुंडसंठाणसंठिया पन्नत्ता । गब्भवक्कंतियाण मणुस्साणं छव्विहा संठाणा पन्नत्ता । जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया वि ।**

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यच जीव हुडक सस्थानवाले और गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच छहो सस्थानवाले कहे गये हैं । सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुडक सस्थानवाले तथा गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य छहों सस्थानवाले कहे गये है ।

जिस प्रकार असुरकुमार देव समचतुरस्र सस्थान वाले होते है, उसी प्रकार वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भी समचतुरस्र सस्थानवाले होते हैं।

६२५—कइविहे णं भंते ! वेए पन्नत्ते ? गोयमा ! तिविहे वेए पन्नत्ते। त जहा—इत्थीवेए पुरिसवेए नपु सवेए।

भगवन् ! वेद कितने प्रकार के है ?

गौतम ! वेद तीन हैं—स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपु सक वेद।

६२६—नेरइया णं भंते ! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपु ंसगवेया पन्नत्ता ? गोयमा ! णो इत्थीवेया, णो पु ंवेया, णपु ंसगवेया पण्णत्ता।

भगवन् ! नारक जीव क्या स्त्री वेदवाले हैं, अथवा नपु सक वेदवाले हैं ?

गौतम ! नारक जीव न स्त्री वेदवाले हैं, न पुरुषवेद वाले है, किन्तु नपु सक वेदवाले होते हैं।

६२७—असुरकुमारा णं भंते ! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपु ंसगवेया ? गोयमा ! इत्थीवेया, पुरिसवेया। णो णपु ंसगवेया। जाव थणियकुमारा।

भगवन् ! असुरकुमार देव स्त्रीवेदवाले है, पुरुषवेद वाले हैं, अथवा नपु सक वेदवाले है ?

गौतम ! असुरकुमार देव स्त्री वेदवाले हैं, पुरुषवेद वाले हैं, किन्तु नपु सक वेदवाले नही होते हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमार देवो तक जानना चाहिए।

६२८—पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सई बि-ति-चउरिदिय-समुच्छिमपंचिदियतिरिक्ख-समुच्छिममणुस्सा णपु सगवेया। गब्भवक्कंतियमणुस्सा पंचिदियतिरिया य तिवेया। जहा असुर-कुमारा, तहा वाणमंतरा जोइसिय-वेमाणिया वि।

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिमपचेन्द्रिय तिर्यच और सम्मूर्च्छिम मनुष्य नपु सक वेदवाले होते हैं। गर्भोप-क्रान्तिक मनुष्य और गर्भोपक्रान्तिक तिर्यच तीनो वेदो वाले होते हैं।

जैसे—असुकुमार देव स्त्री वेद और पुरुष वेदवाले होते है, उसी प्रकार वानव्यन्तर, ज्योतिष्क वैमानिक देव भी स्त्रीवेद और पुरुष वेद वाले होते हैं।

[विशेष बात यह है कि ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देव, तथा लोकान्तिक देव केवल पुरुष वेदी होते है।]

अतीत-अनागतकालिक महापुरुष

६२९—तेणं कालेण तेण समएण कप्पस्स समोसरणं णेयव्वं जाव गणहरा सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा ।

उस दु षम-सुषमा काल मे और उस विशिष्ट समय मे [जब भगवान् महावीर धर्मोपदेश करते हुए विहार कर रहे थे, तब] कल्पभाष्य के अनुसार समवसरण का वर्णन वहाँ तक करना चाहिए, जब तक कि सापत्य (शिष्य-सन्तान-युक्त) सुधर्मास्वामी और निरपत्य (शिष्य-सन्तान-रहित शेष सभी) गणधर देव व्युच्छिन्न हो गये, अर्थात् सिद्ध हो गये ।

६३०—जबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था । तं जहा—

मित्तदामे सुदामे य सुपासे य सयंपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य महाघोसे य सत्तमे ।।१।।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे अतीतकाल की उत्सर्पिणी मे सात कुलकर उत्पन्न हुए थे । जैसे -

१ मित्रदाम, २ सुदाम, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयम्प्रभ, ५. विमलघोष, ६ सुघोष और ७ महाघोष ।।१।।

६३१ -जबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे तीयाए ओसप्पिणीए दस कुलगरा होत्था । त जहा—

सयजले सयाऊ य अजियसेणे अणतसेणे य ।
कज्जसेणे भीमसेणे महाभीमसेणे य सत्तमे ।।२।।
दढरहे दसरहे सयरहे ।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे अतीतकाल की अवसर्पिणी मे दश कुलकर हुए थे । जैसे—

१ शतजल, २ शतायु, ३. अजितसेन, ४ अनन्तसेन, ५ कार्यसेन, ६ भीमसेन, ७ महाभीमसेन, ८ दृढरथ, ९ दशरथ और १० शतरथ ।।२।।

६३२—जंबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए सत्त कुलगरा होत्था । तं जहा—

पढमेत्थ विमलवाहण [चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो पसेणइए मरुदेवे चेव नाभी य ।।३।।]

एतेसि णं सत्तण्हं कुलगराण सत्त भारिआ होत्था । तं जहा—

चंदजसा चंदकंता [सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी कुलगरपत्तीण णामाइं ।।४।।]

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल मे सात कुलकर हुए। जैसे—

१. विमलवाहन, २ चक्षुष्मान् ३ यशष्मान् ४ अभिचन्द्र, ५ प्रसेनजित, ६ मरुदेव, ७ नाभिराय ॥३॥

इन सातो ही कुलकरो की सात भार्याए थी। जैसे—

१ चन्द्रयशा, २ चन्द्रकान्ता, ३ सुरूपा, ४. प्रतिरूपा, ५ चक्षुष्कान्ता, ६ श्रीकान्ता और ७. मरुदेवी। ये कुलकरो की पत्नियो के नाम है ॥४॥

६३३—जंबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए चउवीस तित्थगराणं पियरो होत्था। तं जहा—

णाभी य जियसत्तू य [जियारी सवरे इय।
मेहे धरे पइट्ठे य महसेणे य खत्तिए ॥५॥
सुग्गीवे वढरहे विण्हू वसुपुज्जे य खत्तिए।
कयवम्मा सीहसेणे भाणू विस्ससणे इय ॥६॥
सूरे सुदंसणे कुंभे सुमित्तविजए समुद्दविजये य।
राया य आससेणे य सिद्धत्थे च्चिय खत्तिए ॥७॥]
उदितोदिय कलवंसा विसुद्धवसा गुणेहि उववेया।
तित्थप्पवत्तयाण एए पियरो जिणवराणं ॥८॥

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इम अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थकरो के चौवीस पिता हुए। जैसे—

१ नाभिराय, २ जितशत्रु, ३ जितारि, ४ सवर, ५ मेघ, ६ धर, ७ प्रतिष्ठ, ८. महासेन, ९ सुग्रोव, १० दृढरथ, ११ विष्णु, १२ वसुपूज्य, १३ कृतवर्मा, १४ सिहसेन, १५ भानु, १६ विश्वसेन १७ सूरसेन, १८ सुदर्शन, १९ कुम्भराज, २०. सुमित्र, २१ विजय, २२ समुद्रविजय, २३ अश्वसेन और २४ सिद्धार्थ क्षत्रिय ॥५-७॥ तीर्थ के प्रवर्तक जिनवरो के ये पिता उच्च कुल और उच्च विशुद्ध वश वाले तथा उत्तम गुणो से सयुक्त थे ॥८॥

६३४—**जबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराण मायरो होत्था। तं जहा—**

मरुदेवी विजया सेणा [सिद्धत्था मंगला सुसीमा य।
पुहवी लक्खणा रामा नंदा विण्हू जया सामा ॥९॥
सुजसा सुव्वय अइरा सिरिया देवी पभावई पउमा।
वप्पा सिवा य वामा य तिसलादेवी य जिणमाया ॥१०॥]

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी मे चौवीस तीर्थंकरो की चौवीस माताए हुई है। जैसे—

१ मरुदेवी, २ विजया, ३ सेना, ४ सिद्धार्था, ५ मगला, ६. सुसीमा, ७. पृथिवी, ८ लक्ष्मणा, ९ रामा, १०. नन्दा, ११ विष्णु, १२ जया, १३ श्यामा, १४. सुयशा, १५ सुव्रता,

१६. अचिरा, १७ श्री, १८. देवी, १९ प्रभावती, २० पद्मा, २१ वप्रा, २२ शिवा, २३. वामा और २४ त्रिशला देवी। ये चौबीस जिन-माताए है ।।९-१०।।

६३५—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीस तित्थगरा होत्था। तं जहा—उसभे १, अजिये २, संभवे ३, अभिणंदणे ४, सुमई ५, पउमप्पहे ६, सुपासे ७, चंदप्पभे ८, सुविहि-पुप्फदंते ९, सीयले १०, सिज्जसे ११, वासुपुज्जे १२, विमले १३, अणंते १४, धम्मे १५, संती १६, कुंथू १७, अरे १८, मल्ली १९, मुणिसुव्वए २०, णमी २१, णेमी २२, पासे २३, वद्धमाणो २४ य।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकर हुए। जैसे—१ ऋषभ, २ अजित, ३ सभव, ४. अभिनन्दन, ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ सुविधि-पुष्पदन्त, १० शीतल, ११ श्रेयान्स, १२ वासुपूज्य, १३ विमल, १४. अनन्त, १५ धर्म १६ शान्ति, १७ कुन्थु, १८ अर, १९. मल्ली, २०. मुनिसुव्रत, २१ नमि, २२ नेमि २३. पार्श्व और २४ वर्धमान।

६३६—एएसि चउवीसाए तित्थगराण चउव्वीसं पुव्वभवया णामधेया होत्था। तं जहा—

पढमेत्थ वइरणामे विमले तह विमलवाहणे चेव।
तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह धम्ममित्ते य ।।११।।
सु दरबाहु तह दीहबाहू जुगबाहू लट्ठबाहू य।
दिण्णे य इंददत्ते सु दर माहिंदरे चेव ।।१२।।
सीहरहे मेहरहे रुप्पी अ सुदंसणे य बोद्धव्वे।
तत्तो य णदणे खलु सीहगिरी चेव वीसइमे ।।१३।।
अदीणसत्तु संखे सुदसणे नंदणे य बोद्धव्वे।
[इमीसे] ओसप्पिणीए एए तित्थकराण तु पुव्वभवा ।।१४।।

इन चौवीस तीर्थंकरो के पूर्वभव के चौवीस नाम थे। जैसे—

१ उनमे प्रथम नाम वज्रनाभ, २ विमल, ३ विमलवाहन, ४. धर्मसिह, ५. सुमित्र, ६ धर्ममित्र, ७ सुन्दरबाहु, ८ दीर्घबाहु, ९ युगबाहु, १० लष्ठबाहु, ११. दत्त, १२ इन्द्रदत्त, १३ सुन्दर, १४ माहेन्द्र, १५ सिहरथ, १६ मेघरथ, १७ रुक्मी, १८. सुदर्शन, १९ नन्दन, २० सिहगिरि, २१ अदीनशत्रु, २२ शख, २३ सुदर्शन और २४ नन्दन। ये इसी अवसर्पिणी के तीर्थंकरो के पूर्वभव के नाम जानना चाहिए ।। ११-१४ ।।

६३७—एएसि चउव्वीसाए तित्थकराणं चउव्वीसं सीयाओ होत्था। त जहा—

सीया सुदंसणा[1] सुप्पभा[2] य सिद्धाथ[3] सुप्पसिद्धा[4] य।
विजया[5] य वेजयंती[6] जयंती[7] अपराजिआ[8] चेव ।।१५।।
अरुणप्पभ[9] चंदप्पभ[10] सूरप्पह[11] अग्गि[12] सुप्पभा[13] चेव।
विमला[14] य पंचवण्णा[15] सागरदत्ता[16] णागदत्ता[17] य ।।१६।।
अभयकर[18] णिव्वुइकरा[19] मणोरमा[20] तह मणोहरा[21] चेव।
देवकुरू[22] उत्तराकुरा[23] विसाल चंदप्पभा[24] सीया ।।१७।।

एयाओ सीआओ सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं।
सव्वजगवच्छलाण सव्वोउयसुभाए छायाए ॥१८॥

इन चौवीस तीर्थंकरो की चौवीस शिविकाए (पालकिया) थी। (जिन पर विराजमान होकर तीर्थंकर प्रव्रज्या के लिए वन मे गए।) जैसे—

१. सुदर्शना शिविका, २. सुप्रभा, ३ सिद्धार्था, ४ सुप्रसिद्धा, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता, ९ अरुणप्रभा, १०. चन्द्रप्रभा, ११. सूर्यप्रभा, १२. अग्निप्रभा, १३. सुप्रभा, १४. विमला, १५ पचवर्णा, १६. सागरदत्ता, १७. नागदत्ता, १८ अभयकरा, १९ निर्वृतिकारा, २०. मनोरमा, २१. मनोहरा, २२ देवकुरा, २३ उत्तरकुरा और २४ चन्द्रप्रभा। ये सभी शिविकाए विशाल थी॥ १५-१७॥ सर्वजगत्-वत्सल सभी जिनवरेन्द्रो की ये शिविकाए सर्व ऋतुओ मे सुखदायिनी उत्तम और शुभ कान्ति से युक्त होती हैं॥ १८॥

६३८—पुव्विं ओक्खित्ता माणुसेहिं सा हट्ठ (ट्ठ) रोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं असुरिंद-सुरिंद-नागिंदा ॥१९॥
चल-चवल-कुंडलधरा सच्छंदविउव्वियाभरणधारी।
सुर-असुर-वंदियाणं वहंति सीअं जिणिंदाणं ॥२०॥
पुरओ वहंति देवा नागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि।
पच्चच्छिमेण असुरा गरुला पुण उत्तरे पासे ॥२१॥

जिन-दीक्षा-ग्रहण करने से लिए जाते समय तीर्थंकरो की इन शिविकाओ को सबसे पहिले हर्ष से रोमाञ्चित मनुष्य अपने कन्धो पर उठाकर ले जाते है। पीछे असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र उन शिविकाओ को लेकर चलते है ॥ १९॥ चचल चपल कुण्डलो के धारक और अपनी इच्छानुसार विक्रियामय आभूषणो को धारण करने वाले वे देवगण सुर-असुरो से वन्दित जिनेन्द्रो की शिविकाओ को वहन करते है॥ २०॥ इन शिविकाओ को पूर्व की ओर [वैमानिक] देव, दक्षिण पार्श्व मे नागकुमार, पश्चिम पार्श्व मे असुरकुमार और उत्तर पार्श्व मे गरुडकुमार देव वहन करते हैं॥ २१॥

६३९—उसभो य विणीयाए बारवईए अरिट्ठवरणेमी।
अवसेसा तित्थयरा निक्खता जम्मभूमीसु ॥२२॥

ऋषभदेव विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि द्वारावती से और शेष सर्व तीर्थंकर अपनी-अपनी जन्मभूमियो से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए निकले थे॥ २२॥

६४०—सव्वे वि एगदूसेण [णिग्गया जिणवरा चउव्वीसं।
ण य णाम अण्णलिंगे ण य गिहिलिंगे कुलिंगे व ॥२३॥]

सभी चौबीसो जिनवर एक दूष्य (इन्द्र-समर्पित दिव्य वस्त्र) से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए निकले थे। न कोई अन्य पाखडी लिंग से दीक्षित हुआ, न गृहिलिंग से और न कुलिंग से दीक्षित हुआ। (किन्तु सभी जिन-लिंग से ही दीक्षित हुए थे।)

६४१—एक्को भगवं वीरो [पासो मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं।
भगवं पि वासुपुज्जो छहिं पुरिससएहिं निक्खंतो ।।२४।।]
उग्गाणं भोगाण राइण्णाणं [च खत्तियाण च।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो सेसा उ सहस्स-परिवारा ।।२५।।]

दीक्षा-ग्रहण करने के लिए भगवान् महावीर अकेले ही घर से निकले थे। पार्श्वनाथ और मल्ली जिन तीन-तीन सौ पुरुषो के साथ निकले। तथा भगवान् वासुपूज्य छह सौ पुरुषो के साथ निकले थे ।। २४ ।। भगवान् ऋषभदेव चार हजार उग्र, भोग राजन्य और क्षत्रिय जनो के परिवार के साथ दीक्षा ग्रहण करने के लिए घर से निकले थे। शेष उन्नीस तीर्थंकर एक-एक हजार पुरुषों के साथ निकले थे ।। २५ ।।

६४२—सुमइत्थ णिच्चभत्तेण [णिग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं।
पासो मल्ली य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ।।२६।।]

सुमति देव नित्य भक्त के साथ, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त के साथ, पार्श्व और मल्ली अष्टमभक्त के साथ और शेष बीस तीर्थकर षष्ठभक्त के नियम के साथ दीक्षित हुए थे ।। २६ ।।

६४३—एएसि णं चउवीसाए तित्थगराण चउव्वीसं पढमभिक्खादायारो होत्था। तं जहा—
सिज्जस बंभदत्ते सुरिंददत्ते य इंददत्ते य।
पउमे य सोमदेवे माहिंदे तह य सोमदत्ते य ।।२७।।
पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद सुणदे जये य विजये य।
तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह वग्गसीहे अ ।।२८।।
अवराजिय विस्ससेणे वीसइमे होइ उसभसेणे य।
दिण्णे वरदत्ते धणे बहुले य आणुपुव्वीए ।।२९।।
एए विसुद्धलेसा जिणवरभत्तीइ पजलिउडा उ।
त काल त समय पडिलाभेई जिणवरिंदे ।।३०।।

इन चौवीसो तीर्थंकरो को प्रथम वार भिक्षा देने वाले चौवीस महापुरुष हुए हैं। जैसे—

१ श्रेयान्स, २ ब्रह्मदत्त, ३ सुरेन्द्रदत्त, ४ इन्द्रदत्त, ५ पद्म, ६ सोमदेव, ७ माहेन्द्र, ८ सोमदत्त, ९ पुष्य, १० पुनर्वसु, ११ पूर्णनन्द, १२ सुलन्द, १३ जय, १४ विजय, १५ धर्मसिह, १६ सुमित्र, १७ वर्ग (वग्ग) सिंह, १८ अपराजित, १९ विश्वसेन, २० वृषभसेन, २१ दत्त, २२ वरदत्त, २३ धनदत्त और २४ बहुल, ये क्रम से चौवीस तीर्थकरो के पहिली वार आहारदान करने वाले जानना चाहिए। इन सभी विशुद्ध लेश्यावाले और जिनवरो की भक्ति से प्रेरित होकर अजलिपुट से उस काल और उस समय मे जिनवरेन्द्र तीर्थकरो को आहार का प्रतिलाभ कराया ।। २७-३० ।।

६४४—संवच्छरेण भिक्खा [लद्धा उसभेण लोगणाहेण।
सेसेहि बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ।।३१।।]

लोकनाथ भगवान् ऋषभदेव को एक वर्ष के बाद प्रथम भिक्षा प्राप्त हुई। शेष सब तीर्थंकरो को प्रथम भिक्षा दूसरे दिन प्राप्त हुई ।। ३१ ।।

विवेचन—शेष तीर्थंकरो के दूसरे दिन भिक्षा-प्राप्त करने के उल्लेख का यह अर्थ है कि जो जितने भक्त के नियम के साथ दीक्षित हुए, उसके दूसरे दिन उन्हे भिक्षा प्राप्त हुई।

६४५—उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसि लोगणाहस्स।
सेसाणं परमण्णं अमियरसरसोवम आसि ॥३२॥]
सव्वेसिं पि जिणाणं जहिय लद्धाउ पढमभिक्खाउ।
तहियं वसुधाराओ सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ ॥३३॥

लोकनाथ ऋषभदेव को प्रथम भिक्षा मे इक्षुरस प्राप्त हुआ। शेष सभी तीर्थंकरो को प्रथम भिक्षा मे अमृत-रस के समान परम-अन्न (खीर) प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ सभी तीर्थंकर जिनो ने जहाँ जहाँ प्रथम भिक्षा प्राप्त की, वहाँ वहाँ शरीरप्रमाण ऊची वसुधारा की वर्षा हुई ॥ ३३ ॥

६४६—एएसि चउव्वीसाए तित्थगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा होत्था। तं जहा—
णग्गोह सत्तिवण्णे साले पियए पियगु छत्ताहे।
सिरिसे य णागरुक्खे साली य पिलखुरुक्खे य ॥३४॥
तिंदुग पाडल जंबू आसत्थे खलु तहेव दहिवण्णे।
णंदीरुक्खे तिलए अबयरुक्खे य असोगे य ॥३५॥
चंपय वउले य तहा वेडसरुक्खे य धायईरुक्खे।
साले य वद्धमाणस्स चेइयरुक्खा जिणवराण ॥३६॥

इन चौवीस तीर्थकरो के चौवीस चैत्यवृक्ष थे। जैसे—

१ न्यग्रोध (वट), २ सप्तपर्ण, ३. शाल, ४ प्रियाल, ५. प्रियगु, ६ छत्राह, ७ शिरीष, ८ नागवृक्ष, ९. साली, १० पिलखुवृक्ष, ११ तिन्दुक १२ पाटल, १३. जम्बु, १४ अश्वत्थ (पीपल) १५.दधिपर्ण, १६ नन्दीवृक्ष, १७ तिलक, १८ आम्रवृक्ष, १९. अशोक, २० चम्पक, २१. बकुल, २२ वेत्रसवृक्ष, २३ धातकीवृक्ष और २४ वर्धमान का शालवृक्ष। ये चौवीस तीर्थकरो के चैत्यवृक्ष है ॥ ३४-३६ ॥

६४७—बत्तीसं धणुयाइ चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स।
णिच्चोउगो असोगे ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ॥३७॥
तिण्णेव गाउआइं चेइयरुक्खो जिणस्स उसभस्स।
सेणाणं पुण रुक्खा सरीरओ बारसगुणा उ ॥३८॥
सच्छत्ता सपडागा सवेइया तोरणेहिं उववेया।
सुर-असुर-गरुलमहिआ चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥३९॥

वर्धमान भगवान् का चैत्यवृक्ष बत्तीस धनुष ऊचा था, वह नित्य-ऋतुक था अर्थात् प्रत्येक ऋतु मे उसमे पत्र-पुष्प आदि समृद्धि विद्यमान रहती थी। अशोकवृक्ष सालवृक्ष से आच्छन्न (ढंका हुआ) था, ॥ ३७ ॥ ऋषभ जिन का चैत्यवृक्ष तीन गव्यूति (कोश) ऊचा था। शेष तीर्थंकरो के चैत्यवृक्ष उनके शरीर की ऊचाई से बारह गुणे ऊचे थे ॥ ३८ ॥ जिनवरो के ये सभी चैत्यवृक्ष छत्र-युक्त, ध्वजा-

पताका-सहित, वेदिका-सहित, तोरणो से सुशोभित तथा सुरो, असुरो और गरुडदेवो से पूजित थे ।।३९।।

विवेचन—जिस वृक्ष के नीचे तीर्थंकरो को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उसे चैत्यवृक्ष कहते हैं। कुछ के मतानुसार तीर्थंकर जिस वृक्ष के नीचे जिन-दीक्षा-ग्रहण करते है, उसे चैत्यवृक्ष कहा जाता है। कुबेर समवसरण मे तीर्थंकर के बैठने के स्थान पर उसी वृक्ष की स्थापना करता है और उसे ध्वजा-पताका, वेदिका और तोरण द्वारो से सुसज्जित करता है। समवसरण-स्थित इन वट, शाल आदि सभी वृक्षो को 'अशोकवृक्ष' कहा जाता है, क्योकि इनकी छाया मे पहुचते ही शोक-सन्तप्त प्राणी का भी शोक दूर होता है और वह अशोक (शोक-रहित) हो जाता है।

६४८—एएसि चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पढमसीसा होत्था। जहा—

पढमेत्थ उसभसेणे बीइए पुण होई सीहसेणे य।
चारू य वज्जणाभे चमरे तह सुव्वय विदब्भे ।।४०।।
दिण्णे य वराहे पुण आणंदे गोथुभे सुहम्मे य।
मदर जसे अरिट्ठे चक्काह सयंभु कुंभे य ।।४१।।
इंदे कुंभे य सुभे वरदत्ते दिण्ण इदभूई य।
उदितोदित-कुलवंसा विसुद्धवसा गुणेहिं उववेया ।।४२।।
तित्थप्पवत्तयाण पढमा सिस्सा जिणवराणं।

इन चौबीस तीर्थंकरो के चौबीस प्रथम शिष्य थे। जैसे—

१ ऋषभदेव के प्रथम शिष्य ऋषभसेन, और दूसरे अजित जिनके प्रथम शिष्य सिंहसेन थे। पुन क्रम से ३. चारु, ४ वज्रनाभ, ५ चमर, ६. सुव्रत, ७ विदर्भ, ८ दत्त, ९. वराह, १० आनन्द, ११ गोस्तुभ, १२. सुधर्म, १३ मन्दर, १४ यश, १५. अरिष्ट, १६ चक्ररथ, १७ स्वयम्भू, १८. कुम्भ, १९ इन्द्र, २० कुम्भ, २१ शुभ, २२ वरदत्त, २३ दत्त और २४ इन्द्रभूति प्रथम शिष्य हुए। ये सभी उत्तम उच्चकुल वाले, विशुद्धवश वाले और गुणो से सयुक्त थे और तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरो के प्रथम शिष्य थे ।।४०-४२½।।

६४९—एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीस पढमसिस्सणी होत्था। त जहा—

बंभी य फग्गु सामा अजिया कासवी रई सोमा।
सुमणा वारुणि सुलसा धारणि धरणी य धरणिधरा ।।४३।।
पउमा सिवा सुई तह अंजुया भावियप्पा य।
रक्खी य बंधुवती पुप्फवती अज्जा अमिला य अहिया ।।४४।।
जक्खिणी पुप्फचूला य चंदणज्जा आहिया उ।
उदितोदियकुलवंसा विसुद्धवसा गुणेहिं उववेया ।।४५।।
तित्थप्पवत्तयाण पढमा सिस्सी जिणवराण।

इन चौबीस तीर्थंकरो की चौबीस प्रथम शिष्याए थी। जैसे—

१. ब्राह्मी, २. फल्गु, ३ श्यामा, ४. अजिता, ५ काश्यपी, ६. रति, ७. सोमा, ८. सुमना,

९. वारुणी, १० सुलसा, ११. धारिणी, १२ धरणी, १३ धरणिधरा, १४ पद्मा, १५ शिवा, १६ शुचि, १७. अजुका, १८ भावितात्मा, १९. बन्धुमती, २० पुष्पवती, २१. आर्या अमिला, २२. यशस्विनी, २३. पुष्पचूला और २४ आर्या चन्दना। ये सब उत्तम उन्नत कुलवाली, विशुद्धवाली, गुणो से सयुक्त थी और तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरो की प्रथम शिष्याए हुई ॥४३-४५½॥

६५०—जबुद्दीवे णं [दीवे] भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टिपियरो होत्था। तं जहा—

उसभे सुमित्ते विजए समुद्दविजए य आससेणे य।
विस्ससेणे य सूरे सुदसणे कत्तवीरिए चेव ॥४६॥
पउमुत्तरे महाहरी विजए राया तहेव य।
बंभे बारसमे उत्ते पिउनामा चक्कवट्टीण ॥४७॥

इस जम्बूद्वीप के इसी भारतवर्ष मे इसी अवसर्पिणी काल मे उत्पन्न हुए चक्रवतियो के बारह पिता थे। जैसे—

१ ऋषभजिन, २ सुमित्र, ३. विजय, ४ समुद्रविजय, ५ अश्वसेन, ६ विश्वसेन, ७. सूरसेन, ८ कार्तवीर्य, ९ पद्मोत्तर, १०. महाहरि, ११ विजय और १२ ब्रह्म। ये बारह चक्रवत्तियो के पिताओ के नाम है ॥४६-४७॥

६५१—जबुद्दीवे [ण दीवे] भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टिमायरो होत्था। त जहा—सुमगला जसवती भद्दा सहदेवी अइरा सिरिदेवी तारा जाला मेरा वप्पा चुल्लिणि अपच्छिमा।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इसी अवसर्पिणी काल मे बारह चक्रवतियो की बारह माताए हुई। जैसे—

१ सुमगला, २. यशस्वती, ३ भद्रा, ४ सहदेवी, ५ अचिरा, ६ श्री, ७ देवी, ८ तारा, ९ ज्वाला, १० मेरा, ११ वप्रा, और १२ बारहवी चुल्लिनी।

६५२—जंबुद्दीवे [ण दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] बारस चक्कवट्टी होत्था। तं जहा—

भरहो सगरो मघव [सणंकुमारो य रायसद्दूलो।
सती कुंथू य अरो हवइ सुभूमो य कोरव्वो ॥४८॥
नवमो य महापउमो हरिसेणो चेव रायसद्दूलो।
जयनामो य नरवई बारसमो बंभदत्तो य ॥४९॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इसी अवसर्पिणी काल मे बारह चक्रवर्ती हुए। जैसे—

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ राजशार्दूल सनत्कुमार, ५ शान्ति, ६. कुन्थु, ७ अर, ८ कौरव-वशी सुभूम, ९ महापद्म, १० राजशार्दूल हरिषेण, ११ जय और १२ बारहवा नरपति ब्रह्मदत्त ॥ ४८-४९ ॥

६५३—एएसि बारसण्ह चक्कवट्टीणं बारस इत्थिरयणा होत्था । तं जहा—

पढमा होइ सुभद्दा भद्द सुणंदा जया य विजया य ।
किण्हसिरी सूरसिरी पउमसिरी वसुंधरा देवी ।। ५० ।।
लच्छिमई कुरुमई इत्थीरयणाण नामाइं ।

इन बारह चक्रवर्तियो के बारह स्त्रीरत्न थे । जैसे—

१ प्रथम सुभद्रा, २. भद्रा, ३ सुनन्दा, ४. जया, ५ विजया, ६. कृष्णश्री, ७. सूर्यश्री, ८ पद्मश्री, ९ वसुन्धरा, १० देवी, ११ लक्ष्मीमती और १२ कुरुमती । ये स्त्रीरत्नो के नाम है ।। (५०-५०½) ।।

६५४—जंबुद्दीवे [ण दीवे भारहे वासे इमोसे ओसप्पिणीए] नवबलदेव-नववासुदेव-पितरो होत्था । तं जहा—

पयावई य बंभो [सोमो रुद्दो सिवो महसिवो य ।
अग्गिसिहो य दसरहो नवमो भणिओ य वसुदेवो ।। ५१ ।।]

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी मे नौ बलदेवो और नौ वासुदेवो के नौ पिता हुए । जैसे—

१ प्रजापति, २. ब्रह्म, ३ सोम, ४. रुद्र, ५ शिव, ६. महाशिव, ७. अग्निशिख, ८. दशरथ और ९ वसुदेव ।। ५१ ।।

६५५—जंबुद्दीवे णं [दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] णव वासुदेवमायरो होत्था । तं जहा—

मियावई उमा चेव पुहवी सोया य अम्मया ।
लच्छिमई सेसमई केकई देवई तहा ।। ५२ ।।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इसी अवसर्पिणी काल मे नौ वासुदेवो की नौ माताए हुईं । जैसे—

१ मृगावती, २ उमा, ३ पृथिवी, ४ सीता, ५ अमृता, ६. लक्ष्मीमती, ७ शेषमती, ८ केकयी और ९. देवकी ।। ५२ ।।

६५६—जंबुद्दीवे णं [दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] णव बलदेवमायरो होत्था । त जहा—

भद्दा तह सुभद्दा य सुप्पभा य सुदंसणा ।
विजया वेजयंती य जयंती अपराजिया ।। ५३ ।।
णवमीया रोहिणी य बलदेवाण मायरो ।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इसी अवसर्पिणी काल मे नौ बलदेवो की नौ माताएं हुई । जैसे—

१. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता और ९ रोहिणी । ये नौ बलदेवों की माताएं थी ।। ५३ ।।

६५७—जंबुद्दीवे णं [दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए] नव दसारमंडला होत्था। तं जहा—उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी छायंसी कंता सोमा सुभगा पियदंसणा सुरूवा सुहसीला सुहाभिगमा सव्वजणणयणकंता ओहबला अतिबला महाबला अनिहता अपराइया सत्तुमद्दणा रिपुसहस्समाणमहणा साणुक्कोसा अमच्छरा अचवला अचंडा मियमंजुलपलावहसिया गंभीरमधुर-पडिपुण्णसच्चवयणा अब्भुवगयवच्छला सरण्णा लक्खण-वंजणगुणोववेआ माणुम्माणपमाणपडिपुण्ण-सुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमागार-कंत-पियदंसणा अमरिसणा पयंडदंडप्पयारा गंभीरदरिसणिज्जा तालद्धओव्विद्ध-गरुलकेऊ, महाधणुविकड्डया महासत्तसाअरा दुद्धरा धणुद्धरा धीरपुरिसा जुद्धकित्तिपुरिसा विउलकुलसमुब्भवा महारयणविहाडगा अद्धभरहसामी सोमा रायकुलवंसतिलया अजिया अजियरहा हल-मुसल-कणक-पाणी संख-चक्क-गय-सत्ति-नंदगधरा पवरुज्जल-सुक्कंत-विमल-गोत्थुभ-तिरीडधारी कुंडल-उज्जोइयाणणा पुंडरीयणयणा एकावलि-कण्ठ-लइयवच्छा सिरिवच्छ-सुलंछणा वरजसा सव्वोउयसुरभि-कुसुम-रचित-पलंब-सोभंत-कंत-विकसंत-विचित्तवर-मालरइय-वच्छा अट्ठसय-विभत्त-लक्खण-पसत्थ-सुंदर-विरइयंगमंगा मत्तगयवरिंद-ललिय-विक्कम-विलसियगई सारय-नवथणिय-महुर-गभीर-कोंच-निग्घोस-दुंदुभिसरा कडिसुत्तग-नील-पीय-कोसेज्जवाससा पवरदित्ततेया नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसहा मरुयवसभकप्पा अब्भहियरायतेय-लच्छीए दिप्पमाणा नीलग-पीयगवसणा दुवे दुवे राम-केसवा भायरो होत्था। तं जहा—

इस जम्बूद्वीप मे इस भारतवर्ष के इस अवसर्पिणीकाल मे नौ दशारमडल (बलदेव और वासुदेव समुदाय) हुए है। सूत्रकार उनका वर्णन करते है—

वे सभी बलदेव और वासुदेव उत्तम कुल मे उत्पन्न हुए श्रेष्ठ पुरुष थे, तीर्थंकरादि शलाका-पुरुषो के मध्यवर्ती होने से मध्यम पुरुष थे, अथवा तीर्थंकरो के बल की अपेक्षा कम और सामान्य जनो के बल की अपेक्षा अधिक बलशाली होने से वे मध्यम पुरुष थे। अपने समय के पुरुषो के शौर्यादि गुणो की प्रधानता की अपेक्षा वे प्रधान पुरुष थे। मानसिक बल से सम्पन्न होने के कारण ओजस्वी थे। देदीप्यमान शरीरो के धारक होने से तेजस्वी थे। शारीरिक बल से सयुक्त होने के कारण वर्चस्वी थे, पराक्रम के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त करने से यशस्वी थे। शरीर की छाया (प्रभा) से युक्त होने के कारण वे छायावन्त थे। शरीर की कान्ति से युक्त होने से कान्त थे, चन्द्र के समान सौम्य मुद्रा के धारक थे, सर्वजनो के वल्लभ होने से वे सुभग या सौभाग्यशाली थे। नेत्रो को अति-प्रिय होने से वे प्रियदर्शन थे। समचतुरस्र सस्थान के धारक होने से वे सुरूप थे। शुभ स्वभाव होने से वे शुभशील थे। सुखपूर्वक सरलता से प्रत्येक जन उनसे मिल सकता था, अत वे सुखाभिगम्य थे। सर्व जनो के नयनो के प्यारे थे। कभी नही थकनेवाले अविच्छिन्न प्रवाहयुक्त बलशाली होने से वे ओघबली थे, अपने समय के सभी पुरुषो के बल का अतिक्रमण करने से अतिबली थे, और महान् प्रशस्त या श्रेष्ठ बलशाली होने से वे महाबली थे। निरुपक्रम आयुष्य के धारक होने से अनिहत अर्थात् दूसरे के द्वारा होने वाले घात या मरण से रहित थे, अथवा मल्ल-युद्ध मे कोई उनको पराजित नही कर सकता था, इसी कारण वे अपराजित थे। बडे-बडे युद्धो मे शत्रुओं का मर्दन करने से वे शत्रु-मर्दन थे, सहस्रो शत्रुओ के मान का मथन करने वाले थे। आज्ञा या सेवा स्वीकार करने वालो पर द्रोह छोडकर कृपा करने वाले थे। वे मात्सर्य-रहित थे, क्योकि दूसरो के लेश मात्र भी गुणो के ग्राहक थे। मन वचन काय की स्थिर प्रवृत्ति के कारण वे अचपल (चपलता-रहित) थे। निष्कारण

प्रचण्ड क्रोध से रहित थे, परिमित मंजुल वचनालाप और मृदु हास्य से युक्त थे। गम्भीर, मधुर और परिपूर्ण सत्य वचन बोलते थे। अधीनता स्वीकार करने वालो पर वात्सल्य भाव रखते थे। शरण मे आनेवाले के रक्षक थे। वज्र, स्वस्तिक, चक्र आदि लक्षणों से और तिल, मशा आदि व्यंजनो के गुणो से संयुक्त थे। शरीर के[1] मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थे, वे जन्म-जात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर के धारक थे। चन्द्र के सौम्य आकार वाले, कान्त और प्रियदर्शन थे। 'अमसृण' अर्थात् कर्त्तव्य-पालन मे आलस्य-रहित थे अथवा 'अमर्षण' अर्थात् अपराध करनेवालो पर भी क्षमाशील थे। उद्दड पुरुषो पर प्रचण्ड दण्डनीति के धारक थे। गम्भीर और दर्शनीय थे। बलदेव ताल वृक्ष के चिह्नवाली ध्वजा के और वासुदेव गरुड के चिह्नवाली ध्वजा के धारक थे। वे दशार-मण्डल कर्ण-पर्यन्त महाधनुषो को खीचनेवाले, महासत्त्व (बल) के सागर थे। रण-भूमि मे उनके प्रहार का सामना करना अशक्य था। वे महान् धनुषो के धारक थे, पुरुषो मे धीर-वीर थे, युद्धो मे प्राप्त कीर्ति के धारक पुरुष थे, विशाल कुलो मे उत्पन्न हुए थे, महारत्न वज्र (हीरा) को भी अंगूठे और तर्जनी दो अंगुलियो से चूर्ण कर देते थे। आधे भरत क्षेत्र के अर्थात् तीन खण्ड के स्वामी थे। सौम्य-स्वभावी थे। राज-कुलो और राजवंशो के तिलक थे। अजित थे (किसी से भी नही जीते जाते थे), और अजितरथ (अजेय रथ वाले) थे। बलदेव हल और मूशल रूप शस्त्रो के धारक थे, तथा वासुदेव शाङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शक्ति और नन्दकनामा खड्ग के धारक थे। प्रवर, उज्ज्वल, सुकान्त, विमल कौस्तुभ मणि युक्त मुकुट के धारी थे। उनका मुख कुण्डलो मे लगे मणियो के प्रकाश से युक्त रहता था। कमल के समान नेत्र वाले थे। एकावली हार कण्ठ से लेकर वक्ष स्थल तक शोभित रहता था। उनका वक्ष स्थल श्रीवत्स के सुलक्षण से चिह्नित था। वे विश्व-विख्यात यश वाले थे। सभी ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाले, सुगन्धित पुष्पो से रची गई, लबी, शोभायुक्त, कान्त, विकसित, पंचवर्णी श्रेष्ठ माला से उनका वक्ष स्थल सदा शोभायमान रहता था। उनके सुन्दर अग-प्रत्यग एक सौ आठ प्रशस्त लक्षणो से सम्पन्न थे। वे मद-मत्त गजराज के समान ललित, विक्रम और विलास-युक्त गति वाले थे। शरद ऋतु के नव-उदित मेघ के समान मधुर, गम्भीर, क्रौच पक्षी के निर्घोष और दुन्दुभि के समान स्वर वाले थे। बलदेव कटिसूत्र वाले नील कौशेयक वस्त्र से तथा वासुदेव कटिसूत्र वाले पीत कौशेयक वस्त्र से युक्त रहते थे (बलदेवो की कमर पर नीले रंग का और वासुदेवो की कमर पर पीले रग का दुपट्टा बधा रहता था)। वे प्रकृष्ट दीप्ति और तेज से युक्त थे, प्रबल बलशाली होने से वे मनुष्यो मे सिह के समान होने से नरसिह, मनुष्यो के पति होने से नरपति, परम ऐश्वर्यशाली होने से नरेन्द्र, तथा सर्वश्रेष्ठ होने से नर-वृषभ कहलाते थे। अपने कार्य-भार का पूर्ण रूप से निर्वाह करने से वे मरुद्-वृषभकल्प अर्थात् देवराज की उपमा को धारण करते थे। अन्य राजा-महाराजाओ से अधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान थे। इस प्रकार नील-वसनवाले नौ राम (बलदेव) और नव पीत-वसनवाले केशव (वासुदेव) दोनो भाई-भाई हुए हैं।

---

१ जल से भरी द्रोणी (नाव) मे बैठने पर उससे बाहर निकला जल यदि द्रोण (माप-विशेष) प्रमाण हो तो वह पुरुष 'मान-प्राप्त' कहलाता है। तुला (तराजू) पर बैठे पुरुष का वजन यदि अर्धभार प्रमाण हो तो वह उन्मान-प्राप्त कहलाता है। शरीर की ऊचाई उसके अगुल से यदि एक सौ आठ अगुल हो तो वह प्रमाण-प्राप्त कहलाता है।

६५८—तिविट्ठे य [दुविट्ठे य सयंभू पुरिसुत्तमे पुरिससीहे ।
तह पुरिसपुंडरीए दत्ते नारायणे कण्हे ।। ५४ ।।
अयले विजये भद्दे सुप्पभे य सुदंसणे ।
आनंदे नंदणे पउमे रामे यावि] अपच्छिमे ।। ५५ ।।

उनमे वासुदेवों के नाम इस प्रकार हैं -१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुषपुंडरीक, ७ दत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण) और ९ कृष्ण ।। ५४ ।।

बलदेवो के नाम इस प्रकार हैं—१ अचल, २ विजय, ३ भद्र, ४ सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६ आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म और अन्तिम बलदेव राम ।।५५।।

६५९—एएसि ण णवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया नव नामधेज्जा होत्था । तं जहा—
विस्सभूई पव्वयए धणदत्त समुद्दवत्त इसिवाले ।
पियमित्त ललियमित्ते पुणव्वसू गंगदत्ते य ।। ५६ ।।
एयाइ नामाइ पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं ।
एत्तो बलदेवाण जहक्कम कित्तइस्सामि ।। ५७ ।।
विसनन्दी य सुबन्धू सागरदत्ते असोगललिए य ।
वाराह धम्मसेणे अपराइय रायललिए य ।। ५८ ।।

इन नव बलदेवो और वासुदेवो के पूर्व भव के नौ नाम इस प्रकार थे- -

१ विश्वभूति, २ पर्वत, ३ धनदत्त, ४ समुद्रदत्त, ५. ऋषिपाल, ६ प्रियमित्र, ७ ललितमित्र, ८. पुनर्वसु, ९ और गगदत्त । ये वासुदेवो के पूर्व भव मे नाम थे ।

इससे आगे यथाक्रम से बलदेवो के नाम कहूंगा ।।५६-५७।।

१ विश्वनन्दी, २ सुबन्धु, ३ सागरदत्त, ४ अशोक, ५ ललित, ६ वाराह, ७ धर्मसेन, ८ अपराजित और ९ राजललित ।।५८।।

६६०—एएसि नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया नव धम्मायरिया होत्था । तं जहा—
संभूय सुभद्द सुदसणे य सेयस कण्ह गंगदत्ते य ।
सागर समुद्दनामे दुमसेणे य णवमए ।। ५९ ।।
एए धम्मायरिया कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
पुव्वभवे एयासि जत्थ नियाणाइ कासी य ।। ६० ।।

इन नव बलदेवो और वासुदेवो के पूर्वभव मे नौ धर्माचार्य थे—

१ संभूत, २ सुभद्र, ३ सुदर्शन, ४ श्रेयान्स, ५ कृष्ण, ६ गंगदत्त, ७ सागर, ८ समुद्र और ९ द्रुमसेन ।।५९।। ये नवो ही आचार्य कीर्त्तिपुरुष वासुदेवो के पूर्वभव मे धर्माचार्य थे । जहाँ वासुदेवो ने पूर्व भव मे निदान किया था उन नगरो के नाम आगे कहते है— ।।६०।।

६६१—एएसि नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे नव नियाणभूमीओ होत्था । तं जहा-
महुरा य [कणगवत्थू सावत्थी पोयणं च रायगिहं ।
कायंदी कोसम्बी मिहिलपुरी] हत्थिणाउरं च ।। ६१ ।।

इन नवो वासुदेवो की पूर्व भव मे नौ निदान-भूमियाँ थी। (जहाँ पर उन्होने निदान (नियाणा) किया था।) जैसे—

१. मथुरा, २. कनकवस्तु, ३. श्रावस्ती, ४ पोदनपुर, ५. राजगृह, ६. काकन्दी, ७ कौशाम्बी, ८. मिथिलापुरी और ९ हस्तिनापुर ।।६२।।

६६२—एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाण नव नियाणकारणा होत्था। तं जहा—

गावि जुवे [संगामे तह इत्थी पराइओ रंगे।
भज्जाणुराग गोट्ठी परइड्ढी माउआ इय ।।६२।।]

इन नवो वासुदेवों के निदान करने के नौ कारण थे—

१ गावी (गाय), २ यूपस्तम्भ, ३ सग्राम, ४ स्त्री, ५ युद्ध मे पराजय, ६ स्त्री-अनुराग ७ गोष्ठी, ८ पर-ऋद्धि और ९ मातृका (माता) ।।६३।।

६६३—एएसि नवण्हं वासुदेवाण नव पडिसत्तू होत्था। तं जहा—

अस्सग्गीवे [तारए मेरए महुकेढवे निसुंभे य।
बलिपहराए तह रावणे य नवमे] जरासंधे ।।६३।।
एए खलु पडिसत्तू [कित्ती पुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही सव्वे वि हया] सचक्केहिं ।।६४।।
एक्को य सत्तमीए पच य छट्ठीए पचमी एक्को।
एक्को य चउत्थीए कण्हो पुण तच्च पुढवीए ।।६५।।
अणिदाणकडा रामा [सव्वे वि य केसवा नियाणकडा।
उड्ढगामी रामा केसव सव्वे अहोगामी ।।६६।।
अट्ठंतकडा रामा एगो पुण बभलोयकप्पमि।
एक्कस्स गब्भवसही सिज्झिस्सइ आगमिस्सेणं ।।६७।।

इन नवो वासुदेवो के नौ प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेव) थे। जैसे—

१. अश्वग्रीव, २ तारक ३ मेरक ४ मधु-कैटभ, ५ निशुम्भ ६. बलि, ७ प्रभराज (प्रह्लाद), ८ रावण और ९ जरासन्ध ।। ६३ ।। ये कीर्तिपुरुष वासुदेवो के नौ प्रतिशत्रु थे। ये सभी चक्रयोधी थे और सभी अपने ही चक्रो से युद्ध मे मारे गये ।।६४।।

उक्त नौ वासुदेवो मे से एक मर कर सातवी पृथिवी मे, पाच वासुदेव छठी पृथिवी मे, एक पाचवी मे एक चौथी मे और कृष्ण तीसरी पृथिवी मे गये ।।६५।।

सभी राम (बलदेव) अनिदानकृत होते हैं और सभी वासुदेव पूर्व भव में निदान करते हैं। सभी राम मरण कर ऊर्ध्वगामी होते हैं और सभी वासुदेव अधोगामी होते है ।।६६।।

आठ राम (बलदेव) अन्तकृत् अर्थात् कर्मों का क्षय करके ससार का अन्त करने वाले हुए। एक अन्तिम बलदेव ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुए। जो आगामी भव मे एक गर्भ-वास लेकर सिद्ध होगे ।।६७।।

६६४—जंबुद्दीवे [ण दीवे] एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था। तं जहा—

चंदाणणं सुचंदं अग्गीसेणं च नंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं वयहारिं वंदिमो सोमचंदं च ॥६८॥
वंदामि जुत्तिसेणं अजियसेणं तहेव सिवसेणं ।
बुद्धं च देवसम्मं सययं निक्खित्तसत्थं च ॥६९॥
असंजलं जिणवसहं वंदे य अणंतयं अमियणाणिं ।
उवसंतं च धुयरयं वंदे खलु गुत्तिसेणं च ॥७०॥
अतिपासं च सुपासं देवेसरवंदियं च मरुदेवं ।
निव्वाणगयं च धरं खीणदुहं सामकोट्ठं च ॥७१॥
जियरागमग्गिसेणं वंदे खीणरयमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसियपिज्जदोसं वारिसेणं गयं सिद्धिं ॥७२॥

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष मे इसी अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकर हुए हैं—

१ चन्द्र के समान मुख वाले सुचन्द्र, २ अग्निसेन, ३ नन्दिसेन, ४ व्रतधारी ऋषिदत्त और ५ सोमचन्द्र की मैं वन्दना करता हू ॥६७॥ ६ युक्तिसेन, ७. अजितसेन, ८ शिवसेन, ९ बुद्ध, १० देवशर्म, ११ निक्षिप्तशस्त्र (श्रेयान्स) की मैं सदा वन्दना करता हू ॥६९॥ १२ असज्वल, १३. जिनवृषभ और १४ अमितज्ञानी अनन्त जिन की मै वन्दना करता हू । १५ कर्मरज-रहित उपशान्त और १६ गुप्तिसेन की भी मैं वन्दना करता हू ॥७०॥ १७ अति-पार्श्व, १८ सुपार्श्व, तथा १९. देवेश्वरों से वन्दित मरुदेव, २० निर्वाण को प्राप्त धर और २१ प्रक्षीण दु ख वाले श्यामकोष्ठ, २२ रागविजेता अग्निसेन, २३ क्षीणरागी अग्निपुत्र और राग-द्वेष का क्षय करने वाले, सिद्धि को प्राप्त चौवीसवें वारिषेण की मैं वन्दना करता हू (कही-कही नामो के क्रम मे भिन्नता भी देखी जाती है ।) ॥७१-७२॥

६६५—जंबुद्दीवे [णं दीवे] आगमिस्साए उस्सप्पिणीए भारहे वासे सत्त कुलगरा भविस्संति । त जहा—

मियवाहणे सुभूमे य सुप्पभे य सयपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य आगमिस्साण होक्खंति ॥७३॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे सात कुलकर होगे । जैसे—

१ मितवाहन, २ सुभूम, ३ सुप्रभ, ४ स्वयम्प्रभ, ५ दत्त, ६ सूक्ष्म और ७ सुबन्धु ये आगामी उत्सर्पिणी मे सात कुलकर होगे ॥७३॥

६६६—जंबुद्दीवे ण दीवे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए एरवए वासे दस कुलगरा भविस्संति । तं जहा—विमलवाहणे सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे दढधणू दसधणू सयधणू पडिसुई सुमइ त्ति ।

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे दश कुलकर होगे १. विमल-वाहन, २ सीमंकर, ३. सीमधर, ४ क्षेमकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढधनु, ७. दशधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति और १० सुमति ।

६६७—जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउवीस तित्थगरा भविस्संति। तं जहा—

महापउमे सूरदेवे सुपासे य सयपभे।
सव्वाणुभूई अरहा देवस्सुए य होक्खइ ॥ ७४ ॥
उदए पेढालपुत्ते य पोट्ठिले सत्तकित्ति य।
मुणिसुव्वए य अरहा सव्वभावविऊ जिणे ॥ ७५ ॥
अममे णिक्कसाए य निप्पुलाए य निम्ममे।
चित्तउत्ते समाही य आगमिस्सेण होक्खइ ॥ ७६ ॥
सवरे अणियट्टी य विजए विमले ति य।
देवोववाए अरहा अणंतविजए इ य ॥ ७७ ॥
एए वुत्ता चउव्वीसं भरहे वासम्मि केवली।
आगमिस्सेण होक्खंति धम्मतित्थस्स देसगा ॥ ७८ ॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकर होगे। जैसे—१ महापद्म, २ सूरदेव, ३. सुपार्श्व, ४ स्वयम्प्रभ, ५ सर्वानुभूति, ६ देवश्रुत, ७. उदय, ८ पेढालपुत्र, ९ प्रोष्ठिल, १० शतकीर्त्ति, ११. मुनिसुव्रत, १२ सर्वभाववित्, १३ अमम, १४ निष्कषाय, १५. निष्पुलाक, १६ निर्मम, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ संवर, २० अनिवृत्ति, २१ विजय, २२ विमल, २३ देवोपपात और २४ अनन्तविजय। ये चौवीस तीर्थंकर भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे धर्मतीर्थ की देशना करने वाले होगे ॥७४-७८॥

६६८—एएसि ण चउव्वीसाए तित्थकराणं पुव्वभविया चउव्वीसं नामधेज्जा भविस्संति (?) (होत्था।)

सेणिय सुपास उदए पोट्टिल्ल तह दढाऊ य।
कत्तिय संखे य तहा नंद सुनन्दे य सतए य ॥ ७९ ॥
बोधव्वा देवई य सच्चइ तह वासुदेव बलदेवे।
रोहिणि सुलसा चेव तत्तो खलु रेवई चेव ॥ ८० ॥
तत्तो हवइ सयाली बोधव्वे खलु तहा भयाली य।
दीवायणे य कण्हे तत्तो खलु नारए चेव ॥ ८१ ॥
अंबड दारुमडे य साई बुद्धे य होइ बोद्धव्वे।
भावी तित्थगराणं णामाइं पुव्वभवियाइं ॥ ८२ ॥

इन भविष्यकालीन चौवीस तीर्थकरो के पूर्व भव के चौवीस नाम इस प्रकार हैं—

१. श्रेणिक, २ सुपार्श्व, ३ उदय, ४ प्रोष्ठिल अनगार, ५ दृढायु, ६ कार्तिक, ७. शख, ८ नन्द, ९ सुनन्द, १० शतक, ११. देवकी, १२. सात्यकि, १३ वासुदेव, १४. बलदेव, १५. रोहिणी, १६ सुलसा, १७. रेवती, १८ शताली, १९. भयाली, २०. द्वीपायन, २१. नारद, २२. अबड, २३ स्वाति, २४ बुद्ध। ये भावी तीर्थंकरों के पूर्व भव के नाम जानना चाहिए ॥७९-८२॥

६६९—एएसि णं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पियरो भविस्संति, चउव्वीसं मायरो भविस्संति, चउव्वीसं पढमसीसा भविस्संति, चउव्वीसं पढमसिस्सणीओ भविस्संति, चउव्वीसं पढम-भिक्खादायगा भविस्संति, चउव्वीसं चेइयरुक्खा भविस्सति।

उक्त चौवीस तीर्थंकरो के चौवीस पिता होगे, चौवीस माताए होगी, चौवीस प्रथम शिष्य होगे, चौवीस प्रथम शिष्याए होगी, चौवीस प्रथम भिक्षा-दाता होगे और चौवीस चैत्य वृक्ष होगे।

६७०—जंबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति। तं जहा—

भरहे य दीहदंते गूढदंते य सुद्धदंते य।
सिरिउत्ते सिरिभूई सिरिसोमे य सत्तमे॥ ८३॥
पउमे य महापउमे विमलवाहणे [लेतह] विपुलवाहणे चेव।
रिट्ठे बारसमे वुत्ते आगमिस्सा भरहाहिवा॥ ८४॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी मे बारह चक्रवर्ती होगे। जैसे—

१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ गूढदन्त, ४ शुद्धदन्त, ५ श्रीपुत्र ६ श्रीभूति, ७ श्रीसोम, ८ पद्म, ९ महापद्म, १० विमलवाहन, ११. विपुलवाहन और बारहवाँ रिष्ट, ये बारह चक्रवर्ती आगामी उत्सर्पिणी काल मे भरत क्षेत्र के स्वामी होगे॥८३-८४॥

६७१—एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस पियरो, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्सति।

इन बारह चक्रवर्त्तियो के बारह पिता, बारह माता और बारह स्त्रीरत्न होगे।

६७२—जंबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेव-पियरो भविस्सति, नव वासुदेवमायरो भविस्संति, नव बलदेवमायरो भविस्संति, नव दसारमडला भविस्संति। त जहा—उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी। एव सो चेव वण्णओ भाणियव्वो जाव नीलगपीतगवसणा दुवे दुवे राम-केसवा भायरो भविस्सति। त जहा—

नंदे य नंदमित्ते दीहबाहू तहा महाबाहू।
अइबले महाबले बलभद्दे य सत्तमे॥ ८५॥
दुविट्ठू य तिवट्ठू य आगमिस्साण वण्हिणो।
जयंते विजए भद्दे सुप्पभे य सुदंसणे॥ ८६॥
आणदे नदणे पउमे संकरिसणे य अपच्छिमे।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे नौ बलदेवो और नौ वासुदेवो के पिता होगे, नौ वासुदेवो की माताए होगी, नौ बलदेवो की माताए होगी, नौ दशार-मडल होगे। वे उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रधान पुरुष, ओजस्वी तेजस्वी आदि पूर्वोक्त विशेषणो से युक्त होंगे। पूर्व में जो दशार-मडल का विस्तृत वर्णन किया है, वह सब यहाँ पर भी यावत् बलदेव नील वसनवाले और वासुदेव पीत वसनवाले होगे, यहाँ तक ज्यों का त्यो कहना चाहिए। इस प्रकार भविष्यकाल मे दो-दो राम और केशव भाई होगे। उनके नाम इस प्रकार होगे—

१. नन्द, २ नन्दमित्र, ३ दीर्घबाहु, ४. महाबाहु, ५ अतिबल, ६. महाबल ७ बलभद्र, ८. द्विपृष्ठ और ९. त्रिपृष्ठ ये नौ आगामी उत्सर्पिणी काल में नौ कृष्णो या वासुदेव होंगे। तथा १. जयन्त, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८ पद्म, और अन्तिम ९. सकर्षण ये नौ बलदेव होंगे ॥८५-८६॥

६७३—एएसि णं नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया णव नामधेज्जा भविस्संति, णव धम्मायरिया भविस्संति, नव नियाणभूमीओ भविस्संति, नव नियाणकारणा भविस्संति, नव पडिसत्त भविस्संति। तं जहा—

तिलए य लोहजंघे वइरजंघे य केसरी पहराए।
अपराइए य भीमे महाभीमे य सुग्गीवे ॥८७॥
एए खलु पडिसत्तू कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही हम्मिहिंति सचक्केहिं ॥८८॥

इन नवों बलदेवो और वासुदेवो के पूर्वभव के नौ नाम होंगे, नौ धर्माचार्य होंगे, नौ निदान-भूमियाँ होंगी, नौ निदान-कारण होंगे और नौ प्रतिशत्रु होंगे। जैसे—

१ तिलक, २. लोहजघ, ३ वज्रजघ, ४. केशरी, ५ प्रभराज, ६ अपराजित, ७. भीम, ८ महाभीम, और ९. सुग्रीव। कीर्तिपुरुष वासुदेवो के ये नौ प्रतिशत्रु होंगे। सभी चक्रयोधी होंगे और युद्ध मे अपने चक्रो से मारे जायेंगे ॥८७-८८॥

६७४—जंबुद्दीवे [णं दीवे] एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीस तित्थकरा भविस्संति। तं जहा—

सुमगले य सिद्धत्थे णिव्वाणे य महाजसे।
धम्मज्झए य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥८९॥
सिरिचदे पुप्फकेऊ महाचदे य केवली।
सुयसागरे य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥९०॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य महाघोसे य केवली।
सच्चसेणे य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥९१॥
सूरसेणे य अरहा महासेणे य केवली।
सव्वाणदे य अरहा देवउत्ते य होक्खई ॥९२॥
सुपासे सुव्वए अरहा अरहे य सुकोसले।
अरहा अणंतविजए आगमिस्साण होक्खइ ॥९३॥
विमले उत्तरे अरहा अरहा य महाबले।
देवाणंदे य अरहा आगमिस्साण होक्खई ॥९४॥
एए वुत्ता चउव्वीसं एरवयम्मि केवली।
आगमिस्साण होक्खंति धम्मतित्थस्स देसगा ॥९५॥

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकर होंगे। जैसे—
१. सुमंगल, २. सिद्धार्थ, ३. निर्वाण, ४. महायश, ५. धर्मध्वज, ये अरहन्त भगवन्त

आगामी काल मे होगे ।। ८९ ।। पुन ६ श्रीचन्द्र, ७. पुष्पकेतु, ८. महाचन्द्र केवली और ९ श्रुतसागर अर्हन् होगे ।। ९० ।। पुन. १० सिद्धार्थ ११ पूर्णघोष, १२. महाघोष केवली और १३. सत्यसेन अर्हन् होगे ।। ९१ ।। तत्पश्चात् १४. सूरसेन अर्हन् १५. महासेन केवली, १६. सर्वानन्द और १७ देवपुत्र अर्हन् होगे ।। ९२ ।। तदनन्तर, १८ सुपार्श्व, १९ सुव्रत अर्हन्, २० सुकोशल अर्हन्, और २१. अनन्तविजय अर्हन् आगामी काल मे होगे ।। ९३ ।। तदनन्तर, २२ विमल अर्हन्, उनके पश्चात् २३. महाबल अर्हन् और फिर २४ देवानन्द अर्हन् आगामी काल मे होगे ।। ९४ ।। ये ऊपर कहे हुए चौवीस तीर्थंकर केवली ऐरवत वर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे धर्म-तीर्थ की देशना करने वाले होगे ।। ९५ ।।

६७५—[जबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए] **बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति, बारस चक्कवट्टिपियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति। नव बलदेव-वासुदेवपियरो भविस्संति, नव वासुदेवमायरो भविस्संति, नव बलदेवमायरो भविस्संति। नव दसारमंडला भविस्संति, उत्तिमा पुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा जाव दुवे दुवे राम-केसवा भायरो, भविस्संति, णव पडिसत्तू भविस्संति, नव पुव्वभवनामधेज्जा, णव धम्मायरिया, णव णियाणभूमीओ, णव णियाणकारणा आयाए एरवए आगमिस्साए भाणियव्वा।**

[इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे] बारह चक्रवर्ती होगे, बारह चक्रवर्तियो के पिता होगे, उनकी बारह माताए होगी, उनके बारह स्त्रीरत्न होगे। नौ बलदेव और वासुदेवो के पिता होगे, नौ वासुदेवो की माताए होगी, नौ बलदेवो की माताए होगी। नौ दशार मडल होगे, जो उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रधान पुरुष यावत् सर्वाधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान दो-दो राम-केशव (बलदेव-वासुदेव) भाई-भाई होगे। उनके नौ प्रतिशत्रु होगे, उनके नौ पूर्व भव के नाम होगे, उनके नौ धर्माचार्य होगे, उनकी नौ निदान-भूमिया होगी, निदान के नौ कारण होगे। इसी प्रकार से आगामी उत्सर्पिणी काल मे ऐरवत क्षेत्र मे उत्पन्न होने वाले बलदेवादि का मुक्ति-गमन, स्वर्ग से आगमन, मनुष्यो मे उत्पत्ति और मुक्ति का भी कथन करना चाहिए।

६७६—**एवं दोसु वि आगमिस्साए भाणियव्वा।**

इसी प्रकार भरत और ऐरवत इन दोनो क्षेत्रो मे आगामी उत्सर्पिणी काल मे होने वाले वासुदेव आदि का कथन करना चाहिए।

६७७—**इच्चेयं एवमाहिज्जति। तं जहा—कुलगरवंसेइ य, एवं तित्थगरवंसेइ य, चक्कवट्टि-वंसेइ य दसारवंसेइ वा गणधरवंसेइ य, इसिवंसेइ य, जइवंसेइ य, मुणिवंसेइ य, सुएइ वा, सुअंगेइ वा सुयसमासेइ वा, सुयखंधेइ वा समवाएइ वा, संखेइ वा समत्तमंगमक्खाय अज्झयणं ति बेमि।**

इस प्रकार यह अधिकृत समवायाङ्ग सूत्र अनेक प्रकार के भावो और पदार्थों का वर्णन करने के रूप से कहा गया है। जैसे—इसमे कुलकरो के वशो का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार तीर्थंकरो के वशो का, चक्रवर्तियो के वशो का, दशार-मडलो का, गणधरो के वशो का, ऋषियो के वशो का यतियो के वशो का और मुनियो के वशो का भी वर्णन किया गया है। परोक्षरूप से त्रिकालवर्ती समस्त अर्थों का परिज्ञान कराने से यह श्रुतज्ञान है, श्रुतरूप प्रवचन-पुरुष का अग होने से यह

श्रुताङ्ग है, इसमे समस्त सूत्रो का अर्थ सक्षेप से कहा गया है, अत यह श्रुतसमास है, श्रुत का समुदाय रूप वर्णन करने से यह 'श्रुतस्कन्ध' है, समस्त जीवादि पदार्थों का समुदायरूप कथन करने से यह 'समवाय' कहलाता है, एक दो तीन आदि की सख्या के रूप से सख्यान का वर्णन करने से यह 'सख्या' नाम से भी कहा जाता है। इसमे आचारादि अगो के समान श्रुतस्कन्ध आदि का विभाग न होने से यह अग 'समस्त' अर्थात् परिपूर्ण अग कहलाता है। तथा इसमे उद्देश आदि का विभाग न होने से इसे 'अध्ययन' भी कहते हैं। इस प्रकार श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को लक्ष्य करके कहते है कि इस अग को भगवान् महावीर के समीप जैसा मैंने सुना, उसी प्रकार से मैंने तुम्हे कहा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त तीर्थंकरादि के वश से अभिप्राय उनकी परम्परा से है। ऋषि, यति आदि शब्द साधारणत साधुओ के वाचक हैं, तो भी ऋद्धि-धारक साधुओ को ऋषि, उपशम या क्षपकश्रेणी पर चढने वालो को यति, अवधि, मन पर्यय ज्ञान वालो को मुनि और गृह-त्यागी सामान्य साधुओ को अनगार कहते है। सस्कृत टीका मे गणधरो के सिवाय जिनेन्द्र के शेष शिष्यो को ऋषि कहा है। निरुक्ति के अनुसार कर्म-क्लेशो के निवारण करने वाले को ऋषि, आत्म-विद्या मे मान्य ज्ञानियो को मुनि, पापो के नाश करने को उद्यत साधुओ को यति और देह मे भी नि स्पृह को अनगार कहते हैं।[1]

यह समवायाङ्ग यद्यपि द्वादशाङ्गो मे चौथा है, तथापि इसमे सक्षेप मे सभी अगो का वर्णन किया गया है, अत इसका महत्त्व विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है।

॥ समवायाङ्ग सूत्र समाप्त ॥

---

१ रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिण ।
मान्यत्वादात्मविद्याना महद्भि कीर्त्यते मुनि ॥ ८२९ ॥
य पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ।
योऽनीहो देह-गेहेऽपि सोऽनगार सतां मत ॥ ८३० ॥ —[यशस्तिलकचम्पू]

परिशिष्ट (१)

ग्रन्थगतगाथानुक्रमणिका

□□

परिशिष्ट (२)

व्यक्तिनामानुक्रम

□□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए । अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है ।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं । इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है । जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते ।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणित्ते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे , उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे ।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए । नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि संझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते । कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे ।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गये है । जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा मे आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

३-४ —गर्जित-विद्युत्—गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर या बादलो सहित आकाश मे कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्यायकाल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी मांस और रुधिर—पचेंद्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुए उठाई न जाएँ जब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश· सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै· शनै· स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इसमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रात साय मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।